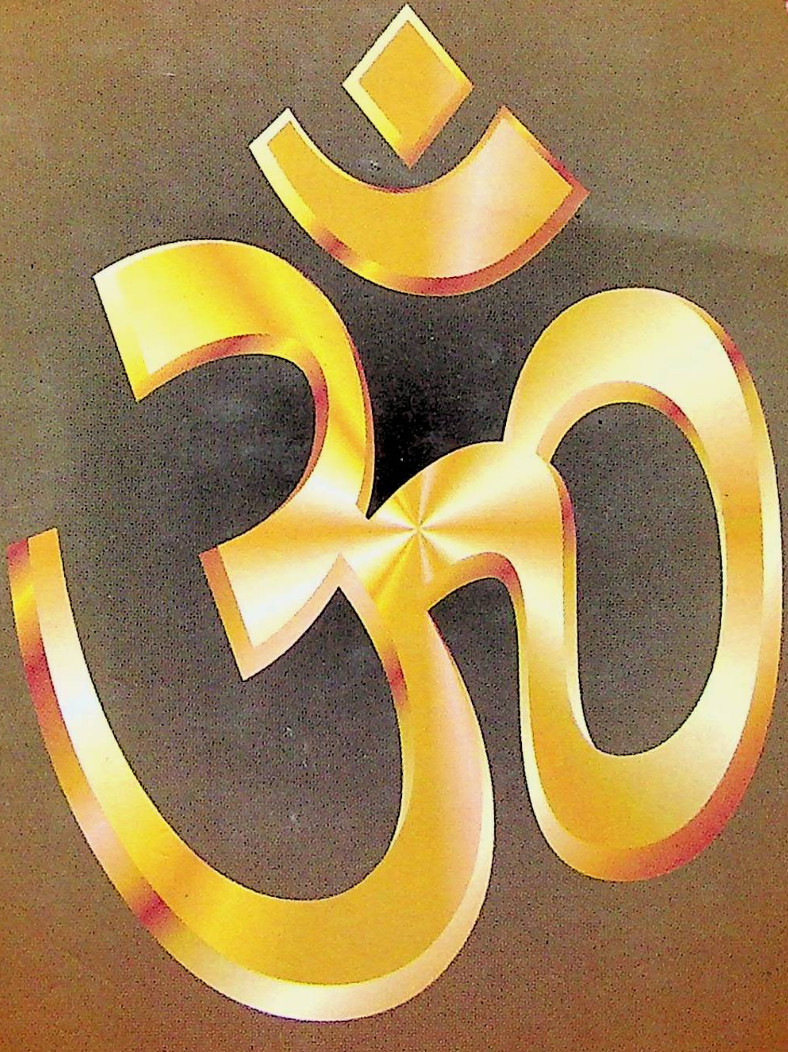
सिविल सूट

मूल - श्रीसत्यध्यानतीर्थ स्वामीजी
अनुवादः पं. अश्वत्थामाचार्य माहुली



विश्व मध्व महा परिषत् - उत्तरादिमठ - बेंगळूर

॥ श्री दिग्विजयरामो विजयते ॥
॥ श्री गुरूभ्यो नमः ॥

श्रीमध्वाचार्यमूलमहासंस्थान श्रीमदुत्तरादिमठाधीश्वर जगद्गुरू
श्री सत्यध्यानतीर्थ विरचित

सिविल सूट

हिन्दी अनुवाद

पंडित अश्वत्थामाचार्य माहुली
साहित्यरत्न (सुवर्णपदक विजेता) वेदांताचार्य

प्रकाशक :
विश्वमध्व महापरिषत्
उत्तरादिमठ
बेंगलूर - ४. कर्नाटक

CIVIL SUIT

Orginal by Jagadguru Sri 1008, Sri Satyadhayana Teertha Swamiji
Pontiff of Sri Uttaradi Math
(Madhwacharya Moola Maha Sansthanam)

1st Print Copies : 1000

Translated by
Pandit. **Ashwathamacharya Mahuli**
Mulund, Mumbai.

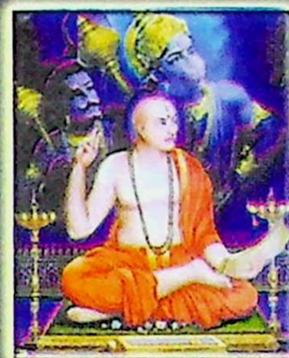
Published by :
Vishwa Madhwa Maha Parishat
(Founded by Sri 1008 **Satyatma Teertha** Swamiji)
Uttaradi Math
Sri. Jayateertha Vidyapeetha
Pampa Maha Kavi Road, Shankarapuram, Bangalore - 560004.

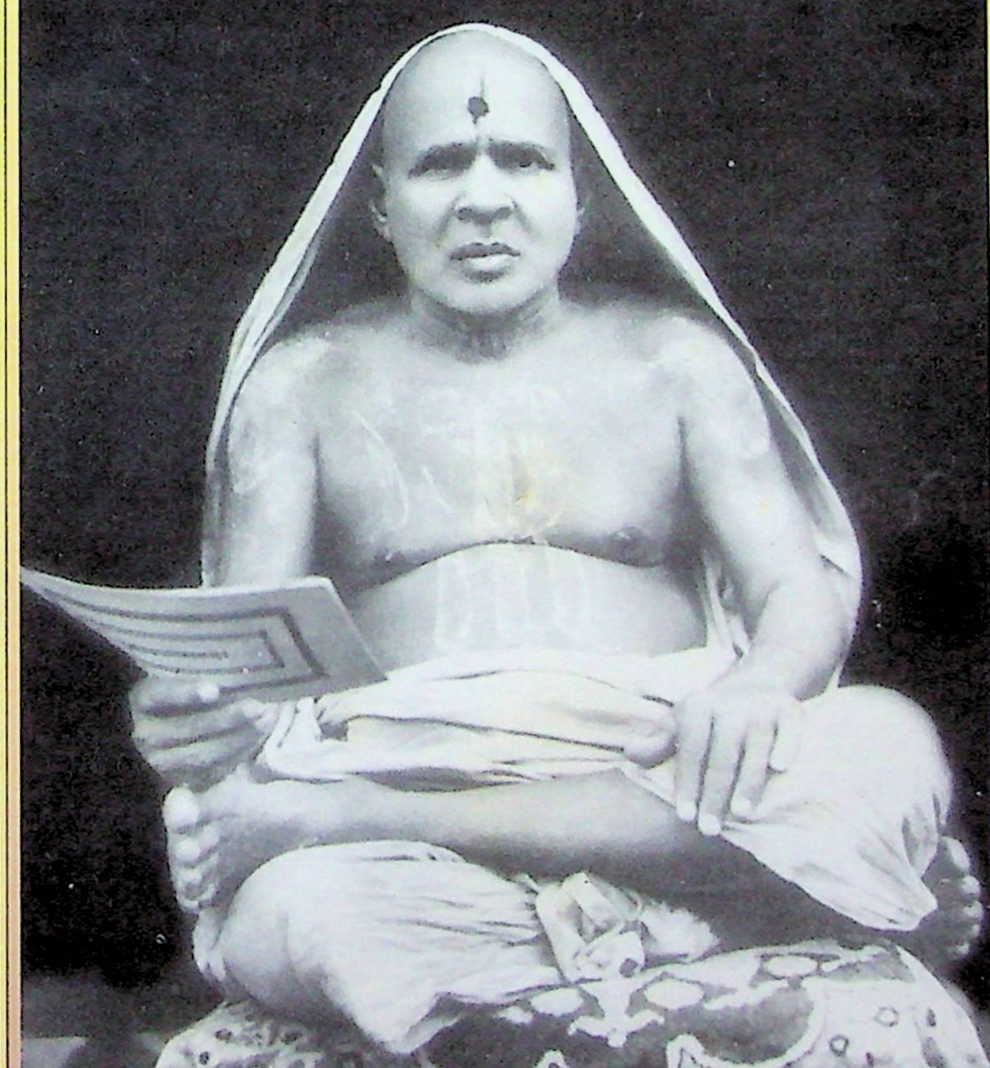
on
February 10, 2003

Rs. 225/-

Printed by
Sri Pandit A. Dixit
Perfect Computer Centre
Dombivli (W.) 421 202, Tel. : (0251) - 2486634

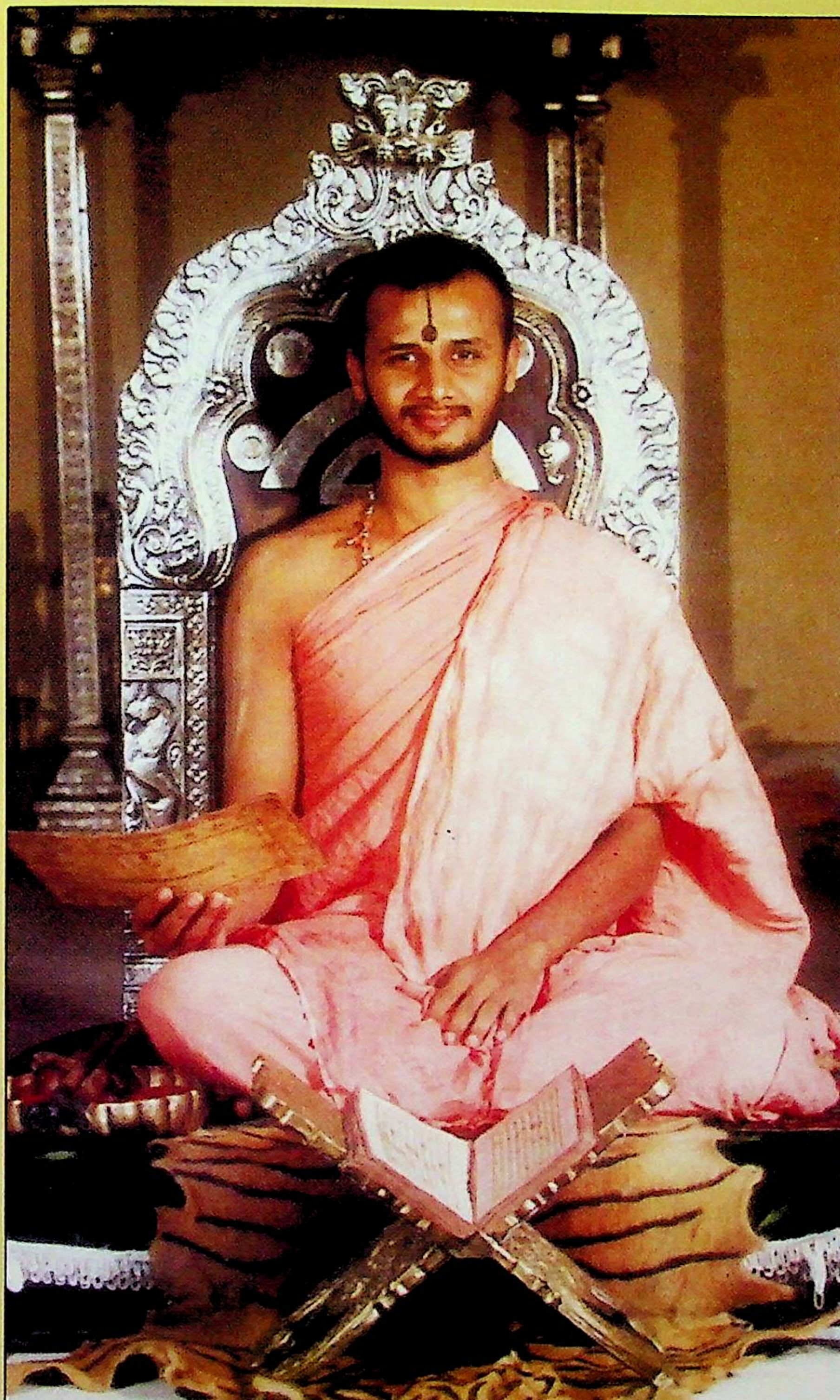






उत्तरादिमठाधीश

जगद्गुरू श्री १००८ श्री सत्यध्यानतीर्थ स्वामिजी



जगद्गुरू उत्तरादिमठाधीश
श्री १००८ श्री सत्यात्मतीर्थ स्वामिजी

॥ श्री दिग्विजयरामो विजयते ॥
॥ श्री सत्यध्यानतीर्थ गुरूभ्यो नमः ॥
॥ श्री गुरूभ्यो नमः ॥

अनादि सत्संप्रदाय परंपरा प्राप्त श्रीमद् वैष्णव सिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य श्रीमन् मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्रीमद् उत्तरादि मठाधीश श्रीमत् सत्यप्रमोदतीर्थ करकमल संजात.

श्री श्री सत्यात्मतीर्थ स्वामिजीके आशीर्वचन ।

श्रीमत् सत्यध्यानतीर्थ के ''सिविल सूट'' ग्रंथको पढनेपर अद्वैतमत के समर्थन के लिये प्रायोजित समस्त श्रुतियोंका और गीतादि वाक्योंका द्वैतपर अर्थ स्पष्ट रूपमें ज्ञात होता है। इसमें कोई संदेह नहीं। समस्त वेद द्वैतप्रतिपादक हैं। इस तत्त्वका भी निर्धार होता है। यह दृढता मनमें बैठ जाती है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं।

सामान्य लोगोंके लिये, उनको समझने योग्य न्यायालय की भाषामें अत्यंत कठिण शास्त्रीय तत्त्वोंको विशद करके कहा गया है । इससे सत्यध्यानतीर्थ स्वामिजीकी अद्भुत कुशलता प्रमाणित होती है । हजारों अद्वैत पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ करके, उनके प्रश्नों के उत्तर देकर, उनसे दुरूह प्रश्न करके, अपने द्वैत सिद्धान्त का समर्थन किया है। महानुभाव स्वामिजीने अपने समस्त ज्ञानके परिपाक के लेशको ''सिविल सूट'' ''सभासार संग्रह'' और ''भेद पराण्येव ब्रह्म सूत्राणि च'' इत्यादि ग्रंथोमें कहा है। यह हमारा परम भाग्य है।

यही नहीं इस ग्रंथको स्वामिजीने कन्नडमें लिखनेपर भी मराठी, तामिळ, तेलुगु आदि भाषामें अनुवाद कराके प्रकाशित किया है। पर उस समय इसका हिन्दी भाषामें नहीं हुवा था। श्रीमत् सत्यध्यानतीर्थ के प्रशिष्य पं. अश्वत्थामाचार्यने इस अनुवादके कार्यको बडे उत्साह के साथ, उत्तम तरहसे किया है। इसके पहले सभासार संग्रहका भी अनुवाद किया है, यह आपको ज्ञात है। इस उम्रमें भी इस सेवाको करनेवाले पं. अश्वत्थामाचार्य को, उसका शोधन करनेवाले श्री राघवेंद्राचार्य दिवाणजीको और श्री राघवेंद्राचार्य पाच्छापूर को हमारे उपास्य मूर्ति श्रीमूलराम दिग्विजयराम, वेदव्यास, ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि दें। इसी तरह की सामर्थ्य देकर, इसी तरहकी सेवा कराके अनुग्रह करें।

मध्वनवमी
चित्रभानु संवत्सर १९२४

श्री मत्सत्यात्मतीर्थ स्वामिजी
उत्तरादि मठ

अनुवादक की प्रस्तावना

सिविल सूट अद्भुत ग्रंथ है। न्यायालयकी भाषामें लिखे जानेके कारण सामान्य लोगोंको समझने योग्य बना है। इस ग्रंथकी रीति की सराहना जितनी भी करे कम है। उपनिषद् के समस्त विवाद्य वाक्योंका, गीताके विप्रतिपन्न श्लोकोंका ब्रह्मसूत्रोंमें दुर्घट सूत्रोंकी समालोचना करके, प्रतिपक्षियों के अर्थ की दुर्बलता को प्रकाशित किया है। लेखनमें न कटुता है, न दुराग्रह है। प्रतिपक्षियोंके पूर्वापर वाक्योंसे ही अपने सिद्धान्त की पुष्टि की है।

विशेषत: ''नेहनानास्ति किंचन'' ''एकमेवाद्वितीय'' ''ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'', ''तत्त्वमसि'' के वाक्यार्थ सरणी अलौकिक है। अप्रतिहत प्रतिभायुक्त, अध्ययन अपूर्व परिश्रम का प्रमाण है। स्वामिजी के उत्तर अभेद्य है, अकाट्य है।

पूर्वपक्षीय ग्रंथोंके वाक्योंसे, अद्वैतके महादिग्गजों के कथनसे उत्तर होनेके कारण पाठ उनको पढते ही दंग हो जाता है। क्या ही विलक्षण प्रतिभा,क्या ही उत्तर की चमत्कारिता, क्या यह सिद्धान्तको प्रतिष्ठापन करने की अलौकिक कुशलता।

श्री श्री १००८ सत्यात्मतीर्थ के आदेशपर इसके अनुवादमें प्रवृत्त हुवा. बादमें ज्ञात हुवा कि स्वामिजीका केवल आदेश नहीं था, आदेश के साथ अनुग्रह था।

स्वामिजी के चरणरजोंकी सामर्थ्य का अनुभव हो चुका। स्वामिजीके चरणोंमें अनंतानंत श्रद्धाभक्तियुक्त साष्टांग नमस्कार। इस कार्यमें सर्वतोपरि सहायता करनेवाले श्री राघवेंद्राचार्य दिवाणजी और साहित्य शास्त्री, साहित्य रत्न साहित्यालंकार श्री राघवेंद्राचार्य पाच्छापूर की सहायता अविस्मरणीय है। इनको मेरे हार्दिक धन्यवाद !

विनयी और श्रद्धाळु मुद्रक श्री पंडित दीक्षित (परफेक्ट कॉम्प्युटर्स) डोंबिवली, उन्होंने अत्यंत परिश्रमपूर्वक, सुचार ढंगसे मुद्रण किया है। उनको भी मेरे अभिनंदन।

अश्वत्थामाचार्य माहुलि

॥ श्री दिग्विजयरामो विजयते ॥

प्रकाशक की बातें

भारतीय वैदिक तत्त्वज्ञान का प्रचार, सामाजिक उन्नति आर्थिक संकटका परिहार तथा शैक्षणिक अभ्युदय के उद्देशसे, उत्तरादिमठाधीश जगद्गुरू श्री श्री सत्यात्मतीर्थ स्वामिजीने ''विश्व मध्व महापरिषत्'' नामकी एक बृहत् संस्थाकी स्थापना की है। इस संस्थाके अनेकों उद्देशोंमें तत्त्वज्ञान प्रचार प्रमुख उद्देश है। इसके अनुसार बीसवी सदीके विभूति पुरूष श्रीमत् सत्यध्यान स्वामिजी से प्रणीत, और पूज्य पण्डित अश्वत्थामाचार्य माहुली (मुंबईसे) अनूदित **''सिविल सूट''** प्रकाशन स्वामिजीके आज्ञानुसार प्रकाशित किया गया है।

इस ग्रंथके प्रकाशन के लिये अनुग्रह प्रप्रन करनेवाले श्री श्री सत्यात्मतीर्थ स्वामिजीको अनंत प्रणाम।

हिन्दीभाषामें अनुवाद करनेवाले पण्डित माहुली अश्वत्थामाचार्यजीको नमस्कार। ग्रंथके संशोधन कार्यमें सहायता करनेवाले श्रीमान् राघवेंद्राचार्य पाच्छापूर, श्रीमान् रा. अ. दिवाणजी को और सुंदर छपाई करनेवाले पण्डित दीक्षितजीको हम कृतज्ञता समर्पण करते हैं।

विश्वस्त मंडली
विश्व मध्व महापरिषत्
जयतीर्थ विद्यापीठ,
उत्तरादिमठ, बेंगळूर - ४

अनुक्रमणिका

भाग -१,२ इश्यु **पृष्ठ**

अनुक्रमणिका

इश्यु - ३ **पृष्ठ**

श्रुति विचार (भाग १)

सूत्र विचार

गीतापर समालोचना

चौथा इश्यू

पाँचवाँ इश्यू

श्री :

संयमनीपुर के उच्चन्यायालयमें

वेदान्तविचारिणी

सिविलसूट १,२ इश्यू

श्रीमद्वैदिक वैष्णवसिध्दान्त प्रतिष्ठापनाचार्य

श्रीमत्परमहंसेत्यादिगुणगणालंकृत

श्रीमदुत्तरादि मठाधीश

श्रीमत्सत्यध्यान तीर्थस्वामिजीसे विरचित

॥ श्रीरामचंद्राय नमः ॥

संयमनीपुरका उच्च न्यायालय

O.S.No. 564 of 1927

अट्ठाईस कलियुग शालिवाहन शक १८४९

मुख्यन्यायाधीश धर्मराज एच.बि. के. सामने

चली वेदान्त विचारिणी सिविल सूटका निर्णय

जजमेंट

वादि: : सत्यबोधाचार्य **प्रतिवादी : गंगाधर शास्त्री**

वकील : माधवदास **वकील : हरिहरशर्मा**

वादिका दावा इस प्रकार है :

१. वादिने वैदिक आस्तिक समाज के प्रतिनिधि के रूपमें अदालत की आज्ञाको प्राप्त करके दावा दाखल किया है।

२. इस दावेंमें कोर्ट की आज्ञासे अद्वैत समाजके प्रतिनिधि के रूपमें, प्रतिवादी किया है।

३. वादी वैदिक मत से संबध्द है।

४. वैदिक मतके तत्त्व :

अ. ब्राह्मणादि, ब्रह्मचर्याद्याश्रम,यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादि तीर्थ, स्वर्गादि परलोक, यह लोक, इत्यादि समस्त जगत् सत्य है।

ब. भगवान् विष्णु सर्वोत्तम है, सर्वज्ञ है, सर्वकर्ता, अनंत कल्यागुणोंसे परिपूर्ण है।

क. परमात्मा जीवोंसे भिन्न है।

ड. परमात्मा सर्वोत्तम, सर्वकर्ता, जीवोंसे भिन्न है यही ज्ञान मोक्षका साधन है।

५. ये तत्त्व वेदोंमें, वेदार्थनिर्णायक ब्रह्म सूत्रोंमें, और श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त होने के कारण समस्त वैदिक लोग इन तत्त्वोंका स्वीकार करें, स्वीकार करने वे बध्द हैं।

६. यह वैदिक मत अनादिकालसे चला आया है।

७. तत्त्वोंकी वास्ताविक स्थिति होनेपर भी, गौडपादाचार्यके परम शिष्य शंकराचार्य ने वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता, इनके अन्यार्थोकी कल्पना करके शून्यवाद का प्रतिपादन करनेवाले बौध्दमतको ही वैदिक मत की वेषभूष चढाकर, वैदिक मतके विरूध्द तत्त्वों का उपदेश दिया है।

इस तरह करना प्राचीन शिक्षा नियम, भगवद्गीता सेक्शन (अध्याय) १६ में उक्त प्रकार के दण्ड के लिये योग्य अपराध है।

८. अद्वैत प्रतिवादी इस तरह उपदेश देता है :

अ. विष्णु (परब्रह्म) सर्वोत्तम नहीं,सर्वज्ञ नहीं, सर्वकर्ता नहीं अनंतगुणपूर्ण भी नहीं, ब्रह्म समस्त धर्मोसे रहित है।

ब. ऊपर चौथे (अ) विभाग में उक्त ब्राह्मणादि पूरा जगत् मिथ्या है, (तीनों कालोमें सत्य नहीं).

क. परमात्मा जीवोंसे भिन्न नही.

ख. परमात्मा जीवों से भिन्न है, सर्वोत्तम है, इस तरहका ज्ञान मोक्षका साधन नहीं ''अहं ब्रह्मास्मिं'' (मै ही ब्रह्म हूँ) इस प्रकार का ज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

९. इस तरह वेद, ब्रह्मसूत्र, गीताके उक्त तत्वोंको विरूद्ध समझकर ''नष्टात्मानोऽल्पबुद्धय: । प्रभवंत्युग्रकर्माणो क्षयाय जगतोऽहिता: ॥ (गीता अ. १६ श्लोक) इस गीताके अध्यायमें उक्त प्रकारसे स्वयं अधोगतिको जायेंगे, साथ दूसरे सज्जनोंको भी आस्तिक मतसे दूर करके अवैदिक मतके आश्रय लेनेके लिये बाध्य करके, उनको भी अधोगति के योग्य बनाया है।

अतएव सज्जनों की भलाई के लिये, नीचे कहे गये प्रकारसे न्यायनिर्णय करें, इस तरह अदालतसे हमारा विज्ञापन है।

अ. परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्तम है। ब्राह्मणादिवर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, वेद, यज्ञ, देवता, गंगादितीर्थ, इनसे युक्त जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं ; ये ही वैदिकमतके तत्त्व हैं।

प्रतिवादिसे कहे जानेवाले ब्रह्मनिर्गुण है, जीवोंसे अभिन्न है, ब्राह्मणादि वर्ण, जगत् मिथ्या है, आदि वैदिकमत के तत्त्व नहीं.

ब. वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता इनके विरूद्ध अर्थकी कल्पना करके जगत् मिथ्या है, ब्रह्म निर्गुण है, इत्यादि प्रतिवादिका उपदेश शास्त्रके विरूद्ध है।

क. इस प्रकार न्यायनिर्णय करनेकी कृपा करें। इसके बावजूद, अदालतको जो युक्तियुक्त लगे उसकी भी आज्ञा देनेकी कृपा करें।

१०. अदालत हुकम नहीं देती तो लोगोंको बडा दु:ख होगा। इस तरह २५-३-१९२७ के दिन, माधवदास वकील के द्वारा दावे को दाखल कराके, वादिने प्रतिज्ञापत्र को लिखा है।

उसके बाद प्रतिवादिके नामपर समन्स निकाले जानेपर, प्रतिवादिने ३०-३-१९२७ के दिन निम्नलिखित स्टेटमेंट दिया है।

प्रतिवादिका बयान :

अ. वादिने अपने विज्ञापनमें जो कुछ लिखा है, वह दोषपूर्ण है।

ब. वादिका मत अनादिकालसे नहीं चला आया है।

क. चौथे विभागमें वादिके कहे हुये तत्त्व झूठ हैं।

अ. हमारा अद्वैतमत ही वैदिक है।

आ. अद्वैतमतको बौद्धमत कहना युक्तिसंगत नहीं।

इ. प्रतिवादिका कथन ही वेदार्थ है।

४. अद्वैतमतके तत्त्व :-

अ) ब्रह्मातिरिक्त ब्राह्मणादिवर्ण, देवता, संध्यावन्दनादिकर्म इत्यादि, जगत् स्वप्नकी तरह असत्य है।

ब) परब्रह्म निर्गुण है - (समस्त धर्मरहित है)

क) जीव ब्रह्म एक है।

ख) ''अहं ब्रह्मास्मि'' ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्ष साधन है।

५. इस विषयका निर्णय पहले हो चुका है, इसलिये पुन: विचार करनेका अधिकार अदालतको नहीं (रेस्ज्यूडीकेट) बाध आयेगा।

६. नववें विभागमें जो वादिने कहा है, वह गलत है। अद्वैतमतके आश्रयसे हमारा कोई भी नुकसान नहीं हुवा। इस मतका अनुसरण करनेवाले किसीको भीं किसी प्रकारकी हानि नहीं हुई है। इन कारणोंसे इस विषयमें किसीभी प्रकारका निर्णय न लेकर, वादिके विज्ञापनको खारिज करना चाहिये। इसतरह के बयान को वकील हरिहर शर्मा के द्वारा अदालत को देकर, प्रतिज्ञापत्र लिखकर दिया है।

इस आधारपर वादिने प्रतिवादि के समक्ष अन्य समस्याओंसे अवगत कराया।

विचारणीय अंश (ISSUES)

१) इस दावेके लिये रेसज्युडीकेट की बाधा आयेगी क्या ?

(इस दावे में विषयका निर्णय पूर्वमें ही होनेके कारण पुन: उसपर विचार करनेका अधिकार कोर्ट को है या नहीं ? इसका विचार करना होगा)

२) अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रमादि, सारा जगत सत्य है या झूठ ?

ब) स्वप्नपदार्थ सत्य हैं ? या नहीं ?

३) परब्रह्म जीवसे अभिन्न है, या भिन्न ?

४) सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्व इत्यादि समस्त कल्याण गुणोंसे परब्रह्म क्या पूर्ण है ?

अ) अद्वैतमत बौद्धमतसे अभिन्न है, या नहीं ?

ब) अद्वैतमत वैदिकमत है या नहीं ?

प्रथम इश्यू (रेसज्यूडिकेट) विचारमें तारीख ३-४-१९२७ में, उभयपक्ष के वकीलोंके बहस सुनकर, इस दावेके लिये रेसज्यूडिकेट का बाध नहीं, इस तरह कोर्टने निर्णय किया है।

दूसरा इश्यू

२. अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्यादि आश्रम वगैरह समस्त जगत सत्य है ? या नहीं ?

ब) स्वप्नपदार्थ सत्य हैं, या नहीं ?

इसपर निर्णय :

इस विषयपर विचार करके ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम यज्ञादि क्रिया, देवता, गंगादि तीर्थ,

स्वर्गादि लोक यह लोक समस्त जगत्सत्य ही है, मिथ्या नहीं, इस प्रकारका निर्णय किया गया है।

कारण :- वादिसे उक्त, जगत्सत्यत्वादि विषयमें प्रमाणतया प्रस्तुत, वेद, गीता, ब्रह्मसूत्ररूप प्रस्थानत्रय, प्रत्यक्ष, अनुमानरूप प्रमाण, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त जगत को सत्य प्रमाणित करते हैं, मिथ्या नहीं इसे भी साबित करते हैं, वह कैसे -

१) ''विश्वं सत्यं'' विश्व - जगत् सत्यं - सत्य है, यह श्रुति, स्पष्टरूप में विश्वके सत्यत्वको निश्चित करती है। ऋग्वेद के भाष्य लिखनेवाले अद्वैतमतावलंबी और अद्वैतमें श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें गिने जानेवाले विद्यारण्य स्वामिजीने इस वाक्यके व्याख्यान लिखते वक्त ''सत्यं - यथार्थ विद्यमानमेव - नत्वारोपितमित्यर्थ'' इस तरह लिखा है। यथार्थमें विद्यमानको ही सत्य कहते हैं। आरोपित ''कल्पित'' नहीं, इस तरह सत्यका अर्थ स्पष्ट किया है।

यद्यपि ''विश्वं सर्वं स्तोत्रं यथार्थ श्रृत्या यद्गुणजातं प्रतिपाद्यते तत्सर्वं युवयोः विद्यमानयोः विद्यमानमेव नत्वारोपित'' श्रुतिमें ''विश्वं'' पदके बाद अविद्यमान ''स्तोत्र'' पदको अपनी कल्पनासे रखकर इन्द्रादिके सभी गुण सत्य ही हैं, अर्थात् कल्पित (मिथ्या) या आरोपित नहीं, विद्यारण्य स्वामिजीने कहा है। उसे किसी तरह रहने दो। ''विश्वं'' शब्दसे ज्ञात होनेवाले समस्त गुण सत्य हैं (कल्पित नहीं) ऐसे उन्होंने स्वीकार किया है, ब्रह्मातिरिक्त पदार्थको सत्य मानते है विद्यारण्य स्वामिजी, इस विषयमें कोई आपत्ति नहीं होनेके कारण, श्रुति ब्रह्मातिरिक्त पदार्थ को सत्य मानती है, मिथ्या नहीं, इसको समझाती है। वादिके इस प्रकारके कथनको कोर्ट मानती है।

२) वादिसे उक्त 'तदेतत्' 'सत्यम्' यह मंडूक श्रुतिभी कर्मादि जगतको सत्यके रूपमें उद्घोषणा करती है। ''तदेतत् सत्यं'' श्रुति (मुं. १,२,१,२-२-२) इत्यादि स्थानोंमें ब्रह्मका और जगतका निरूपण करती है। ब्रह्मका प्रतिपादन करते वक्त '' तदेतत्'' = वह ब्रह्म सत्यं= सत्य है अवितथं = झूट नहीं इसी तरह शंकराचार्यने अर्थ किया है। जगत के प्रतिपादन ''तदेतत् सत्यं'' इस वाक्यका अर्थ ''यह जगत् सत्य हैं - अवितथं सत्य है, झूठ नहीं ऐसा अर्थ करके, केवल अपने मतके आग्रहसे सत्यं - अपेक्षितं सत्य (व्यावहरिक सत्य) इस तरह कपोलकल्पित अपेक्षित पदको रखकर, अर्थ किया है। शंकराचार्य कुछ भी कहे, ''तदेतत् सत्यं'' यह श्रुति ब्रह्मको जिस तरहसे सत्यभूत के रूपमें प्रतिपादित करती है, उसी तरह जगत् के सत्यत्व का भी प्रतिपादन करती है, इसमें कोई विवाद नहीं।

प्रतिवादि कहता है - जगतके सत्यत्वका प्रतिपादन करनेवाले जितने भी प्रमाण हैं, वे सभी प्रमाण जगतके व्यावहारिक सत्यत्वका निरूपण करते हैं। इसीलिये ''विश्वं सत्यं'' इत्यादि प्रमाणोंसे जगतका पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध नहीं होता। प्रतिवादिका यह कथन अद्वैतियोंके अनेक ग्रंथोंका विरूद्ध है। इतना ही नहीं अयुक्त भी है। क्योंकि ......

बौद्धमत जब जगतके मिथ्यात्व का प्रतिपादन करता है, तब जगत् के सत्यत्वके विषयमें प्रमाण होनेके कारण, जगतके मिथ्यात्व का कथन प्रमाणविरूद्ध होगा, इस तरह प्रतिवादि अद्वैतियोंने उसका दूषण किया है। उसके लिये बौद्धोंने कहा ''जगत के सत्यत्व कहनेवाले प्रमाण व्यावहारिक सत्यत्वका प्रतिपादन करते हैं, (दिखायी देनेवाला सत्य व्यावहारिक सत्य है) हम बौद्ध पारमार्थिक

सत्यत्वका (नैज सत्यत्वका) निराकरण करते हैं। प्रमाणोंसे सिद्ध होनेवाले व्यावहारिक सत्यत्वका (दिखायी देनेवाले सत्यत्वका) निराकरण नहीं करते। इसीलिये बौद्धोंके मतमें जगतके मिथ्यात्वको कहनेपर व्यावहारिक सत्यत्व का निरूपण करनेवाले प्रमाणोंसे विरोध नहीं होगा। (प्रमाणोंसे निरूपित व्यावहारिक सत्यत्व अन्य है और हमसे निराकरण किये जानेवाला पारमार्थिक सत्यत्व दूसरा है, इसीलिये विरोध नहीं) ''इस तरह कहनेपर शंकराचार्य और भामतीकार और अन्य अद्वैतियोंने भी कहा है - हमसे निरूपण किये जानेवाले विषय, प्रमाण, पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिपादन करते हैं। व्यावहारिक सत्यत्वका (दिखायी देनेवाले सत्यत्वका) प्रतिपादन नहीं करते। अत एव आप (बौद्ध) प्रमाणोंसे सिद्ध पारमार्थिक सत्यत्वका निषेध करते हैं, इस तरह जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिपादन करनेवाले प्रमाणोंसे तुम्हारे मतका विरोध होगा ही, इस तरह अद्वैतियोंने बौद्धोके विषयमें कहकर, पुन: स्वयं बौद्धोंकी तरह ''जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका निषेध करते हैं, और श्रुत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध जगतके व्यावहारिक सत्यत्वका निषेध नहीं करते,'' ऐसा अद्वैती कहते हैं। इस प्रकारका कथन स्वव्याहत (अपने ही वाक्योंके विरूद्ध कहना) होगा, इस प्रकार वादिके वकील के आक्षेपपर प्रतिवादिका साक्षी (गवाह) कुछ उत्तर नहीं देता। कल्पतरू, परिमळ, ब्रह्मविद्याभरण इत्यादि ग्रंथोंका कहना इस प्रकार है - व्यावहारिक सत्यत्वका अर्थ होता है। शुक्तिरजतकी (सीपमें दिखाई देनेवाले चाँदी की तरह) जगतकी सत्ता का निषेध होता है (बाधित होनेसे) व्यावहारिक सत्यपदार्थोंके ज्ञान पैदा करनेवाले प्रत्यक्षादि प्रमाण (''प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम'', ''इदं रजतं'' यह रजत है, शक्तिको रजतरूपमें ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंकी तरह अप्रमाण होते हैं। अप्रमाण शब्दका अर्थ व्यावहारिक प्रमाण मानते हैं अद्वैती, यह सिद्ध होता है।

विचार करनेपर वास्तवमें व्यावहारिक सत्य और तीनों कालमें न रहनेवाला एक ही अर्थ है। इस तरह अद्वैतियोंके माननेपर भी, ब्राह्मणादि वर्ण, यज्ञयाग, गंगादितीर्थ इत्यादि पूराजगत ''शशविषाण'' की तरह (खरगोश के सींगकी तरह) तीनों कालोंमें न रहनेवाला, इस तरह कहनेपर - गंगादि तीर्थ हैं, परमात्मा है, ब्राह्मणादि वर्ण हैं, परलोक है, इस प्रकार माननेवाले आस्तिक लोग अद्वैतमतका स्वीकार नहीं करेंगे, ऐसा समझकर अपने मतमें आस्तिक जनोंको फँसाने के लिये, दुरूद्देशसे ब्राह्मणादि वर्णादि पूरा जगत, तीनों कालमें नहीं, इस कथनके बदले, व्यावहारिक सत्य कहते हैं। अत एव व्यावहारिक सत्य कहनेमात्रसे (कभी नहीं इसके बदले) जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिपादन करनेवाले प्रमाणोंसे विरोध आये बिना नहीं रहेगा।

इन कारणोंसे ''तदेतत् सत्यं'' श्रुतिसे जगत् का पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध होता है, इस तरह अदालतने माना है।

२) ''यथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाशतीभ्य: समाभ्य:'' यह ईशावास्य का मंत्र निरूपण करता है। ''याथातथ्यत:'' सत्यत्व निरूपित होता है, इसतरह अदालत स्वीकार करता है।

३). ''यच्चिकेतसत्यमित्तन्नमोघं'' यह ऋग्वेदका मंत्र तो परमात्मासे सृष्ट इस जगतको सत्य कहता है, असत्य नहीं यह भी कहता है।

४) ''असत्यमप्रतिष्ठंते जगदाहुरनीश्वरम्'' (गी.१६.८) यह गीता वाक्य भी कहता है कि जगतको असत्य माननेवाले असुर हैं, अधोगति प्राप्त करते हैं, इस प्रकारके लोगोंकी निंदा करनेके कारण, जगत सत्य है, यह निश्चित होता है।

५) ''अथातोब्रह्मजिज्ञासा'' इस सूत्रमें आरंभ करके ''अनावृत्ति:शब्दात्, अनावृत्ति: शब्दात्'' इस अंतिम सूत्रतक सभी ब्रह्मसूत्र जगतकी सृष्टि करनेवाले परमात्माके विषयकी जिज्ञासा करने के लिये कहते हैं। उस परमात्माके विषय की जिज्ञासा करनेके लिये कहते हैं। उस परमात्मामें अनंत सद्गुण हैं, उस परमात्मा के विषय के ज्ञानको प्राप्त करके, उस परमात्मा के प्रसादसे मोक्ष प्राप्त करके उस मोक्षमें ''सर्वान् कामान्नवाप्य अमृत: समभवत्'' जीव अपने इष्ट पदार्थोंको पाकर अमर होगा और जक्षन्, क्रीडन् रममाण: = भोग करते क्रीडा करते सुखका अनुभव करता है।

इत्यादि वाक्योंमें उक्त रीतिसे स्वरूप सुखका अनुभव करते ''एतत् सामगायन्नास्ते'' मन्त्रोदितके अनुसार मुक्तजीव परमात्मा का स्तोत्र करते रहते हैं। इसीसे ज्ञान, ज्ञाता, (ज्ञानका संपादन करनेवाला) ज्ञेय, (ज्ञानके लिये विषयीभूत वस्तु,) इत्यादि समस्त जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

६) ''घट: सन्, पट: सन्'' १* इत्यादि प्रत्यक्ष और ''जगत् सत्यं अर्थक्रियाकारित्वात्'' पदार्थोंका निर्माण होनेके कारण जगत् सत्य है, इत्यादि अनुमान जगत् के सत्यत्व का ज्ञापन करते हैं। अधिक क्या कहें ? जितने प्रमाण हैं, वे सभी प्रमाण, आगे दिखाई जानेवाले अपने लिये विषयीभूत समस्त वस्तुओंके सत्यत्वको बताते हैं।

प्रमाण पदमें प्र. मा. अन (ल्यूट)२* इस तरह अंश हैं। ''प्र'' यथार्थ = वस्तु के स्वरूपानुसार विषयी करनेवाले ''मा'' ज्ञानको पैदा करनेवाला प्रमाण। प्रमाण का अर्थ यह हुवा, सत्य पदार्थ के विषयी करनेवाले ज्ञानको पैदा करनेवाला। अपनेसे पैदा करानेवाले ज्ञानके लिये विषयीभूत वस्तु सत्य है। इस तरह प्रमाण का परिष्कृत अर्थ होनेके कारण वेद, गीता, प्रत्यक्ष, अनुमान, ब्रह्मसूत्र, प्रमाण हैं। इस तरह प्रतिवादिसे स्वीकृत होनेके कारण, उन वेदादि प्रमाणोंसे बोध्यमान जगत् की सत्यता सिद्ध होगी और उसको मानना पडेगा। इसीलिये वेदादि समस्त प्रमाणोंसे बौध्यमान जगत् सत्य सिद्ध होगा। कोर्ट इसको मानती है।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुराजन्य: कृत:।

''ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत'' इत्यादि वेदसे ''चातुर्वण्यं मया सृष्टं'' ''ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणांच परंतप'' इत्यादि गीतावाक्योंसे, ''क्षत्रियत्वावगतेश्च'' इत्यादि ब्रह्मसूत्रोंसे ब्राह्मणादिवर्ण सत्यसिद्ध होते हैं।

''यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्'' इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्था, वानप्रस्थ, संन्यास, रूप चारों आश्रम सत्य सिद्ध होते हैं।

''ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्''

१* घट (गागर) ये सत्य है। पट कपडा सत्य है। इत्यादी इत्यादि प्रत्यक्षमें अनुभव आनेवाले विषय है।

२* प्रत्ययका संज्ञा

वसन्ते ब्राह्मणोऽअग्निनादधीत्'' (वेद) ''सहयज्ञा: प्रजा सृष्ट्वा'' ''यज्ञौरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते'' गीता ''अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तत्दर्शनात्'' (सूत्र) इत्यादि वेद, गीता, ब्रह्मसूत्रवाक्योंसे आश्रम, यज्ञादि, वर्णाश्रम सत्यसिद्ध होते हैं।

''अग्निर्वै देवानां अवमो विष्णुपरम: तदन्तरेण सर्वा देवता'' इत्यादि वेदवाक्योंसे देवताओं का अस्तित्व सत्य सिद्ध होता है। ''ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदं, अथर्ववेदं (छांदोग्य ७-१-२) इत्यादि वेदवाक्योंसे वेदेषु यज्ञेषु तपस्सुचैव'' ''वेदविदेवचाहं'' इत्यादि गीताके वाक्योंसे वेदोंकी सत्यता प्रमापित होती है।

''इमं मे गंगे यमुने सरस्वती'' इत्यादि वेदवाक्योंसे गंगादितीर्थोंकी सत्यता प्रमाणित होती है।

''स्वर्गकामो यजेत'' इत्यादि वेदवाक्योंसे और ''स्वर्गद्वारमपावृतं'' गीता वाक्यसे स्वर्गादि लोक सत्य सिद्ध होते हैं। ''भूरिति वा अयं लोक:'' इत्यादि वेदादि प्रमाणोंसे इस लोककी सत्यता सिद्ध होती है।

जगतके असत्यत्व के साधनके लिये प्रतिवादि, उस पक्षके गवाहोंसे उक्त वेद, सूत्र, जगतके असत्यत्व का साधन नहीं कर सकते।

कारण :

१) 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकित्येव सत्यं'' इस श्रुतिमें मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। (जगत को असत्य बतानेवाला पद नहीं)

''वाचारंभणं'' इस पदके आगे, ''नामधेयं'' पदके आगे ''मात्र'' पदको अपने ही विचारसे रखकर ''वाचारंभणं मात्रं'' सिर्फ शब्दसे प्रतिपाद्य - सत्य नहीं, ''नामधेयं मात्रं'' - केवल नाम के लिये - वस्तु नहीं। इस तरह ''मात्रं'' शब्दके मेलनसे उक्त मिथ्यारूप अर्थ वेदका अर्थ होगा तो ''सत्यंज्ञानमन्तं ब्रह्म'' इस वाक्यमें भी '' न, न, न'' इन पदोंसे युक्त करके -

''ब्रह्म सत्यं न - ब्रह्म सत्य वस्तु नहीं,

ब्रह्म ज्ञानं न - ब्रह्म ज्ञानरूप नहीं,

ब्रह्म अनंतं न - ब्रह्म असीम नहीं, इस तरहका अर्थ भी श्रुत्यर्थ हो सकेगा। अतएव ''वाचारंभणं विकारो नमाधेयं'' इस वाक्यमें मिथ्यात्वका (तीनों कालोंमें नहीं) बोधन करनेवाला पद न होनेके कारण, इस श्रुतिसे जगतके मिथ्यात्व की सिद्धि नहीं होगी।

शंकराचार्यने इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार किया है - मृत्तिका का विकाररूप घटादि पदार्थ मिथ्या है। उसका कारण मृत्तिका - मिट्टी सत्य है। इस प्रकार अर्थ करनेपर भी जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। यही नहीं, इसके विरूद्ध ब्रह्मसे भिन्न मृत्तिकारूप जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

मृत्तिका के सत्यत्व बोधनमें इस वाक्यका तात्पर्य नहीं, कहनेपर कारणभूत मृत्तिका सत्य है, कार्यभूत घट मिथ्या है, इसको समझाने बहाने कारणभूत ब्रह्म सत्य है। कार्यभूत जगत मिथ्या है।, इस तर यह श्रुति निरूपण करती है, यह भी युक्त नहीं, इसलिये यह श्रुति, जगतके मिथ्यात्व के विषयमें प्रमाण नहीं होगी.

२. 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं ततसत्यं' इस श्रुतिमें भी मिथ्यात्व बोधक पद नहीं. फिर भी ''तत् सत्यं''

इस वाक्य में ''एव'' पदको अपनी इच्छासे रखकर '' तत् एव सत्यं''= ब्रह्म एक ही सत्य है। (दूसरा कुछ भी सत्य नहीं) इस तरह ''एव'' पदको अपने हाथों से रखकर वेदका अर्थ करनेसे, वह वेदका सत्य अर्थ नहीं होगा. अत एव यह वेदवाक्य भी जगतके मिथ्यात्व का बोध नहीं करता।

३. 'इदं सर्वंयदयमात्मा' इस श्रुतिमें भी जगतके मिथ्यात्व - बोधक पद नहीं, 'इदं सर्वं' - यह समस्त जगत. यत् = जिसमें आश्रित है ''अयमात्मा = आश्रयभूत परमात्मा है। इस जगत का आश्रयभूत परमात्मा है, यह श्रृति परमात्मा को जगत का आधार मानती है।

ब्रह्मा तं परदात् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्मवेद'' इत्यादिपूर्ववाक्य में ब्रह्मणादि पूरा जगत परमात्मा के = आश्रयभूत परमात्मा को, जगत का आधार मानती है।

ब्रह्म तं परादात योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद '' इत्यादि पूर्ववाक्य में ब्राह्मणादि पूरा जगत परमात्मा के आश्रय में है, इस तरहकहनेके कारण 'इदं सर्वं' इसका अर्थ पूर्व वाक्य से द्दढ होता है. ''यत्'' इस शब्दके अर्थ को ''यस्मिन्'' (जिसमें) इस तरह करने से इस पदकी सार्थकता व्यक्त होती है.

प्रतिवादि के कथन के अनुसार इदं सर्वं = यह पूरा जगत, अयमात्मा: ''यत्'' पद व्यर्थ होगा. आरोपित है, इस अर्थ का मानने पर ''यत्'' पदव्यर्थं होगा. व्यर्थ होने पर भी इदं सर्वं'' यह सबकुछ आत्मा है (अयमात्मा) इतना ही अर्थ होगा.जगत् मिथ्या है (काल्पित) यह अर्थ नहीं होगा. ''आत्मा'' पदका मुख्यार्थ युक्त न होनेपर आत्मा में कल्पित है, इस अमुख्यार्थ के लिये कोई आधार नहीं. मुख्यार्थ के युक्त न होनपर अमुख्यार्थ का स्वीकार करना चाहिये. इस प्रकारकी व्यवस्था होनेपर भी अन्य वेदवाक्यों के आधारसे, आत्म-आत्माधीन, आत्माश्रि इत्यादि रूप अर्थकरना योग्य होगा, इसी लिये यह वाक्य भी जगत् आत्मा में कल्पित है, इस तरह के अर्थका साधक नहीं होगा.

४. ''ब्रह्मैवेदं सर्वं'' इस श्रुतिमें भी, जगत् के मिथ्यात्व बोधक पद नहीं. ''इदं सर्वं ब्रह्मैव'' इस वाक्यस्थ ''ब्रह्म' शब्द का ''ब्रह्म में कल्पित' यह मुख्यार्थ नहीं होगा. ''विश्वमिदं वरिष्ठं'' उत्तर वाक्य में जगत को उत्तम कहता है. जगत् झूठ होनेपर इस जगत को उत्तम कैसे कह सकते है. ''ब्रह्मवाधस्तात्'', ''ब्रह्म उपरिष्टात्'' इत्यादि पूर्व वाक्यसे, ब्रंह्म नीचे है, ऊपर है, इस प्रकार ब्रह्मकी व्याप्ति ज्ञात होगी. इसलिये ''ब्रहैवेदं सर्वं'' यह वाक्य ''सर्वं समाप्रोषि ततोऽसि सर्वं'' इस गीतावाक्य के अनुसार 'ब्रह्म सर्वं =ब्रह्म सर्वव्यापृ है. इस प्रकार अर्थ होता है. वही सही होगा. अत एव यह वाक्य भी जगत के मिथ्यात्व का बोध नहीं करता.

''आत्मैवेदं सर्वं'' इस वाक्य में भी जगत् के मिथ्यात्व साधक आत्मा पदके लिये'' आत्मा में कल्पित'' यह मुख्यार्थ नहीं होगा '' आत्मैवाधस्तात्, उपरिष्ठत्'' इत्यादि पूर्व वाक्यों में आत्मा के आवास को, निश्चित स्थानों में कहकर, उनके उत्तर ''आत्मैवेदं सर्वं'' वाक्य परमात्मा की सर्वत्र व्यपकता का बोध करती है. इस तरह कहना युक्तिसंगत होगा. क्योंकि पूर्ववाक्य में. आत्मा के उद्देशसे, आत्मा नीचे है, ऊपर है, ''आत्मैवेदं सर्वं'' वाक्य भी आत्मा को उद्देश करके, उसकी सर्वव्याप्तिका विधान किया है, ऐसा कहना ही योग्य होगा.

जगत् को उद्देश करके '' आत्मा में कल्पित है इस तरह का विधान करना, पूर्ववाक्यों के अनुसार

नहीं होगा. इस वाक्य के अग्रिम वाक्य में ही, परमात्मा पूर्ण (व्यप्त समझनेवाला ही लोक में अपनी इच्छा के अनुसार संचार करने समर्थ होता है. जो इस तरह (परमात्मा की व्याप्ति को) नहीं जानेगा, वह समस्त लोकों मे संचार करने समर्थ नहीं होगा. इस प्रकार समस्त जगत, समस्त लोक, संचार, संचार करनेवाला, इत्यादिसे जगत की सत्ता का निरूपण करके (त्रिकाल में नही) कहना, उत्तर वाक्यों से विरूध्द होगा, इसलिये यह वाक्य भी जगत के मिथ्यात्व का कथन नही करता.

५. काठक और बृहदारण्यकमें ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्य में जगत के मिथ्यात्व बोधक पद नही.

क्रॉस एक्झामिनेशन में प्रतिवादी का साक्षीदार काठकस्थ वाक्य के पूर्वमें '' इशानो भूतभव्यस्य'' इस पांचवे मन्त्र में स्पष्ट रूपमें जगत के नियामकके रूपमें परमात्मा का कथन करके, जगत के सत्यत्वको कबूला है. और ''नेहनानास्ति किंचन'' मंत्र के पहले ''यतश्चोदेति सूर्येस्ति यंत्र गच्छति तं देवास्सर्वे अर्पिता: तदुनात्योति कश्चन'' इस १ मंत्रका अर्थ इस तरह होगा – जिस परमात्माकी प्रेरणासे सूर्य उदित होता है, अस्त हो जाता है, जिसके आश्रयसे देवता हैं, उस परमात्मा का अतिक्रमण कोई नहीं करसकता. इस अर्थको प्रतिवादीने स्वीकार किया है. इस वाक्यसे सूर्यादि जगत की सत्यता स्थापित होती है.

'नेह नानास्ति किंचन' इस वाक्य से जगत के निषेध के लिये, उपरोक्त मन्त्रों में जगत का अनुवाद किया गया है. इस तरह नहीं कह सकते. क्योकि किसी प्रमाणसे पदार्थ पहले प्रसक्त होता तो, उसका अनुवाद करके अन्य प्रमाणोंसे स्वार्गादि अन्य जगत की प्रसक्ति ही नहीं होती, वेदसे ही प्रसक्त होते है. वेद स्वयं लोगों में स्वर्गादि जगत की सत्ता का भ्रम पैदा कर, बाद में वही वेद उसका निषेध करता है, इस तरह कहना ''प्रक्षालनाध्दि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं ''बुध्दि पूर्वक कीचडको लगाकर बादमें उसकी धुलाई करनेकी अपेक्षा, कीचडसे दूर रहना ही अच्छा है, न्यायानुसार विरूध्द होगा.

उपरोक्त प्रकार से वेद ही स्वार्गादि जगत की सत्ता के भ्रम को पैदा करके, वही वेद स्वर्गादि जगतका निषेध करता है, इस तरह कहना ''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य'' न्याय के अनुसार विरूध्द होगा, यह दूषण अपने पर ही है। इसे समझते हुये भी, शंकराचार्यने अपने मतके आग्रहसे जगत के सत्यत्व के बोधनमें वेदका तात्पर्य नहीं. निषेध करने के लिये. उसका अनुवाद करता है. इस तरह ब्रह्मसूत्र (३-२-२) भाष्य में शंकराचार्य कहकर अगे बढे हैं.

लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा हैं कि श्रुति अनुवाद करती है, पर अनुवाद विषय किस प्रमाणसे प्राप्त है, इसको कह नहीं सकते। क्योंकि अतीद्रिय स्वर्गादि लोकोंका ज्ञान, वेदव्यतिरिक्त किसी भी प्रमाणसे नहीं हो सकता। ''नेहनानास्ति किंचन'' यह श्रुति जगतका निषेध करती है प्रतिवादी (अद्वैती) कहते हैं। इस वाक्यसे बादमें १२ और तेरहवे मंत्रमें ''ईशानो भूतभव्यस्य'' इस मन्त्रमें परमात्मा भूत भविष्यके जगतका स्वामी है। इस तरह मन्त्र पुन: पुन: कहता है। निषेध करनेके बाद पुन: उसके सद्भावको कहना असंगत होता है। इसीलिये वेद निषेध के लिये अनुवाद करता है, जगतके सत्यत्वके कथनमें उसका तात्पर्य नहीं, यह कहना युक्ति संगत नहीं होगा। इसीलिये इस

वेदमें उक्त जगतको सत्य ही समझना चाहिये । ''नेह नानास्ति किंचन'' काठक, और बृहदारण्यकका'' नेहनानास्ति किंचन, वाक्यके पूर्वभागमें ''मनसैवेदं आप्तव्यं'' और '' मनसैवानुद्रष्टव्यं'' ये वाक्य है, जीव परमात्मा को मनसे ग्रहण करता है। जीव जाननेवाला, परमात्मा ज्ञानका विषय है, मनकारण (साधन) है, उपरके वाक्योंमें उक्त प्रकारसे जीव परमात्मामें ज्ञातृज्ञेय भाव होनेसे इन दोनोंमें भेद सिद्ध होता है। इसलिये ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वेदका अर्थ, जगत मिथ्या है यह युक्तिसंगत नहीं होगा।

''यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'' (१०) जो परमात्मा इसलोकमें है, वही परमात्मा परलोकमें भी है। जो परमात्मा इसलोकमें है, वही परमात्मा परलोकमें भी है। जो परमात्मा परलोकमें हैं, वही इसलोकमें है। इस परमात्मा के रूपोंमें जो भेदको जानता है, वह यमसे मृत्यु प्राप्त करता है। इस तरह पूर्ववाक्योंमें परमात्मा के वाक्योंमें अभेद का निरूपण करके, उसके अनंतर ''मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानास्ति किंचन मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानैव पश्यति'' यह वाक्य इहलोकमें, और परलोकमें, विद्यमान परमात्माके ज्ञानको शुद्ध मनसे प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् परमात्माके नियामकरूपोंमें भेद सर्वथा नहीं समझना चाहिये। इस लोकमें जो परमात्मा वह अन्य है, परलोकमें रहनेवाला परमात्मा दूसरा है, मुझमें नियामक बना परमात्मा अन्य है, अन्योंमें नियामक बना परमात्मा अलग है, इस तरह नहीं समझना चाहिये।

''इह'' इस परमात्मामें किंचन नाना अन्तर्यामि परमात्मा के रूपमें भेद नहीं, इस तरह कहकर जो मनुष्य अन्तर्यामि परमात्मा के रूपोंमें भेद समझना है, वह नरकादि अनर्थ प्राप्त करता है। इस तरह वेद प्रतिपादन करता है, अतएव वादिके कथनको ही मानना चाहिये।

''नेह नानास्ति किंचन'' बृहदारण्यक के १९ पूर्वमें ''ईशानो भूतभव्यस्य'' १५ वे मंत्रमें भी, भूत भविष्य जगत का परमात्मा ही रक्षक है, कहकर जगतके सत्यत्वका कथन किया है। प्रतिवादिने इस अर्थका स्वीकार करके, वेद जगतके व्यावहारिक सत्यत्वका बोध करता है, कहा है। लेकिन वेदमें उक्त सत्यत्व झूठ है। इस विषयमें कोई आधार नहीं दिया है। इसलिये वह सत्यत्व झूठ है, इसतरह स्वीकार करनेके लिये उचित नहीं। ''तद्वेवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासकेमृतम्'', इस १६ वा मन्त्रमें प्रकाशमान पदार्थोंको परमात्मा प्रकाश देता है, इस तरह देवता भगवानकी उपासना करते हैं, ऐसा कहा गया है।

''यस्मिन् पंच पंच जना आकाशश्च प्रतिष्ठितः। तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्। इस सत्रहवे मन्त्रमें प्राणचक्षुरादि इन्द्रियाँ और आकाश जिस परमात्मामें आश्रित हैं, वही परमात्मा समस्त जगतका आश्रय है। इस तरहके ज्ञानयुक्त लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं, ऐसा कहा गयाहै। प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरूत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसोऽये मनो विदुः ॥ ते निचक्युः ब्रह्मपुराणमग्न्यं ।इस १८वे मन्त्रमें प्राण, चक्षु, श्रोत्र, इत्यादिकोंको चेष्टा, दर्शनादि शक्ति देनेवाला परमात्मा ही है। उस परमात्मा को मनसे ही जानना चाहिये। इस तरह कहा गया है। इससे वेदादि, लोक, देवता, प्राण, चक्षु, आकाश, मन, ज्ञाता, ज्ञेय और उपासना इत्यादि समस्त जगत सत्य सिद्ध होता है।

और आगे २२वे मन्त्रमें भी ''सर्वस्यवशी, सर्वस्येशान: सर्वस्याधिपति:'' इत्यादि वाक्योंसे समस्त जगतका अंगीकार करके, इस जगतका नियामक परमात्मा है, वही स्वामि है, वही अधिपति है, इसतरह कहा गया है। वंध्या का पुत्र नहीं उस पुत्रका नियामक चैत्र है, वही आश्रय है इत्यादि कहना जैसे असंगत होगा, वैसे ही जगतके न होनेपर, परमात्माको जगतका नियामक, आश्रय कहना संगत नहीं होगा। इसलिये 'नेहनानास्ति किंचन'' इस बृहदारण्यके पूर्वोत्तर वाक्य इस जगतके सत्यत्वका बोध करते हैं और ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यका पूर्वभाग स्थित 'मनसैवानुद्रष्टव्यं''इत्यादि जीवपरमात्माका भेद, ज्ञान, ज्ञाता, करण, मन, इत्यादि जगतको सत्य बताता है वेद। ''नेहनानास्ति किंचन'' इस मन्त्रका उत्तर भाग ''मृत्योस्स मृत्युमाप्नोति'' वाक्यसे मृत्युसे मृत्युको प्राप्त करता है, यह भी ज्ञात होता है। मृत्यु इत्यादि जगत झूठ है। (तीनों कालोंमें नहीं) तो मृत्युसे मृत्यु प्राप्त करता है ऐसा कहना युक्त नहीं होगा। इसलिये यह क्या मृत्यु इत्यादि जगतके सत्यत्वका बोध करता है, इस तरह स्थिति होनेके कारण, मध्यमें स्थित ''नेहनानास्ति किंचन'' यह जगतके मिथ्यात्वका बोध नहीं करता, बल्कि सत्यत्वका ही बोध करता है।

२) बृहदारण्यकोपनिषतमें ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' ''यत्र तु सर्वमात्महवाभूत'' ये दो मन्त्र जगतके मिथ्यात्व का ज्ञापन नहीं करते। क्योंकि –

१) यत्र हि द्वैतमिव भवति'' इस मंत्रमें जगतके मिथ्यात्वका कहनेवाला पदही नहीं।

२) बल्कि शंकराचार्य, सुरेखाकार्य, टीकाकार आनंदगिरि, उपनिषत के इस भागके विषयमें व्याख्यान लिखते वक्त, इस श्रुतिस्थ ''द्वैतामिव'' द्वैतको द्वैतकी उपमा देकर, जगतका पारमार्थिक सत्यत्वका बोधकी सूचना दी है और शंकराचार्य, बौद्धमत खण्डन करते वक्त ''बहिर्वत् अवभावसते = जगत् बाह्य पदार्थ के जैसे दिखता है। इस जगतको बाह्य पदार्थका द्दष्टान्त देनेके कारण बाह्य जगत सत्य सिद्ध होता है। ''न हि विष्णुमित्रो वंध्यापुत्रवत्'' इस तरह विष्णु मित्रको वंध्यापुत्र की उपमा नहीं दी जाती। उस तरहका द्दष्टान्त नहीं देते। इसलिये ब्रह्मसूत्र (२-२-२८) के व्याख्यानमें ''इव शब्द समानार्थक ''वत्'' पदमें पूर्वमें 'बहि:' रूप बाह्य जगतका बोध करनेवाला पद होनेके कारण बाह्य जगत् सत्य सिद्ध होता है। शंकराचार्यके इस कथनके कारण ''वत्'' शब्दका समानार्थक ''इव'' शब्दके पूर्वमें ''द्वैतं'' पदसे दूसरे प्रपंचका बोध करनेवाला शब्द होनेके कारण बाह्य जगतकी सत्यता की सिद्धि होती है। इस तरह शंकराचार्यने कहा है। ''वत्'' शब्द समानार्थक ''इव'' शब्दके पूर्वमें ''द्वैतं'' दूसरे प्रपंचका बोध करनेवाला पद होनेसे ''द्वैतमिव भवति'' यह वेद जगतके पारमार्थिक सत्यत्व का ही बोध करता है यह सिद्ध होता है। इसलिये यह वेद जगतके पारमार्थिक सत्यत्व के विषयमें प्रमाण होगा। मिथ्यात्वके विषयमें प्रमाण नहीं होगा। मिथ्यात्वके विषयमें यह श्रुति प्रमाण नहीं होगी। मिथ्यात्व के विषयमें यह श्रुति प्रमाण है, यह कथन अद्वैतग्रंथोंके विरूद्ध होगा।

''वाचारंभणं'' और ''आत्मैवेंद सर्वं'' इन मंत्रोंमें भी जगतके मिथ्यात्व प्रतिपादक पद न होनेके कारण, उन वेदोंके विचार करते वक्त निश्चय किया गया है। ''वाचारंभणं'' ''आत्मैवेदं सर्वं'' इत्यादि श्रुतियाँ जगतके मिथ्यात्वको कहने के कारण ''यत्र हि द्वैतमिवभवति'' इस मंत्रसे कहे

जानेवाले जगतके सत्यत्व का स्वीकार न करें, इसतरह शंकराचार्य का उपपादन योग्य नहीं, कोर्ट निर्णय करती है।

३) यत्रत्वस्य सर्वं आत्मैवाभूत येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् स वा एष नेति नेति केन कं पश्येत् तत्केन कं जिघ्रेत् तत्केन कं रसयेत .... विज्ञातारमरे केन विजानीयात्..... इस मंत्रमें उक्त तरहसे, मोक्षावस्थामें आत्मारिक्त एक ही पदार्थ न होनेके कारण, गंधादि ज्ञान, परमात्मा का ज्ञान, अपना ही ज्ञान अन्य लोकोंमें ज्ञान आवश्यक है इस तरह ''जक्षन् क्रीडान्'' इत्यादि श्रुतिमें कहा गया है। इसलिये आत्मातिरिक्त दूसरे पदार्थको मानना ही चाहिये। इस तरह यह श्रुति जगत् के सत्यत्व का प्रतिपादन करके, जगतके मिथ्यात्व का निषेध करती है।

४) येनेदं - इस तरह 'जिस परमात्मासे जीव समस्तको जानता है' - यह वाक्य, जीवपरमात्माके भेदको, और ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान इत्यादि प्रपंचका बोध कराता है। इसलिये, यह जीव परमात्मा के अभेद को कहनेवाले अद्वैतमतके विरूद्ध है, इस तरह ब्रह्मविद्याभरणाकर, अप्पय्य दीक्षित आदि अद्वैती स्वीकार करते हैं। स्वीकार करनेपर भी केवल अपने मतके अभिमानसे ही इस श्रुति के मुख्यार्थ का त्याग करके ''येन'' इस पदको प्रथमांत १* समझकर 'य: - जो जीव'' इस तरहके अर्थको मानकर उनका (अद्वैतियोंका) किया हुवा अर्थ मुख्यार्थ नहीं ऐसा कहते हैं। उनकी वाक्ययोजना क्लिष्ट हैं।

२* उनका किया हुवा अर्थ सरस नहीं, इस तरह स्वयं उन्होंने ही माना है। इसलिये यह वेद जीवब्रह्म के ऐक्यको और जगतके मिथ्यात्व कहनेवाले अद्वैतियोंके साधक नहीं। बल्कि बाधक ही होता है। 'येनेदं सर्वं विजानाति' 'सवा एह नेति' इस वाक्यस्थ ''स:'' पदसे स्वीकार करना है 'स वा एष नेति नेति' इस उत्तर वाक्यस्थ ''स:'' इस पदसे ''परब्रह्म'' ही होता है, ''जीव'' अर्थ नहीं कह सकते। इसलिये ''येन'' इस पदसे ''जीव'' रूप अर्थ ग्रहण कर युक्त नहीं।

५) ''विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' इस वेदवाक्यसे मोक्षावस्थामें जीव का कर्तृत्व सिद्ध होता है, ऐसा मानकर भी, केवल अपने मतके आग्रहसे, यह वाक्य पूर्वकालमें स्थित (संसारावस्था) कर्तृत्व का बोध करता है, इस तरह स्वकपोल कल्पित विचारोंको कहा है। शंकराचार्य किसीभी तरहसे अर्थ करें, इस श्रुतिसे निश्चित ही मोक्षावस्थामें विद्यमान जीवका कर्तृत्व सिद्ध होता है।

६) जगतके मिथ्यात्व विषयमें इस श्रुतिका तात्पर्य होता तो 'आत्मातिरिक्तं जगत् नास्ति' (परमात्माके अतिरिक्त जगत् नही) इतना ही कहना पर्याप्त था। '' यत्र हि द्वैतमिव भवति'' इत्यादि लंबा वाक्य व्यर्थ होगा।

७) मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञान नहीं रहता, इस तरह कहनेका उद्देश होता तो 'न पश्यति न जिघ्रति'' इतना ही कहना चाहिये था। 'पश्येत्', ' जिघ्रेत्' इत्यादि विधिलिङ्त पदोंका प्रयोग

१* ''येनेति'' तृतीया प्रथमार्थे: योजनीयेति क्लेश: स्यात्''

२* ''क्लेशेन योजनीयम्'' ये नेदं सर्वं विजानाति'' इत्यस्य योजना क्लेशोपि अद्वैत प्रस्तावानुरोधात् त्वात् न दोषाय इत्याशय: इति:

प्रयोजन रहित होता है। इसलिये जगतके मिथ्यात्व बोधनमें इस वेदका तात्पर्य नहीं यह सिद्ध होता है।

दूसरे पदार्थ के रहनेपर ही गंधादिज्ञान, परमात्माका ज्ञान, स्वकीय ज्ञान युक्त होगा। मोक्षमें आत्मातिरिक्त वस्तुके ही न रहनेपर, गंधादि ज्ञान किस तरह संभवेगा ? गंधादि ज्ञान मोक्षावस्थामें आवश्यक है, इस तरह जक्षन्, क्रीडन्, इत्यादि श्रुतियोंमें कहा है। अतएव ईश्वरादिदिके ज्ञानके लिये मोक्षमें अन्य पदार्थोंका स्वीकार करना पडेगा।

इसको समझाने के लिये इतने दीर्घवाक्यकी प्रसक्ति द्वैतमतानुसार स्वरस होगा। उसी तरह विधिलिङ्त पदोंका सार्थक्य भी रहेगा।

इसलिये 'यत्र हि द्वैतमिव भवति'' यह पहला भाग 'यत्र तु सर्वं आत्मैवाभूत' इत्यादि दूसरा भाग शंकराचार्य प्रभृति अद्वैतियोंके कथनके अनुसारभी और वास्तवमें श्रुतिपदोंके स्वारस्य से भी जगत (द्वैतप्रपंच) पारमार्थिक सत्य है, मिथ्या नहीं इन दोनों अंशोंमें यह श्रुति प्रमाण है। अतएव इस वेदके दोनों भाग इस जगतके मिथ्यात्व के विषयमें प्रमाण कहना, अद्वैतियोंके लिये युक्त नहीं।

८) 'अथात आदेशः' ''नेति नेति'', ''नह्येतस्मात् इति'' इस श्रुतिमें भी मिथ्यात्व बोधक पद नहीं। यह वेद ब्रह्म इति न, इति न रूपमें 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तंचामूर्तंच'' इत्यादि वाक्योंसे पूर्वमें प्रसक्त मूर्तपदार्थ नहीं, अमूर्तपदार्थ नहीं, अर्थात् ब्रह्म मूर्त, अमूर्त विलक्षण है, इस तथ्यको समझाता है। जैसे ''घटो पटो न'' घडा कपडा नहीं, कहनेपर घडेसे पट (कपडा) भिन्न है, ऐसा सिद्ध होता है। कपडा ही नहीं ऐसा सिद्ध नहीं होता। अथवा कपडा मिथ्या है यह भी सिद्ध नही होगा। इसी तरह ब्रह्ममूर्त पदार्थ नहीं, अमूर्त पदार्थनहीं कहने पर ब्रह्म मूर्त भिन्न और अमूर्त भिन्न है यहीं सिद्ध होगा। मूर्तामूर्त जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। अतः यह वेद जगतके मिथ्यात्व विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

९) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस वेदमें जगतके मिथ्यात्व बोधकपद नहीं। ब्रह्म पदका अर्थ 'ब्रह्ममें कल्पित' ऐसा मुख्यार्थ नहीं होगा। लक्षणावृत्तिसे (Secondary Meaning) उस तरह अर्थ करना चाहिये। ब्रह्मपद के मुख्यार्थको छोडने के बाद, अन्य प्रमाणोंसे अविरूद्ध अर्थका ही स्वीकार करना चाहिये। इस वाक्यके आगे ''सर्वकामः सर्वगंधः'' इस वाक्यके व्याख्यान समय ''कामोऽस्मि भरतर्षभ'' गीता वाक्यके अनुसार परमात्मा ''सर्व कामरूप है'' इस तरह अर्थ क्यों न कहे, ऐसी शंका लेकर काम परतन्त्र है, जन्य है, (उत्पन्न होनेवाला) है, इस तरहके काममें, परमात्मामें अभेद कहनेपर परमात्मा के स्वातंत्र्या की, अनादित्वकी हानि होगी। इसलिये 'सर्वकाम' पदका अर्थ सर्वस्वामी ऐसा अर्थ शंकराचार्य ने किया है।

''कामोऽस्मि'' इस गीता वाक्यका अर्थ कृष्ण परमात्मा कामरूपी ऐसा अर्थ न करके, काम ईश्वरके अधीन – इस प्रकारका अर्थ किया है और 'सर्वस्य वशी', 'सर्वस्येशानः', 'एष सर्वेश्वरः', '' सर्वस्याधिपतिः'', ''एष भूताधिपतिः'', ''एष भूतपालः'' इत्यादि बहुतसे वेदवाक्योंमें पूरा जगत ब्रह्मके वशमें है, ब्रह्म जगतका स्वामी है कहा गया है। बृहदारण्यकके २-५-१ इस मंत्रके भाष्यमें शंकराचार्यने ''इदं सर्वं'' यह सर्वाप्तिसाधन (सर्वफलका कारण है, इस तरह अर्थ किया है।

उसी तरह 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' इस वाक्यका अर्थ भी ''समस्त जगत ब्रह्मके वशमें है, अथवा ''इदं ब्रह्म'' यह ब्रह्म सर्व संपूर्ण जगतका नियामक है, अथवा इदं ब्रह्म = यह ब्रह्म सर्वं समस्त पदार्थों की प्राप्तिका साधन है, ऐसा अर्थ करना योग्य होगा। इसलिये 'ब्रह्मवैदं सर्वं' इत्यादि वाक्योंकी तरह यह वाक्य भी जगतके मिथ्यात्व का बोध नहीं करता।

उपरोक्त उदाहृत श्रुतियोंसे ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य:'' इस सूत्रका अर्थ जगतके मिथ्या पर अर्थ करना युक्त नहीं। क्योंकि ''वाचारंभणं'' इत्यादि श्रुतियोंसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता यह अबतक प्रतिपादित हुवा। और इस सूत्रमें जगत के मिथ्यात्व प्रतिपादन करनेवाला एक भी शब्द नहीं। वेद, सूत्र, गीता इन प्रस्थानत्रयमें जगतके मिथ्यात्व साधक एकभी पद या वाक्य न होनेके कारण और जगतके सत्यत्व के विषयमें प्रमाणभूत वेद, सूत्र, गीतारूप प्रस्थानत्रय और प्रत्यक्ष अनुमान भी आधार होनेके कारण अदालत जगत मिथ्या नहीं सत्य है इस प्रकार निर्णय करती है।

अध्यास के विषयमें जज्जमेंट

प्रतिवादि मतके अनुसार जगतका भ्रम भी युक्त नहीं। इसलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे उपलब्ध ब्राह्मणादि समस्त जगत ब्रह्ममें कल्पित (मिथ्या) तीनों कालोंमें न रहनेवाला यह योग्य नहीं।

कारण

भ्रम पैदा होनेके लिये अवश्य सामग्री : –

१) अधिष्ठान (जिस वस्तुको देखकर भ्रम पैदा होता है वह वस्तु)

२) भ्रान्त होनेवाला

३) अधिष्ठानमें – सामान्य धर्म और विशेष धर्म

४) आरोपित होनेवाली वस्तु का सारूप्य

५) अ) भ्रम प्राप्त करनेवाले मनुष्यमें सामान्य धर्मसे युक्त अधिष्ठान ज्ञान

ब) विशेष धर्मका अज्ञान और आरोप्य योग्य वस्तुका सारूप्य ज्ञान, इस ज्ञानके लिये कारणीभूत इन्द्रियादि, उनके आश्रयभूत देह ये सभी चाहिये।

उदा. : रज्जुमें (रस्सीमें) सर्प का भ्रम पैदा होनेके लिये ''इदंत्व स्वरूप'' (सामने दिखना) सामान्य धर्म।

६) रज्जुत्वरूप विशेष धर्म और साप की तरह लंबाई (रज्जुमें) है। वैसेही भ्रम प्राप्त करनेवाले मनुषय्में ''इदंत्व''स्वरूप सामान्य धर्मसे युक्त रज्जुका ज्ञान है। ''यह रज्जु है'' इस तरह रज्जुत्व का ज्ञान नहीं (अज्ञान है) आरै सांप की तरह दीर्घता ज्ञान और उस ज्ञानके लिये कारणीभूत इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके आश्रयभूत देह, ये सभी हैं। अतएव रज्जुमें सर्पका भ्रम पैदा होता है। ''ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या'' इस तरह कहनेवाले अद्वैतियोंके मतके अनुसार, ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं, अतएव ब्रह्ममें ब्रह्मको भ्रम पैदा होगा। ब्रह्म ही भ्रमका अधिष्ठान आश्रय कहना होगा। ब्रह्म

निधर्मक है, अर्थात् ब्रह्म सकल धर्मरहित है। इसीलिये अधिष्ठान बनने के लिये आवश्यक सामान्य धर्म, विशेष धर्म और आरोपित होनेवाले जगतका सारूप्यादि नहीं। भ्रमके लिये कारणीभूत सामान्य धर्मज्ञान विशेष धर्म का अज्ञान, सारूप्य का ज्ञान, उस ज्ञानके लिये कारणीभूत देह, इन्द्रियादि नहीं। इसलिये भ्रम के लिये अधिष्ठान और उसके लिये आश्रय ब्रह्म नहीं हो सकता। जगतके विषयमें भ्रम युक्त नहीं होता, इस तरह शंकराचार्य और भामतीकारादि अद्वैती ब्र.सू. (४-१-३) के व्याख्यानमें कहा है। वे कहते हैं - ''युक्तं हि'' इत्यादि वाक्योंसे स्वीकार किया है। इसलिये जगत का भ्रम युक्त न होनेके कारण ब्राह्मणादि समस्त जगत रज्जु सर्प के भ्रम की तरह दीखता है, मिथ्या - (तीनों कालोंमें नहीं,) इस प्रतिवादीका कहना संगत नहीं।

भामतीकारके विचार ब्रह्मसूत्र ४-१-३ के व्याख्यानमें निरंशस्यापि १* इत्यादि वाक्योंसे और ब्रह्मसूत्र १-१-१ के 'नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहार:' इत्यादि शंकरभाष्यके व्याख्यान के समय 'स्वाभाविको अनादिरयं'' २* इत्यादि वाक्योंसे 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इस तरह हमारे अद्वैतमतमें, ब्रह्मातिरिक्त वस्तु ही नहीं, इसलिये ब्रह्म जगतके भ्रम का अधिष्ठान और आश्रय है (भ्रमप्राप्त करनेवाला) उस ब्रह्ममें भ्रमके अधिष्ठान होनेके लिये, आश्रय बनने के लिये आवश्यक धर्म यद्यपि परमार्थरूपसे नहीं। फिर भी कल्पित धर्म हैं, जो उसके जैसे हैं (अध्यस्त भ्रमसे दीखनेवाले वैसे ही कल्पित धर्म होनेके कारण ब्रह्म जगतके भ्रमका अधिष्ठान और आश्रय होगा।

जगतका भ्रमके लिये अधिष्ठान और आश्रय बनने के लिये कारणीभूत धर्मोंके आरोप के लिये (भ्रमके लिये) आवश्यक धर्मभी पहेले ही आरोपित हैं, इस तरह पूर्व पूर्व अनादि भ्रम परंपरासे ब्रह्म ही जगतके भ्रमका अधिष्ठान और आश्रय है। बीजांकुर परंपराको मानना जिस तरह दोषपूर्ण नहीं, उसी तरह भ्रमपरंपराको स्वीकार करना दोषयुक्त नहीं, इस भ्रमके कारण होनेकी वजहसे भ्रमयुक्त है। भ्रमके लिये कारण न होनेसे भ्रम युक्ति युक्त नहीं होगा यह भामतीकारका सिद्धान्त वाक्य नहीं, वह पूर्वपक्षका वाक्य है। सिद्धान्त के वाक्योंको देखे बिना, पूर्वपक्षके वाक्य के आधार पर भ्रमके लिये कारण ही नहीं, प्रतिवादीने माना है। इस तरह वादिका कथन युक्त नहीं। इस तरह अदालत निर्णय करती है।

कारण

भामतीकार प्रभृति अद्वैतीने भी इस जगतके भ्रमकी संभावना नहीं बतायी है। बल्कि 'निरंशस्यापि' इत्यादि वाक्योंसे सांश पदार्थमें (धर्मसे, गुणोंसे युक्त पदार्थ के विषयमें) जिस तरह भ्रम पैदा होता है, उसी तरह ब्रह्म निरंश (गुणरहित) होनेपर भी अनाद्यविद्यावासनासे नानाविध

१* निरंशस्यापि च जीवस्य अनाद्यनिर्वाच्या विद्यातद्वासना समारोपित विविध प्रपंचात्मन: सांशस्येव कस्यचिदंशस्य अग्रहणात् विभ्रम इव

२* स्वाभाविकोऽनादिरयं व्यवहार: व्यवहारानादितया तत्कारणस्य अध्यायसस्य अनादितोक्ता। ततश्च पूर्व पूर्व मिथ्या ज्ञानोपदर्शितस्य बुद्धि, इन्द्रिय शरीरादे: उत्तरोत्तरध्यासोऽपयोग: इत्यान्यदित्वात्वात् बीजांकुरवत् न परस्पराश्रयत्वमि त्यर्थ:

आरोपित (कल्पित) धर्मोंसे युक्तसे दीखनेवाले ब्रह्ममें ''विभ्रम इव'' भ्रमका आभास होता है।

वस्तुत: सूक्ष्मरूपसे विचार करनेपर भ्रमकी नहीं। भ्रमसे द्रष्ट, कर्तृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि संसारभी नहीं, भ्रमको, संसारको माननेपर द्वैतियोंसे आपाद्य समस्त अनुपपत्तियाँ आती हैं। दोष भी आते हैं। इसलिये यह भ्रम किस तरह हुवा, संसार किस तरह पैदा हुवा, इसे हम नहीं कह सकते। (अनिर्वचनीय) कहना ही सही है। इस तरह इस ब्रह्मसूत्र ४-१-३ व्याख्यानमे १* भ्रम संभवेगा नहीं, ऐसा कहकर भ्रमके स्वीकार करनेपर द्वैतियों समस्त दोष आते हैं। इस तरह अंगीकार करनेसे, भ्रमकी संभावना नहीं की जा सकती।

अविचित्र विज्ञानमें २* विचित्र अर्थात् नानाविध प्रपंचका भ्रम कैसे आयेगा ? बौद्धोंपर अद्वैतियोंने आपत्ति बतायी है। उस आपत्ति पर ....

बौद्धोने कहा है – विचित्र वासनासे विचित्र प्रपंचका भ्रम पैदा होता है। उसपर अद्वैती कहते हैं, विचित्र वासना पैदा होनेके लिये, उसके पूर्वके विचित्र जगतका ज्ञान होना चाहिये।और उस विचित्र जगतका ज्ञान किस तरह पैदा हुआ ? इस आक्षेपके परिहार के लिये बौद्धोंने भ्रमपरंपरा का स्वीकार करके विचित्र वासना परंपराका आधार बताया है। अद्वैतियोंने कहा – वासना परंपराको, उसके लिये भ्रमपरंपराको स्वीकार करनेसे अनवस्थारूप दोष आयेगा। इसलिये, वासना परंपराको और भ्रमपरंपराको मानना योग्य नहीं, इस तरह अद्वैतियोंने दोष कहा है। उसपर बौद्ध कहते हैं – जिस तरह बीजांकुर की परम्पराको सभी मानते हैं, उसी तरह वासना और भ्रम परंपराको भी मानना चाहिये। इसतरह का समाधान कहा है। बीज के लिये अंकुर कारण है। अंकुर के लिये बीज कारण है, यह प्रामाणिक है। उस प्रामाणिक कार्य कारणभाव संयोग के लिये बीजांकुर परंपराका स्वीकार योग्य होगा। लेकिन आपके (बौद्धोंके) मतमें अविचित्र (एक ही प्रकारके) विज्ञानमें, विचित्र जगतका भ्रम ही अप्रामाणिक है। उस अप्रामाणिक भ्रमके संयोजन के लिये, भ्रमपरंपरा, वासना परंपरा, इन दोनोंको मानना योग्य नहीं, इस तरह शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने ब्रह्मसूत्र २-२-३० के व्याख्यानमें कहा है।

इस तरह बौद्धोंको अद्वैतियोंने उत्तर दिया है। अप्रामाणिक भ्रमकी उपपत्ति के लिये भ्रमपरंपरा के स्वीकार करनेपर अनवस्थारूप दोष आयेगा। इसीलिये भ्रमपरंपरा का स्वीकार नहीं करना चाहिये। अद्वैतियोंने स्वीकार किया है। यह सिद्ध हुवा। इसतरह रहनेपर भी अद्वैतमतमें भ्रम सिद्ध नहीं होगा। इस प्रकार माननेपर भी उस अप्रामाणिक भ्रमकी व्यवस्था के लिये, भ्रमपरंपराको उपरोक्त रीतिसे कहना अच्छा नहीं।

भ्रम युक्ति संगत नहीं यह अद्वैतियोंके लिये निश्चित होनेपर भी, जगतका भ्रम युक्त न होनेपर जीवका संसार, परमात्मासे भेद इत्यादि जगत सत्य होनेपर अद्वैतिमत ही डूब जायेगा (अप्रामाणिक होगा) इसे समझकर अद्वैति कहते हैं – भ्रम युक्त नहीं होगा यह पूर्वपक्ष, सिद्धान्त नहीं इस तरह

१* परमार्थस्तु न विभ्रमो नाम कश्चिन्न संसारो नाम: किन्तु सर्वमेतत् सर्वानुपपत्ति भाजनत्वेन अनिर्वचनीयमिति युक्तमुत्पश्याम:

२* एक ही तरहके विज्ञानमें (वस्तुमें) नाना प्रकारके वस्तुवोंका भ्रम किस तरह पैदा होगा ?

लोगोंको गुमराह करनेके लिये सांशस्येव निरंशस्यापि विभ्रम इव'' सांश (धर्मोंसे युक्त) पदार्थोंमें जिस तरह भ्रम पैदा होता है, उसी तरह निरंश (धर्मरहित) ब्रह्ममें भ्रमसा पैदा होता है, किसी तरह समाधान किया है, ऐसा आभास होता है, वास्तवमें सूक्ष्म विचार करनेपर भ्रम नहीं और संसार भी नहीं। भ्रमको और संसारको माननेपर द्वैतियोंसे उक्त समस्त दोष पैदा होते हैं। इसलिये भ्रम कहाँ पैदा होता है ? किसमें पैदा होता है ? किसीका भी उत्तर नहीं दे सकते। अतएव उसे अनिर्वचनीय कहना ही योग्य होगा। इस तरह अपने मनोगत सिद्धान्त भामतीकारने कहकर ''यद्येवं प्रतिबुद्धोसि नास्ति कस्यचिद प्रबोध:'' इस वाक्यसे शंकराचार्यने भी इसीतरह स्वीकार किया है, ऐसा सूचित किया है।

इसलिये भ्रमयुक्ति संगत नहीं इस पूर्वपक्ष कहकर यद्यपि लोगोंको गुमराह किया है, पर सिद्धान्त कथनके समय भ्रम का संयोजन नहीं किया है। इसके विपरीत भ्रम युक्त नहीं इस तरह स्पष्टरूपमें माना है, अतएव वादिका कथन - अद्वैतियोंने भ्रम युक्ति के घेरेमें नहीं बैठता ऐसा जो कहा है, वह सत्य है, ऐसा कोर्ट का निर्णय है।

कार्यरूपवस्तु, कारणरूप वस्तु माया, अविद्यासे कल्पित होनेके कारण वह कार्य कैसे होगा ? माया कारण किस तरह बनेगी ? उनमें परस्पर संबंध किस तरह होगा ? इस तरह के प्रश्नोंकी उपपत्तियोंको कहनेका प्रयत्न न करें। माया अनुपपद्यमान होनेसे (माया नित्य है या अनित्य है, कल्पित है या सत्य है, जीवाश्रित है या ब्रह्माश्रित है इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर युक्तियोंसे नहीं दे सकते इसलिये माया अनुपपद्यमान है) माया का आश्रय, माया का विषय, इत्यादिका योग न होना जगतके भ्रम का अधिष्ठान, भ्रमका आश्रय घटित न होना भ्रम परंपराको स्वीकार करनेपर अनवस्थारूप दोष, ये सभी और मायिक अद्वैतमतके विषयमें प्रमाणोंकी अनुपलब्धि अद्वैतमतके लिये भूषण ही है । अर्थात् अद्वैतमतके साधक हैं ऐसा कहते हैं। १*

हम (अद्वैति) भ्रमके अधिष्ठानको और आश्रयको कहकर, भ्रमका संयोजन करनेका प्रयत्न करें। अविद्या और अविद्याकार्य भ्रमादिकोंका दुर्घटत्व (संयोजन न कर सकना) भूषण ही है।संयोजन करने के लिये होगा (उपपन्न होनेपर) वह भी प्रामाणिक होगा तो उसकी सत्ता (सत्व) सिद्ध होनेपर, ब्रह्म एक ही सत्य है'' यह अद्वैतमत नष्ट होगा। इसलिये भ्रम और अद्वैतमत इत्यादि पदार्थोंके विषयमें अनवस्था, अन्योन्याश्रय, चक्रक, स्वस्व्याहति इत्यादि जितने भी दोष आयेंगे वे सभी हमारे लिये (अद्वैतियोंके लिये) अनुकूलही होंगे। अर्थात हमारे लिये इष्ठ ब्रह्मातिरिक्त भ्रम और अद्वैतमत इत्यादिकोंका स्वीकार करनेके कारण, वास्तवमें भ्रमादि अद्वैतमतके अनुसार घटित

१* अस्तुवा अनुपपत्तिरेव कार्यकारणयोर्मायात्मकत्वा अनुपपत्ति: मायामुपोद्वलयति अनुपपमानार्थत्वात् न्या या: - ब्र.स.१-४-२२ भामती माययां अनुपत्तिरलंकार इति न मायावादे अत्यंतं उपपादनार्थं प्रयतितव्यम् इति (कल्पतरु परिमळे अप्पय्य दीक्षितका वाक्य) तस्य मायिकत्वेन.... सर्वानुपपत्तेर्भूषणत्वात् (अद्वैतसिद्धि) भूषणत्वादिति उक्तं ही खण्डने अनवस्थाद्यो दोषा सत्तां निघ्नन्ति वस्तुन:। अद्वैतिनां ते सुहृद: प्रपंचे तत्प्रसंजका:'' इति गौड ब्रह्मानंदी (लघु चंद्रिका) दुर्घटत्वमविद्याया: भूषणं न तु दूषणम्। कथंचित् घटमानत्वे अविद्यात्वं दुर्घटं भवेत्' न भ्रमो नाम कश्चित् न संसारो नाम कश्चित् सर्वमे तत्पत्ति भाजनत्वेनानिर्वचननीयमिति युक्तमुत्पश्याम: ब्र. सू. ४-१-३ भामती ''यद्येवं प्रतिबुद्धोसि नास्ति कस्यचिद प्रबोध:'' इत्यादि ४-१-३ शंकराचार्य का सूत्रभाष्य.

न होनेसे, अद्वैतमतमें ब्रह्मणादि जगत् कल्पित है, ऐसा कथन युक्तिसंगत नहीं। ब्राह्मणवर्णादि जगत् पारमार्थिक सत्य है इस विषयमें श्रुत्यादि प्रमाण होनेके कारण जगतको पारमार्थिक सत्य मानती है अदालत।

स्वप्नपदार्थ के विषयमें कोर्टका निर्णय
स्वप्नपदार्थ के विषयमें

वादि और प्रतिवादि से दाखल किये गये प्रमाणोंका विचार करके, और वादि, प्रतिवादि के वकीलोंके बहसको सुनकर स्वप्न पदार्थ मिथ्या नहीं, वे पारमार्थिक सत्य है इस तरह कोर्ट निर्णय देती है।

कारण :

'अथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते........ न तत्रानन्दा मुद: प्रमुदो भवन्त्यथो भवन्त्यथ वेशान्तान्पुष्करिणी, स्त्रवन्ती: सृजते स हि कर्ता (बृह - ४-३-१०) इस उपनिषत्तमें रथ, घोडे और मार्ग इनका निर्माण करता है। उसी तरह आनंद (सुखविशेष) मुद: (पुत्रलाभसे प्राप्त साधारण आनंद) प्रमुद: (विशेषानंद) इनको और पल्वला: (छोटे तालाब) पुष्करिणी: (बडे निर्मल तालाब) स्त्रवन्ती: - नदी, स्वप्नकालमें जो परमात्मा इनकी सृष्ठि करता है, वही सर्वजगतका सृष्टिकर्ता है। इस तरह परमात्मासे स्वप्न पदार्थोंकी सृष्टि होती है, ऐसा कहा गया है। ''य एषु सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्ममाण: तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमश्नुते'' काठक (५-८) इस वाक्यमें भी ईश्वर लोगोंके इष्ट पुत्रादिकोंका निर्णय स्वप्नावस्थामें करता है ऐसा कहा गया है। और खरगोश की सींग की तरह स्वप्नपदार्थ तीनों कालोंमें नहीं रहते, तो ईश्वरने उनकी सृष्टि की इस तरह कहना असंगत है। इन दोनों कारणोंसे स्वप्न पदार्थ सत्य ही होंगे, असत्य नहीं, यह सिद्ध होता है।

'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेऽभिपश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्नदर्शने'' इत्यादि छांदोग्य श्रुति, थोडेसे स्वप्नपदार्थोंको शुभसूचक कहती है। और 'पुरूषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति'' (ऐतरेय) इत्यादि श्रुति, कुछ स्वप्न पदार्थोंको अशुभ सूचक कहती है। इस प्रकार दोनों श्रुतियाँ स्वप्नपदार्थोंको शुभाशुभ सूचक कहती है, इस कारण और असत्य पदार्थोंमें सूचकत्व धर्म संभवता नहीं, अत एव स्वप्नपदार्थ: सत्य: अर्थक्रियाकारित्वात्' इत्यादि अनुमानसे स्वप्न पदार्थ सत्य सिद्ध होते हैं।

किसी भी समय अविद्यमान शशविषाणादिसे कार्य पैदा नहीं होता जैसे स्वप्नकामिनी संभोग:। स्वप्न पदार्थ तीनों कालोंमें नहीं रहते, पर उन पदार्थोंसे रेतोत्सर्जनादि कार्य किस तरह पैदा हुवे। स्वप्न कामिनी संभोगसे रेतोत्सर्जनादि कार्य उत्पन्न होते हैं, अतएव स्वप्नोंकी सत्यता सिद्ध होती है।

जैसे, 'घट: सन् पट सन्' घडा सत्य है, पट सत्य है, जागृत कालमें प्रत्यक्ष होनेके कारण सत्य सिद्ध होते हैं। उसी तरह 'गज: सन् घट: सन् = हाथी सत्य है, घट सत्य है, स्वप्नकालमें भी प्रत्यक्ष होनेसे स्वप्न पदार्थ सत्य सिद्ध होते है।

''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' (२-२-२९) इस ब्रह्मसूत्रसे स्वप्न पदार्थोंका बाध होगा। इस तरह सूत्रकारने कहा है। इसी कारण स्वप्नपदार्थोंको प्रतिवादिका असत्य कहना योग्य नहीं। क्योंकि इस सूत्रमें सर्व स्वप्न पदार्थोंकी बाधा होगी ऐसा नहीं कहा है। और 'स्वप्ने .... सच्च असच्च सर्वं पश्यति '' षट् प्रश्न (४-५)

इस उपनिषत् के वाक्यमें जीव स्वप्नावस्थामें सत्य पदार्थोंको, असत्य पदार्थोंको देखता है। इस तरह स्वप्नावस्थामें दिखाई देनेवाले पदार्थ सत्य कहे गये हैं। पर स्वप्नावस्थामें दिखनेवाले बाधित और अबाधित सभी पदार्थ मिथ्या होनेपर, स्वप्नावस्थामें ज्ञात होनेवाले आत्माका भी मिथ्यात्व मानना पडेगा। स्वप्नावस्थामें ज्ञात होनेवाला आत्मा बाधित होनेके कारण, जिस तरह उसके सत्यत्वका स्वीकार करते हैं, उसी तरह बाधित न होनेवाले स्वप्न पदार्थोंके सत्यत्वको मानकर, जो स्वप्नपदार्थ बाधित होते हैं । उसको असत्य माननेसे इस सूत्रसे बाधा नहीं आयेगी।

समस्त स्वप्नपदार्थोंको बाधा आयेगी इसलिये सभी स्वप्न पदार्थ हैं, इस तरह जो प्रतिवादिका कहना है। युक्ति संगत नहीं।

१) कार्तिकमासमें द्दष्टि गोचर एक मनुष्यको पुन: कहीं देखनेपर - यह वैशाखमासमें मिला था ऐसा प्रत्यय आता है। थोडे समयके बाद स्मरण शक्ति के आनेपर यह वैशाख मासमें नहीं मिला था, कार्तिक मासमें ही मिला था। इस तरहके बाधक ज्ञान होनेपर इस मनुष्यका वैशाख मासमें दिखाई देना असत्य है, पर वह मनुष्य ही असत्य है, ऐसा ज्ञान नहीं होगा।इसी प्रकार ''नेहं जाग्रत् किन्तु स्वाप्नमेव'' यह पदार्थ जागृत कालका नही, स्वप्नकालक है यह ज्ञान होता है। ''नेदं'' यह पदार्थ ही नहीं, इस तरह बाध ज्ञान न होनेपर, उस बाधज्ञानसे स्वप्न पदार्थोंमें जो जागृत काल की प्रतीति है वह मात्र असत्य है, स्वप्न पदार्थ असत्य नहीं।

बिजली पूर्वक्षणमेंभी, उत्तरक्षणमें भी नहीं होगी मध्यमें ही पैदा होकर, उसी क्षण नष्ट होगी। यह सबोंके लिये अनुभव सिद्ध है।इसी तरह स्वप्नपदार्थ भी उसी एक क्षणमें पैदा होकर उसी क्षणमें नष्ट होते हैं। इस तरह कहनेसे कोईभी बाधा नहीं आयेगी। इसीसे स्वप्नपदार्थ पूर्वक्षणमें उत्तर क्षणमें नष्ट होगा, मध्यक्षणमें पैदा होकर नष्ट होगा यह नहीं हो सकता ऐसा जो प्रतिवादिका कथन है, वह सही नहीं।

'मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्' इस सूत्रमें सूत्रकारने स्वप्नपदार्थे मिथ्यात्व के विषयमें छ प्रमाण दिये, इनको दिखाकर स्वप्नमें दिखनेवाले रथ, घोडे, नदी, दिवस, ग्रीष्मऋतु इत्यादि पदार्थ मिथ्या हैं, इस तरह कहा गया है। प्रतिवादिने जो कहा है, वे छ कारण सही नहीं, उनके स्वीकार करनेसे स्वव्याहति दोष आता है। अत एव प्रतिवादिका उक्त अर्थ सूत्रकारको सम्मत नहीं होगा। क्योंकि -

१) शंकराचार्यादिने बृहदारण्यक उपनिषत के व्याख्यानमें 'वासनामात्ररूपान्'' ''वासनामयी सृष्टि:'' इत्यादि वाक्योंसे संस्कार (वासना) स्वप्न पदार्थोंके लिये उपादान कारण कहा है, भामतीकारने भी ब्रह्मसूत्र २-१-३१ व्याख्यानमें बाह्यपदार्थ काष्ठादिकोंकी अपेक्षा न करके देहमें विद्यमान आन्तरिक कारणसे (वासनासे) रथादिकोंकी सृष्टि दिखाई देती है, इसलिये यह

स्वप्नसृष्टि ही नहीं। इसतरह उस स्वप्न सृष्टिका निषेध नहीं कर सकते, कहा है। इस प्रकार कहने के कारण स्वप्न पदार्थोंका उपादान कारण संस्कार हैं, यह सिद्ध होनेसे ''स्वप्न पदार्थोंका उपादान कारण न होनेसे मिथ्या '' कहना यह पहला कारण अयुक्त है, स्वव्याहत है। ·

२) स्वप्नीय रथादि देहमें किस तरह रह सकते हैं ? देहमें विद्यमान वासनासे स्वप्न रथादि परिणत होनेके कारण (वासना ही रथरूपसे व्यक्त होनेके कारण) स्वप्नपदार्थ (रथादि) देहमें रह सकते हैं, कोई बाधक नहीं। अतएव स्वप्नमें दिखायी देनेवाले बडे बडे घोडे, रथ, पर्वत इत्यादि पदार्थको देहमें रहनेके लिये योग्य जगह न होनेसे स्वप्न असत्य है यह कहना सही नहीं।

३) जिस तरह परमात्मा स्वप्नकालमें रथादिकोंकी सृष्टि करता है, उसी तरह स्वप्नकालमें दिवसको ग्रीष्मऋतुको पैदा करता है। इसीलिये स्वप्नकालमें रात्रिके समयमें भी दिवसका, वसंतकालमें ग्रीष्मऋतुका निर्माण करता है, अत एव उनको देखना संभवता है। नींदमें मनुष्य स्वप्नकालमें दिवसको देखता है, वसंतऋतुमें ग्रीष्मऋतुको देखता है, रात्रिमें दिवस नहीं हो, वसन्तकालमें ग्रीष्मऋतु नहीं होती, इसकारण से स्वप्न को असत्य कहना युक्त नहीं।

४) एक ही क्षणमें स्वप्नपदार्थोंकी सृष्टि कोई न करता, इसीलिये स्वप्न को प्रतिवादिका असत्य कहना यह चौथा कारण भी युक्ति संगत नहीं। क्योंकि 'स हि कर्ता' इत्यादि श्रुतियोंमें ईश्वर ही स्वप्नपदार्थोंकी सृष्टि करता है, ऐसा कहा गया है और सर्वोपेताच तद्दर्शनात्'' ब्रह्मसूत्र २-१-३० इस सूत्रव्याख्यानमें 'सर्वकर्मा एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' इत्यादि प्रमाणोंका उद्धरण करके, परमात्मा विचित्र सामर्थ्यसे युक्त है इस तरह शंकराचार्य के कहनेके कारण, एक क्षणमें स्वप्नपदार्थोंका निमार्ण करनेवाला है सिद्ध होता है।

५) स्वप्न पदार्थोंसे ज्ञान पैदा होता है, यह विषय सबोंके लिये अनुभवसिद्ध है। कारण के बगैर कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतएव इस स्वप्न ज्ञानरूप कार्य के लिये किसी कारण को मानना सबोंके लिये आवश्यक है। वह कारण कौनसा होगा ? इस तरह विचार करनेपर स्वप्नकालमें मन उपरत नहीं होता। (जागृत रहता है) इसलिये मनको ही कारण समझना चाहिये। अन्यथा दूसरे कारणको बताना पडेगा। अतएव स्वप्नपदार्थोंके ज्ञानको कोई कारण न होनेसे, स्वप्न पदार्थको असत्य कहना, यह पाँचवा कारण भी निराकृत हुवा।

६) 'न तत्र रथा न रथ योगा:, न पंथानो भवन्ति अथ रथान्, रथयोगान् पथ: सृजते'' यह श्रुति, पूर्वमें रथादि नहीं थे, बादमें ईश्वरने इन रथादिकोंकी सृष्टि की, ऐसा कहती है। इसलिये रथादि पहले नहीं थे, (प्रागभाव प्रतियोगी) थे यह सिद्ध होता है। पर कभी भी नहीं होते (अत्यंताभाव प्रतियोगी) इस तरह सिद्ध नहीं होता।

विवाह के पहले बच्चे नहीं थे, बादमें पैदा हुये, इसतरह कहनेपर विवाहके पहले बच्चे नहीं थे ऐसा ही सिद्ध होगा, वे मिथ्या हैं। (तीनों कालमें नहीं होंगे) ऐसा कभी नहीं होता। पहले नहीं थे, बादमें पैदा हुये, इतना कथन मात्रसे, उन पदार्थोंको असत्य कहना होगा तो, पहले वह बि. ए. नहीं था, अब वह बी. ए. है। पहले घर नहीं अब घरका निर्माण हुवा है। इस तरह कहनेपर बि.ए. होना, घर बांधना, घर असत्य है, ऐसा मानना पडेगा। इसीलिये यह वेद 'पूर्वमें रथादि नहीं थे, बादमें निर्मित हुये',

कथन करता है, इससे इन पदार्थोंका असत्यत्व सिद्ध नहीं होता। अतएव स्वप्न रथादिकोंको ''न तत्र रथा'' इस श्रुतिसे बाध ज्ञान नहीं आयेगा।

इस स्थितिमें ''इदं रजतं'' (यह चाँदी है) इस ज्ञानको ''नेदं रजतं'' – यह चाँदी नहीं, यह बाधज्ञान पैदा होता है। इसलिये इस रजतको सत्य नहीं मानना चाहिये, वैसेही 'न तत्र रथा' इत्यादि श्रुतियोंसे स्वप्न पदार्थ रथादि तीनों कालोमें नहीं, इस प्रकार बाध ज्ञान होनेसे, स्वप्न करनेवाला छटा कारण भी सही नहीं। अतएव शंकराचार्य का यह सूत्रार्थ युक्ति युक्त नहीं।

''स्वप्न पदार्थ मिथ्या है'' इस विषयमें प्रतिवादिसे उक्त ये छ कारण अयुक्त है, इसलिये स्वप्नपदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। सूत्रकार अयुक्त कारणोंको कहते हैं, ऐसा कहना असंगत होगा। ''संध्ये सृष्टिराहहि'' निर्मातारं चैके पुत्रादयश्य'' ये सूत्र ''मायामात्रं तु'' इत्यादि सूत्रोंसे पहले हैं। इन सूत्रोंमें स्वप्न पदार्थ ईश्वरसे सृष्ट कहे गये हैं।

'स्वप्ने...... सच्च असच्च पश्यति' यह श्रुति स्पष्टरूपमें कहती है कि स्वप्नके समय जीव सत्य पदार्थोंको देखता है। मायामात्रं तु – यह सूत्र शंकराचार्यके कथन के अनुसार, स्वप्नको मिथ्या कहने के लिये प्रवृत्त नहीं हुवा। इस सूत्रमें मिथ्याबोधक पद ही नहीं।''मायामात्रं '' इस पदका अर्थ, माया, वयुनं, ज्ञानं इस तरह निघटुंमें अर्थ कहा गया है। शंकराचार्यने भी ''माया'' पदका ''प्रज्ञा'' ऐसा अर्थ किया है। स्वप्नपदार्थ मायामात्रं (ज्ञानमय – ज्ञानांशभूत वासनामय – वासनासे परिणत, अर्थ होता है। (तीनों कालोंमें न रहनेवाला) ''मिथ्या'' ऐसा मायामात्रं पदका अर्थ नहीं होता। जागृतकालमें जो ज्ञानके विषय हैं, उनमें ''शुक्तिरजत'' ''रज्जुसर्प'' इत्यादि बाधित होते है। उसी प्रकार स्वप्नकालमें ज्ञात जाग्रत कालवृत्तित्व (जागृत अवस्थामें रहना) और स्वप्न पदार्थोंको जाग्रत कालीन बाह्य वस्तुवोंसे अभिन्न समझना, बाह्य वस्तुकी तरह स्थूलाकार, इत्यादि बाधित होनेके कारण असत्य होनेपर भी ईश्वर, संस्कारोंके उपादान कारणसे, जीवके अद्दष्टको निमित्त करके स्वप्नमें रथ, घोडे इत्यादि पदार्थोंकी सृष्टि करता हैं। इसलिये वे मिथ्या नहीं होगे, सत्य ही होंगे, इसतरह अदालत निर्णय करती है।

डिक्रि (निर्णय)

१. जगत पारमार्थिक सत्य है, इस विषयमें वेद, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष अनुमान इन प्रमाणोंका आधार हैं।

२. ''जगत मिथ्या है'' इसको सिद्ध करनेके लिये वेद, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष अनुमानमें एक भी आधार नहीं।

३. जगत ज्ञानसे कल्पित है, मिथ्या है, इस तरह विज्ञानवादि बौद्धोंके कहनेपर, उसके विरोधमें शंकराचार्यादि अद्वैतियोंने कहा है, जगत प्रमाणोंसे उपलब्ध होनेके कारण, उपलब्धि का बाध किसीभी अवस्थामें नहीं हो सकता। इसलिये जगतको सत्य ही मानना चाहिये, ऐसा कहकर पुन: उनका यह कहना 'जगत ब्रह्ममें कल्पित है' व्याहत होगा। स्वंय जिसका कथन कर चूके,

उसीके विरूद्ध होगा।

४. प्रपंच प्रमाणोंसे उपलब्ध होनेके कारण, प्रपंचका निषेध करना, मिथ्या कहना अशक्य है। यह दोष स्पष्ट होनेके बावजूद भी सूत्रकारने जगतको मिथ्या कहनेवाले शून्यवादि बौद्धोंका खण्डन नहीं किया है, इस तरह प्रपंचाभावको कहनेवाले बौद्धोंका यह मत खण्डनके लिये भी योग्य नहीं। इसका पोषण करके, पुन: वे ही सर्वप्रमाणोंके विरूद्ध प्रपंचाभावका स्वीकार करना अत्यंत अयुक्त, स्वव्याहत भी है।

५. अद्वैतमतके अनुसार जगतके भ्रमके लिये कारणीभूत अधिष्ठान और आश्रय (भ्रान्तपुरूष) इत्यादि युक्त संगत न होनेसे, भ्रम ही न होनेके कारण जगतको कल्पित (भ्रमसे दीखता है) कहना असंगत होगा।

६. अबाधित स्वप्न पदार्थ भी सत्य ही है।

७. प्रमाण व्यावहारिक सत्यत्वका बोध करते हैं। हम (बौद्ध) प्रपंचके विषयमें पारमार्थिक सत्यत्वको नहीं मानते। अतएव पारमार्थिक सत्यत्व को निषेध करनेवाले हमें प्रमाण विरोध नहीं होगा, इस तरह बौद्धोंके कहनेपर, सभी प्रमाण हमारे विषयीभूत प्रपंचका पारमार्थिक सत्यत्वका ही बोध करते हैं, व्यावहारिक सत्यत्वका बोध नहीं करते। इसलिये जगतके पारमार्थिक सत्यत्वके निषेध करनेवाले (बौद्धोंको) आपको प्रमाणसे प्राप्त बाध के शिकंजेसे छुटकारा नहीं मिलेगा, इस तरह अद्वैतियोंने बौद्धोंका खण्डन किया है।

पर स्वयं शंकराचार्यने कहा है - प्रमाण विश्वके व्यावहारिक सत्यत्वका बोध करते हैं। हम विश्वके पारमार्थिक सत्यत्वका निषेध नहीं करते। इसलिये हमें प्रमाण बाध नहीं होता। इस तरह अद्वैतियोंका कहना स्वव्याहत हैं। ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्यादि आश्रम, यज्ञ देवता, वेद, स्नान संध्या, गंगादि तीर्थ, स्वर्गादि परलोक इत्यादि समस्त द्वैत प्रपंचको पारमार्थिक सत्यके रूपमें ही कोर्ट निर्णय करती है।

इस कोर्टके शासन का उल्लंधन करके ब्राह्मणादि समस्त जगतको मिथ्या समझकर, वैसे ही उपदेश करके, लोगोंमें वास्तविकरूपमें विश्वके मिथ्यात्व को द्दढ करनेके प्रयत्न किया है। यज्ञ, गंगादि तीर्थ, वेद, देवता इत्यादि समस्त को मिथ्या मानकर कोई भी अद्वैती, लोगोंको गुमराह करनेके लिये स्वयं आस्तिक लोगोंकी तरह स्नान, संध्या, यज्ञ, यागादिकोंका अनुष्ठान करके भी अच्छे फल प्राप्त नहीं करते। क्योंकि इस तरहके लोगोंको ईश्वर प्राप्ति नहीं होती। वे पुनरावृत्तिरहित अधोगति को प्राप्त करते हैं। इस तरह गीता कहती है, ''मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्'' इसलिये समस्त सज्जन (मोक्ष की इच्छा करनेवाले सभी) ब्राह्मणादि वर्णोको सत्य समझकर, देवताओंके प्रीत्यर्थ अपने अपने वर्णाश्रम विहित स्नान संध्या जपार्दिय अनुष्ठान से परमात्माके ज्ञानको प्राप्त करके पारमार्थिक फलको प्राप्त करें।

श्री

संयमनीपुर हायकोर्ट ऑफ जूडिकेचर

(S.O. No. 564 - 1927)

अठ्ठाईस कलियुगके शालिवाहन शक

चीफ जस्टिस् धर्मराज एच. बी. के सामने

चली वेदान्त विचार

वादि – सत्यबोधाचार्य | प्रतिवादि – गंगाधर शास्त्री

वकील – माधवदास (P. B.D.) | वकील – हरिहर शर्मा

दावा

वादिकी लिखी अर्जी –

१. वादि, वैदिक आस्तिक समाजके प्रतिनिधिके रूपमें कोर्टकी अनुमति पाकर, यह दावा करता है।

२. कोर्टकी अनुमतिसे इस दावेमें, अद्वैतसमाज के प्रतिनिधिके रूपमें गंगाधर शास्त्रीको प्रतिवादि के रूपमें स्वीकार किया है।

३. वादि आस्तिक वैदिकमतसे संबद्ध है।

४. वैदिक मतके तत्त्व :–

– ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादि परलोक, यह लोक इत्यादि समस्त जगत सत्य है।

– विष्णु (परब्रह्म) ही सर्वोत्तम है, सर्वज्ञ है। सर्वकर्ता अनंत कल्याणादि गुणोंसे परिपूर्ण है।

– परब्रह्म जीवसे भिन्न है।

– परब्रह्म सर्वोत्तम, सर्वकर्ता, जीवसे भिन्न है। इस प्रकार का ज्ञान मोक्षसाधन है।

– इन तत्त्वोंका कथन वेद, वेदार्थ निर्णायक ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीतामें किया है, सारे वैदिक लोक इन तत्त्वोंके स्वीकार करनेमें बद्ध है।

– यह वैदिक मत अनादिकालसे चला आया है।

– तत्त्वोंकी वास्तविकता इस प्रकार रहनेपरभी गौडपादाचार्यने उनके परम शिष्य शंकराचार्यने वेद, ब्रह्मसूत्र, गीतादिकके भिन्न अर्थकी कल्पना करके विज्ञानवादि बौद्धमतको शून्यवादि बौद्धमतको वैदिककी वारदात चढाकर, लोगोंको बेवकूफ बनाकर वैदिक तत्त्वके विरूद्ध तत्त्वोंका उपदेश किया।

२५ – सिविल सूट (१-२)

इस तरह करना, प्राचीन शिक्षानियमके अनुसार भगवद्गीता सेक्शन (अध्याय) १६में उक्त दण्डके योग्य अपराध है।

८. अद्वैतमतका प्रतिवादि इस तरह उपदेश करता है –

A विष्णु (परब्रह्म) सर्वोत्तम नहीं, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता नहीं। अनंतगुणपरिपूर्ण भी नहीं। वह सर्वधर्मोसे रहित है।

B उपर ८(A) विभागमें उक्त ब्राह्मणादि वर्ण मिथ्या है। (तीनों कालोंमें सत्य नहीं)

C परब्रह्म जीवसे भिन्न नहीं।

D परमात्मा जीवसे भिन्न है, सर्वोत्तमत्व ज्ञान मोक्षका साधन नहीं। ''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ब्रह्म हूँ) इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्ष साधन है।

९. वेद, सूत्र, गीतामें उक्त तत्त्वोंको विरूद्धरूपसे समझकर ''नष्टात्मानोऽल्प बुद्धय:'' प्रभवंत्यगकर्माण: क्षयाय जगतो हिता'' (गीता अ.१६ श्लोक ५) कथनके अनुसार केवल स्वयं अधोगति को नहीं जाते, पर अन्य सज्जनोंको भी आस्तिक मतसे निष्कासित करके अवैदिक अद्वैतमतमें आश्रित करके, उनको अधोगतिको पहुँचाते हैं। इसलिये सज्जनोंकी भलाई के लिये निम्नलिखित प्रार्थना के अनुसार निर्णय करें।

१) परब्रह्म जीवसे भिन्न है सर्वोत्तम है।

२) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, वेद, यज्ञ, देवता, गंगादितीर्थ इत्यादि जगत सत्य है, मिथ्या नहीं ये ही वैदिक मतके तत्त्व नहीं।

३) प्रतिवादिके उक्त – ब्रह्म निर्गुण है, वह जीवसे अभिन्न है, ब्राह्मण वर्णादि जगत मिथ्या है, ये वैदिक मतके तत्त्व नहीं।

४) वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता के विरूद्ध अर्थकी कल्पना करके जगत मिथ्या है। ब्रह्म निर्गुण है, इस प्रकारका प्रतिवादिका उपदेश, शास्त्र विरूद्ध है, ऐसा निर्णय करंना चाहिये।

५) और कोर्टको युक्त पतीत होता है, उस समस्तका निर्णय करें।

६) कोर्ट इस प्रकार न करेगी तो लोगोंको बडा कष्ट होगा।

ता–२५–३–२७ (दस्तखत) सत्यबोधाचार्य

उपरोक्त दस विभागमें कहा गया विषय सत्य है, इस तरह मैं अपनी बुद्धिसे, अपने गुरूके उपदेशसे कहता हूँ।

(दस्तखत) सत्यबोधाचार्य

२६ - सिविल सूट (१-२)

संयमनीपुरका हायकोर्ट
(S.O. No. 564 - 1927)
प्रतिवादिका स्टेटमेंट

वादि	**प्रतिवादि**
सत्यबोधाचार्य	**गंगाधर शास्त्री**

प्रतिवादिसे लिखित स्टेटमेंट

१. वादिने जो अपनी अर्जीमें कहा है, पूरा विषय असत्य है।

२. वादिने अर्जीके चौथे विभागमें जिन तत्त्वोंका कथन किया है, वेद, सूत्र,गीतामें उक्त हैं, पर वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता इनको इन तत्त्वोंके विषयमें तात्पर्य नहीं इसलिये ये तत्त्व वैदिक नहीं।

३. वादिका मत अनादिकालसे आया नहीं।

४. चौथे विभागमें वादिसे उक्त विषय असत्य है।

- हमारा अद्वैतमतही वैदिक नहीं।
- अद्वैतमतको बौद्धमत कहना अयुक्त है।
- मुझसे कहा जानेवाला ही वेदार्थ है।

५. अद्वैतमतके तत्त्व :-

- ब्रह्मातिरिक्त ब्राह्मणादि वर्ण, देवता, संध्यावंदनादि कर्म इत्यादि जगत स्वप्नकी भाँति असत्य है।
- परब्रह्म निर्गुण है। (समस्त धर्म रहित)
- जीव ब्रह्म एक है।
- ''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ब्रह्म हूँ'') यह ज्ञान मोक्षसाधन है

६. इस विषयका निर्णय पहले ही हो जानेके कारण पुन: विचार करनेका अधिकार कोर्टको नहीं। (Resjudicate)

७. वादिने जो नववें विभागमें कहा है, वह असत्य है।

८. हमारे अद्वैतमतके आश्रयसे, नष्ट नहीं हुये है। इस मतके अनुसरण करनेसे किसीका भी नुकसान नहीं हुवा है।

इन कारणोंसे अदालत कोई निर्णय न देकर वादिकी अर्जीको बरखास्त करें। यह हमारी प्रार्थना है।

- दस्तखत (गंगाधर शास्त्री)

मैं अपनी बुद्धि से, गुरूके उपदेशसे इसे सत्य कहता हूँ।

- दस्तखत (गंगाधर शास्त्री)

वकील हरिहरशर्मा (P. B.S.)

२७ - सिविल सूट (१-२)

वादग्रस्त विषय - Issues

१) रेसजूडीकेट है या नहीं ? इसका आशय है यह है इस विषयका निर्णय पहले हो चूका है, अत: पुन: उस विषयका विचार करनेका अधिकार कोर्टको है या नहीं ?।

२) - ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, इत्यादि जगत सत्य है या मिथ्या ?
   - स्वप्न सत्य है या मिथ्या ?

३) परब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्त, जगत्कर्ता और समस्त कल्याणादि गुणोंसे परिपूर्ण है या नहीं ?

४) परब्रह्म जीवसे भिन्न है या अभिन्न ?

५) - अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या नहीं ?
   - अद्वैतमत वैदिकमत है या नहीं ?

रेसज्यूडीकेट का विचार
ता. ३-४-१९२७

प्रतिवादि का वकील - पूर्वमें ही इस विषयपर विचार हुवा है, निर्णय भी दिया गया है, अत: इस विषयपर विचार आवश्यक नहीं।

वादिका वकील - जैसे हर ब्राह्मण को हररोजसंध्यावंदन करना ही चाहिये वैसे हरेक मनुष्य हररोज दावेमें उक्त द्वैताद्वैत का विचार करे। इस तरह ''आत्मा वा अरे द्रष्यव्य:'' ''श्रोतव्य: मन्तयो निदिध्यासितव्यो'' ''तद्विजिज्ञास्व तद् ब्रह्म:'' ''तमेवं विद्वानमृत इह भवति'' इत्यादि श्रुतियाँ उपदेश करती है। 'इन तत्त्वोंका १* विचार करना हरेक आदमी का कर्तव्य है।

इस श्रुतिके अनुसारही द्वैताद्वैत मतस्थ शंकराचार्य, मध्वाचार्य, देशिकाचार्य, विद्यारण्य अक्षोभ्यतीर्थ, जयतीर्थ, व्यासराय, मधुसूदन सरस्वती, अप्पय्य दीक्षित, विजयींद्रतीर्थ, सत्यनाथतीर्थ आदि हमारे पूर्वज सभी द्वैताद्वैतके विचारको हरेक हररोज विचार किया करते थे। अतएव हरेकको इसका विचार करना आवश्यक है। विचार न करनेपर दोष प्रप्ति होती है। इसीलिये यह रेसज्यूडीकेट नहीं होगा।

कोर्टका आदेश (Order)

कोर्ट रेसज्यूडीकेट के विषयमें प्राथमिक विचार करके इस निर्णयको लेती है। वादि के कथनके अनुसार तत्त्व विचार करना हरेकका कर्तव्य है, आवश्यक भी है। वादिप्रतिवादिने जिसको प्रमाण माना है, उस श्रुतिवचनके अनुसार द्वैताद्वैतमतके आचार्य परंपरासे भी सिद्ध होता है। अतएव यह

१* तत्त्वविचार का अर्थ है द्वैताद्वैतपक्षमें विद्यमान गुणदोषोंकी परीक्षा करके, दोषयुक्त पक्षको अयुक्त समझकर, दोषरहित पक्षको योग्य जानकर, उसके अनुसार चलना।

रेसज्यूडीकेट नहीं होगा।

और विचारणीय विषय अधिक होनेके कारण, प्रमुख होनेसे वादि प्रतिवादियोंकी सुविधा के लिये हरेक विषयपर अलग अलग विचार करके कोर्ट निर्णय लेना चाहती है। पहले जगतके सत्यत्व के विषयपर करेंगे, ऐसा कोर्टका आदेश है।

(Sd) Dharmaraj H. B.
Chief Judge, High Court
Samyamini Puram

संयमनीपुरका हायकोर्ट
O.S. No. 564 of 1927

वादि – सत्यबोधाचार्य **प्रतिवादि – गंगाधर शास्त्री**

वादि की विचारणा 20-4-1927

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?
वादि - सत्यबोधाचार्य
कोर्ट - ईश्वरका शपथ लेकर, कोर्टके सामने मैं सत्य कहता हूँ
वा. व. - आपने ही दावा किया है न ?
वादि - ठीक, मै नें ही किया है।
वा. व. - दावा क्या है ?
वादि - प्रतिवादि प्रत्यक्षादि प्रमाणविरूद्ध ब्राह्मण वर्णादि जगतको मिथ्या कहकर, सज्जनोंमें भ्रम पैदा कर रहे हैं। अपने साथ उनको भी नित्यनरक ले जायेगा। इसलिये वैसे करनेसे मना करें। इसके लिये ही मैने दावा किया है।
वादिका वकील - आप क्या कहना चाहते है ?
वादि - ब्राह्मणादि समस्त जगत सत्य है, मिथ्या नहीं, ऐसा हम कहते हैं।
वादिका वकील - आपके कथन का आधार क्या है ?
वादि - प्रत्यक्ष, अनुमान, श्रुति, सूत्र, गीता, प्रस्थानत्रय ये सभी प्रमाण हमारे कथनके आधार है।
वादिका वकील - श्रुतिको कहो।
वादि - विश्वं सत्यं मघवाना युवारिदापश्चन प्रमिनन्ति व्रतं (ऋ. २-७-३-१२)
वादिका वकील - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

२९ – सिविल सूट (१-२)

• वादि – हे इन्द्र, बृहस्पत्यन्तर्गत यशस्वी भगवद्रुप तुमसे उत्पन्न विश्वं ''जगत सत्यमित् – सत्य ही है। मिथ्या (आरोपित नहीं, अप:चन – जलाभिमानी देवता भी तुम्हारे 'व्रतं' तुम्हारे जगत् सृष्ट्यादिव्यापार को सत्य ही समझते है।

वादिका वकील – इससे क्या सिद्ध होता है ?

वादि – इस श्रुतिसे ईश्वरसे निर्मित पूरा जगत सत्य सिद्ध होता है। झूठ नहीं यह भी साबित होता है। उसी तरह यहाँ उक्त कर्माभिमानी देवता के प्रत्यक्षसे भी जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

वादिका वकील – इस वाक्यके आधारसे जगतके सत्यत्वके विषयमें, देवताओंका प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें किस तरह सिद्ध होता है।

वादि – ''अपश्य न प्रमिनन्तिव्रतं वां'' इस वाक्यसे सिद्ध होता है।

वादिका वकील – वह कैसे ?

वादि – देवता तुम्हारे सृष्ट्यादि व्यापारको ''प्रमिनंति'' सत्य समझते हैं, इस तरह कहनेके कारण, परमात्माका विश्वकर्तृत्वरूप व्यापार सत्य और देवताओंका प्रत्यक्ष सत्य सिद्ध होता है।

वादिका वकील – इस विषयमें और कोई प्रमाण है ?

वादि – अनेक श्रृति, स्मृतियाँ प्रमाण है।

वा. व. – कौनसी श्रुतियाँ ?

वादि – १) ''तदेतत् सत्यं'' (मु. १-२-१)

२) ''यथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्य: समाभ्य:''

३) ''यच्चिकेत सत्यमित् तन्नमोघं'' ''ऋग्वेद'' ८-१-१७ आदि प्रमाण है।

वा. व. – इनसे क्या सिद्ध होता है ?

वादि – १) तत् एतत् – पूर्वमें उक्त कर्मादि ''सत्य है''

२) परमात्मा ''यथातथ्यत: अर्थात् – सत्यभूत महदादि पदार्थोंका ''व्यदघात्'' निर्माण करता रहा।

३) परमात्माने जिस जगतका निर्माण किया वह सत्य ही है, मिथ्या नहीं।

इस तरह कहनेसे जगतका सत्यत्व सिद्ध होता, मिथ्यात्व नहीं, यह भी प्रमाणित होता हैं।

वा. व. – स्मृतिको प्रस्तुत करें

वादि – ''असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वम्''

वा. व. – क्या आपकी बुद्धि ठिकाने पर है ?

वादि – बुद्धि ठिकानेपर ही है।

वा. व. – बुद्धि ठीक होती तो, पूरी सावधानीसे बोलते। जगतके मिथ्यात्वके विषयमें उद्धृत प्रमाणको क्यों प्रस्तुत किया ?

वादि – इस वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्योंको देखनेपर, यह वाक्य जगतके मिथ्यात्व के विषयमें अनुकूल नहीं, इतना ही नहीं, जगत् के सत्यत्वके विषयमें ही अनुकूल है, यह ज्ञात होता है।

वा. व. – पूर्वोत्तर वाक्य कहिये ?

वादि - द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् देव आसुर एव च। द्वैवो विस्तरश: प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रुणु॥ असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् - गीता १६-८
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् - गीता १६-२०
अर्थ : भूतसृष्टि दो प्रकारकी है। एक दैवी सृष्टि, दूसरी आसुरी सृष्टि। इसमें दैवी सृष्टिका वर्णन विस्तारसे किया गया। अब हे पार्थ आसुरी सृष्टि कहता हूँ सुनो। इस तरह कहकर आसुरी सृष्टिका वर्णन करनेके लिये आरंभ करके, असुर जगतको मिथ्या मानते हैं। अतएव अधोगति प्राप्त करते हैं।इस तरह श्रीकृष्णने ही कहा है, इससे यह सिद्ध होता है कि जगत मिथ्या नहीं, सत्य है।
वादिका वकील - और कोई सबूत होगा तो कहो।
वादि - कितना कहें? श्रुत्यादि प्रमाण जगतके सत्यत्वका ही कथन करते हैं।
वा. व. - सभी प्रमाण जगतके सत्यको किस प्रकार कहते हैं?
वादि - यथार्थ ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला ही प्रमाण है। विद्यमान (सत्य) पदार्थको ज्ञात करानेवाला ज्ञान यथार्थ है। श्रुति, गीता, ब्रह्मसूत्र, प्रत्यक्ष अनुमान को जब प्रमाण मानते हैं। तब उनसे उत्पन्न ज्ञानसे ज्ञात पदार्थ सत्य ही सिद्ध होता है। इसलिये ''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'' - पद्भयां शूद्रो अजायत - यज्ञेन यज्ञमयजन्त'' इमं मे गंगे यमुने सरस्वती - इत्यादि श्रुतियोंसे भी, चातुर्वण्यं मया सृष्टं'' ब्राह्मणामीशं इत्यादि गीतावाक्योंसे ''जन्माद्यस्ययत:'', ''क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तरत्र'' चैत्र रथेन लिंगात् इत्यादि सूत्रोसे भी वैसे ही प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाणोंसे ज्ञात होनेवाले ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, वेद, देवता, यज्ञ, गंगादि तीर्थ, समस्त जगत सत्य सिद्ध होता है।
वा. व. - प्रत्यक्ष और अनुमान जगत् के सत्यत्वका बोध किस तरह कराते हैं?
वादि - घट सन्, पट: सन् - घडा सत्य है, पट सत्य है। इस तरह के बाधरहित समस्त प्रत्यक्ष, जगत् सत्यं अर्थक्रियाकारित्वात् ईश्वर सृष्टत्वात् जगत ईश्वरसे सृष्ट होनेके कारण और अनेक पदार्थोकी सृष्टि करनेमें समर्थ होनेके कारण सत्य है। इस तरहके अनुमान जगत् के सत्यत्वके विषयमें प्रमाण होते है।

क्रॉस एक्झामिनेशन

प्रतिवादि - आचार्यजी! आपसे कथित श्रुति, सूत्र,गीता, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाण जगतके सत्यत्वका बोध करते हैं, यह सही है। पर यह सत्यत्व व्यायहारिक होनेके कारण जगत् मिथ्या नहीं, इसके साधक किस तरह होंगे? और जगतको मिथ्या कहनेवाले अद्वैतमतके विरूद्ध किस तरह होगा?
वादि - जगत् व्यावहारिक सत्य है, इसका आशय जगत् पारमार्थिक सत्य नहीं। दिखानेका सत्य है। इसतरह अर्थ करके पूर्वोक्त श्रुत्यादि प्रमाणसे सिद्ध जगतके सत्यत्वको मिथ्या कहेंगे तो ''सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्म'' श्रुतिमें उक्त ब्रह्मके सत्यत्वको भी मिथ्या मानना पडेगा। इसलिये श्रुत्यादि

प्रमाणोंसे ज्ञात सत्यत्वको पारमार्थिक सत्य ही कहना पडेगा। अत एव इन श्रृतियोंसे जगतका पारमार्थिक सत्यत्व ही सिद्ध होता है।

री एकझामिनेशन

वा. व. - विज्ञानवादि बौद्ध और शून्यवादि बौद्ध जगतके सत्यत्वको कहते हैं या मिथ्यात्व (आरोपितत्व) कहते हैं ?

वादि - जगतको मिथ्या (आरोपित) ही कहते हैं।

वादिका वकील - क्या इसतरह कहनेवाले बौद्धोंका खण्डन शंकराचार्यने किया है ?

वादि - हाँ शंकराचार्यने खण्डन किया है।

वादिका वकील - किस तरह खण्डन किया है ?

वादि - जगतका सत्यत्व प्रमाणोंसे सिद्ध है। प्रमाणसिद्ध जगतके सत्यत्वको नकारना युक्त नहीं। जगतको मिथ्या कहनेपर प्रमाणों विरोध होगा। इसलिये जगत सत्य नहीं इस तरह स्वीकार न करें, इस भाँति खण्डन किया है।

वा. व. - उसके लिये बौद्धोंने क्या उत्तर दिया ?

वादि - प्रमाण जगतके विषयमें व्यावहारिक सत्यत्वका विधान करते हैं, हम जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका निषेध करते हैं। इसलिये जगत मिथ्या है ! झूठ है ! पारमार्थिक सत्य नहीं, इस तरह प्रतिपादन करनेवाले हमारे मतको प्रमाण विरोध नहीं आयेगा। इस तरहका समाधान बौद्धोंका है।

वा. व. - अद्वैतियोंने उसका खण्डन किस तरह किया है ?

वादि - १* प्रमाण अपने अपने विषयको पारमार्थिक सत्यके रूपमें ज्ञापन करते हैं। व्यावहारिक सत्य है, पारमार्थिक सत्य नहीं, इस तरह बोध नहीं करते, जगत पारमार्थिक सत्य नहीं। इस तरह कहनेवाले आपके मतका विरोध होगा। इस तरह कहनेवाले आपके मतका विरोध होगा। इस तरह अद्वैतियोंने खण्डन किया है।

वा. व. - ''इदं रजतं'' - ''यह रजत है'' ज्ञान क्या रजतके सत्यत्वका बोध करता है ?

वादि - रजतके सत्यत्वका बोध करता है।

वा. व. - रजतके सत्यत्वके बोध करनेसे कया आप रजतको सत्य मानेंगे ? क्यों नहीं मानेंगे ?

वादि - ''इदं रजतं'' इस प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होनेके बाद नेदं रजतं किंतु शुक्तिकैव (यह रजत नहीं सींप है) इस तरह बाधज्ञान होनेके कारण ''इदं रजतं'' ज्ञानसे रजतका सत्यत्व ज्ञात होनेपरभी हम उसको सत्य नहीं मानते।

वा. व. - वैसे हो तो ''जगत नहीं'' इस तरहका बाध ज्ञान प्राप्त होनेके कारण, जगतके

१* प्रमाणानि हि स्वगोचरे प्रवर्तमानाने तत्त्वमिदेमित्येव प्रवर्तन्ते। न पुन: सांव्यवहारिकं न: प्रामाण्यं न तु तात्त्विक मित्येव प्रवर्तन्ते। (भामती)

सत्यत्वको नहीं मानना चाहिये ना ?

वादि - किसीभी अवस्थामें जगतका बाध नहीं होता । इस तरह शंकराचार्यने ''नैवं जाग तरितोपलब्धंवस्तु कस्यामपि अवस्थायां बाध्यते, इस वाक्यसे कहा है । वास्तवमें बाध न आनेके कारण श्रुति, सूत्र, गीता इत्यादिसे विदित होनेवाला ब्राह्मणादि वर्णरूप जगत पारमार्थिक सत्य ही है, यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''विश्वं सत्यं'' इस श्रुतिमें विद्यमान ''सत्यं'' का अर्थ विद्यारण्यने (वेदभाष्यकारने) कौनसा अर्थ कहा है ?

वादि - सत्यं - यथार्थ विद्यमानमेव, नत्वारोपितम् कल्पित नहीं। न मिथ्या - झूठ नहीं, ऐसा अर्थ किया है।

वादिका वकील - इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

वादि - परमात्माके गुणकर्म सबकुछ आरोपित नहीं पारमार्थिक सत्य ही है, यह सिद्ध होता है।

संयमनीपुरका हायकोर्ट

O. S. No. 564 of 1927

वादि – सत्यबोधाचार्य | **प्रतिवादि – गंगाधरशास्त्री**

वकील – माधवदास | **वकील – हरिहर शर्मा (P.B.S.)**

प्रतिवादि की विचारणा

१७-०२-१९२७

कोर्ट - आप ईश्वरकी शपथ लेकर, जोभी कहूँगा सत्य ही कहूँगा, मिथ्या नहीं कहूँगा, कहो।

प्र.वा. - महाराज ! हमारे मतमें ब्रह्मके सिवा दूसरा कोई सत्य पदार्थ नहीं। अत: मैं जो कुछ कहूँगा सत्य ही कहूँगा इस तरह कैसे कहूँ ?

कोर्ट - तो क्या असत्य कहते हैं ऐसे कहेंगे ?

प्र. वा. - नहीं महाराज ! हमारे मतमें दो प्रकारके सत्य है । एक पारमार्थिक सत्य दूसरा व्यावहारिक सत्य । इसमें ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है, बाकी सबकुछ व्यावहारिक सत्य है, इसीलिये कोर्टके सामने जो कुछ मैं कहूँगा ईश्वरकी शपथ लेकर व्यावहारिक सत्य ही कहता हूँ।

वा. व. - व्यावहारिक सत्य क्या है ?

कोर्ट - इसकी चर्चा अभी नहीं चाहिये, आगे करेंगे। शास्त्रीजी आपका नाम क्या हैं ?

प्र. वा. - गंगाधर शास्त्री

प्र. व. - (स्टेटमेंट दिखाकर) इस स्टेटमेंटको देनेवाले क्या आप ही हैं ?

प्रतिवादि गंगाधर शास्त्री - सही है।

प्रति. - आपकी राय क्या है ?

३३ - सिविल सूट (१-२)

प्र.वा. - वादिने जो कुछ अपने दावेमें कहा है, वह असत्य है इसलिये कोर्ट उस दावेका विचार न करके, उसे खारिज करें, दावेके लिये जो मुझसे खंर्च हो चूका है उसे वादिसे दिलाने की प्रार्थना करता हूँ।

प्र. व. - इस विषयमें आपके लिये क्या आधार है ?

प्र. वा. - आधार है।

प्र. व. - उनको दे दो।

प्र. गं. - आधार हमारे गवाहोंके पास हैं, विचार करते समय हम देंगे।

प्र. व. - क्या आप गवाहोंको हाजिर करेंगे ?

प्र. गं. - हाजिर करेंगे, समय दीजिये।

कोर्ट - सुनवाई निश्चित २२-२-१९२७ है।

प्रतिवादि द्वारा हाजिर गवाहोंकी विचारणा
२२-२-१९२७

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

साक्षी - सुब्रह्मण्य शास्त्री

कोर्ट - ईश्वरकी कसम लेकर सबकुछ सत्य कहूँगा। ऐसा कहो

साक्षी - हमारे मतमें पारमार्थिक सत्य एक व्यावहारिक सत्य (दीखनेमें सत्य) दो प्रकार के सत्य हैं। इसतरह दो सत्य होनेके कारण, किस सत्य के आधारपर कहूँ ? आज्ञा दीजिये।

कोर्ट - तो कैसे कहेंगे ?

साक्षी - मैं कहूँगा कि मैं व्यावहारिक सत्य कहता हूँ।

प्र. व. - ब्राह्मणवर्णादि जगत सत्य है या मिथ्या ?

साक्षी - मिथ्या है।

प्र. व. - मिथ्या का अर्थ क्या है ?

प्र.सा. - ब्रह्मव्यतिरेकेणाभाव: ब्रह्म = से भिन्न नहीं। अर्थात ब्रह्ममें आरोपित है।

प्र. व. - इस विषयमें क्या आधार है ?

प्र.सा. - ''तदनन्यत्वमारंभण - शब्दादिभ्य:'' (ब्र.सू. २-१-१४) सूत्र

प्र. व. - क्या श्रुतियोंका भी आधार है ?

प्र. व. - उनको क्यों नहीं कहा ?

प्र. सा. - इस सूत्रका व्याख्यान करते समय शंकराचार्यने श्रुतियोंका प्रमाण देकर, जगतको मिथ्या कहा है। सूत्रार्थ को कहते वक्त, श्रुतियोंको भी कहना पडेगा, इसलिये इस समय नहीं होगा।

प्र. व. - ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य:'' इस सूत्रका अर्थ क्या है ?

प्र.सा. - ''तदनन्यत्वं मारंभणशब्दादिभ्य:'' इस सूत्रमें ''तदनन्यत्वं'' यह पद

प्रतिज्ञाभागसूचक है। अर्थात अभिप्रेत अर्थको कहनेवाला ''आरंभण शब्दादिभ्य:'' हेतु है। अभिप्रेत अर्थके विषयमें प्रमाणज्ञापक है।इसमें ''तदनन्यत्वं'' प्रतिज्ञाभागका तयो: अनन्यत्वम् कार्यभूत जगतमें कारणभूत ब्रह्मसे अभेद है। ऐसा अर्थ है।

प्र. व. - ''आरंभण शब्दादिभ्य:'' इस हेतुभागका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - ''आरंभण'' शब्दसे ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् (छा.६-१-४) श्रुतिको लेकर ''आदि'' शब्दसे ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि'' (छां ६-८-२) २७ ''इदं सर्वंयदयमात्मा'' ब्रहदारण्यक २-४-७ ३७ ब्रह्मैवेदं सर्वंत्मुं (मुं. २-२-११)

४) आत्मैवेदं सर्वं (छा. ७-२५-२)

५) ''नेह नानास्ति किंचन (बृ. ४-४-१९, का. २-४-११) इस तरह पाँच श्रुतियोंको लेकर, सबोंको मिलाकर

६) इन श्रुतियोंसे जगत ब्रह्मसे भिन्न नहीं यह सिद्ध होता है।

वा. व. - इस सूत्रमें ''जगत्'' पद नहीं। इस स्थितिमें जगत ब्रह्मसे भिन्न नहीं इस प्रकारका अर्थ कैसे कहते हो ?

प्र.सा. - ''तत्'' पदसे ''जगत्'' रूप अर्थ लेकर जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं ऐसा अर्थ करते हैं।

वा. व. - तत् पदसे ''जगत'' अर्थ क्यों लेना चाहिये, अन्य अर्थके स्वीकार करनेपर क्या आपत्ति होगी ? इस विषयमें क्या आधार है ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''तदनन्यत्वं'' इस पदके ''तत्'' पदके लिये ब्रह्म यह अर्थ क्यों करें, इस अर्थके विषयमें क्या आधार है ? दूसरे अर्थका ग्रहण क्यों न करें ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''तत्'' पदका अर्थ ब्रह्म और जगत् इस तरह करनेपर भी जडभूत जगतका और चेतनभूत ब्रह्मका अभेद ऐसा अर्थ कैसे संभवेगा ?

प्र. सा. - १* ''तदन्यन्यत्व'' इस पदसे जगत ब्रह्मसे अभिन्न है। इस प्रकार अर्थ नहीं कहते। भेदका निषेध करते हैं। इसलिये अभेदको माननेवालोंपर जो दोष आपसे किया गया, वह दोष अभेदको न माननेवालोंपर नहीं आयेगा।

वा. व. - जगत ब्रह्मसे अभिन्न नहीं, इस तरह अभेद को निराकरण करनेवालोंको आप निराकरण नहीं करेंगे न ?

प्र. सा. - हम जगत को ब्रह्मसे अभिन्न नहीं ऐसे अभेदका निराकरण करनेवालों का निराकरण नहीं करते, २* यही नहीं इनको हम अपने सहकारी मानते हैं।

वा. व. - घट पटसे भिन्न है या अभिन्न, क्या भिन्न और अभिन्न दोनों हो सकते हैं ?

प्र.सा. - भेद और अभेद दोनों विरूद्ध है, इसलिये उनमें भेद हो सकता है, या अभेद। इस

१* न खलु अनन्यत्वमित्यभेदं ब्रूम: किन्तु भेदं व्यासेधाम: ततश्च नामभेदाश्रय दोष प्रसंग: (भामती २-१-१४)

२* किंत्वभेदं व्यासेदाद्भि: वैशेषिकौभित्त्स्मासु सहायकमेवाचरितं भवति: (भामती २-१-१४)

वजहसे घट पटसे भिन्न और अभिन्न दोनों नहीं हो सकता।

वा. व. - क्या ब्रह्मको सत्य और असत्य कह सकते हैं ? सत्य भी नहीं असत्य भी, क्या इस तरह कह सकते हैं ?

प्र. सा. - सत्यत्व और असत्यत्व दोनों विरूद्ध हैं, अत: एक वस्तु सत्य न होनेपर असत्य होगा, असत्य नहीं होगा तो सत्य हो सकता है, सत्य होनेपर असत्य नहीं होगा, असत्य होनेपर सत्य नहीं होगा। इसीलिये ब्रह्म असत्य नहीं, अतएव सत्य है। एक ही वस्तुमें सत्यत्त्व और असत्यत्त्व कहनेका मौका नहीं।

वा. व. - क्या जीवको ब्रह्मसे भिन्न और अभिन्न कह सकेंगे ?

प्र. सा. - जीवको ब्रह्मसे भिन्न और अभिन्न ऐसा न कहें।

वा. व. - क्या जीवको ब्रह्मसे भिन्न नहीं अभिन्न भी नहीं इसतरह कह सकते हैं ?

प्र. सा. - भिन्न नहीं, अभिन्न भी नही, इस तरह भी नहीं कहें।

वा. व. - जगत ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न ?

प्र. सा. - जगत ब्रह्मसे भिन्न नहीं अभिन्न भी नहीं।

वा. व. - भेद और अभेदमें परस्पर विरोध है। इसलिये जगत ब्रह्मसे भिन्न होना चाहिये या अभिन्न। भिन्न नहीं, अभिन्न भी नही इस तरह न कहें ? (अनुपपन्न होगा)

प्र. सा. - अद्वैतमतमें जगत मायासे कल्पित है, इसलिये समस्त १* अनुपपत्तियाँ (दोष) भूषण ही हैं, अतएव आपसे उक्त २* अनुपत्तियाँ हमारे मित्र होंगे।

वा. व. - जगत ब्रह्मसे भिन्न नहीं होगा, तो जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा।

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

''आरंमण शब्दादिम्य:'' इस हेतुवाक्यका विचार

वा. व. - सूत्रकारने इस सूत्रमें ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं श्रुतिका ग्रहण किया है, आपको कैसे ज्ञात हुवा ?

प्र. सा. - इस सूत्रमें ''आरंभण शब्द है'' इसी कारणसे वाचारंभण श्रुतिका ग्रहण किया होगा, ऐसे हमने समझा है।

वा. व. - एक समस्त पदमें प्रथम भागसे श्रुतिको दिखाना चाहिये, अथवा दूसरे भागसे दिखाना चाहिये।

प्र. सा. - प्रथम भागसे श्रुतिको दिखाना चाहिये।

१* अस्तु वा अनुपपत्तिरेव कार्यकारणयोर्मायात्मकत्वात्। अनुपपत्ति: मायामुपोद्वलयति अनुपपद्यमानार्थत्वात् मायाया: (भामती १-४-२२) मायायामनुपत्तिरलंकार एव इति न मायावादे अत्यंतमुपपादानार्थ प्रयतितव्यम्। (कल्पतरू, परिमळ)

२* अनवस्थादयो दोषा: सत्तां निघ्नन्ति वस्तु न:। अद्वैतिनां ते सुहृद: प्रपंचे तत् प्रसंजका:॥

वा. व. – ''वाचारंभण'' पदस्थ उत्तर भागमें विद्यमान आरंभण शब्दसे ''वाचारंभणं विकारो, नामधेयं'' इस श्रुतिका स्वीकार किया है, इस तरहका कथन कैसे युक्त होगा ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – माय लॉर्ड ! ''जगत:'' कार्यभूत जगतमें ''तदनन्यत्व'' कारणीभूत ब्रह्मसे अभेद है, भिन्न नहीं। (ब्रह्मव्यतिरेकेणाभावं:) इस विषयमें आरंभण शब्दादिभ्य: वाचारंभणं विकारो नामधेयं इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं, ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य:'' इस सूत्रका अर्थ यही है। इस तरह समझकर, जगतको मिंथ्यात्व कहना ठीक नहीं। क्यों कि –

१) ''वाचारंभणं'' इत्यादि श्रुतियोंसे जगतका मिथ्यात्त्व सिद्ध नहीं होता। अतएव इस श्रुतिके आधारसे जगत् मिथ्या है इस तरह ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य: यह सूत्र कहता है, यह शंकराचार्यका व्याख्यान युक्त नहीं।

२) ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य:'' इस सूत्रमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं।

३) इस सूत्रमें जगत् बोधक पद ही नहीं। ''तत्'' पदसे जगतका ग्रहण करना चाहिये, इस विषयमें कोई आधार नहीं, इसीलिये यह सूत्र जगतके मिथ्यात्व बोधक है, कहना संगत नहीं।

४) ''तदननन्यत्वं'' इस पदगत ''तत्'' पदसे ब्रह्मका ग्रहण करना चाहिये इस विषयमें आधार नहीं। प्रकृतिका ग्रहण करके, जगत प्रकृतिसे अभिन्न है। इसतरह अर्थ क्यों न करें ?

५) ''तत्'' पदसे ब्रह्मके ग्रहण करनेपर भी ''अनन्यत्वम्'' यह पद जगतसे ''तत्''पदसे बोध्य जो ब्रह्म है उस ब्रह्मसे अभेदका बोध कराता है, न कि जगतके मिथ्यात्व का बोध करता है।

६) भेदाभेद विरूद्ध हैं। इसलिये जगत ब्रह्मसे चाहे भिन्न हो, चाहे अभिन्न हो। जगत ब्रह्मसे भिन्न नहीं। अभिन्न भी नहीं। अद्वैतियोंका यह कहना संगत नहीं होगा।

७) अद्वैतमत माया कल्पित होनेके कारण, आनेवाली समस्त अनुपत्तियाँ हमारे भूषण होंगे, हमारे लिये सहकारी बनेंगे, इस तरह अद्वैती कहते हैं। इस तरहके युक्तियोंसे अनुपन्न, दोषोंसे पूर्ण इस मतका स्वीकार करना क्या योग्य होगा ?

इन कारणोंसे ''तदनन्यत्वं'' यह प्रतिज्ञा भाग जगतके मिथ्यात्व का बोधक है, ऐसा कहना अयुक्त है।

८) ''आरंभण'' पद ''वाचारंभणं'' इस पदका उत्तर भाग होनेके कारण, उत्तरभागको ग्रहण करके श्रुतिके उदाहरण के तौरपर प्रदर्शित करनेकी परंपरा कहींपर देखी नहीं गयी, अत: ''आरंभण शब्दादिभ्य:'' इस हेतुभागस्थित आरंभण से ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं'' इस श्रुतिको सूत्र ज्ञापन करता है यह कहना असंगत होगा।इन कारणोंसे ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्य:'' सूत्र जगतके मिथ्यात्व प्रतिपादक है। इसतरह शंकराचार्यने जो व्याख्यान किया है वह सही नहीं। इस विषयको अदालत स्वीकार करें।

३७ - सिविल सूट (१-२)

वाचारंभण श्रृत्यर्थ विचार

प्र. व. - ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'' इस वाक्यकी प्रवृत्ति किस लिये हुई है ?

प्र. सा. - ''यथा सौम्येकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातंस्यात्'' इस पूर्ववाक्यसे, कारणभूत मृत्पिंड ज्ञानसे उसके कार्यभूत घटादिका ज्ञान होता है, इस तरह कहनेपर आक्षेप आता है, कारणभूत मृत्तिका पिंड कार्यभूत घटादिसे भिन्न होनेके कारण, कारणभूत मृत्पिंडसे कार्यभूत घटज्ञान किस तरह होगा ? घट मृत्तिकासे अभिन्न ही है , यह उत्तर दिया गया इसपर भी एक आपत्ति होगी घट और मृत्तिकामे अभेद होता तो, मृत्तिका कारण है, घट कार्य है, कार्यकारणभाव का संयोजन किस तरह होगा ? इस आक्षेप के परिहार के लिये '' वाचारंभणं'' वाक्य प्रवृत्त हुवा है।

प्र. व. - इस वाक्यसे उपरोक्त आक्षेपका परिहार किस तरह हुवा ?

प्र. सा. - कार्य कहा जानेवाला घटादि समस्त विकार जो है वह ''वाचारंभणं'' - मिथ्या है। मृत्तिका रूप उपादान कारण एक ही सत्य है। (कार्य कहा जानेवाला घटादि पदार्थ होनेसे घटादि कार्य, मृत्तिका कारण, इसका मेल किस तरह होगा इस शंकाके लिये मौका है। कार्यरूप पदार्थ के न होनेपर, घटादि कार्य कैसे, मृत्तिका कारण कैसे, इस शंकाका अवकाश नहीं। इस प्रकार यह वाक्य बोध करता है।

प्र. व. - यह वाक्य ब्राह्मण वर्णादि समस्त प्रपंचके मिथ्यात्वका बोध किस तरह करता है ?

प्र. सा. - मृत्तिकारूप कारण सत्य है और घटादिरूप कार्य मिथ्या है, इसतरह प्रतिपादन करनेसे, उसी न्यायसे कारणरूप ब्रह्म एक ही सत्य है और कार्य (विकार) रूप समस्त प्रपंच मिथ्या है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - इस श्रुतिमें मिथ्यात्व का बोध करनेवाला पद कौनसा है ?

प्र.सा. - ''वाचारंभणं'' ''नामधेयं'' ये दोनों पद।

वा. व. - ''वाचारंभणं'' ''नामधेयं'' ये दोनों पद मुख्यवृत्तिसे (Primary Meaning) किस अर्थका बोध करते हैं ?

प्र.सा. - वाचारंभणं यह पद शब्दसे प्रतिपाद्य (शब्दसे ज्ञात होनेवाला) अर्थका बोध करता है और ''नामधेय'' पद ''नाम'' इस अर्थका ज्ञापक है।

वा. व. - ब्रह्म शब्द प्रतिपाद्य है या नहीं ?

प्र.सा. - ब्रह्म शब्द प्रतिपाद्य है।

वा. व. - शब्द प्रतिपाद्य और मिथ्या एक ही है न ?

प्र.सा. - एक ही नहीं।

वा. व. - एक ही है इस तरह क्यों न कहें ?

प्र.सा. - शब्द प्रतिपाद्य और मिथ्या ये दोनों एकही हैं, अर्थात् ब्रह्म भी शब्द प्रतिपाद्य है।अतएव ब्रह्मभी मिथ्या होगा। इसलिये शब्दप्रतिपाद्य और मिथ्या एक न कहें।

वा. व. – कार्यपदार्थ ''वाचारंभणं'' शब्दसे प्रतिपाद्य है इतना श्रुति बोध करती है, आप कार्य पदार्थको मिथ्या कहकर, यह श्रुतिसे ज्ञात है, ऐसे किस प्रकारसे कहते हो ?

प्र. सा. – ''वाचारंभणं'' इस पदके साथ 'मात्र' शब्दके जोडनेसे वाचारंभणं मात्रं – केवल शब्द प्रतिपाद्य ही है, पदार्थ नहीं। यह अर्थ होता है। वाचारंभणं शब्द कार्यके मिथ्यात्व बोधक है, ऐसा हम कहते हैं।

वा. व. – ''नामधेयं'' पदसे कार्यभूत पदार्थके मिथ्यात्वको किस तरीके से कहते हैं ?

प्र.सा. – ''नामधेयं'' इस पदके साथ ''मात्र'' पदके जोडनेसे नामधेयमात्र सिर्फ नाम है, वस्तु नहीं, यह अर्थ होता है। ''नामधेयं'' यह पद कार्यके मिथ्यात्वका बोध करता है, यही हमारा कहना है।

वा. व. – ''सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' क्या यह श्रुति, ब्रह्मके मिथ्यात्व का प्रतिपादक है ?

प्र.सा. – इस श्रुतिमें ब्रह्मके मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। अत: सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म'' यह श्रुति के मिथ्यात्वका प्रतिपादन नहीं करती।

वा. व. – इस श्रुतिमें ''न'' पदके जोडनेसे ''ब्रह्म न सत्यं'' ब्रह्म सत्य नहीं, मिथ्या है यह अर्थ होगा।

प्र.सा. – श्रुतिमें अविद्यमान ''न'' पदको जोडकर अर्थ करनेसे यह अर्थ श्रुत्यर्थ नहीं होगा। इसलिये ''सत्यं.....'' यह श्रुति मिथ्यात्व का प्रतिपादक है, ऐसा न कहे।

वा. व. – उसी तरह ''वाचारंभणं'', ''नामधेयं'' यही दो पद श्रुतिमें हैं, ''मात्र'' पदसे श्रुतियाँ युक्त नहीं। मात्र पदसे युक्न न होनेपर भी, ''मात्र'' पदको जोडकर जगत मिथ्या है, इसतरह तुम्हरा अर्थ श्रुत्यर्थ नहीं होगा न ?

प्र.सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – तुम्हारे अद्वैतमतमें मृत्तिका सत्य है या मिथ्या ?

प्र.सा. – मृत्तिका मिथ्या है।

वा. व. – ''मृत्तिकेत्येव सत्यं'' यह वाक्य मृत्तिका के सत्यत्वका प्रतिपादक है या नहीं ?

प्र.सा. – मृत्तिकाके सत्यत्व प्रतिपादनमें इस श्रुतिका तात्पर्य नहीं।

वा. व. – तो श्रुति ''मृत्तिकेत्येव सत्यं'' इस तरह क्यों कहती है ?

प्र. सा. – कार्यभूत जगत मिथ्या है, कारण ब्रह्म सत्य है, इस तथ्यको समझाने के लिये, यह श्रुति कार्यभूत घटादि समस्त पदार्थ मिथ्या हैं, कारणभूत मृत्तिका ही सत्य है, इस तरह प्रतिपादन करती है। पर मृत्तिकाका सत्यत्व भी युक्त नहीं।

वा. व. – ''वाचरंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'' इस श्रुतिमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। कारणभूत मृत्तिकाके सत्यत्व निरूपणमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं। सत्यत्व कहनेसे संगत भी नहीं होगा। इस तरह आप मानेंगे तो, उपरोक्त वाक्य कार्यभूत घट मिथ्या, कारणभूत मृत्तिका सत्य, इसे समझाते इसी न्यायसे कारणभूत ब्रह्म सत्य, कार्यभूत जगत्को मिथ्या, इस प्रकार यह श्रुति कहती है, ऐसा कथन युक्ति युक्त नहीं।

३९ – सिविल सूट (१-२)

प्र.सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - मायलॉर्ड जगत मिथ्या (तीनों कालोंमे न रहनेवाला) ब्रह्म एक ही इस विषयमें अद्वैती ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'' इस श्रुतिका आधार लेते हैं, पर वह युक्त नहीं क्योंकि -

१) इस श्रुतिमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद नहीं।

२) ''वाचारंभण'' इस पदके साथ ''मात्र'' शब्दका प्रक्षेप करके ''वाचारंभण मात्रं'' इसका अर्थ शब्द प्रतिपाद्य होता है। वस्तु मिथ्या है यह अर्थ नहीं होता। फिरभी अद्वैतियोंका कहना है कि ''वाचारंभणं'' पदका मिथ्या अर्थ होता है, उसी तरह ''नामधेयं'' शब्दके साथ ''मात्र'' शब्दको जोडकर वह केवल नाम है, वस्तु नहीं। इस प्रकार अर्थ कहना भी यदि श्रृत्यर्थ होगा तो ''सत्यंज्ञानमनंत'' ''ब्रह्म'' श्रुतिमें भी सत्यादि शब्दके पहले ''न न न'' पदोंको जोडकर किया हुवा अर्थ - ब्रह्म न सत्यं- ब्रह्म सत्य नहीं, ब्रह्म न ज्ञानं - ब्रह्म ज्ञानरूप नहीं, ब्रह्म न अनंतं - ब्रह्म अपरिच्छिन्न नहीं इस प्रकारका अर्थ श्रुत्यर्थ नहीं होना चाहिये। अतएव श्रुतिमें अविद्यमान, नूतन पदोंको जोडकर किया जानेवाला अर्थ श्रुत्यर्थ नहीं होगा, इस तथ्यको प्रतिवादि मानता है, इसलिये यह श्रुति कार्यरूप घटादि पदार्थोंका मिथ्यात्व प्रतिपादन नहीं करती।

३) उपादान कारण मृत्तिका के सत्यत्व बोध करनेवाला १* 'सत्यं' पद श्रुतिमें रहते हुये भी, मृत्तिका ब्रह्मसे भिन्न होनेके कारण, अद्वैत मतमें ब्रह्मातिरिक्त पदार्थ मिथ्या होनेके कारण, मृत्तिका भी मिथ्या है, यद्यपि श्रुतिमें ''सत्यं'' यह पद है, पर श्रुतिका सत्यत्व कथनमें तात्पर्य नहीं। ऐसा अद्वैती कहते हैं। इसलिये मृत्तिकाके कार्यभूत घटादि मिथ्या, कारणभूत मृत्तिकाको सत्य नहीं कहती यह श्रुति अद्वैतमतमें मृत्तिका भी कार्य है, घटादि भी कार्य हैं अतएव मृत्तिका सत्य है, घटादि मिथ्या है, ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं।

४) मृत्तिकारूप कारण सत्य और घटादिरूप कार्य असत्य इस तरह श्रुति कहती है, समझनेपर ब्रह्मसे भिन्न मृत्तिका सत्य होगी। इस तरह होनेपर ब्रह्म एक ही सत्य, उससे भिन्न जगत् मिथ्या यह अद्वैतियोंका कथन सिद्ध नहीं होगा।

५) जगत् मिथ्या है (तीनों कालोंमें अविद्यमान है) इस तरह जब बौद्ध कहते हैं, तब जगत् प्रमाणसिद्ध होनेके कारण, उसका अभाव कहना युक्त नहीं। ''नाभाव उपलब्धे'' इस सूत्रभाष्यमे बौद्धमतका दूषण किया शंकराचार्यने अब यह श्रुति समस्त जगतको मिथ्या कहती है, मानते है शंकराचार्य इस प्रकारका विरोधी कथन युक्त नहीं, इस पर २* अदालत गौर करे।

''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी, शंकराचार्यने सूत्रके अर्थको कहते वक्त जिसको आधार माना है दूसरे

१* 'मृत्तिकेति' में 'मृत्तिका' पदके आगे 'इति' पद है। वह मृत्तिका पदसे संबध्द है। उसका अर्थ मृत्तिका ही है। मृत्तिका - मिट्टी ऐसा अर्थ ही होगा.

२* यह शंकराचार्यकी स्वकीय उक्ति के विरूद्ध है। इसपर सबोंको ध्यानमें रखना पडेगा।

(ऐतदात्म्यात्म्यं) इस दूसरी श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - सर्वं - समस्त जगत ''ऐतदात्म्यम्'' = सन्नामक परमात्मा की आत्मा है,तत् - वह परमात्मा सत्यं - परमार्थरूपसे सत्य है। स: - वह परमात्मा - आत्मा - प्रत्यक् स्वरूप है। त्वं - तुम, तत् - ब्रह्म के रूप हो। इस तरह अर्थ है। इससे जगत् के मिथ्यात्वकी सिद्धी होती है।

''क्रॉस एक्सामिनेशन्''

वा. व. - इस बडे वाक्यमें, अवान्तर वाक्य कितने हैं ?

प्र. सा. - चार अवान्तर वाक्य है।

वा. व. - चार अवान्तर वाक्योंको कहो।

प्र. सा. - १) ऐतदात्म्यमिदं सर्वं २) तत् सत्यम् ३) स आत्मा; ४) तत्त्वममसि.

प्र. व. - इन चारों वाक्योंमें किस वाक्यसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - ''तत् सत्यं'' इस वाक्यसे मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - तत् एव = सन्नामक परमत्माही, सत्यं - सत्य है, पारमार्थिक सत्य है अन्य पदार्थ परमार्थिक सत्य नहीं। मिथ्या है।

वा. व. - क्या इस श्रुतिमें ''एव'' पद है ?

प्र. सा. - श्रुतिमें ''एव'' पद नहीं।

वा. व. - ''एव'' पदके न रहनेपर इस वाक्यका अर्थ क्या होता है ?

प्र. सा. - तत् = ब्रह्म सत्य है। यह अर्थ होता है।

वा. व. - श्रुतिस्थ पदोंसे जगतके मिथ्यात्वरूप अर्थ सिद्ध नहीं होगा।

प्र. सा. - ''तत् सत्यं'' इन दो पदोंसे जगत् मिथ्या है , ऐसा अर्थ सिद्ध नहीं होता। पर इसके साथ ''एव'' पदके जोडनेसे 'तत् एव' - वह ब्रह्मही सत्य है। ब्रह्मसे भिन्न जगत् मिथ्या है ऐसा अर्थ करते है।

वा. व. - अपने ही हाथों नूतन ''एव'' पदको जोडकर इस तरह अर्थ क्यों करते हो ?

प्र. सा. - हमारे शंकराचार्यने इसी तरह अर्थ किया है वैसे ही हम अर्थ करते हैं।

वा. व. - श्रुतिमें अविद्यमान 'एव' पदको जोडकर 'जगत् मिथ्या है' ऐसे अर्थ करनेपर, पूर्वमें उक्त रीतिसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस वाक्यमें भी ''न'' पदको जोडकर ''ब्रह्म न सत्यं - ब्रह्म सत्य नहीं, न ज्ञानं - ज्ञानरूप नहीं क्या इस प्रकार अर्थ कर सकते हैं ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं

वा. व. - (To the Court) श्रुतिमें न रहनेवाले ''एव'' पदका प्रक्षेप करके जगत मिथ्या है ऐसा अर्थ करते हैं। वह श्रुत्यर्थ नहीं। इसपर अदालत गौर करे।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''तत्त्वमसि'' इस चौथे वाक्यका अर्थ क्या है ?

कोर्ट का आदेश

इस समय उसकी चर्चा आवश्यक नहीं, जीव परमात्मासे भिन्न है या अभिन्न है इसके विचार करते समय उसका विचार कर सकते हैं।

''इदं सर्वं यदयमात्मा'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - इदं सर्वं - सभी पदार्थ अयं आत्मा = परमात्मामें कल्पित है।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

वा. व. - श्रुतिस्थ आत्मा पदका, आत्मामें कल्पित ऐसा जो अर्थ किया गया वह मुख्यार्थ या अमुख्यार्थ ?

प्र. सा. - अमुख्यार्थ

वा. व. - ''इदं सर्वं यदयमात्मा'' इस वाक्यका मुख्यार्थ क्या है ?

प्र. सा. - यह समस्त जगत्, अयमात्मा = यह परमात्मा ही।

व. वा. - मुख्यार्थ का त्याग क्यों किया ?

प्र. सा. - यह जड प्रपंच चेतन ब्रह्मसे अभिन्न नहीं हो सकता इसलिये

वा. व. - आत्म शब्द के मुख्यार्थ का त्याग करनेके बाद ''आत्मामें कल्पित'' इस तरह अमुख्यार्थ क्यों करना चाहिये ? अमुख्यार्थ का सहारा लेना ही है तो आत्माधीन यह अर्थ क्यों न करें ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं

वा. व. - इस वाक्यके पूर्वमें रहे १* वाक्यका अर्थ कहो।

प्र. सा. - ब्रह्म = ब्राह्मण वर्णको, य: = जो कोई आत्मन: अन्यत्र परमात्माको छोडकर, स्वतंत्ररूपसे २* अपने बलबूते ही है ऐसा जो समझता है, तं = उसको, ब्रह्म = ब्राह्मण वर्ण, परादात् = श्रेयोमार्गसे भ्रष्ट करता है, इसी प्रकार क्षत्रियवर्ण, लोक, वेद, भूत, समस्त पदार्थ

१* ''ब्रह्म तं परादात् योऽन्यत्रात्मानो ब्रह्म वेद। क्षत्रं तं परादात् योऽन्यत्रात्मन: क्षत्रं वेद। लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्र आत्मन: लोकान् वेद। देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मन: देवान् वेद। भूतानि भूतानि तं परादु:योऽन्यत्रात्मानो भूतानि वेद। सर्वं तं परादात् योऽन्यत्रमात्मनो सर्वं वेद। इदं ब्रह्म इदं क्षत्रं इमे लोका इमे वेदा इमानि भूतानि इदं सर्वं यदयमात्मा'' (बृ २-४-६)

२* यो हि ब्रह्मक्षत्रादिक जगत् आत्मनोऽन्यत्र स्वातंत्र्येण लब्ध सद्भावं पश्यति तं मिथ्यादर्शिनं तदेव, मिथ्याद्दष्टं ब्रह्म, क्षत्रादिकं जगत् पराकरोति (शां.भा. १-४-१९ ब्रह्मसूत्र)

परमात्माको छोडकर स्वतंत्ररूपसे हैं। इस प्रकार जो जानता है, क्षत्रियादि पदार्थ स्वातंत्र्य समझनेवाले का तिरस्कार करते हैं।

वा. व. - इन वाक्योंसे, ब्राह्मणादि सारे पदार्थ, परमात्माके आश्रयसे ही लब्ध सत्ताक हैं। स्वातंत्र्येण नहीं, यह अर्थ सिद्ध होता है।

प्र.सा. - परमात्मामें आश्रित हैं यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''सर्वा: प्रजा: सदायतना:'' इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र.सा. - समस्त प्रजा परमात्माके आश्रयमें रहते हैं, यही अर्थ है।

वा. व. - परमात्माके आश्रयमें रहते हैं, कहनेसे क्या आश्रित पदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध होगा ?

प्र.सा. - आश्रित पदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता।

वा. व. - ''ब्राह्मणादि वर्ण परमात्माके आश्रयमें हैं कहनेसे ब्राह्मणादि वर्णोंका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा न ?

प्र.सा. - विचार कर कहूँगा।

वा. व. - ब्राह्मण क्षत्रिय वर्णादि सर्व पदार्थ ''अयमात्मा'' = ब्रह्ममें कल्पित हैं। यह अर्थ वेदोंके लिये अभिप्रेत होता तो ''इदं सर्वं अयमात्मा'' इतना वाक्य पर्याप्त था। ''यत्'' यह पद अधिक होता है न ?

प्र.सा. - उत्तर नहीं।

वादिका क्रॉस एक्सामिनेशन् (प्रतिवादि की ओरसे)

प्र. व. - आचार्यजी ! आपके कथनके अनुसार अर्थग्रहण करेंगे तो ''यत्'' पदके प्रयोजन की सिद्धि किस तरह होगी ?

वा. - ब्राह्मण क्षत्रियादि जगत्, ''यत्'' = यस्मिन् = जिसमें आश्रित है।''अयं'' वह आश्रयभूत वस्तु ''आत्मा है'' = परमात्मा है। इस तरह ''यत्'' पदका प्रयोजन सिद्ध होगा।

प्र. व. - ''यत्'' पदके ''यस्मिन्'' इस तरह विभक्ति विपरिणाम करके जो अर्थ किया गया उस विषयमें आधार क्या है ?

वा. - ''योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्मवेद'' इस पूर्व वाक्यमें परमात्मासे भिन्न वस्तुमें ब्रह्मक्षत्रादि आश्रित हैं इस तरह जाननेवाला निन्दाका पात्र बनता है यह भाव ''परादात्'' पदसे अर्थ किया गया है। अत: ब्राह्मणक्षत्रियादि समस्त पदार्थ परमात्मामें ही आश्रित हैं, यह अर्थ पूर्ववाक्योंके लिये अभिप्रेत है इसलिये ''यदयमात्मा'' इस उत्तर वाक्यमें स्थित ''यत्'' पदको सप्तम्यंत के रूपमें स्वीकार करके ब्राह्मणादि समस्त जगत् ''यत्'' जिसमें आश्रित हैं वह परमात्मा है, ऐसा अर्थ होगा।

प्र. व. - ''यत्'' इस पदको सप्तम्यंत कहना अथवा लक्षणासे सप्तमी विभक्तिका अर्थ कहना, दोनों पक्षोंमें गौणार्थ ही हो चुका न ?

वादि - ''यत्'' यह पद सप्तम्यन्त ही होता है। इसलिये इस तरह गौण नहीं।

प्र. व. – वह कैसे ?

वादि – ''यत्'' पद अव्यय है। अव्यय के आगे आनेवाले विभक्ति प्रत्ययोंका लोप होता है। अत ''यत्'' पद सप्तम्यंत पद कहलाता है। काव्यादि ग्रंथोंमें ''तति'' = तस्मात् = उससे, इस तरह ''तत्'' रूप अव्यय का पंचमी विभक्तिका अर्थ कहते हैं। अथवा '' सुपां सु लुक्'' इस सूत्रके अनुसार ''यत्'' शब्दके आगे आनेवाले सप्तमी विभक्तिका लोप होता है। इस तरह ''यत्'' पद सप्तम्यन्त है, ऐसा मान सकते हैं, उसी तरह ''यत्'' पदके आगे विद्यमान सप्तमी की जगह ''सु'' आदेश करनेसे ''यत्'' पदको सप्तम्यंन्त के रूपमें ग्रहण कर सकते हैं। ''यत्'' – जिसमें यह मुख्यार्थ ही होगा। गौणार्थ नहीं होगा।

प्रतिवादिके साक्षीकी विचारणा

वा. व. – बाह्य जगत् ज्ञानमें कल्पित है, ज्ञान भिन्न नहीं। इस बौद्धके सिद्धान्त का निराकरण ''ना भाव उपलब्ध है इत्यादि सूत्रोंसे शंकराचार्यने किया है न ?

प्र. सा. – बाह्यपदार्थ नहीं इस सिद्धान्त का निराकरण किया है।

वा. व. – बौद्धोंकी तरह, यह श्रुति बाह्य पदार्थोंका निराकरण करती है, ऐसे कहेंगे, तो बौद्धों पर जो दोषारोपण किया जाता क्या तुम भी उस दोषके पात्र नहीं बनोंगे ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – (कोर्टसे) ''इदं सर्वं यदयमात्मा'' इस वाक्यमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद नहीं, ''आत्मा'' पद मुख्यवृत्तिसे मिथ्यात्व बोधक नहीं, लक्षणावृत्ति (अमुख्यवृत्ति) के स्वीकार करनेपर ''आत्मा'' आत्माधीन अथवा आत्माश्रित इस प्रकारके अर्थको क्यों न कहें ? यह अर्थ ''योऽन्यत्र आत्मनो वेद'' इस पूर्ववाक्यमें कहा गया है, जो अनुकुल है। अद्वैतियोंका अर्थ पूर्ववाक्योंका विरूद्ध होगा। यही नहीं ''यदयं'' वाक्यमें स्थित ''यत्'' पद व्यर्थ होता है। द्वैतसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मक्षत्रादि जगत् ''यत्'' जिसमें है वही परमात्मा है, इस प्रकारके अर्थके माननेसे, पूर्ववाक्योंके लिये अनुकूल, ''यत'' पदकी सार्थकता, वैदिक सर्वपदोंके मुख्यार्थ का स्वीकार भी होता है। इसीलिये ''इदं सर्वंयदयमात्मा'' यह वाक्य जगतके मिथ्यात्व का बोधक नहीं।

''ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. – 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं'' (मुं. २-२-११) इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. – यह पूरा जगत ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्ममें कल्पित है। ब्रह्मसे भिन्न नहीं। मिथ्या है, इदं = यह जगत, वरिष्ठं = अत्त्युत्तम है। इस प्रकार इस श्रुतिका अर्थ है।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

वा. व. – इस श्रुतिमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद कौनसा है ?

प्र. सा. – इस श्रुतिमें एकविभक्त्यन्त 'विश्वं' और 'ब्रह्म' ये दो पद हैं।

वा. व. - इन दो पदोंसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - विश्वं = जगत्, ब्रह्म = ब्रह्ममें कल्पित है (मिथ्या है) यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ब्रह्म यह पद, ब्रह्ममें कल्पित इस अर्थको क्या मुख्यावृत्तिसे बोधक होता है ?

प्र. सा. - ब्रह्म यह पद मुख्यवृत्तिसे 'ब्रह्ममें कल्पित' इस अर्थका बोधक नहीं होता । अमुख्यवृत्तिसे बोधक होता है।

वा. व. - यह श्रुति मुख्यवृत्तिसे किस अर्थका बोधक है।

प्र. सा. - ब्रह्म यह पद मुख्यवृत्तिसे 'ब्रह्ममें कल्पित' इस अर्थका बोधक नहीं होता । अमुख्यवृत्तिसे बोधक होता है।

वा. व. - यह श्रुति मुख्यवृत्तिसे किस अर्थका बोधक है ?

प्र. सा. - विश्वं - जगत् ''ब्रह्म'' ब्रह्मसे अभिन्न है, यों ब्रह्माभेदका बोधक है।

वा. व. - मुख्यवृत्तिसे बोधक अर्थका त्याग आपने किस लिये किया ?

प्र. सा. - मित्याभूत जगत्, सत्यभूत ब्रह्म, इन दोनोंमें अभेद नहीं हो सकता, इसलिये मुख्यार्थका त्याग किया।

वा. व. - जगतके मिथ्यात्व विषयमें यह श्रुति ही प्रमाण है न ?

प्र. सा. - यह श्रुति ही जगत् के मिथ्यात्व विषयमें प्रमाण है।

वा. व. - इस श्रुतिसे ही जगत के मिथ्यात्व को जानते हैं।

वा. व. - ''विश्वं ब्रह्म'' ये पद जगत् के मिथ्यात्वका ज्ञापन कभी करते हैं ?

प्र. सा. - ब्रह्म शब्दका ब्रह्ममें कल्पित, इस तरह अमुख्यार्थसे अर्थ ग्रहण करनेसे ज्ञापक होती है।

वा. व. - पूर्वमें किस अर्थ की सिद्धि न होनेपर, ब्रह्म शब्दका ब्रह्ममें कल्पित, इस तरह अमुख्यार्थ का कथन संभव है ?

प्र. सा. - पूर्वमें जगतके मिथ्यात्व सिद्ध न होनेपर, मिथ्याभूत जगत्, सत्यभूत ब्रह्मस्वरूप होगा ही नहीं।इसलिये ''विश्वं'' - जगत्, ''ब्रह्म'' ब्रह्मस्वरूप है, ऐसा नहीं कह सकते। अत एव ब्रह्ममें जगत कल्पित है ऐसा अर्थ संभवता है।

वा. व. - पूर्वमें जगतका मिथ्यात्व सिद्ध न होनेपर, ब्रह्म पदका ब्रह्ममें कल्पित, ऐसे अर्थ की संभावना होगी क्या ?

प्र. सा. - ब्रह्म पदका ब्रह्ममें कल्पित, अर्थ किये बगैर जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा।

वा. व. - जगतके मिथ्यात्व की सिद्धि के बिना ब्रह्म पदका ब्रह्ममें कल्पित ऐसा अर्थ नहीं कर सकते। ब्रह्ममें कल्पित है, इस अर्थके बिना, जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा । इससे अन्योन्याश्ररूप दोष आयेगा।

प्र. सा. - अनवस्था, अन्योन्याश्रयादि समस्त दोष हमारे मित्र है,१* हमारे मतमें ब्रह्मातिरिक्त कोई भी पदार्थ न होनेके कारण, जगतका मिथ्यात्वादि पदार्थ की सिद्धि हुये बिना रहेगी, वह हमसे

१* अनवस्थादयो दोषा: सत्तां निघ्नन्ति वस्तुन:। अद्वैतिनां ते सुहृद: प्रपंचे तत् प्रसंजका: (ब्रह्मानंदी) मायायारनुपत्तिरलंकार एव (भामती)

अपेक्षित है, अन्योन्याश्रयादि दोष, हमारे लिये कुउ भी कर सकते हैं। ''सबकुछ माया कल्पित'' हमारे लिये सर्वानुपत्ति १* भूषण ही है। उन दोषोंसे ही हमारा मत द्दढ होगा। इसतरह हमारे प्राचीन अद्वैतियोंने कहा है। जगतका मिथ्यात्व प्रमाणोंसे सिद्ध होना चाहिये, ऐसा हमारा आग्रह नहीं। जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होगा, तो वह भी सत्य होगा, ब्रह्म भी सत्य होगा, इस तरह हमारा मत नष्ट हो जायेगा।

वा. व. - ''ब्रह्मैवेदं विश्वं'' इस श्रुतिके मुख्यार्थ का त्याग करके अमुख्यार्थको लिये जानेपर ''विश्वं ब्रह्म'' इस वाक्यके लिये ''ब्रह्ममें कल्पित'' इस प्रकार सर्वप्रमाणोंके विरूद्ध अर्थ क्यों करें ? 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतिके अनुसार, ब्रह्म पदका ब्रह्मसे उत्पन्न ''ऐसे अर्थको, अथवा ''सर्वस्यवशी'' श्रुतिके अनुसार ब्रह्मके अधीन यह अर्थ क्यों न करें ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वादिका क्रॉस एक्झामिनेशन्

प्र. व. - यह वाक्य क्या समझाने के लिये प्रवृत्त हुवा है, कहो ?

वा. - इस वाक्यके पूर्वमें ''ब्रह्मैवेदमृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणश्चोत्तरेण अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं'' यह वाक्य कहता है - ब्रह्म आगे है, पीछे है, उपर है, नीचे है। इस तरह कहनेके कारण ''ब्रह्मवैदं विश्वं'' ''इदं ब्रह्म'' यह ब्रह्म विश्वं सर्वत्र है। इस प्रकार ब्रह्म की व्याक्ति के बोधके लिये यह वाक्य प्रवृत्त हुवा है, ऐसा हमारा कहना है।

प्रतिवादि साक्षीदार की विचारणा

वा. व. - ''तदेतत् सत्यं'' यह वाक्य किस उपनिषत्तमें है ?

प्र.सा. - मुंडकोपनिषत् के दूसरे मुंडकके दूसरे खण्डमें है।

वा. व. - इस मंत्रका अर्थ क्या है ?

प्र.सा. - तत् एतत् = सर्वाश्रय भूत ज़ो ब्रह्म है, वह सत्यं = सत्य है मिथ्या नहीं ऐसा अर्थ है।

वा. व. - ''तदेतत् सत्यं'' यही वाक्य इस उपनिषत्में दूसरा जगहपर कहाॅ है ?

प्र.सा. - पहले मुंडकके दूसरे खण्डमें है।

वा. व. - उसका अर्थ क्या है ?

प्र.सा. - ऋषियोंसे द्दष्ट वेदोंमें, कर्तव्य के रूपमें विहित अग्निहोत्रादि कर्म, सत्यं - सत्य है, यह इसका अर्थ है।

वा. व. - कर्म सत्य है, मिथ्या नहीं यही अर्थ है न ?

प्र.सा. - कर्म मिथ्या नहीं ऐसा नहीं, मिथ्या ही है।

१* मायायामनुपपत्ति भूषणमेव (भामती)

वा. व. – कर्म मिथ्या है, समझनेपर, श्रुतिमें उक्त ''सत्य'' पद किस प्रकार सार्थक होगा।

प्र.सा. – हमारे मतमें सत्य दो प्रकारका है, एक पारमार्थिक सत्य दूसरा व्यावहारिक सत्य (व्यावहारिक सत्यमें वस्तु सत्यके रूपमें दिखता है, सत्य नहीं होता) व्यावहारिक सत्य शुक्तिरजत की तरह। किसी भी समय जिसका बाध नहीं होता वह परमार्थिक सत्य है जिसका कभी भी बाध नहीं होता वह पारमार्थिक सत्य है, व्यावहारिक सत्य सींपमें दीखनेवाली चाँदी की भाँति है। किसी भी समय उसकी सत्ता नहीं होती, मिथ्या है। इस समय अग्निहोत्रादि कर्म सत्य है, इसका अर्थ व्यावहारिक सत्य है। इसलिये श्रुतिमें उक्त कर्मोंकी सत्यता, कर्मोका मिथ्यात्व दोनोंका समन्वय होगा।

वा. व. : ''तदेतत् सत्यं'' मुं. २-२-२ यह मन्त्र ''तदेतत् सत्यं'' (मुं. १-२-१) यह मन्त्र दोनों एक तरह नहीं न ?

प्र.सा. – दोनों एक ही तरह के हैं।

वा. व. – दोनो मन्त्रोंमें विद्यमान दोनो ''सत्य'' पदका अर्थ एक ही होगा न ?

प्र.सा. – एक ही प्रकार है।

वा. व. – मुं. २-२-२ मंत्रमें स्थित ''सत्यं'' इस पदका अर्थ शंकराचार्यने इस तरह किया है।

प्र.सा. – सत्यं = अवितथं = मिथ्या नहीं – इस तरह अर्थ कहा है।

वा. व. – इस वाक्यसे क्या सिद्ध हुवा ?

प्र.सा. – ब्रह्म मिथ्या नहीं, पारमार्थिक सत्य ही है। यह सिद्ध हुवा।

वा. व. – मुं. १-२-१ मंत्रमें स्थित सत्यं पदका अर्थ शंकराचार्य ने क्या किया है ?

प्र.सा. – ''सत्यं = अवितथं = मिथ्या नहीं इस प्रकार अर्थ किया है।

वा. व. – इस वाक्यसे ही कर्मादि जगत् परमात्माके जैसे पारमार्थिक सत्य ही है। मिथ्या नहीं, यह सिद्ध होता है। आप जगतको मिथ्या क्यों कहते हैं ?

प्र.सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – प्रमाण अपने अपने विषयोंको पारमार्थिक सत्य के रूपमें बोध करते है। व्यावहारिक सत्यके रूपमें अवगत नहीं कराते। इस तरह भामतीकारने ''क्षणिकत्वाच्च'' इस सूत्रभाष्य व्याख्यानमें बौद्धोंसे कहा है, इसे आप जानते हैं।

प्र.सा. – सही है, हम जानते हैं।

वा. व. – प्रमाण आपने अपने विषयोंको व्यावहारिक सत्यके रूपमें ज्ञात नहीं कराते, इस तरह आपके आचार्योंके कहने के बावजूद ''तदेतत् सत्यं'' यह वाक्य (प्रमाण कर्मादि जगतको, व्यावहारिक सत्यत्वके रूपमें, ज्ञात कराते है। इस तरह क्यों कहते हैं ?)

प्र.सा. – उत्तर नहीं।

My Lord - (a) 'ब्रह्मैवेदं विश्वं' इस श्रुतिमें जगत् के मिथ्यात्व बोधक पद नहीं।

(b) ''ब्रह्मैवेदं पुरस्तात् ब्रह्म दक्षिणत, इत्यादि पूर्व वाक्योंसे ब्रह्म आगे है, पीछे है, दाहिने है, ब्रह्मके अस्तित्वको अनेकों जगहों पर कहकर, आगे (ब्रह्मैवेद विश्वं '' वाक्य, कहता है – ब्रह्म विश्व

है अर्थात् जगतमें व्याप्त है, ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'' इस गीता वाक्यके अनुसार जगतमें ब्रह्मकी व्याप्ति कहता है।

(c) ''विश्व ब्रह्म ही है'' इस तरह कहनेपर भी, जगत ब्रह्मसे अभिन्न है, यह सिद्ध होता है। जगत् मिथ्या है यह सिद्ध नहीं होता।

(d) मिथ्या जगत्, सत्यभूत ब्रह्मस्वरूप नहीं हो सकता। अतः जगत् ब्रह्मस्वरूप है, इसका आशय ब्रह्ममें कल्पित है। इस तरह अर्थ करना चाहिये, यह कहना युक्त नहीं, क्योंकि जगतके मिथ्यात्व की सिद्धि हुवे बगैर वह सत्यभूत ब्रह्मस्वरूप नहीं बनेगा। जगत सत्यभूत ब्रह्मस्वरूप नहीं इसकी सिद्धि के बिना जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। इस तरह अन्योन्याश्रय दोष आयेगा।इसलिये इस वाक्यसे जगत् मिथ्या नहीं होगा।

(e) २ के दूसरे मुंडकमें दूसरे खण्डमें दूसरे मंत्रमें ''तदेतत् सत्यं'' इस वाक्यका सत्य शब्द ब्रह्मके विषयमें पारमार्थिक सत्य है, इसके अनुरूप १ के मुंडकमें भी आये इसी वाक्यमें सत्यशब्द भी कर्मादि जगतको, ब्रह्मविषयमें कथित पारमार्थिक सत्यको ही कहता है, अन्य रीतिसे नहीं कहता। जगतका सत्यत्व आपेक्षिक है इस तरह शंकराचार्यके समझनेपर भी वेदमाता उस तरह नहीं कहती, इसलिये जगत सत्य ही है मिथ्या नहीं।

'आत्मैवेदं सर्वं' श्रुतिपर चर्चा

प्र. व. – शास्त्रीजी ! आत्मैवेदं सर्वं (छां. ७-२५-२)

प्र. सा. – इदं सर्वं – यह पूरा जगत् आत्मैव – आत्मामें कल्पित है मिथ्या है।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

वा. व. – क्या इस श्रुतिमें ''मिथ्यारूप'' अर्थ बोध करनेवाला कोई पद है।

प्र. सा. – नहीं

वा. व. – यह वाक्य जगतके मिथ्यात्व बोधक है, इस तरह आपने क्यों कहा ?

प्र. सा. – इस श्रुतिमें ''सर्वं आत्मा '' ये दोनों पद एक विभक्त्यन्त है (समानाधिकरण) होनेके कारण, जगत और आत्मामें अभेद का ज्ञापक है। पर मिथ्याभूत जगतमें और सत्य आत्मामें अभेद नहीं हो सकता, इसलिये आत्मामें जगत् कल्पित है, ऐसा हम कहते हैं।

वा. व. – 'सर्वं समाप्नोषि' इस गीताश्लोकके अनुसार ब्रह्म सर्वं – ब्रह्म सर्व व्याप्त है, 'पूर्वोक्त ' वाक्योंके लिये अनुकूल अर्थ संभवनेपर भी अमुख्यवृत्तिसे जगत् ब्रह्ममें कल्पित है इस प्रकार के अर्थ करनेके लिये क्या कोई आधार है।

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – ''स वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वान एवं विजानन् तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति

अथ येऽन्यथातो विदु: अन्यराजान: ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु अकामचारो भवति'' इस मन्त्रस्थ उत्तर वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - जो इस प्रकार जानता है, उसको सर्वलोकमें संचार करनेकी सामर्थ्य उपलब्ध होती है। जो इसके विपरीत जानता है, उसको सर्वलोकमें संचार करनेकी सामर्थ्य प्राप्त नहीं होती।

वा. व. - ''आत्मैवेदं सर्वं'' इस पूर्वभागसे जगत् नहीं इसका इस प्रकार बोध करके १* उत्तर भागसे मनुष्य जानता है, लोकमें संचार करता है।इस प्रकार ज्ञानको, लोक, लोकमें संचारादिको क्या अवगत कर सकता है ?

प्र.सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - इस वाक्यके पूर्वमें स्थित वाक्य कौनसा है ?

प्र. सा. - ''दक्षिणत: आत्मा उत्तरत:'' इस प्रकार वाक्य है।

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही उपर है, आत्मा ही पश्चिममें है, आत्माही दक्षिणमें है। परमात्मा अनेकों जगहोमें है। सर्वत्र है ऐसा अर्थ होता है।

वा. व. - पूर्वमें किसका उद्देश करके, किस धर्मका विधान किया गया है ?

प्र. सा. - आत्मा को उद्देश करके, उत्तर दक्षिण भागमें स्थितिरूप धर्मका विधान किया गया है।

वा. व. - ''सर्वं समाप्नोषि ततो सर्व:'' इस गीता वाक्यमें परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण ''सर्व'' शब्दसे वाच्य है, ''सर्व'' शब्दसे कहलाता है। इस प्रकार उक्त होनेके कारण और आत्मैवाधस्तात्'' इत्यादि पूर्व वाक्यमें अधोभागादिमें परमात्मा की व्याप्ति कहे जानेके कारण ''आत्मैवेदं सर्वं'' इस वाक्यमें आत्माको उद्देश करके सर्वं - सर्वव्याप्त ऐसा विधान करना चाहिये न ?

प्र.सा. - आत्माको उद्देश करके ''सर्वं'' सर्वस्याप्त ऐसा अर्थ करना चाहिये।

वा. व. - ''इदं सर्वं'' यह समस्त जगत आत्मामें कल्पित है ऐसा अर्थ नहीं होता न ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

प्र.व. - वादिकी विचारणा ऐसा है तो, इस वाक्य कौनसा अर्थ सूचित करता है ? कहो.

वा. - ''अथात आत्मादेश एव आत्मैवाधस्तात् आत्मा उपरिष्ठात् आत्मा पश्यन् - आत्मा पुरस्तात् आत्मा दक्षिणत: आत्मा उत्तरत: आत्मैवेदं सर्वं'' इस वाक्यमे पूर्वभागको देखनेपर परमात्मा पूर्व पश्चिम दक्षिणोत्तरमें है।अधिक क्या कहे समस्त पदार्थोमें व्याप्त है। इस तरह परमात्माकी व्याप्ति को जो जानता है, वह सर्वलोकमें संचार करने योग्य सामर्थ्यकी प्राप्ति करता है। इस तरहका अर्थ इन वाक्योंसे होता है।

वा. व. - My Lord (a) ''आत्मैवेदं सर्वं'' वाक्यमें जगतके मिथ्यात्वको अवगत करनेवाला पद नहीं।

(b) 'आत्म' शब्दके मुख्यवृत्तिसे व्यक्त होनेवाले अर्थका त्याग करके अमुख्यवृत्तिसे होनेवाले

१* स.वा. एष एवं पश्यन एवं मन्वान: एवं विज्ञानन्...तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भावति इत्यादि.

अर्थको कहनेके लिये ''आत्मा'' शब्दका अमुख्यवृत्तिसे ''आत्मामें कल्पित'' इस प्रकारके अर्थको क्यों स्वीकार करें ? ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'' इत्यादि वाक्यके अनुसार - आत्मा सर्वं = सर्वव्याप्त रूप अर्थको क्यों ग्रहण न करें। यह अर्थ ''आत्मैवाधस्तात् आत्मा उपरिष्ठात्'' इत्यादि पूर्व वाक्योंके और अन्य वाक्योंके लिये, अनुकूल अविरूद्ध है।

आत्मामें कल्पित यह आत्म शब्दका अर्थ हुवा। इस तरहका अर्थ पूर्ववाक्योंके सत्यत्व बोधक अनेक वाक्यों के विरूद्ध होगा। ''जगत कल्पित है'' इस अर्थके लिये अनुकूल प्रमाण न होनेके कारण, यह अर्थ सही नहीं।

(c) इस मन्त्रके पश्चात् ''सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति'' ''एवं पश्यन् एवं मन्वानः'' इत्यादि उत्तर वाक्योंमें परलोक हैं, उसमें ज्ञानी लोग संचार करते हैं। इस तरह परलोक, ज्ञानिसंचार, इत्यादि अनेक प्रकारके जगतकी सत्ता का वर्णन करके, इन वाक्योंके पूर्वमें स्थित''आत्मैवेदं सर्वं'' इस वाक्यका ''जगत् मिथ्या है, अर्थ करनेपर ''मेरी माता वंध्या है'' वाक्यकी तरह स्वव्याहृत होगा, इसीलिये इस वाक्यका अर्थ ''जगत् मिथ्या है'' यह नहीं होगा।

(d) पूर्व वाक्यमें आत्माका उद्देश करके उत्तरदक्षिण भागमें आत्माकी व्याप्ति का विधान करनेके कारण यह वाक्य भी आत्माको उद्देश करके, आत्माकी सर्व व्याप्तिका विधान करता है। यह कहना आवश्यक होनेके कारण ''सर्वं आत्मा'' इस तरह सर्वका उद्देश करके ''आत्मा'' शब्दका आत्मामें कल्पित यह विधान ठीक नहीं होगा। अतः ''आत्मैवेदं'' यह वाक्य जगतको मिथ्यात्व बोधक नहीं, इसके विपरीत इदं - जगत् वरिष्ठं = परतमं इस तरह शंकराचार्यने अपने भाष्यमें जगतके उत्तमोत्त्वका कथन किया है, जगत् मिथ्या होगा तो उसका उत्तरत्व अन्वित नहीं होता। इस तरह अनेक कारणोंसे यह वाक्य जगतके मिथ्यात्व का बोधक नहीं।

''नेहनानास्ति किंचन'' श्रुतिपर चर्चा

२५-३-१९२७

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्यः'' इस सूत्रस्थित आदि पदसे गृहीत काठक और बृहदारण्यकमें रहे ''नेहनानास्ति किंचन'' इन वाक्योंसे जगत्का मिथ्यात्व किस तरह सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - इह - इस ब्रह्ममें नाना = नाना प्रकारका किंचन जगत् नास्ति = नहीं। ये दोनों इस प्रकार अवगत करानेके कारण जगत का मिथ्यात्व (तीनों कालोंमें न रहनेवाला) सिद्ध होता है।

''क्रॉस एक्सामिनेशन्''

वा. व. - ''नेहनानास्ति किंचन'' यह वाक्य काठकोपनिषत्में किस अध्यायके किस वल्लीमें है ?

प्र. सा. - दूसरे अध्यायकी चौथी वल्लीके ग्यारहवे मंत्रमें है।

वा. व. - वैसा आपने ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्यों देखा है ?

प्र. सा. - देखा है।

वा. व. - पाँचवे मन्त्रको कहो।

प्र. सा. - ''ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते''

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - पूर्वमें उत्पन्न जगतमें भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले जगत्के स्वामी परमात्मा जो है, उस परमात्माको जो जानता है, वे अपना रक्षण करना नहीं चाहते।

वा. व. - ''यतश्चोदेति सूर्योस्तं यत्र गच्छति तं देवा: सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन एतद्वैतत्''

वा. व. - इसका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - जिस परमात्माकी प्रेरणासे सूर्य उदित होता है, जिसकी प्रेरणासे अस्त हो जाता है। उस परमात्मा के आश्रयमें समस्त देवता हैं। वे परमात्माकी आज्ञाका अतिक्रमण नहीं करते। यह अर्थ है।

वा. व. - इन दोनों मंत्रोसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - परमात्मा गत, भविष्यमें होनेवाले जगत् का स्वामि है सूर्योदयादि का कारण है। समस्त देवता लोकोंका आश्रय है, उसका अतिक्रमण करके जगतमें रहनेवाले कोई नहीं, यह सिद्ध होता है।

वा. व. - यह लोक, परलोक, सूर्य, देवता है। सूर्यके उदयास्तका कारण ईश्वर है। वही देवताओंका आश्रय हैं। इस प्रकारके कथनसे सूर्यादि देवता, जगत् सत्य है। यह उक्त हुवा कि नहीं ?

प्र. सा. - पहले उक्त मंत्रोसे जगत् है, सूर्यादि देवता है, इस तरह कहनेपर भी, उनकी सत्यता के विषयमें वेदोंका तात्पर्य नहीं। मन्त्र उनका अनुवाद करते हैं।

वा. व. - यह मंत्र जगत्के सत्यत्वका बोध करनेपर भी, उनकी सत्यभूत सत्ताके विषयमें मन्त्रोंका तात्पर्य नहीं यह आपको किस तरह ज्ञात हुवा ?

प्र. सा. - ''नेहनानास्ति किंचन'' इस ग्यारहवे मंत्रमें जगतका निषेध हुवा है, इसलिये निषेध करनेके लिये अनुवाद किया गया है। अतएव पूर्वमंत्र अनुवाद करता है, इस तरह हमने समझा है।

वा. व. - अनुवाद किसका हो सकता हैं ?

प्र. सा. - पूर्वमें सिद्ध पदार्थोंका ही अनुवाद हो सकता है।

वा. व. - देवता, भूतपूर्व जगत् भविष्यमें उत्पन्न होनेवाला जगत् यह लोक, परलोक यह सबकुछ प्रत्यक्षसे अनुमानसे सिद्ध होते हैं न ?

प्र. सा. - परलोकादि देवता, प्रत्यक्षानुमानसे सिद्ध नहीं होते, वेदोंसे ही सिद्ध होते हैं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! क्या आपने ३-२-२ ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यको देखा है ?

प्र. सा. - देखा है।

वा. व. - नेति नेति (बृ. २-३-६) यह वाक्य ब्रह्मका निषेध करता है ऐसा क्यों न कहें ? इस

तरहके आक्षेपका उत्तर शंकराचार्यने क्या दिया है ?

प्र. सा. - १* ''ब्रह्मविदाप्नोति परं'' इत्यादि बहुतसे वाक्योंमें ब्रह्मके अस्तित्व का कथन करके, पुन: उस ब्रह्मका निषेध करना, प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं = कीचडमें पैर रखकर, बादमें धो लेनेसे, कीचडमें पैर न रखना ही अच्छा है। इस प्रसिद्ध कहावतके विरूद्ध होगा। ब्रह्मका निषेध करना, अगर यह श्रुतिकी राय होती तो पहले उसकी सत्ताका कथन ही आवश्यक नहीं था, इस प्रकार शंकराचार्यने उत्तर दिया है।

वा. व. - ''विश्वं सत्यं'' इत्यादि अनेक वेदवाक्योंसे जगतके अस्तित्व को कहकर, पुन: निषेध करना 'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य ' इस कहावतके विरूद्ध होगा।

प्र. सा. - ''शास्त्र मूर्तामूर्त जगतकी सत्ताका प्रतिपादन करके, बादमें उस जगतका निषेध करते है, कहना ''प्रक्षालनाद्धि'' कहावतके अनुसार विरोध होगा। इस तरह शंकराचार्यने अपने ग्रंथमें आक्षेप किया, अतएव आपका आक्षेप कोई नया नहीं।

वा. व. - आक्षेप नया हो या पहले शंकराचार्यने किया है इसलिये पुराना हो, हमारे प्रश्नोंका उत्तर दिजीये।

प्र. सा. - मूर्तामूर्त जगतकी सत्ता के विषयमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं, जगतके निषेध के लिये श्रुति जगतका अनुवाद करती है। न कि जगतकर सत्ता का प्रतिपादन नहीं, जगत है या जगत् नहीं परस्पर विरूद्ध तथ्योंका बयान नहीं करती। इसलिये 'प्रक्षालानाद्धि' इस कहावतसे विरोध नहीं होगा।

वा. व. - परलोक, देवता आदि प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं होते। आगमसे ही सिद्ध होंगे।

प्र. सा. - परलोकादि जगतको आगमसे ही जानना चाहिये।

वा. व. - आगम परलोकादि जगत् के सद्भावको अवगत कराके, पुन: निषेध करते हैं, तो आगमोंको ''प्रक्षालनाद्धि'' न्याय के अनुसार विरोध होगा।

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - जैसे अनुवाद करके, बादमें निषेध करनेकी परंपरा है, वैसे निषेध करके अनुवाद करनेकी परंपरा कहीं है क्या ?

प्र. सा. - पहले किसी पदार्थ के सद्भावको कहकर बादमें निषेध करनेकी परंपरा है, निषेधके अनंतर अनुवाद करनेकी परंपरा नहीं।

वा. व. - ''नेह नानास्ति किंच न'' इस काठक वाक्यके उत्तरमें रहे इस उपनिषतके बारहवे

१* सर्ववेदान्तव्याकोप प्रसंगाच्य, नहि महता परिकर बन्धेन ''ब्रह्मविदाप्नोति परं'' (तै. २-१-१-) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' (तै. २-१-२) इत्येवमादिना वेदान्तेषु ब्रह्म प्रतिपाद्य तस्यैव पुनरमावोऽभिलप्येत् प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं इति हि न्याय:'' (ब्रह्मसूत्र शां. भा. ३-२-२२)

न चात्रेऽयममाशंका कर्तव्या कथं हि शास्त्रं स्वयमेव ब्रह्मणोरूपद्वयं दर्शयित्वा स्वयमेव पुन: प्रतिषेधति प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं इति (३-२-२२)

यतो नेदं शास्त्रं प्रतिषेध्यत्वेन ब्रह्मणो रूपद्वयं निर्दिशति लोक प्रसिद्धवन्तिदं रूपद्वयं ब्रह्मणि कल्पितं परामृशति प्रतिषेध्यत्वाय। ३-२-२२

पृथ्वि, जल, तेज मूर्त हैं। वायु और आकाश अमूर्त है।

मंत्रको और तेरहवे मंत्रके तीसरे पादको कहिये ?

प्र. सा. – अंगुष्ठ: मात्र: पुरूषो मध्ये आत्मनि तिष्ठाति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते एतद्वैतत् ॥१२॥

ईशानो भूतभव्यस्य ॥१३॥

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. – अंगुष्ठ परिमित परमात्मा आत्मनि मध्ये – जीवमें रहता है। भूतपूर्व जगतका, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले जगतका स्वामी है। भूत हो गये भव्य होनेवाले जगत का स्वामी है।

वा. व. – इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. – परमात्मा जीवमें है, और भूत भविष्य जगतका स्वामी है, यह सिद्द होता है।

वा. व. – दोनों मन्त्रोंमें इस तरह प्रतिपादन करनेके कारण भूत, भविष्य जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है या नहीं अथवा मिथ्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. – सत्य सिद्ध होता है।

वा. व. – जगतका निषेध करनेवाला वाक्य कौनसा है ?

प्र. सा. – ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्य

वा. व. – ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्य ''अंगुष्टमात्र:'' वाक्यके पहले है, या आगे हैं ?

प्र. सा. – पहले है।

वा. व. – पूर्वमे स्थित ''नेहनानास्ति'' यह वाक्य उत्तर वाक्यके अर्थका निषेध करता है क्या ?

प्र. सा. – पूर्वमें रहा ''नेहनानास्ति'' (काठक २-४-११) वाक्य उत्तरमें रहे ''ईशानो भूतभव्यस्य'' (२-४-१३) वाक्यमें उक्त जगतका निषेध नहीं करता।

वा. व. – इस तरह हो तो ''ईशानो भूतभव्यस्य'' ईशानो भूत भव्यस्य इन वाक्योंमें प्रतिपादित जगतका निषेध नहीं होगा। अंत: जगतका सत्यत्व सिद्ध हुवा न ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – ३-२-२७ ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यको देखा है न ?

प्र. सा. – देखा है।

वा. व. – ततस्तुतं पश्यते निष्फलं ध्यायमान:'' शंकराचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है – जीव परमात्मासे भिन्न है, इस तथ्यको यह वाक्य ज्ञात कराता है, या जीवको परमात्मासे अभिन्न रूपमें अवगत कराता है ?

प्र. सा. – यह वाक्य जीव परमात्मासे भिन्न है, इसे समझाता है।

वा. व. – शंकराचार्यने लिखा है – यह वाक्य, जीव ध्याता = ध्यान करनेवाला, द्दष्टा = देखनेवाले और परमात्मा, ध्येय = ध्यानके लिये योग्य, द्रष्टव्य = दर्शन योग्य, इस तरह जीव परमात्मामें ध्यातअध्येयभाव, द्दष्टु = द्दष्टव्य भाव, रूप संबंध उक्त होनेके कारण, जीव परमात्मामें भेद सिद्द होता है।

वा. व. – ''मनसैवेदमाप्तव्यं'' यह वाक्य और ''मनसैवाद्दष्टव्यं वाक्य, किस उपनिषद् में है ?

५३ - सिविल सूट (१-२)

प्र. सा. - ''मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानास्ति किचंन'' यह वाक्य २-४-११ काठकोपनिषत् में है और मनसैवानु द्रष्टव्यं नेहनानास्ति किंचन'' बृहदारण्यक में है। (बृहदारण्यक ४-४-१०)

वा. व. - इन दोनों वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - यह ब्रह्म मनसे ही जाना जाता है, यह अर्थ है।

वा. व. - इन दोनों वाक्योंसे क्या कहा गया है ?

प्र. सा. - जीव द्रष्टा (देखनेवाला) परमात्मा द्रष्टव्य (देखा जानेवाला) उक्त हुवा।

वा. व. - यह वाक्य द्रष्टु द्रष्यव्य भावसे सिद्ध होनेवाला जीव परमात्मा भेद, ज्ञान, ज्ञानके साधनीभूत मन इन पदार्थोंके सत्यत्व को ज्ञात कराता है या नहीं ?

प्र. सा. - यह वाक्य जीव परमात्माके भेदको, ज्ञान - ज्ञानसाधनीभूत मनको, सत्यत्वके रूपमें अवगत कराता है। पर वेदको सत्यत्व ज्ञात करानेमें कोई तात्पर्य नहीं।

वा. व. - बृहदारण्यक और काठक के अनेक वाक्य जीव ब्रह्मके भेदको, जगतके सत्यत्वको अवगत करानेपर भी भेदादि सत्यत्वके विषयमें श्रुतियोंका तात्पर्य नहीं, इस तरह कहनेका कारण क्या है, आधार क्या है ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वादिकी विचारणा

प्र. व. - ''जगत सत्य है'' इसको सिद्ध करनेके लिये आपके लिये क्या आधार है ?

वा. - समस्त वेद, सभी ब्रह्मसूत्र, पूरी गीता, प्रत्यक्षानुमान इन सबोंका आधार है।

प्र. व. - उनमें थोडेसे प्रमाण कहिये।

वा. - ''नेहनानास्ति किंचन'' बृ. ४-४-१९ इस वाक्यके पूर्वोत्तरमें स्थित अनेक वाक्य आधार है।

प्र. व. - ''नेहनानास्ति किंचन'' इस बृहदारण्य के पूर्वमें स्थित जगतके सत्यत्व प्रतिपादक वाक्य कौनसे हैं ?

वा. - ''ईशानं भूतभव्यस्य'' ॥ १५॥
तं देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासते ॥ १६ ॥
यास्मिन् पंच पंचजना: आकाश्च: प्रतिष्ठित: ॥१७॥
प्राणश्य प्राणं चक्षुषश्चक्षू: श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनोविदु: तेनिचिक्युर्ब्रह्मपुराणमग्रम् ॥१८॥

ये वाक्य जगत् के सत्यत्व के विषयमें प्रमाण हैं।

प्र. व. - इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

वा. - इन वाक्योंका अर्थ :-
परमात्मा भूतभव्य जगत् का स्वामी है ॥ १५॥
प्रकाश देनेवाले सूर्यादिकोंको प्रकाश देनेवाला

इस तरह देवता भगवानकी उपासना करते हैं ॥ १६ ॥
आकाशादि समस्त पदार्थ जिस परमात्माके आश्रयमें हैं ॥१७ ॥
परमात्मा, प्राण, चक्षु, दर्शन, श्रवण, मननादि शक्ति देनेवाले है, इस तरह जो समझता है, वही ब्रह्मको जानता है ॥१८॥

प्र. व. - इन वाक्योंसे क्या सिद्ध होता है ?

वा. - जगत है, देवता हैं, देवताओंमें और परमात्मामें भेद हैं। परमात्मा जगन्नियामक है। चेष्ठकत्वादि नानाशक्तियोंसे युक्त है, यह सिद्ध होता है।

प्र. व. - ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्यके उत्तरमें विद्यमान जीवेश्वर भेदको जगतके सत्यत्वको कहनेवाले वाक्य कौनसे हैं ?

वा. - सर्वस्य वशी, सवस्येशान:, सर्वस्याधिपति:, ... एष सर्वेस्येश्वर:, एष भूताधिपति:, एष भूतपाल:...... तमेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा: विविदिष्यन्ति, (बृ. ४,५,२२)

प्र. व. - इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

वा. - परमात्मा समस्त जगतका स्वामी,
समस्त विश्व परमात्माके वशमें है।
परमात्मा ही रक्षक है।
ब्राह्मण इस महामहिमोपेत परमात्माका ज्ञान हो जाये इस तरह की इच्छा करते हैं।

प्र. व. - इससे क्या सिद्ध होता है ?

वा. - परमात्माका सर्वस्वामित्व, पालकत्वादि बहुतसे गुणोंके कथनसे, और सर्वचेतनाचेतन प्रपंच उसके आधीन है, इससे बयानसे जीवपरमात्माका भेद सत्य है, पूरा विश्व सत्य है, परमात्मा ज्ञेय है, जीव ज्ञाता है। इस तरह कहनेके कारण भेदकी सत्यता सिद्ध होती है।

प्र. व. - ''नेह नानास्ति किंचन'' (२-४-११) इस काठक वाक्यके पूर्वमें विद्यमान, जगतके सत्यत्व प्रतिपादन करनेवाले कौनसे हैं।

वा. - ''ईशानो भूतभव्यस्स्य (का. २-४-५) यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति, तं देवा: सर्वोर्पिता: तदुनात्येति कश्चन '' इत्यादि वाक्य हैं।

प्र. व. - इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

वा. - परमात्मा भूतभव्य जगतका स्वामी है (५) जिस परमात्मासे सूर्यके उदयास्त होते हैं, उस परमात्मा के आश्रयमें समस्त देवता रहते हैं। उसके अतिक्रमण करनेवाले कोई नहीं।

प्र. व. - इन मंत्रोंसे क्या सिद्ध हुवा ?

वा. - जगत है। सूर्यादि है। समस्त देवता परमात्माके आश्रयमें हैं। इस कथनसे जगतका सत्यत्व और जीव ब्रह्मभेद सिद्ध होता है।

प्र. व. - ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यमें जगतके सत्यत्वका बोध करनेवाले, उत्तर वाक्य कौनसे हैं ?

वा. - अंगुष्ठमात्र: पुरूषो मध्य आत्मनि निष्ठति। ईशानो भूत भव्यस्य ॥१२॥

इशानो भूत भव्यस्य ॥१३॥... इत्यादि वाक्य

प्र.वा. - इन मंत्रोंका अर्थ क्या है ?

वा. - जीवनमें (नियामकरूपमें) जो परमात्मा है वह भूतभव्य जगतका स्वामी है ॥१३॥
परमात्भाभूतभव्य जगतका स्वामी है ॥१३॥
इन वाक्योंसे जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

प्र. व. - ''नेह नानास्ति किंचन'' यह काठक श्रुति जगतके मिथ्यात्व का बोध नहीं करता, तो किस अर्थ का बोध करता है ?

वा. - ''यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योस्समृत्यु माप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥
इसके पहले मन्त्रमें जो अर्थ प्रतिपादित हुवा है, उसी अर्थको द्दढ बनाता है।

प्र. व. - ''यदेवेह'' इस मंत्रका अर्थ क्या है ?

वा. - यत् एव = जो परमात्मा, इह - इसलोकमें है, तत् = वही परमात्मा, अमुत्र- परलोकमें है, जो परमात्मा (अमुत्र परलोकमें नहीं, इह = इसलोकमें है) इन दोनो लोकमें विद्यमान भवाद्रूपोंमें जो भेदका आकलन करता है वह अधिकारी मृत्यो: मृत्युं - नरकाद्यनर्थको प्राप्त करता है।

प्र. व. - इस मंत्रसे क्या सिद्ध होता है ?

वा. - इह, अमुत्र दोनो पद क्रमसे इस लोक, परलोकके ज्ञापक हैं। इन लोकोंमें रहनेवाले परमात्माके रूपमें कोई भेद नहीं। इहलोक, परलोकमें विद्यमान परमात्मा के रूपमें भेद नहीं। जो पुरुष इस तरह नियामक परमात्माके रूपमें भेद की कल्पना करता, उसे नरकाद्यनर्थ की प्राक्ति होती है। इस प्रकार, नेहनाना वाक्य, ''यहेवेद तदमुत्र'' वाक्य परमात्माके रूपोंमें परस्पर भेद मानेवाली निंदा करते हैं।

प्र. व. - ''नेहनानास्ति किंचन'' बृहदारण्यकमें विद्यमान इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

वा. - काठक वाक्यकी तरह इस वाक्यका अर्थ है।

प्र. व. - बृहदारण्यक, काठकमें स्थित नेहनानास्ति किंचन यह वाक्य जगतका निषेध करता है। ऐसा क्यों न कहें ?

वा. - १) ईशानो भूतभव्यस्य इत्यादि पूर्ववाक्य, ईशानो भूतभव्यस्य वशी सर्वस्य ईशान: इत्यादि उत्तर वाक्य, जगतके सत्यत्वका बोध करते वक्त मध्यमें स्थित 'नेहनानास्ति किंचन' यह वाक्य जगतके मिथ्यात्व का बोध करता है, ऐसा कहना युक्त नहीं।

२) इस वाक्यमें जगतके मिथ्यात्व का बोध करनेवाला एक पद भी नहीं।

३) और 'जगत नहीं' कहनेवाले बौद्धोंका खंडन करते समय शंकराचार्यने कहा है - जगत प्रमाण सिद्ध होनेके कारण, उस जगतके अभावको कहना, अभावको मानना योग्य नहीं।

४) ब्रह्ममें जगतका आरोप संभवता नहीं। इसलिये ये दोनों वाक्य जगतके मिथ्यात्व का बोधक है कहना अनेक प्रमाणोंका विरूद्ध होगा। अतएव जगतके मिथ्यात्वके विषयमें श्रुतिका आधार नहीं ले सकते।

''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' इसँ श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! जगतके मिथ्यात्व विषयमें और कोई आधार है ?
प्र. वा. - और आधार है।
प्र. व. - वह कौनसा कहिये ?
प्र. वा. - यत्र हि द्वैतमिव (बृ. २-४-१४) १*
प्र. व. - इस मन्त्रका अर्थ क्या है ?
प्र. वा. - 'यत्र' जिस अविद्यावस्थामें ''द्वैतमिव'' परमार्थत: अद्वैतरूप ब्रह्ममें द्वैतकी तरह दूसरी वस्तु दिखांई देती है, ''तत्'' उस अविद्यावस्थामें दूसरा बना जो मनुष्य, द्वितीय भूत घ्राणेन्द्रियसे दूसरी वस्तु गंधका आघ्राण करता है ? चक्षुओंसे रूप देखता है ? ''श्रोत्रोंद्रियसे शब्द'' सुनता है ? वागीन्द्रियसे बोलता है, दूसरा समझता है। ब्रह्म ज्ञानी को ''यत्'' जिस कालमें (ज्ञानावस्थामें) सबक्रुछ ब्रह्मरूप होकर, ब्रह्मातिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं। (सींपमें अज्ञानसे दिखनेवाली चाँदी, सींपके ज्ञान होनेके बाद,जैसे वह चाँदी नहीं यह सिद्ध होता है, वैसे ब्रह्मज्ञानसे भासमान जगत दीखता नहीं। उस समय जो किस इन्द्रियसे गंधका आघ्राण करेगा ? किस चक्षुसे रूप देखेगा ? किन कानोंसे शब्द सुनेगा ? किस वाणीसे बोलेगा ? किस मनसे विचार करेगा ? जिस परमात्मासे जीव सबकुछ जानता है, उस परमात्माको किस तरह जानेगा ? समझनेवाला खुदको किस तरह समझेगा ? इस प्रकार यह अर्थ है।

ज्ञानावस्थामें आत्मासे अतिरिक्त वस्तु नहीं होगी। किसीभी प्रकारका ज्ञान नहीं रहेगा। मोक्षावस्थामें अज्ञान कल्पित जंगतका अभाव कहा गया है, अतएव जगत मिथ्या है।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

वा. व. - इस महावाक्यके किस भागसे जगतके मिथ्यात्व का ज्ञान होता हैं ?
प्र. सा. - ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' इस भागसे ''यत्रवा अस्य सर्वमात्मैवाभूत'' इस भागसे जगतका मिथ्यात्व ज्ञात होता है।
वा. व. - यत्र हि द्वैतमिव भवति इस भागसे जगतके मिथ्यात्व कीसिद्धि किस तरह होती है।
प्र. सा. - यत्र = जिस अविद्यावस्थामें द्वैतमिव = द्वैतके जैसे प्रतिभास होता है, इस तरह उक्त होनेसे द्वैत = प्रपंच नहीं, मिथ्या सिद्ध होता है।
वा. व. - शास्त्रीजी ! क्या आपमे इस उपनिषत के शांकर भाष्यको देखा है ?
प्र. सा. - देखा हैं, इस समय छात्रोंको उसीका अध्यापन करता हूँ।

१* यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं श्रृणोति तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत् केन कं पश्येत्, केन वा श्रृणुयात् केन कमयिवदेत् केन कं मन्वति तत्केन कं विजानीयात् (बृ. २-४-१४)

५७ – सिविल सूट (१-२)

वा. व. – इस वाक्यसे संबद्ध भाष्यके अर्थको कहिये ?

प्र. सा. – द्वैतमिव इस वाक्यमें द्वैतके लिये द्वैतकी उपमा १* दी गयी, अत: इस वाक्यसे द्वैतका पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध होता है, पर ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं'', ''एकमेवाद्वितीयं'' ''आत्मैवेदं सर्वं'' ये श्रुतियाँ जगतके मिथ्यात्वका प्रतिपादन करती हैं। इसलिये द्वैतको पारमार्थिक सत्य न समझें, इस तरह शंकराचार्यके भाष्यका अर्थ है।

वा. व. – इस भाष्यकी आनंदगिरि टीका के अर्थ कहिये। २*

प्र. सा. – लोकमें दृष्टान्तभूत चंद्रसे और दृष्टान्तिकभूत मुखका सत्यत्व दृष्ट है। श्रुतिमें द्वैतकी उपमा द्वैतको दी जानेके कारण, दृष्टान्तभूत द्वैतका दृष्टान्तिक का पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध होता है। इस तरह आक्षेप उठाकर, द्वैत प्रपंच के मिथ्यात्व प्रतिपादक ''वाचारंभणं'' आदि श्रुतियोंसे विरोध प्राप्त होता है, इसलिये जगतके सत्यत्वका स्वीकार न करें। शंकराचार्यने समाधान कहा है। यह आनंदगिरी टीका का अर्थ है।

वा. व. – इस बृहदारण्य वाक्यसे संबद्ध सुरेश्वराचार्यकी वार्तिकको क्या आपने देखा है ?

प्र. सा. – देखा है।

वा. – उसका अर्थ कहो।३*

प्र. सा. – द्वैत सत्य नहीं होगा तो ''द्वैतमिव'' द्वैतके जैसे यह उपमा युक्त कैसे होगी ? इसलिये ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' यह श्रुति द्वैतके सत्यत्वका प्रतिपादन करती है।

वा. व. – यह कौनसा ग्रंथ है, आप जानते हैं ?

प्र. सा. – यह हमारे शंकराचार्य का सूत्रभाष्य है।

वा. व. – इस भाष्यमें (२-२-२९ ब्रह्मसूत्र) यह वाक्य किस लिये प्रवृत्त है ?

प्र. सा. – यह वाक्य बौद्धमतके खण्डनके लिये प्रवृत्त हुवा है।

वा. व. – बौद्धोंसे उक्त, किस विषयके खण्डन के लिये यह वाक्य प्रवृत्त हुवा है।

प्र. सा. – बौद्ध ज्ञानातिरिक्त जगत नहीं कहते हैं, उसके खण्डनके लिये यह वाक्य प्रवृत्त हुवा है।

वा. व. – किस तरह खण्डन किया है ?

प्र. सा. – ज्ञानातिरिक्त जगतके सद्भावके विषयमें प्रमाण उपलब्ध हैं, अत: ज्ञानातिरिक्त जगतके अभावको न कहें। इस तरह खण्डन करके, लौकिक व्यवहारसे ही ज्ञानातिरिक्त जगतकी सिद्धि होती है। अत: ज्ञानातिरिक्त जगतका निषेध न करें।

१* ननु द्वैतेनोपमीयमानत्वात् द्वैतस्य पारमार्थिकत्वमिति '' न वाचारंभणं विकारो नामधेयं'' इति श्रुत्यन्तरात् ''एकमेवाद्वितीयं'' ''आत्मैवेदंसर्वं इतिच (बृ. शां. भा. २-४-१४)

२* द्वैतेन द्वैतेनोपमीयमानत्वात् द्रष्टान्तस्य दार्ष्टांकांतिकस्यच तस्य वस्तुत्वं स्यात्: उपमानोपमानयोश्चंद्रमुखयो: वस्तुपोपलंभात् इत्यर्थ: द्वैतप्रपंचस्य मिथ्यात्ववादिश्रुति विरोधात् न तस्य सत्यतेति परिहरति। न ''वाचारंभणं'' इति (आनंदगीरी)।

३* ननु द्वैतमिवेत्तेतदुपमानं कथं भवेत्। द्वैतं वस्तु न चेदस्ति। बहिर्वत् अवभासते। इति वत्कारं कुर्वत दूनस्थ हि कस्मात् बहिवष इति ब्रूयू: नहि 'विष्णु मिभो बन्ध्या पुत्र वदाभासते 'इष्ते कार्श्वदाच न तु बहिर्वत अवभासत इति।

वा. व. – लौकिक व्यवहार कौनसा है ? उस लौकिक व्यवहारसे जगतका सत्यत्व किस तरह सिद्ध होता है ?

प्र. सा. – १* बाह्य जगतके निषेध करनेवाले लोग ही ''बहिर्वत् अवभासते'' जगत् बाह्य पदार्थ की तरह भासमान है। बाह्य पदार्थके द्दष्टान्त को दिया है। बाह्य पदार्थ न होनेपर, बाह्य पदार्थ के जैसे यह द्दष्टान्त ही युक्त नहीं होता। विष्णुमित्र वंध्या पुत्र के जैसे है, इस तरह कोई कहेगा ? उस तरह कोई नहीं कहता। ''बर्हिवत्'' बाह्य पदार्थका द्दष्टान्त दिये जानेके कारण, जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है। इसलिये ज्ञानातिरिक्त जगतका निषेध न करें, इस तरह शंकराचार्यने खण्डन किया है।

वा. व. – ''बहिर्वत्'', ''बहिरिव'' इन दोनों वाक्योंमें स्थित वत् प्रत्ययका, इव शब्द का अर्थ एक ही होगा न?

प्र. सा. – सही। एकही अर्थ होता है।

व. वा. – ''वत्'' ''इव'' इन शब्दोंसे ज्ञात साद्दश्यप्रतियोगीका सत्य होना आवश्यक है, यही शंकराचार्यका विचार

प्र. सा. – सत्य होना चाहिये, यही शंकराचार्यका विचार है।

वा. व. – शास्त्रीजी ! शंकराचार्यका भाष्य, सुरेश्वराचार्यका वार्तिक, आनंदगिरी टीका, इन ग्रंथोंसे ''यत्र ही द्वैतमिव भवति'' यह वाक्य किस अर्थसे अवगत कराता है ?

प्र. सा. – यह श्रुति द्वैतप्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका ज्ञापन करती है। यह सिद्ध होता है।

वा. व. – ''द्वैतमिव भवति'' यह श्रुति जगतके मिथ्यात्वका ज्ञापक न होकर, सत्यत्वके विषयमें यह श्रुति प्रमाण है, इसे किस तरह कहते हैं ?

प्र.सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! यहाँ देखिये यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. सा. – यह शंकराचार्यके सूत्रभाष्यका व्याख्यानभूत ब्रह्मविद्याभरण है।

वा. व. – इस ग्रंथकी महनीयता को क्या मानते हैं ?

प्र. सा. – अत्यंत मान्य है।

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ कहीये।२*

प्र. सा. – ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' जिस ईश्वरसे जीव समस्त वस्तुवोंको जानता है, वह ईश्वरको किस तरह समझेगा ? इस प्रकार इस वाक्यमें ईश्वरको जीवसे भिन्न कहा है, अत; यह वाक्य जीवेश्वरके अत्यंत अभेद कहनेवाले लोगोंके मतका विरूद्ध होगा यही अर्थ है।

१* ''बहिर्वत् अवभासते'' इति वत्कारं कुर्वन्ति इतरथा हि कस्मात् ''बहिर्वत्'' इति ब्रूयुः नहि – विष्णुमित्रो वंध्यापुत्रवदवभासते'' इति कश्चिदाचक्षीत्..... न तु बहिर्वदवभासते इति।

२* विज्ञातारमरे केन विजानीयात् इत्यतः पूर्ववाक्यमें ये नेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' इति जीवाद्भिन्नतया परमेश्वरः किमर्थं प्रतिपाद्यते येन ईश्वरेण जीव इदं सर्वं विजानाति तं परमेश्वरं केन विजानीयादिति हि तदर्थः तस्मादिदं वाक्यमत्यंताभेद वादिनो मतेऽनुगुणमितिचेत्।

वा. व. – ''यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत'' ''येनेदं सर्व विजानाति तं केन विजानीयात्'' यह वाक्य जीवेश्वर भेदको कहते हुये ज्ञातृज्ञेयादि जगतको सत्य कहता है, इसे अद्वैतियोंने माना है न ?

प्र. सा. – हमें गुमराह करने के लिये यह आपकी कोशिश है, पर आपसे हम, जालमें नहीं फसेंगे। ''येनेदं'' यह वाक्य जीवेश्वर भेदका प्रतिपादन करता है, यह वाक्य ब्रह्मविद्याभरण ग्रंथमें पूर्वपक्षका वाक्य है, सिद्धान्त वाक्य नहीं। सिद्धान्तका प्रतिपादन करते वक्त ''येनेदं'' वाक्यं इस वाक्य का अर्थ जिस तरह जीवेश्वर भेद बोधक नहीं होगा, वैसे ही अर्थ करना चाहिये, वैसे ही अर्थ किया गया है। अतएव यह वाक्य जीवेश्वर भेद बोधक है, ऐसे अद्वैति नहीं मानते।

वा. व. – ''येनेदं'' इस वाक्यका दूसरा अर्थ, किस वाक्यसे कहा गया है ? उस वाक्यका उद्धरण करके उसके अर्थको विशद करो।

प्र. सा. – ''येनेदं'' इस वाक्यका अर्थ, परमात्मासे जीव जानता है, करेंगे तो जीवपरमात्मा का भेद सिद्ध हो सकता है। इसलिये उस प्रकार हम अर्थ नहीं करते १* ''येनेदं सर्व विजानाति'' इस वाक्यमें तृतीयान्त ''येन'' पदको प्रथमांत के रूपमें ग्रहण करके य: – जो जीव, सबकुछ जानता है, तं – उसको किस तरह जानेंगे, इस प्रकार अर्थ जिसका साद्दश्य कहा जाता है, वह वस्तु साद्दश्य प्रतियोगी है। अथवा येन – जिस साक्षीसे जीव सबकुछ जानता है, इस प्रकारभी अर्थ करते हैं, इसलिये यह वाक्य जीवेश्वरभेदका प्रतिपादन नहीं करता, इस तरह सिद्धान्त किया गया है।

वा. व. – ''येनेदं इस वाक्यका अर्थ, य: जीव: –ऐसा अर्थ करके जो जीव पूरे जगतको जानता है, उस जीवका ज्ञान किस तरह होगा ? इस तरह अर्थ करनेपर ''विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' इस उत्तर वाक्यका वहीं अर्थ होनेकी वजहसे क्या पुनरूक्ति दोष नहीं आयेगा ?

प्र. सा. – ''येनेदं'' इस वाक्यका ''विज्ञातारं'' यह व्याख्यानरूप है, इस तरह माननेपर, पुनरूक्ति दोष नहीं आयेगा।

वा. व. – पहले वाक्यका उत्तर वाक्य व्याख्यानरूप है ऐसा कहना अगतिका गति: = गत्यन्तर रहिता गमानेका इस न्यायसे, किसी दूसरे अर्थकी संभावना न होनेपर किया जा सकता है। यहाँ दूसरे अर्थकी संभावना युक्ति युक्त है, पुनरूक्तिके दोष को देखते हुये भी, उस अमुख्यार्थका स्वीकार करना योग्य नहीं।

प्र. सा. – ''येनेदं'' वाक्यके मुख्यार्थ (स्वरसार्थ) के स्वीकारनेसे जीव और ईश्वर का भेद सिद्ध होगा। वह भेद पूर्वप्रकरणके विरूद्ध होगा। इसीलिये अमुख्यार्थ का ग्रहण करना चाहिये, उस अमुख्यार्थ के स्वीकार करनेसे, पुनरूक्ति दोष परिहारके लिये अगतिका गति रूप व्याख्यान व्याख्येय भागको गृहण करते हैं। (इसके बिना कोई गति नहीं)

वा. व. – ''येनेदं'' इस वाक्यके जीव ईश्वर भेदपर स्वरस अर्थका विरोध करनेवाला पूर्व प्रकरण क्या है बताईये ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

१* येनेति तृतीया प्रथमार्थे भविष्यति। अथवा येन विरूध्दं साक्षिणा अयं प्रमाता विजानतीत्यर्थो दृष्टव्यं: (ब्रह्मविद्याभरण १-४-२२)

वा. व. - क्या इस ग्रंथको जानते हैं ?

प्र. सा. - ओ हो ! हम अच्छीतरहसे जानते हैं। अप्पय्य दीक्षितसे रचित न्यायरक्षामणि है।

वा. व. - इस वाक्यका १* अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - पूर्व प्रकरणमें जीव-परमात्माको प्रसक्त माननेसे (जीव परमात्माके भेदको माननेसे) ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' यह उपसंहार वाक्य है। ''येन'' तृतीयांत पदसे परमात्माका ग्रहण करके, ''विजानाति'' पदसे जीवके गृहण करनेसे समंजस होगा। प्रकरणोचित होगा। (यह वाक्य जीवेश्वर भेदपर इस तरह समझना युक्त होगा) पूर्ववाक्य, जीवको ब्रह्मासे अभिन्न है ऐसा बोध करता है। इस तरह माननेसे, तृतीयान्त पदको प्रथमान्त समझकर क्लिष्ट कल्पनासे अर्थ करना पडेगा। इस पदको तृतीयान्तमें रखकर - ''येन'' जिस साक्षीसे जीव समस्त को जानता है, इस तरह अभेद अर्थ कहनेपर भी साक्षी जीव ही है, एक जीवको ''येन'' इस पदसे ज्ञानकरणत्व और 'विजानाति' पदसे उसके विरूद्ध ज्ञान कर्तृत्वको मानना क्लिष्ठ कर होगा। इसलिये अभेदार्थका कथन असंगत होगा।

वा. व. - ''येनेदं'' इस वाक्यमें स्थित ''येनं'' इस तृतीयान्त पदको प्रथमान्त समझना अथवा तृतीयांन्त को उसी स्थितिमें रखकर उस पदका अर्थ ''साक्षी'' ऐसा ग्रहण करके, एकजीवमें ही ज्ञानकरणत्व, कर्तृत्वरूप विरूद्ध धर्मोंका स्वीकार करके अभेदरूप अर्थका संयोजन करना क्लिष्ट कल्पना ही होगी तो भेदबोदक सरस अर्थ का त्याग करके, अभेदार्थक कथनमें किस कारणको ग्रंथकारने कहा है ?

प्र. सा. - जीवब्रह्मकी एकता (अभेद) पूर्ववाक्योंमें प्रसक्त होनेके कारण ''येनेदं'' इस वाक्यका अभेद पर अर्थ करनेमें क्लेशकर होनेपर भी दोष कर नहीं, उसको सहन करना चाहिये, इस तरह पूर्ववाक्योंमें प्रसक्त अभेदको ही क्लिष्ट अर्थका कारण बताया है।

वा. व. - अप्पय्य दीक्षित के इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - २* ''येनेदं'' श्रुति स्वरसत: जीवपरमात्माके भेदको बोधन करता है। इससे ज्ञातृज्ञेय प्रपंचके सत्यत्वका ज्ञान होता है। पर पूर्व ग्रंथोंमें जीव परमात्माका अभेद उक्त होनेके कारण ''येनेदं'' वाक्यसे प्राप्त स्वरस अर्थका परित्याग करके क्लिष्ट होनेपर अर्थको कहना चाहिये।

वा. व. - ''येनेदं'' इस वाक्यका जीवेश्वर भेद ही मुख्यार्थ है। इसलिये यह वाक्य जीवेश्वरोंके अभेदका विरोधी है। यही अद्वैतियोंकी राय है न ?

१* एवं जीवे परमात्मानि च प्राक् प्रस्तुतेङगीकारेकृते। येनेदं सर्व विजानाति तं केन विजानायीत् इत्युपसंहरवाक्यं येनेति तृतीयां तस्य परामर्शनीयं परमात्मानं विजानाते: कर्तारं जीवंचासाद्य समंजसं भवति। जीवस्य ब्रह्मा भेदेन प्रस्तुतत्वांगीकारे तु ''येनेति'' तृतीया प्रथमार्थे योजनीयेति क्लेश: स्यात् ग्राहकादि जगत्सर्वं येन कूटस्थ साक्षिणा। लोक: सर्वो विजानाति, जानीयात् केन तं वद'' इति वर्तिकोक्त प्रकारेण वा ब्रह्माभिन्न तया प्रस्तुत एव जीवो निष्कृष्ट साक्षिरूपतया ''येनेति'' परामृश्यते। अन्तकरणादि विशिष्टरूपेन तु विजानाते: कर्ता भवतीति क्लेशेन न योजनीयम् (न्यायरक्षामणि १-४-२२)

२* ''येनेदं सर्वं विजानाति'' इत्यस्य योजनाक्लेशोपि अद्वैतप्रस्तावानु रूपत्वात् न दोषाय इत्याशय: इति (ब्र.सू. :१-४-२२)

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्, स एष नेतिनेति आत्माऽगृह्यो: न हि गृह्यते – विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' यह वाक्य किस उपनिषत् में है ?

प्र. सा. – बृहदारण्यकोपनिषतके चौथे अध्यायके पाँचवे ब्राह्मणका १५वां मन्त्र हैं।

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. – ''येन = जिस परमात्मासे जीव समस्त पदार्थोंको जानता है, स एष आत्मा = वह परमात्मा (परब्रह्म) ''नेतिनेति'' वाक्यसे कहा ज़ाता है। अगृह्य: = जानने के लिये अयोग्य होनेसे, न हि गृह्यते = जाना जाता नहीं, यह इसका अर्थ है।

वा. व. – इस वाक्यस्थ तृतीयान्त पद ''येन'' पदका अर्थ ''य:'' प्रथमांत समझकर ''य:'' जो जीवसमस्त पदार्थोंको जानता है, इस तरह अर्थ कर सकते हैं या नहीं ?

प्र. सा. – ''येनं'' पदसे जीवका ग्रहण करनेपर, जीव ''नेतिनेति'' इस अग्रिम वाक्यसे प्रतिपादित नहीं। अत: ''स एष आत्मा'' वाक्यमें जीवक़ो स्वीकार नहीं कर सकते। इसीलिये ''येन'' पदसे परमात्माका ही ग्रहण करना चाहिये। जीव का ग्रहण नहीं करें।

वा. व. – ''येनेदं सर्वं विजानाति'' (बृ. ४-५-१५) वाक्यमें ''येन'' पदसे परमात्माका ग्रहण करके, जीव परमात्मासे जानता है, इस तरह जीव परमात्माके भेद बोधित होता है। उसी तरह ''येनेदं सर्वं विजानाति'' वाक्यभी जीव परमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करता है, ऐसा ही कहे। अप्पय्य दीक्षित, ब्रह्मविद्याभरणकारने ''येन'' इस पदका ''य:'' प्रथमान्त करके उक्त ''जीव'' अर्थ कैसे युक्त होगा ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व.– शास्त्रीजी ! यह वाक्य किस ग्रंथमें है ?

वा. व. – वाक्यको पढकर अर्थ कहो।

प्र. सा. – यह वाक्य हमारे शंकराचार्यके सूत्रभाष्यमें है।

वा. व. – पढकर वाक्यके अर्थको स्पष्ट करो।

प्र. सा. – विज्ञानधातुरेव केवल: सन् भूतपूर्वगत्या कर्तृत्व वचनेन तृचा निर्दिष्ट: इति गम्यते' इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार है – मोक्षावस्थामें जीव ज्ञानरूप ही है। ज्ञानकर्ता नहीं। उसका ज्ञानकर्तृत्वरूप धर्म मिथ्या है, अज्ञान कल्पित है। मोक्षावस्थामें अज्ञान न हौनेके कारण, अज्ञान कल्पित ज्ञानकर्तृत्व धर्म ही नहीं। श्रुति ''विज्ञातारं'' इस पदसे मोक्षावस्थामें ज्ञानकर्तृत्व का बोध करनेपर भी उस कालमें ज्ञानकर्तृत्व होगा ऐसा अभिप्राय नहीं। यह श्रुति पूर्वमें (संसारावस्थामें) विद्यमान ज्ञानकर्तृत्व का निरूपण करती है।

वा. व. – यह श्रुति, मोक्षावस्थाका निरूपण करती है। ''विज्ञातारं'' पद मोक्षावस्थामें ही ज्ञानकर्तृत्वका निरूपण करती है। यह प्रमाणित होनेपर भी पूर्वकाल (संसारावस्था)का ज्ञान कर्तृत्व का प्रतिपादन करती है, इस कथनके लिये क्या आधार है ?

प्र. सा. – श्रुति, जीवके ज्ञानकर्तृत्व का बोध मोक्षावस्थामें प्रतिपादन करनेपरभी, वह ज्ञान

कर्तृत्व मिथ्या है, अज्ञान कल्पित है। अज्ञाननिवृत्तिरूप मोक्षावस्थामें अज्ञान कल्पित ज्ञानकर्तृत्व संसारवस्थाका है, ऐसे मानना चाहिये।

वा. व. - शास्त्रीजी ! कर्तृत्वादि जगत् मिथ्या है, या सत्य है ? इसका विचार ही अब चला है। अबतक कर्तृत्वका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हुवा है, कर्तृत्वादि जगतके मिथ्यात्व की सिद्धि हुई है, समझकर जो आपने कहा वह किस तरह युक्त होगा ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. सा. - यह शंकराचार्यके सूत्रभाष्यका व्याख्यान ब्रह्मविद्याभरण है।

वा. व. - १* ''सर्वप्रमाणै:'' इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - पूरा जगत् समस्त प्रमाणोंसे उपलब्ध होनेके कारण ''प्रपंचका अभाव'' ही तत्त्व है इसका निरूपण करना अशक्य है। (साधन नहीं कर सकते) यह दोष स्पष्ट होनेसे जगतके अभावका प्रतिपादन करनेवाले शून्यवादि बौद्धोंके मतका निराकरण के लिये सूत्रकारने इस सूत्रकी रचना नहीं की है।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. सा. - पहले उक्त ब्रह्मविद्याभरण व्याख्यान का मूलभूत शंकराचार्यका सूत्रभाष्य है।

वा. व. - ''शून्यवादिपक्षस्तु'' २* आदि वाक्योंके अर्थ कहिये ?

प्र. सा. - जगत सत्य नहीं, मिथ्या है यह शून्य वादियोंका मत है, जो सर्वप्रमाण विरूद्ध है, अत: उसके खण्डनके लिये सूत्रकारने सूत्रोंकी रचना नहीं की है। (अत्यंत हेयमतका खण्डन योग्य नहीं) यह सूत्रकारकी राय है।

वा. व. - इस शंकरभाष्यसेभी, और उसकी टीका ब्रह्म विद्याभारणसे भी क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - विश्वका सत्यत्व सर्वप्रमाणोंसे उपलब्ध होनेके कारण यह विश्व मिथ्या है,सत्य नहीं, इस तरह बौद्धोंका कथन अत्यंत अयुक्त है, यह सिद्ध होता है।

वा. व. - आपके अद्वैतमतमें क्या जगतको सत्य कहा है या मिथ्या ?

प्र. सा. - जगतको मिथ्या कहा है।

वा. व. - तो बौद्धोंके विषयमें जो आपने दोष कहा क्या उन दोषोंके पात्र आप भी नहीं होंगे ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''यत्र हि द्वैतमिव भवति .... यत्र वा अस्य सर्वं आत्मैवाभूत' इस वेदवाक्यका अर्थ आत्मातिरिक्त वस्तु ही नहीं। इस तरह कहना चाहते हैं तो ''आत्मारिक्तं जगत नास्ति'' (आत्मासे भिन्न जगत नहीं) इतना कहना ही पर्याप्त था, कौन किसको किससे कैसे देखता है इत्यादि अर्थबोधक अनेक वाक्य क्या व्यर्थ नहीं होंगे ? उसी तरह जिघ्रेत्, पश्येत् इत्यादि विधि

१* सर्वप्रमाणै: प्रपंचे उपलभ्यमाने तदभाव एव तत्त्वमिति निरूपयितुमशक्यांमिति दूषणस्य स्फुट तया तभिरा करणाय न सूत्रकृता सूत्राप्यारचितानि। (ब्रह्मविद्याभारण २-३-३०)

२* शून्यवादि पक्षस्तु सर्वप्रमाणविप्रतिबद्ध: इति तन्निराकरणाय नादर: क्रियते। (शारीर भाष्य २-२-३१)

लिखित प्रयोग भी व्यर्थ होंगे।

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वादि की विचारणा

प्र. व. - आचार्यजी ! आप इस श्रुतिका अर्थ कैसे कहेंगे ?

वा. स. - अनुमानप्रमाणमें ''तर्क'' रूप एक भेद है। उसका उदाहरण इस प्रकार है - तुम जहर पीवोगे तो मरणरूप अनिष्ट प्राप्त होगा। तुम विष पीओ नहीं। तुम ज्यादा खाओंगे तो अपचन होगा। अपचनसे बचनेके लिये तुम अधिक मत खाओ। इसी तरह कोई मनुष्य किसी बुरे काममें प्रवृत्त होनेपर उससे कहता है ''इस दुष्टकामसे बुरा परिणाम होगा, मत करो।'' इस तरह समझाने के लिये जिसका आपादन करते हैं, उसको तर्क कहते हैं।

''यत्र वा'' यह श्रुति उपरोक्त तर्करूप प्रमाणको दिखाते जगत् सत्य ही है, मिथ्या नहीं इस तथ्यका बोध करती है।

यत्र = जिस मोक्षावस्थामें, अस्य = इस ज्ञानिको सभी पदार्थ ''आत्मैवाभूत'' = आत्मासे भिन्न न होकर रहता है, तत्र = उस समय, केन - किस घ्राणेन्द्रियसे, कं = किस गंधका आघ्राण करेगा। किस चक्षुसे क्या देखेगा, किस वागीन्द्रियसे किस शब्दका उच्चारण करेगा, किस मनसे क्या विचार करेगा ? किससे किसके ज्ञानको प्राप्त करेगा ? जिस परमात्मासे इन सबोंको जानता है, उस परमात्माको किस तरह जानेगा ? इस तरह गंधादि ज्ञान प्राप्ति नहीं होगी। अनिष्ट प्राप्ति को दिखाकर, गंधादि वस्तुवोंका ज्ञान, परमात्माका ज्ञान, स्वत: का ज्ञान, ये सभी मोक्षावस्थामें आवश्यक है। कोईभी पदार्थ आत्मातिरिक्त नहीं, कहना युक्तियुक्त नहीं। इस प्रकार यह श्रुति, मोक्षावस्थामें ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता पदार्थोंको अवगत कराते, जीव परमात्माके भेदको ज्ञातृ, ज्ञेयादि रूप जगतके सत्यत्वका बोध कराती है।

प्र. व. - 'भोजन करनेसे पेट भरता है' कहनेसे पेट भरना, (तृप्त होना) हमारे लिये इष्ट होनेके कारण, वह भोजन जैसे बाधक नहीं होगा, वैसे ही मोक्षमें सभी आत्मस्वरूप ही होगा, आत्मातिरिक्त नहीं, ऐसे माननेपर गंधादि ज्ञान और जिस परमात्मासे जीव सबकुछ जानता है, उस परमात्माका ज्ञान और स्वत: का ज्ञान हो नहीं सकता। इस तरह आपने जो कहा, हमारा अनिष्ट नहीं होगा, वह हमारे लिये इष्ट है। मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञान नहीं चाहिये। दूसरोंको ज्ञानभी आवश्यक नहीं, अत: कारणीभूत आत्मातिरिक्त पदार्थको मानना आवश्यक नहीं।

वा. व. - किसी विशेष स्थानमें जानेसे अनिष्ट मरण प्राप्त होगा इसलिये तुम उस स्थानको मत जावो, इस तरह पोलिस के कहनेसे ''मृत्यु मेरे चाहत की चीज हैं, मैं वहाँ जाऊँगा ही।''इस तरह कोई आदमी पोलीससे कहेगा तो पुलिसवाला कहेगा - ''मृत्यु तुम्हारे लिये इष्ट होनेपर भी शास्त्र विरूद्ध है, अनिष्ट मरणसे बचनेके लिये तुम वहाँ मत जावो, जैसे पुलिस जानेवालेको रोकती है वैसे ही ''मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञान, ईश्वर ज्ञान, खुदका ज्ञान, दूसरोंका ज्ञान आदि की सत्ता प्रमाणसे सिद्ध है, उन ज्ञानादि पदार्थोंका स्वीकार करना ही चाहिये। गंधादि ज्ञानके लिये मोक्षावस्थामें

गंधादि ज्ञानका स्वीकार करना चाहिये और आत्मातिरिक्त पदार्थको मानना चाहिये। आत्मातिरिक्त पदार्थ नहीं, कहना युक्ति संगत नहीं, केन कं पश्येत्.... विज्ञातारमरे केन विजानीयात् इत्यादि श्रुति कहती है। इसलिये मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञानका न होना तुम्हारे लिये इष्ट होनेपर, शास्त्रविरूद्ध होनेसे अनिष्ट ही होगा। अत: मोक्षावस्थामें आत्मातिरिक्त पदार्थको मानना ही चाहिये।

प्र. व. - आचार्यजी ! गंधादि ज्ञान, परमात्मा का ज्ञान, अपना ज्ञान इत्यादि की सत्ताके विषयमें कौनसे प्रमाण है ?

वा. स. - अनेक प्रमाण हैं।

प्र. व. - उन प्रमाणोंको कहिये।

वा. व. - १) स तत्र पर्येति जक्षन्, क्रीडन्, रममाण: स्त्रीभि: वा योनैर्वा - छां. ८-१२-३

२) स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेव पितर: समुत्तिष्ठन्ति (छां. ८-३-१-)

३) सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितात्विति.

प्र. व. - इन श्रुतियोंके अर्थ कहिये।

वा. स. - १) स = मुक्त, तत्र = मोक्षावस्थामें रथादि वाहनोंसे संचार करता है, भक्षण करता है, विहार करता है, स्त्रीयोंके साथ रममाण होता है।

२) मुक्त जिस समय पितृलोकको देखनेकी इच्छा करता है, उस समय उसके पितर सामने उपस्थित होकर दर्शन देते हैं।

३) मुक्त अपने अपेक्षित सर्व फलोंको प्राप्त करते हैं।

प्र. व. - ये श्रुतियाँ मोक्षावस्थामें भक्षण, क्रीडादि के सद्भावोंको प्रतिपादन करती हैं, इस तरह आपने कैसे समझा ?

वा. स. - परमात्माको प्राप्त करके, अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति के बाद (मुक्त होनेके बाद) उसके क्रीडादिकोंको श्रुतियाँ बोधन करती हैं, ये क्रीडादि मोक्षावस्थामें हैं यह सिद्ध होता है। और शंकराचार्यादि अद्वैतियोंने भी ''जक्षन्'', ''क्रीडन्'' इत्यादि श्रुतियाँ मोक्षावस्थामें क्रीडादिकोंका प्रतिपादन करती हैं, ऐसा अपने ग्रंथमें कहा है।

प्र. व. - जक्षन्, क्रीडन्, रममाण:'' स यदि पितृलोककामो भवति, य: सर्वज्ञ: सर्ववित्, सर्वान्कामान् समश्नुते इत्यादि श्रुतिभ्यो मोक्षे सुखं संवेद्यमिति (३-१-२८) बृहदारण्यक भाष्ये।

प्र. व. - इन वाक्योंका अर्थ कहिये ?

वा. स. - मुक्त जीव मोक्षावस्थामें भक्षण, क्रीडादि करता है, अपने पसंद की समस्त चीजोंको प्राप्त करता है। इत्यादि वाक्योंसे मोक्षावस्थामें मुक्त को गन्धादिज्ञान है, इस विषयमें ये श्रुतियाँ प्रमाण हैं, यह सिद्ध होता है।

कोर्ट - विष्णुदासाचार्यजी ! ''कश्चित् कान्ता'' इतने शब्दोंको पढकर उन शब्दोंको लेकर ''कश्चित्'' पुल्लिंग शब्दको ''कान्ता'' इस स्त्रीलिंग शब्दसे युक्त करके, विशेषण कहकर, अर्थ करने जैसे है। शंकराचार्यके सिद्धान्त वाक्यको देखे बिना केवल पूर्वपक्षके वाक्यको लेकर,

शंकराचार्यने किसी सिद्धान्त स्वीकार किया है ऐसा कहना, आपका स्वभाव है इस तरह दीखता है।

वा. स. - धर्मराज प्रभु ! पूर्वपक्षग्रंथको और सिद्धान्त ग्रंथको देखे बगैर कुछ कहते नहीं। हमसे उक्त वाक्य पूर्वपक्षमें हैं, पर सिद्धान्तमें भी ये श्रुतियाँ मोक्षावस्थामें क्रीडादिकोंका प्रतिपादन करती हैं।यों अपने बृहदारण्यकोपनिषतके भाष्यमें, सूत्र भाष्यमें भी कहकर, अपने मतके अभिमानसे, पूर्वावस्था (संसारावस्था) में देव, योगी इत्यादि अंनुभूत क्रीडादिकोंका अनुवाद मोक्षकी प्रशंसा करनेके लिये यह श्रुति प्रवृत्त हैं। अथवा मुक्तोंको दु:ख नही इस तथ्यको कहनेके लिये जक्षन् भक्षन् अथवा मोक्षमें दु:ख नहीं इस कथनमें श्रुतिका तात्पर्य है, भक्षणादिकोंके सद्भावमें तात्पर्य नहीं, इन युक्तियोंसे अपने मतका रक्षण किया है।

शंकराचार्य अपने मतके रक्षण के लिये कुछ करें ''जक्षन्'' इत्यादि श्रुतियाँ मोक्षावस्थामें विद्यमान क्रीडादिकोंका बयान करती हैं। इसमें कोईभी विवाद नहीं होना चाहिये। अत यह श्रुति, मोक्षावस्थामें स्थित क्रीडादिकोंका वर्णन करती है। शंकराचार्यने पूर्वपक्षमें कहा है, सिद्धान्तमें इन श्रुतियोंका अर्थ वही किया है, दूसरा अर्थ नहीं। उस वाक्योंके आधारपर हमने कहा मोक्षावस्थामें क्रीडादिकोंके सद्भाव का स्वीकार किया है।

कोर्ट - इसउपनिषद्भाष्यमें विद्यमान वाक्योंके अर्थ को कहिये। १*

वा. स. - मोक्षमें आनंदानुभवको न माननेपर, मोक्षमें आनन्दानु.

बोधक श्रुतियोंसे विरोध होगा, इस शंकाको लेकर, श्रुतियाँ मोक्षमें आनंदानुभव का बोध करती है, पर वास्तवमें मोक्षमें आनंदानुभव नहीं। सर्वात्मतारूप मोक्ष की प्रशंसा करनेके लिये, संसारावस्थामें योगी, या देवता से किये जानेवाले क्रीडादिकोंका वर्णन है, संसारावस्थाके क्रीडादिकोंका अनुवाद है।

कोर्ट - हरिहर शर्माजी ! वादि की परीक्षा करो।

प्र. व. -- ब्रह्मसूत्र के शांकरभाष्यस्थ ''अत एव भक्षणादि'' २* इस वाक्यके अर्थ कहिये।

वा. स. - भक्षण इत्यादि कर्म संपन्न होनेके लिये दूसरी वस्तु कारण होती है। मोक्षमें दूसरी वस्तु ही नहीं, अत: मोक्षमें भक्षणादिकोंका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिके लिये दु:खका अभाव ऐसा अर्थ करना चाहिये। भक्षण क्रीडादि की सत्ता के विषयमें उस श्रुतिका तात्पर्य नहीं।

प्र. व. - शंकराचार्यके उक्त कथनके अनुसार, मोक्षकी प्रशंसा करनेके लिये, संसारावस्थामें रहे योगीके क्रीडादिकोंका अनुवाद करती है, मोक्षमें क्रीडादि नहीं यह अर्थ क्यों न करें ?

वा. स. - मोक्षमें क्रीडादि सद्भाव के विषयमें स्पष्ट श्रुति है। श्रुति प्रामाण्य से सिद्ध होनेपरभी, उस स्पष्ट अर्थका त्याग करके, पूर्वकालकी क्रीडादिकोंका यह श्रुति अनुवाद करती है, इसके लिये

१* जक्षन् क्रीडन् इत्यादि श्रुति विरोधोऽसंवेद्यश्च इति चेन्न सर्वात्मैकत्वे यथा प्राप्तानुवादित्वात् मुक्तस्य संसारात्मभावेसति यत्र क्वचित् योगिषु, देवेषु जक्षणादि प्राप्तं, तद्यथा प्राप्त मेवानूद्यते तत्रस्थैव सर्वात्मभावात् इति सर्वात्मभाव मोक्ष स्तुतये (बृ.भा. ३-९-२८)

२* अतएव जक्षणादि संकीर्तनमपि दु:खाभाव मात्राभिप्रायं, स्तुत्यर्थ आत्मरति:'' इत्यादिवत्, न हि मुख्यान्येव, रतिक्रीडा मिथुनानि आत्मानि निमित्तानि शक्यन्ते वर्णयितुं द्वितीय विषयत्वात्तेषाम् (ब्र. शां. भा. ४-४-६)

कोई प्रमाण नहीं। मोक्षके क्रीडा, भक्षण, पितृदर्शनादि वास्तविक हैं। मोक्षमें गंधादि ज्ञानको न मानना प्रमाणविरूद्ध होनेके कारण अनिष्ट है। अत: मोक्षमें गंधादि ज्ञान आवश्यक है। उनके कारणोंको भी मानना चाहिये। मोक्षमें ''सर्वं आत्मैवाभूत'' आत्मस्वरूप ही है। आत्मातिरिक्त नहीं यह कहना अत्यंत अयुक्त है।

प्र. व. – ''जिघ्रेत्'' इत्यादि विधिलिङन्त प्रयोगोंकी सार्थकता तुम्हारे मतमें किस तरह होगी ?

वा. स. – ''जिघ्रेत्'' इत्यादि विधिलिङन्त पद, जिससे गंधका आघ्राण करता है, जिससे देखता है, इस तरहके अनचाहे गंधादिकोंको मानना पडेगा (प्रमाण विरूद्ध) इस तरह आपादन करके, अनिष्ट गंधादिकोंको मानना न पडे, आत्मासे भिन्न वस्तुका स्वीकार अवश्य करना चाहिये। तर्करूप अनुमान रूप प्रमाण इसको अवगत कराता है।

प्र. व. – ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' यह वाक्य किस लिये प्रवृत्त हुवा है ?

वा. स. – दूसरी वस्तु होनेपर ही जाननेवाला, अपनी कारणोंसे दूसरे पदार्थको जानता है। इसलिये गंधादि ज्ञान के लिये आत्माके अतिरिक्त इन्द्रियाणि करण आवश्यक है, कहकर मोक्षावस्थामें दूसरी वस्तु न होनेके कारण गंध, रूपादिकोंका ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार अनिष्टताका आपादन करनेके लिये गंधादि ज्ञान के लिये द्वितीय वस्तु ही कारण होती है, इसको समझाने के लिये यह वाक्य प्रवृत्त हुवा है।

वा. व. – (कोर्टसे) मायँ लोर्ड ! ''यत्र हि द्वैतमिव भवति '' यह वाक्य ''इव'' शब्दसे युक्त होनेके कारण द्वैतप्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका बोध करता है। इस तरह शंकराचार्यने आनंदगिरिने और सुरेश्वराचार्यने स्वीकार किया है, अत: यह श्रुति जगतके मिथ्यात्व का बोध करता है। ऐसा कहना अद्वैतियोंके कथनके विरूद्ध होगा।

२) ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' यह वाक्य जगत् के सत्यत्वका बोध करनेपर भी ''वाचारंभणं'', ''एकमेवाद्वितीयं'' ''आत्मैवेदं सर्वं'' आदि वाक्य जगतके मिथ्यात्व के बोधक होनेसे जगत् को मिथ्या कहना चाहिये, इस तरह शंकराचार्यने जो अपने ग्रंथमें कहा है वह युक्त नहीं। क्योंकि ''वाचारंभणं'' ''आत्मैवेदं सर्वं'' श्रुतियोंमें मिथ्यात्व बोधक एक पद भी नहीं, यह पहले ही हम कह चुके हैं। ''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यमेंभी जगत्के मिथ्यात्व बोधक पद नहीं। इस उपनिषत् के वाक्यके भाष्यमें शंकराचार्यने जगत् को मिथ्या नहीं कहा है। 'एकमेव' = सृष्टिके पहले परामत्मासे उत्पन्न कोई वस्तु नहीं थी। इस प्रकारके अर्थको शंकराचार्यने किया है। इसलिये जगत्का मिथ्यात्व इस वाक्यसे ज्ञात नहीं होता। कहा नहीं जाता।

'यत्र ना अस्य सर्वं आत्मैवाभूत तत्केन कं पश्येत् – येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञातारमरेकेन विजानीयात्'' यह जीवेश्वर भेदको स्वरसत: प्रतिपादन करती है। इस तथ्यको ब्रह्मविद्याभरणकारने, अप्पय दीक्षितने अपने ग्रंथमें कहा है। ''विज्ञातारं यह पद मोक्षमें भी ज्ञानकर्तृत्वका प्रतिपादन करता है ऐसा कहकर, अपने मतके अभिमानसे संसारकालीन कर्तृत्वका बोध करता है, ऐसे शंकराचार्यने कहा है। ''येनेदं'' वाक्य स्वरसत: भेद प्रतिपादक होनेपर भी हमारा (अद्वैती) अर्थ अस्वरस होनेपर भी स्वरसत: प्राप्त अर्थका परित्याग करके अस्वरस अर्थका

स्वीकार करते हैं। अर्थ योजना क्लेश को सहज करना पडेगा, इस तरह अद्वैतियों की स्वीकृति के कारण, यह वाक्य जगत्के मिथ्यात्वका अथवा जीवेश्वर की एकता का ज्ञापक नहीं।

३) जगत् प्रमाणोंसे उपलब्ध है, इसलिये जगत्को मिथ्या कहना यह अयुक्त है, यह दोष जगत् शून्यसे अतिरिक्त नहीं, कहनेवाले बौद्धमतपर है। सूत्रकारने जगतके अभाव का कथन करनेवालेबौद्ध मतका खण्डन नहीं किया है। शंकराचार्यने इस तरह कहकर पुन: उन्होंने ही जगत् के मिथ्यात्व की वकालात की है, यह स्वव्याहत होगा।

४) दूसरी वस्तुके सद्भाव होनेपर कोई पुरूष अपनेसे भिन्न इन्द्रियोंसे, भिन्न वस्तुको देखता है। इस प्रकार श्रुतिका कथन समंजस होगा। अद्वैतमतके अनुसार ज्ञाना तिरिक्त (आत्मा) एक भी वस्तु नहीं, समझनेपर किन इन्द्रियोंसे किस वस्तुको देखेगा, जिससे समस्त को देखता है उस परमात्माको वह कैसे जानेगा ? अपने आपको किस तरह पहचानेगा ?इसलिये मोक्षावस्थामें, अपना ज्ञान, परमात्माका ज्ञान गंधादि विषयक ज्ञान, आवश्यक हैं। जक्षन् क्रीडन् रममाण: इत्यादि श्रुतियोंमें उक्त है। अत: मोक्षमें सबकुछ आत्मरूप है ऐसा न कहे। इस प्रकार यह श्रुति मोक्षदशामें ज्ञातृज्ञेयादि प्रपंचकी सत्ता का बोध करती है। अदालत इसपर गौर करे यही हमारी प्रार्थना है।

''नेति नेति श्रुतिपर विचार''

प्र. व. - शास्त्रीजी ! जगतके मिथ्यात्वविषयमें और कोई प्रमाण होगा तो कहिये।

प्र. सा. - ''अथात आदेशो नेति नेति नह्येतस्मात् इति नेत्यन्यत्परमस्ति (बृ. २-३-६) वाक्य प्रमाण है।

प्र. व. - इस मंत्रका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - अथ = मूर्तामूर्त पदार्थोंके निरूपणके बाद, अत: = मूर्तामूर्त पदार्थोंके निरूपण करनेके कारण, आदेश: - सत्य पदार्थ के विषयमें सत्यपरमात्माका ''नेति नेति'' यह उपदेश है। इति = पूर्वमें प्रसक्त मूर्तभूत पृथिवी, जल, तेज, पदार्थ, न = नहीं, इति = पूर्वमें उक्त अमूर्तवायु, आकाश न = नहीं, इति = मूर्तामूर्त प्रपंचके भूत, न = नहीं वासनारूपसे भी नहीं यह उपदेश है।

''इति न इति न'' इस निषेधरूपसे परमात्मा उपदेश क्यों करे ? दूसरे प्रकारसे उपदेश क्यों न करें ? इस प्रकारकी शंकाके प्राप्त होनेपर .... ''पाठक'' शब्दका प्रयोग किसीके उद्देशमें करना है, तो उसमें पाठनरूप क्रिया होनी चाहिये। ''शाम'' शब्दका प्रयोग किसीके उद्देशमें करना होगा, उस मनुष्यमें श्यामवर्ण होना चाहिये। किसीको दण्डी कहना होगा तो, उसमें दण्ड का होना अनिवार्य है। किसी शब्दके प्रयोगके लिये, उस शब्दसे अभिदित उक्त अर्थ होना चाहिये। इसलिये किसी शब्दसे ब्रह्मका प्रतिपादन करना होगा तो, ब्रह्ममें किसी धर्मका सद्भाव होना आवश्यक है, ब्रह्ममें कोईभी धर्म न होनेके कारण १* किसीभी शब्दसे ब्रह्मका निरूपण संभव नहीं। अतएव ''नह्येतस्मादिति नेत्यन्यपरमस्ति'' इतिनेति एतस्यात्'' परमात्माका प्रतिपादन करनेवाला कोई

१* यस्मिन् न कश्चिद्विषेशोऽस्ति नाम वा रूपं वा कर्मवा भेदो वा जाति वा गुणो वा तद्वारेण हि शब्द प्रवृत्ति र्भवतिन चैषां कश्चिद् विशेषो ब्रह्मण्यस्ति अतो न निदेष्टुं शक्यते इदं तदिति ॥ (बृ. उपनिषद् शां. भा. २-३-७)

भी अन्य शब्द नही।

प्र. व. – इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. – ब्रह्म एक ही सत्य है, ब्रह्मसे अन्य मूर्तामूर्तात्मक समस्त जगत् मिथ्या है, यह सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

वा. व. – ''अथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यं'' इस वाक्यके अर्थ कहिये।

प्र. सा. – सत्यभूत प्राणादियोंमें सत्य के रूपमें स्थित परमात्मा का नाम सत्यस्य सत्यं है, और वही उपदेश है।

वा. व. – शास्त्रीजी ! ''इति न इति न'' उपदेशसे अन्य सत्यस्यं सत्यं रूप उपदेश के रहते ''नह्येकस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्ति'' पूर्ववाक्य ''इति न इति न'' इस आदेशके अतिरिक्त अन्य ब्रह्मका आदेश नहीं यह किस तरह कहते हैं ?

प्र. सा. – ''सत्यस्य सत्यं'' यह नाम, मिथ्याभूत सगुणब्रह्मका बोध करता है। ''इति न इति न'' यह नाम सत्यभूत ब्रह्मका बोध करता है। ''इति न इति न'' इस उपदेशसे अन्य कोईभी उपदेश सत्यभूत ब्रह्मका बोध नहीं करता, इस कथनपर कोई आपत्ति नहीं होगी।

वा. व. – ''अथात: आदेशो नेति नेति'' इस वाक्यसे सत्यभूत ब्रह्म ज्ञात होता है, अथ नामधेयं वाक्यसे सगुणभूत मिथ्याब्रह्म ज्ञात होता है, इस तरहके प्रतिपादंन के लिये क्या कोई ज्ञापक हैं ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! ''घट: पटो न'' कहनेसे क्या अर्थ होता है ?

प्र. सा. – घट पट नहीं। घट अन्य है। पट अन्य है। ऐसा अर्थ होता है।

वा. व. – ''घट: पट न'' इस वाक्यसे घट पटरूप नहीं यह सिद्ध होता है। या पट ही नहीं, ऐसा सिद्ध होता है ?

प्र. सा. – घट पटरूप नहीं, यह सिद्ध होता है। पट ही नहीं ऐसा सिद्ध नहीं होता।

वा. व. – नेति नेति इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. – ब्रह्म इति न = पूर्व प्रसक्त मूर्त पदार्थरूप नहीं, इति न = पूर्व प्रसक्त अमूर्त पदार्थरूप नहीं। इस कारणसे ''नेति नेति'' शब्दसे ब्रह्म ज्ञात होता है। अथवा जिन पदार्थोंको हम देखते है, ब्रह्म उन पदार्थोंका रूप नहीं। इस प्रकार ब्रह्म ज्ञात होता है।

वा. व. – 'घट पटरूप नहीं' घट पटसे भिन्न है ऐसा अर्थ होता है भेद सिद्ध होगा, न कि पट का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। उसी तरह ब्रह्ममूर्तामूर्तात्म प्रपंच नहीं कहनेपर, ब्रह्म और मूर्तामूर्तात्म प्रपंचमें भेद सिद्ध होता है, न कि मूर्तामूर्तात्म प्रपंचका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। इस स्थितिमें आपने यह श्रुति प्रपंच के मिथ्यात्वबोधक है, ऐसे क्यों कहा ?

प्र. सा. – उत्तर नहीं।

६९ – सिविल सूट (१-२)

वा. व. – शास्त्रीजी ! यह वाक्य किस ग्रंथमें है ?

प्र. सा. – यह वाक्य बृहदारण्यक उपनिषतके शांकर भाष्यमें है।

वा. व. – इस वाक्यका १* अर्थ क्या है ?

प्र. सा. – ब्रह्ममें नाम, रूप, कर्म, भेद, जाति, गुण इनमें कोई गुण न होनेसे श्याम, कर्ता इत्यादि शब्दोंसे ब्रह्म ज्ञात नहीं होता।

वा. व. – ''घट: पटो न'' घडा घडा नहीं क्या ऐसे कह सकते है ?

प्र. सा. – घटमें घटभेद न होनेके कारण ''घट: घटो न'' घडा घडा नहीं ऐसे नहीं कह सकते।

वा. व. – क्या ब्रह्ममें मूर्तामूर्तात्मक प्रपंचक भेद और वासनाका भेद है ?

प्र. सा. – ब्रह्ममें कोई भी भेद नहीं। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें कहा है। अत: ब्रह्ममें मूर्तामूर्त प्रपंचका भेद नहीं वासना भेद भी नहीं।

वा. व. – घटमें घटभेद न होनेसे जिस तरह ''घटो घट: न'' नहीं कह सकते उसी तरह ब्रह्ममें मूर्तामूर्तात्मक भेद न होनेके कारण ब्रह्म मूर्तामूर्तात्मक न – मूर्तामूर्तात्मक भेद किस तरह कह सकते हैं ?

प्र. सा. – आपके पूछे जानेके कारण ब्रह्म मूर्तामूर्तात्मकरूप नहीं कह गये, वास्तवमें हमार ब्रह्म किसी भी शब्दसे गम्य नहीं। (जाना नहीं जाता) ब्रह्मके विषयमें प्रश्न करनेपर हमारे जैसे ज्ञानी, उत्तर न देकर मौन बैठना चाहिये।

वा. व. – क्या इसे आप कह रहे हैं अथवा आपके किसी आचार्यने कहा है ?

प्र. सा. – किसी आचार्यने क्यों ? हमारे शंकराचार्यने कहा है। वे कहते है – ब्रह्म किसी भी शब्दसे वाच्य नहीं। ब्रह्म के विषयके विषयमें प्रश्न करनेपर, उत्तर न देकर मौन रहना चाहिये।

वा. व. – किस ग्रंथमें कहा है ?

प्र. सा. – ३-२-१८ इस ब्रह्मसूत्र भाष्यमें कहा है।

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ कहिये। २*

प्र. सा. – ब्रह्मके विषयमें हमें कुछ कहिये। बाष्कलीने बाध्ववानसे कहा, बाध्ववान् मौन बैठा रहा, दो तीन बार पूछे जानेपर बाध्ववानने कहा ''ब्रह्ममें कोई भी धर्म न होनेके कारण ब्रह्मके विषयमें प्रश्न करनेपर उत्तर न देकर मौन रहना ही उत्तर है।''

वा. व. – आपके मतमें ब्रह्म नहीं, ब्रह्मके सद्भावके विषयमें कोई प्रमाण नहीं, इस तरह की आपादन कोई प्रतिवादी करेगा तो, क्या आप चुप बैठे रहेंगे ?

प्र. सा. – वकील साहब ! ब्रह्मके विषयमें प्रश्न करनेपर मौन रहना ही जैसे उत्तर है, उसी तरह आपके सवालोपर भी चुप रहना उत्तर है। हमारे पूर्वाचार्यने आदेश दिया है। वयं परब्रह्माणि

१* यस्मिन् न कश्चिद्विषेशोऽस्ति नाम वा रूपं वा कर्मवा भेदो वा जाति वा गुणो वा तद्वारेण हि शब्द प्रवृत्ति र्भवतिन चैषां कश्चिद् विशेषो ब्रह्मण्यस्ति अतो न निदैष्टुं शक्यते इदं तदिति ॥ (बृ. उपनिषद् शां. भा. २-३-७)

२* बाष्कलिना बाध्व: पृष्ट: सन् अवचमेन ब्रह्म प्रोवचिति श्रूयते। सहोवाच अधीहि ओ इति। स तूष्णिं बभूव तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचने, उवाच ब्रूम: खलु तत्वं तु न विजानासि उपशान्तो यमात्मेति।

निष्णाता: न किमपि ब्रूम:, परब्रह्ममें निष्णात होनेके कारण कुछ भी नहीं कहेंगे। हमारे शंकराचार्यने भी ''द्वढधियस्तूष्णीं शिलावत स्थिता'' (प्रौढानुभूति १३) पण्डित गोलपत्थर की तरह मौन ही बने रहे, कुछ बोलना नहीं चाहिये, कहा है। अत: आपके सवालोंका जवाब नहीं देंगे।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' इस तरह आपके मतमें सत्यभूत परब्रह्म किसीभी शब्दसे प्रतिपाद्य नहीं। जगत तो मिथ्या है। वेदोंसे प्रतिपाद्य सत्य वस्तु ही न होनेके कारण आप वेदोको अप्रमाण कहते हैं न ?

प्र. सा. - हमारे मतमें वेदादि समस्त जगत मिथ्या है, अर्थात ब्रह्ममें कल्पित है (भ्रमसे ज्ञात होता है) यथार्थ नहीं। वेदोंके न होनेसे वेदोंका प्रामाण्य किस तरह प्राप्त होगा। ''चोद्यं वा परिहारो वा क्रियतां द्वैतभाषया अद्वैतभाष्यया चोद्यं नास्ति नास्ति तदुत्तरम् ॥ ''हमारे अद्वैत मतके अनुसार, किसीभी शंकाका योग्य समाधान नहीं कह सकते।

वा. व. - शास्त्रीजी ! प्रतिवादियोंकी शंकाओका समाधान नहीं कर सकते, तो आपके मतमें शास्त्र क्यों चाहिये ? शास्त्र नहीं होगा तो शिष्य क्यों ? समस्त जगत्के मिथ्या होनेसे स्वर्गादि के उद्देशसे व्रीह्यादि द्रव्योंसे यज्ञादि कर्म किस लिये ?

प्र. सा. - वकील साहब ! हमारे मतमें शास्त्र नहीं, शाखा नहीं, शिष्य नहीं, गुरू नहीं, शिक्षा नहीं, आप नहीं, हम नहीं, ब्राह्मणादि वर्ण नहीं, वर्णाश्रम धर्म नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, देवता नहीं, स्वर्गादि लोक नहीं, वेद नहीं, यज्ञ नही, गंगादि तीर्थ, मीमांसाकादि मत नहीं। अद्वैतमत, पुण्य, पाप, सुखदु:ख, मन्त्र, जातिभेद, बान्धव, मित्र बन्धन, मोक्ष नहीं। पूरा विश्व१* तुच्छ है। (तीनों कालोंमें नहीं) अत: आप हमसे किसीभी सिद्धान्त की सार्थकता के विषयमें प्रश्न पूछ नहीं सकते।

वा. व. - कुछ भी न होनेपर शास्त्रविचार यज्ञ, स्नान, संध्यादि कर्म क्यों करते हैं ?

प्र. सा. - शास्त्रविचार, यज्ञ, याग आदि करनेवाला अज्ञानी ही होगा। ज्ञानी नहीं करते। भ्रान्त अथवा अज्ञानी शास्त्रविचार अथवा कर्म करें। ज्ञानी पत्थर कीभाँति बने रहे। इस तरह हमारे आचार्योंका कहना है।

वादि की विचारण

प्र.व. आचार्यजी ! ''नेतिनेति'' इस बृहदारण्यक वाक्यका अर्थ क्या है ?

वा.सा. परमात्मा परतन्त्रबने मूर्तवस्तुवोंसे भिन्न है. परतन्त्र बने अमूर्त वस्तुवोंसे भिन्न है. इस प्रकार यह वाक्य परमात्मा का ही प्रतिपादन करता है. नैह्यये तस्मात् इति नेत्यन्यतरमास्ति'' परमात्मासे भिन्न उत्तम वस्तु कोई नहीं, परमात्मा ही उत्तम है.

प्र.व. अथ नामधेयं सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेव सत्यं'' इस वाक्य का अर्थ क्या है ?

१* न शास्ता नं शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न च त्वं च न चाहं न चायं प्रपंच: न वर्णा न वर्णाश्रमाचार धर्मा:..... न माता पिता न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं न ब्रुवति.... न मीमांसाकादेर्मतं वा। (दशश्लोकी) न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खं न मंत्रो.... .न मे जातिभेद: न मुक्ति र्न बंध: (निर्वाणष्टक) भ्रान्ता एव पारगा द्वढधिय: तूष्णीं शिलावत्स्थिता: (प्रौढानुभूति)

७१ - सिविल सूट (१-२)

वा.सा. प्राण सत्य है, इस वाक्य का अर्थ क्या है ?

वा.सा. प्राण सत्य है, इस प्राणको भी सत्यत्व प्रदान करनेवाला परमात्मा है, इसलिये परमात्मको सत्यस्यसत्यं कहते हैं, यही इस वाक्यका अर्थ है।

प्र.वा. 'सत्यस्यं सत्यं' के लिये सत्यत्व प्रद ऐसा अर्थ किस तरह किया गया ?

वा.सा. ''प्राणस्य प्राण' (चक्षुःचक्षुषः) इत्यादि वाक्यों के लिये प्राण को चेष्टकत्व देनेवाला चक्षुषादिको दर्शनादि शक्ति देनेवाला, शंकराचार्य ने ऐसा ही अर्थ किया है। नित्यो नित्यानां चेतनश्चयेतनानां' इस वाक्य का अर्थ करते वक्त भी, निश्चित पदार्थोंको नित्यत्व देनेवाला यह अर्थ जैसे है, वैसे ही सत्यस्यं सत्यं, प्राणरूप सत्य पदार्थको सत्यत्व प्रदान करनेवाला, यही अर्थ है।

अध्यास (भ्रम)

प्र. व. - ब्राह्मणादिवर्ण, यज्ञ, वेद, देवता, गंगादि तीर्थ समस्त कर्म और उनके फल आदि समस्त मिथ्या है न ?

प्र. सा. - मिथ्या ही है।

प्र. व. - मिथ्याका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - रस्सेमें साप, सींपमें चॉदी जिस तरह आरोपित है, अर्थात् भ्रम विषय है वैसे ही ब्राह्मण वर्णादि समस्त जगत् ब्रह्ममें आरोपित है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा.व. - भ्रम पैदा होनेके लिये कौनसे कारण हैं ?

प्र. सा. - १) अधिष्ठान = जिसमें अन्य पदार्थका भास होता है।

२) अधिष्ठान का सामान्य धर्म

३) विशेष धर्म

४) आरोप्य वस्तुका साद्दश्य

५) सामान्य धर्मका ज्ञान

६) विशेष धर्मका अज्ञान

७) सामान्य धर्मका ज्ञानयुक्त विशेष धर्मके ज्ञानरहित मनुष्य

८) ज्ञानके कारणीभूत भ्रान्तपुरूष का देह, इन्द्रियादि वस्तु इत्यादि कारण हैं।

वा. व. - रज्जुमें सर्पभ्रम पैदा होनेके लिये क्या इतने कारण है ?

प्र. सा. - हॉ इतने कारण हैं। रज्जु अधिष्ठान बना है, रज्जुमें इदंत्वं रूप सामान्य धर्म है। रज्जुत्वरूप विशेष धर्म है। रज्जुमें आरोप्यप्राण सर्पका साद्दश्य है। (सर्प की तरह लंबाई है) इदंत्वरूप विशेष धर्मको न जाननेवाला पुरूष भी है। उसमें देहेन्द्रियादिरूप ज्ञान कारण भी है। इस

प्रकार रज्जुको देखकर, यह सर्प है, इस भ्रमके लिये जिन कारणोंकी आवश्यकता है, वे सभी कारण है।

वा. व. - जगत् भ्रम किसमें पैदा होता है ?

प्र. सा. - ब्रह्ममें ही पैदा होता है।

वा. व. - अधिष्ठान कौनसा है ?

प्र. सा. - ब्रह्म ही अधिष्ठान है।

वा. व. - क्या उस ब्रह्ममें अधिष्ठान बनने योग्य कारण सामान्य धर्म और विशेष धर्म है ?

प्र. सा. - नहीं

वा. व. - ब्रह्ममें भ्रम पैदा होनेके लिये कारणीभूत क्या सामान्य धर्मका ज्ञान है ?

प्र. सा. - सामान्य धर्मका ज्ञान भी नहीं।

वा. व. - क्या भ्रमके लिये कारण बने विशेष धर्मका अज्ञान ब्रह्ममें है ?

प्र. सा. - नहीं।

वा. व. - क्या आपके अद्वैतमतमें ब्रह्ममें ही भ्रम पैदा होता है, स्वीकृत तथ्य के साथ भ्रमयोग्य इन्द्रियादि हैं ?

प्र. सा. - नही।

वा. व. - क्या आपके अद्वैतमतमें ब्रह्ममें ही भ्रम पैदा होता है, स्वीकृत तथ्यके साथ, भ्रमयोग्य इन्द्रियादि हैं ?

प्र. सा. - नहीं।

वा. व. - क्या सर्पके भ्रमके लिये घट अधिष्ठान नहीं होगा ?

प्र. सा. - सर्पके भ्रमके लिये घट अधिष्ठान नहीं हो सकता।

वा. व. - घट अधिष्ठान क्यों नहीं बनेगा ?

प्र. सा. - भ्रमका कारण सर्पका साद्दश्य घटमें न होनेके कारण घट अधिष्ठान नहीं हो सकता।

वा. व. - अद्वैतमतमें ब्रह्म समस्त धर्मरहित है, इस सिद्धान्तको मानने के कारण, उस ब्रह्ममें अधिष्ठान योग्य सामान्यधर्म, विशेष धर्म, आरोपित साद्दश्यादि धर्म नहीं। अत एव ब्रह्म अधिष्ठान किस तरह बनेगा ? भ्रम पैदा होनेके लिये कारणीभूत सामान्य धर्म का ज्ञान, विशेष धर्म का अज्ञान, देहेंद्रियोंका न होना, ब्रह्ममें आपने माना है, वह ब्रह्म भ्रान्त किस तरह बनेगा ? ब्रह्म अधिष्ठान नहीं बन सकता। भ्रान्त भी नहीं हो सकता। इस स्थितिमें भ्रम किसमें पैदा होगा, क्यों होगा ?

प्र. सा. - अद्वैतियोंसे स्वीकृत ब्रह्ममें अधिष्ठान के लिये उपयुक्त सामान्य धर्म, विशेष धर्म, आरोप्य साद्दश्य, सत्य न होनेपर कल्पित (मिथ्या) धर्म हैं। उसीतरह भ्रान्त होनेके लिये कारणीभूत सामान्य धर्म ज्ञान विशेष धर्मका अज्ञान, देहेन्द्रियादि सत्य न होनेपर कल्पित हैं। इसलिये ब्रह्म अधिष्ठान हो सकता है। और भ्रान्त भी हो सकता है। इसलिये जगतका भ्रम ब्रह्ममें होगा। यह कहना युक्त है।

वा. व. - सामान्य धर्म, विशेष धर्म और आरोप्य साद्दश्य, इनके आरोपके लिये (भ्रमके लिये)

ब्रह्म अधिष्ठान और इस भ्रमसे ही युक्त है न ?

प्र. सा. - सही है। सामान्य धर्मादिकोंके आरोप के लिये ब्रह्म अधिष्ठान है और भ्रान्तिका आश्रय भी बनता है। भ्रान्त भी बनता है।

वा. व. - सामान्य धर्मादिकोंके आरोपके लिये ब्रह्मको अधिष्ठान बननेके लिये, उस ब्रह्ममें आरोप के लिये कारणीभूत सामान्य धर्मादि होने चाहिये न ?

प्र. सा. - ब्रह्ममें धर्मादिकोंके आरोपके लिये कारणीभूत सामान्य धर्म होने चाहिये।

वा. व. - अद्वैतियोका ब्रह्म निधर्मक है, अत: सामान्य धर्मादि उस ब्रह्ममें न होनेसे ब्रह्ममें किसीका भी आरोप नहीं कर सकते।

प्र. सा. - ब्रह्ममें सत्य धर्म न होनेपर कल्पित धर्म होनेसे उस ब्रह्ममें धर्मोंके आरोप की संभावना की जा सकती है।

वा. व. - आरोपित धर्मोंके आरोप के लिये, पूर्वमें कारणीभूत धर्मोका आरोप करना चाहिये क्या इस प्रकार अनवस्था नहीं आयेगी ?

प्र. सा. •- अनवस्था के आनेसे क्या बाधा होगी ? हम अनवस्थाका स्वीकार करते है।

वा. व. - बीजाकुंर परंपरा के जैसे पूर्व पूर्व वासना बलसे उत्तरोउत्तर विज्ञानमें विचित्रता को स्वीकार करते हैं, बौद्धोंके कहनेपर शंकराचार्यने ''न भावोऽनुपलब्धे:'' (२-२-३०) इस ब्रह्मसूत्र के व्याख्यान करते वक्त क्या दोष दिया है ?

प्र. सा. - बीजसे अंकुर पैदा होता है। अंकुरसे बीज पैदा होता है। यह स्पष्टरूपमें दीखता है। अतएव प्रामाणिक है। इस तरह मूलत: प्रामाणिक होनेसे बीजांकुर के कार्यकारण भावके संयोजनके लिये बीजांकुर परंपराका स्वीकार कर सकते हैं। बाह्य पदार्थोंकी उपलब्धि के अभावमें पदार्थोंकी वासना (संस्कार) कहीं भी दीखती नहीं। मूलही अप्रमाणिक होनेके कारण वासना परंपराका स्वीकार नहीं कर सकते। इस तरह दोष दिया है शंकराचार्यने।

वा. व. - किस परंपराको (अनवस्थाको मानना चाहिये, किस अनवस्थाका स्वीकार नहीं करना चाहिये) इस विषयमें शंकराचार्यके विचार क्या है ?

प्र. सा. - मूल प्रामाणिक होनेपर उसके संयोजन के लिये कल्पित परंपराका स्वीकार करना चाहिये। जिसका मूल अप्रामाणिक है। अप्रामाणिक मूलके संयोजन के लिये कल्पित परंपराका स्वीकार न करें। यही शंकराचार्यकी राय है।

वा. व. - ब्रह्ममें सामान्य धर्मोंकी भ्रमपरंपरा का स्वीकार क्यों करे ?

प्र. सा. - ब्रह्ममें ब्राह्मणवर्णादि जगतका भ्रम प्रामाणिक होनेके कारण इस भ्रमको युक्त बनानेंके लिये कल्पित भ्रम परंपरा का स्वीकार करना चाहिये।

वा. व. - ४-१-३ ब्रह्मसूत्र के शांकरभाष्यको भाष्यके उपर लिखे गये भामती व्याख्यान को क्या आपने देखा है ?

कोर्ट - बीचमें आप असंगत प्रश्न न करें।

वा. व. - महाप्रभु ! हमारा प्रश्न असंगत नहीं। शंकराचार्यने भामतीकार आदि अद्वैतियोंने

४-१-३ इस ब्रह्मसूत्रकि व्याख्यान लिखते समय कहा है - अद्वैतमतके अनुसार भ्रम ही उपपन्न नहीं होता। भ्रम अप्रामाणिक है। प्रतिवादिके मुँहसे इस विषयको कहलाने के लिये प्रश्न किया गया है। अतएव इस प्रश्नको पूँछनेकी अनुमति कोर्ट देनेकी कृपा करे यही प्रार्थना है।

कोर्ट - ठीक है, प्रश्न कीजिये।

वा. व. - उनमें क्या कहा है ?

प्र. सा. - १* भ्रम पैदा करनेवाले अधिष्ठानमें आरोप्यका साद्दश्य, सामान्य धर्म, विशेषधर्म होने चाहिये। सामान्य धर्मसे अधिष्ठान ज्ञात हो, विशेष धर्मसे अज्ञात हो इस तरह के अधिष्ठानमें ही अन्य विशेष का आरोप कर सकते हैं। जैसे - रज्जु सर्पकी.

लंबा है। इदत्वंरूप सामान्य धर्मसे युक्त है। रज्जुत्वरूप विशेष धर्मसे युक्त है। भ्रम पैदा होनेके पहले इदत्वं धर्मसे ज्ञात है। रज्जुत्वरूप विशेष धर्मसे अज्ञात है, इसलिये सर्पके आरोपके लिये अधिष्ठान बना है।

प्रकृत द्दष्टान्तभूत ब्रह्ममें (अधिष्ठानमें) जीवादिका भ्रम पैदा होनेयोग्य उपरोक्त धर्म होने चाहिये। पर वह ब्रह्म प्रकाशरूप है। सामान्य धर्म और विशेष धर्मसे रहित होनेके कारण, सामान्य धर्मसे ज्ञात विशेष धर्मसे अज्ञात नहीं होगा। उसी तरह ब्रह्ममें आरोप्य जगतका साद्दश्य नहीं, जीवभाव आदि किसी धर्मका आरोप नहीं कर सकते। अर्थात् ब्रह्मही जीव है ऐसा भ्रम उत्पन्न नहीं हो सकता। अत: जीव जीव ही रहेगा, ब्रह्म ब्रह्म ही रहेगा। ब्रह्ममें जीवत्व का आरोप संभव नहीं। ''तत्त्वमसि'' वाक्यका अर्थ जीवब्रह्मके अभेदके विषयमें युक्तिसंगत नहीं होगा। प्रतिमामें ईश्वर है, उक्ति की भाँति जीवमें परमात्मा है इस तरह तत्त्वमसि श्रुतिका अर्थ कहना चाहिये। इस वाक्यसे आक्षेप किया गया है।

वा. व. - भ्रम उपपन्न नहीं होता, इस आक्षेपका उत्तर क्या दिया गया है ?

प्र. सा. - सांश अधिष्ठानमें अर्थात् धर्मयुक्त अधिष्ठानमें भ्रमके कारणीभूत कुछ भागका ज्ञान, कुछ भागका अज्ञान होनेसे जिस तरह भ्रम पैदा होता है, उस तरह ब्रह्ममें भ्रम पैदा नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्मसांश अर्थात धर्मयुक्त नहीं। अतएव भ्रमोत्पत्तिकी संभावना नहीं। क्योंकि ब्रह्मनिरंश है। २* धर्मधर्मोविभागरहित है। अत: कुछ ज्ञात, कुछ अज्ञात अंश नहीं। इसलिये ब्रह्ममें भ्रमोत्पत्ति की गुंजाईश नहीं। किन्तु अनादि अनिर्वाच्य अविद्या और अविद्यावासना से कल्पित प्रपंच, उस तरह प्रपंचरूप होकर सांशपदार्थ की तरह दीखनेवाले परमात्मामें कल्पितअंशके ग्रहणसे नाना प्रपंचरूप होकर भ्रम पैदा होनेकी तरह भास होता है। इस तरह आक्षेप का समाधान किया गया है।

वा. व. - ''भ्रमका आभास होता है'' इस तरह जो भामतीकारने कहा है, उनका आशय क्या

१* युक्तं हि पुरोवर्तिनी द्रव्ये द्राधीयरसीं सामान्यरूपेणालोचिते विशेषरूपेणाग्रहीते विशेषान्तर समारोपण। इहतु प्रकाशात्मनो निर्विशेष सामान्यस्य अपराधिन प्रकाशस्य नागृहीतमस्ति किंचित् रूपमिति कस्य विशेषस्य अग्रहे किं विशेषान्तरं समारोप्यताम्। तस्मात् ब्रह्मणो जीवरूपासंभवात् जीवो जीव एव ब्रह्मच ब्रह्मेति तत्वमसीति प्रतिकोपदेश: एवेति प्राप्तम् (भामती ४-१-३)

२* निरंशस्यापि अनाद्यनिर्वाच्याविद्या तद्वासनासमारोपित विविध प्रपंचात्मन: साशस्येव कस्यचिदंशस्याग्रहणाद्विभ्रम इव।

है ? क्या भ्रम पैदा हो सकता है ? या भ्रम पैदा नहीं हो सकता ?

प्र. सा. - भ्रम युक्तियुक्त नहीं, भ्रम पैदा नहीं होता। युक्तिसे भ्रमके सद्भावनाको नहीं कह सकते। यही भामतीकार की राय है।

वा. व. - भ्रमका संयोजन नहीं होता ऐसा जो भामतीकार कथन है उसने आपने किस तरह समझा ?

प्र. सा. - भामतीकारके वाक्योंसे ही ज्ञात हुवा।

वा. व. - उन्होंने क्या कहा है ?

प्र. सा. - १* विचार करनेपर वास्तवमें भ्रम ही नहीं। कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप संसार नहीं। भ्रम है, संसार है ऐसे हम कहेंगे तो, द्वैतवादियोंकी समस्तु अनुपपत्तियाँ आ जाती है। अतए व भ्रम किसतरह पैदा होता हैं, कह नहीं सकते। (अनिर्वचनीय है) कहना युक्त है।

वा. व. - भामतीकारने इस तरह जो कहा है क्या वे अपनी राय समझकर कहा है या शंकराचार्यके विचार हैं, ऐसा कहा है ?

प्र. सा. - वह भामतीकारका स्वकीय मन्तव्य नहीं, यध्येवं प्रतिबुद्धोसि नास्ति कस्यचिदप्रबोध:'' इस वाक्यसे ये शंकराचार्यके विचार है। ऐसा कहा है।

वा. व. - ''यद्वेवं'' इस वाक्यका अर्थ शंकरकी द्दष्टिसे क्या है ?

प्र. सा. - एक शिष्यने शंकराचार्य से पूछा - यह अज्ञान किसमें है ? शकराचार्यने उत्तर दिया - प्रश्न पूछनेवाले तुम्हारे भीतर अज्ञान है। इसके अनंतर शिष्यने फिर पूछा ''मैं ही ईश्वर हूँ'' श्रुतिमें कहा गया है, मुझमें अज्ञान किस तरह संभवेगा ? इस तरह पूछनेपर - शंकराचार्यने कहा अगर इसे जान गये हो तो, किसीमें अज्ञान नहीं, यह शंकराचार्यका विचार है।

वा. व. - भ्रम युक्ति युक्त नहीं होगा तो, अद्वैतमत किस तरह युक्ति संगत होगा ?

प्र. सा. - भ्रम सही अर्थोंमें युक्तिसंगत होगा तो, ब्रह्मसे भिन्न यह भ्रमभी एक सत्य पदार्थ होगा, ब्रह्म एक ही सत्य है इस अद्वैतसिद्धान्त के विरूद्ध होगा। अत: भ्रमका युक्तिसंगत न होना ही अद्वैतमतके लिये भूषण होगा।

वा. व. - भ्रम आदि पदार्थ सही संगत होंगे तो (प्रामाणिक होगा) अद्वैतमत दोषयुक्त होता है, ऐसा आप ही कहते हैं, अथवा आपके प्राचीन आचार्योंने कहा है।

प्र सा. - ''दुर्घटत्वमविद्याया: भूषणं न तु दूषणं। कथंचित् घटमानत्वेऽविद्यात्वं दुर्घटत्वं भवेत्'', ''मायायां अनुपपत्ति: भूषणम्, अनुपपत्ति: मायामुपोद्वलयति'' तस्य मायिकत्वे न मायाया. ...... सर्वानुपपत्ते भूषणत्वात्'' इत्यादि अनेकों वाक्योंसे अविद्या, अविद्याकार्य इत्यादिकोंका दुर्घटत्व अर्थात युक्तियोंसे युक्तिसंगत न होना हमारे लिये भूषण ही है। वह दोष नही। किसी भी प्रकारसे अविद्या युक्ति युक्त होगी तो, वह अविद्या ही नहीं रहेगी। उस अविद्यामें अविद्यात्व नहीं रहेगा। इस प्रकार हमारे पूर्वाचार्यने कहा है।

१* परमार्थतस्तु न विभ्रमो नाम कश्चिेन् च संसारो नाम। किंतु सर्वमेतत् सर्वानुपपत्ति भाजनतेनानिर्वचनीयामिति युक्तमुत्पश्याम:।

वा. व. - पहला भ्रमही जब प्रामाणिक नहीं, उस भ्रमको घटाने के लिये भ्रमपरंपरा को मानना निर्मूल होना। इस प्रकार जो बौद्धोंसे कहा गया है। ''अंध परंपरा'' दोषसे आप भी मुक्त नहीं हो सकते न ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - 'कोर्टसे ' अद्वैतमतके अनुसार निधर्मक (धर्मरहित) रूपमें स्वीकृत ब्रह्ममें जगतका भ्रम पैदा होनेके लिये कोई कारण नहीं और जगत कल्पित है। इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। मूल ही अप्रामाणिक होनेसे अप्रामाणिक भ्रम की घटना के लिये, भ्रम परंपराको मानेंगे तो अनवस्थारूप दोष आयेगा। इस तरह बौद्धोंपर जो दोष कहा गया है, वह अद्वैतियोंपर भी आयेगा। कोर्ट इस पर गौर करें।

''सर्वं खल्विदं ब्रदं'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी! जगतके मिथ्यात्व विषयमें और कोई प्रमाण है ?

प्र. सा. - और एक श्रुति है।

प्र. व. - उसको कहिये।

प्र. सा. - ''सर्व खल्विदं ब्रह्म (छा. ३-१४-१)

प्र. व. - इसका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - ''इदं सर्व'' यह समस्त जगत, ब्रह्ममें कल्पित है।

प्र. व. - इससे क्या सिद्ध होता है।

प्र. सा. - समस्त विश्व ब्रह्ममें कल्पित है यह सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - ब्रह शब्दका अर्थ ब्रह्ममें कल्पित ऐसा जो किया गया,क्या वह मुख्यार्थ है या अमुख्यार्थ ?

प्र. सा. - अमुख्यार्थ ही है। मुख्यार्थ नहीं।

वा. व. - मुख्यार्थ न हो तो क्यों उस अर्थका स्वीकार करें ? दूसरे अर्थका क्यों ग्रहण न करें।

प्र. सा. - दूसरे अर्थका ग्रहण उसी समय ग्रहण जब वह अन्वित होता हो।

वा. व. - ''सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगंध यह वाक्य कहाँ है ?

प्र. सा. - ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' इस वाक्यके अनंतर ही यह वाक्य है।

वा. व. - इस वाक्यके शंकराचार्यके भाष्यको और आनंदगिरी टीकाको क्या आपने देखा है ?

प्र. सा. - देखा है।

वा. व. - १* इस वाक्यका अर्थ कहिये।

प्र. सा. - ''सर्वकाम:'' पदके लिये ''सर्वकामा: यस्य स:'' समस्त कामनायें जिसके आधिन है, वही परमात्मा है। शंकराचार्यने स्वयं इस अर्थको लिखकर उसके लिये स्वयं ही ''कामोऽस्मि भरतऋषभ''(गी. अ. ७ श्लोक ११ में) ''मैं कामरूप हूँ'' श्रीकृष्णके कथनके कारण, इसी प्रकार इस श्रुतिमें रहे ''सर्वकाम'' पदके लिये भी सर्वश्चासौ कामश्च कर्मधारय समस्त करके, परमात्मा और काम एक ही है ऐसा अर्थ क्यों न करें, इस तरह आक्षेप को उठाकर काम परतंत्र है, जन्य है। इस तरहके कामकी ब्रह्मके साथ एकता कहे जानेसे परमात्माको भी जन्यत्व और पारतंत्र्य आ जायेंगे। परमात्माका स्वातंत्र्य और अनादित्व नष्ट हो जायेंगे। अत: काम और परमात्माकी एकता को न कहें। ''सर्वे कामा: यस्यबहुव्रीहि समास करके परमात्मा कामोंका स्वामि है। ऐसा अर्थ करना चाहिये। ''कामोऽस्मि'' इस गीता वाक्यका भी ''मैं कामस्वामी हूँ ऐसा ही अर्थ करना चाहिये। इस तरह शंकराचार्यने कहा है।

वा. व. - ''कामोऽस्मि भरतर्षभ'' ''इदं सर्व यदयमात्मा, ब्रह्मैवेदं सर्व, आत्मैवेदं सर्व इन पूर्वोक्त वाक्योंका अर्थ अन्य प्रमाणोंके अविरूद्ध ''कामोऽस्मि वाक्यके लिये कामस्वामी ऐसा जो अर्थ शंकराचार्यनें किया है वैसे ही जगतका स्वामी परमात्मा ही है, अर्थ करनेसे प्रमाण अविरूद्ध अर्थ होगा। इस अर्थका स्वीकार क्यों न करें ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वादिका विचार

प्र. व. - आचार्यजी ! 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुतिका अर्थ आप किस तरह करते हैं ?

वा. सा. - इदं ब्रह्म = यह ब्रह्म, सर्व = पूर्ण है, सर्वत्र व्याप्त है, सर्व स्वामीहै। इस तरहके अर्थ किये जाते हैं।

१* सर्व काम. सर्वे कामा दोषरहिता अस्थिति। स सर्वकाम: ''धर्मा विरूद्धो भूतेषि कामोस्मि'' इति स्मृते:। ननु कामोस्मिती वचनादिह बहुब्रीहिर्न संभवति। तस्माद्ययेह सर्वकाम इति बहुव्रीहीस्तथा कामोऽस्मिती स्तृत्यर्थोवाच्य: (मा. शां. भा. २-१४-२)

उदाहृतस्मृतिमाश्रित्योक्तमाक्षिपति। नन्विति। काम सामानाधिक रण्ये बाधकोलंभात बहुव्रीहिरेवेति परिहरति। न कामस्येति। तस्य कार्यत्वा तदैक्य ब्रहारण्योनादि त्तवं बाध्येत.। चेतनशेष त्वाच्च कामस्य। तदनैक्ये ब्रह्मण: स्वातन्त्यं हीयते। तथाच कर्मधारय संभवात् बहुव्रीहिरेवेत्यर्थ:। कथं तर्हि कामोस्मीति तादात्म्यस्मृति वित्याशंक्याह। तस्मादिति। कामेश्वरयो: सामानाधिकरस्या संभावात प्रकृतश्रुतौ बहुव्रीहीर्यथेष्टस्तया स्मृतावपि ब्रह्म पारतंत्र्य मात्रं कामस्य विवक्षितं। श्रुत्यानुसारण स्मृतेर्नेतत्यं त्वात् इत्यर्थ:। (आनंदगिरी)

संयमनीपूरका उच्च न्यायपीठ

वादि - सत्यबोधाचार्य **प्रतिवादी - गंगाधर शास्त्री**

वादिका विचार
(वादग्रस्त विषय २६का विचार) ता. २५-६-१९२७

वा. व. - आचार्यजी ! क्या स्वप्नपदार्थ सत्य हैं या मिथ्या ?

वा. स. - स्वप्नपदार्थ सत्य हैं।

वा. व. - इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

वा. स. - श्रुतियाँ, अबाधित प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण हैं।

वा. व. - स्वप्न पदार्थोंके सत्यत्वका बोध करनेवाली श्रुतियाँ कौनसी है।

वा. स. - ''अथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते। अथानंदान् मुद: प्रमुद: सृजते। अथ वेशान्तान् पुक्षरिणी: स्त्रवन्ती: सृजते। ''स हि कर्ता'' बृ. ४-३-१० य एषु सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मामाण: - तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिन् श्रिता: सर्वे तदुनान्येन कश्चन एतदवैतत् (का. ५-८) ''यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेऽभिपश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्नानिदर्शने '' (छा. ५-२-२८)''पुरूषं कृष्ण कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति (ए. ३-२-४) इत्यादि अनेक श्रुतियाँ।

वा. व. - इन श्रुतियोंका अर्थ क्या है ?

वा. स. - ईश्वर रथ, घोडे, मार्ग, आनंद, सरोवरादि पदार्थोंका निर्माण करता है। ईश्वर सबोंको जन्म देता है। इसलिये स्वप्न पदार्थोंका भी निर्माण करता है। काठकश्रुतिमें कहा गया है - परमात्मा स्वप्नरथ (मनको छोड अन्य इन्द्रियाँ उपरत रहते हैं) समस्त लोगोंसे अपेक्षित पुत्रादिकोंका निर्माण करता है। वही परमात्मा सबोंका आश्रय है।

स्वप्नमें स्त्रीके दर्शन होनेसे, उस मनुष्यकी समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं। छांदोग्य श्रुतिमें कहा है। स्वप्नमें जो पुरूष, काले दाँतवाले को देखता है। उस देखनेवालेकी हत्या देखनेवाला पुरुष करता है। इस प्रकार ऐतरेय श्रुतिमें कहा है।

इस तरह स्वप्न पदार्थ इष्टानिष्ट पदार्थोंके संकेत देते हैं। इष्टानिष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति करता है। इस प्रकार अर्थक्रियाकारित्व श्रुतिमें उक्त होनेके कारण स्वप्न पदार्थ सत्य सिद्ध होते हैं।

वा. व. - स्वप्न पदार्थोंके सत्यत्व का बोध करनेवाला प्रत्यक्ष कौनसा है ?

वा. स. - जागृत अवस्थामें ''घट: सन् पट: सन्'' इत्यादि प्रत्यक्षसे ज्ञात घटपटादि पदार्थ जैसे सत्य समझे जाते हैं वैसे स्वप्न पदार्थ जागरित अवस्थाकी भाँति दिखाई देते हैं, अत: उनका सत्यत्व सिद्ध होता है।

वा. व. - स्वप्न पदार्थोंके सत्यत्व बोधक अनुमान कौनसे हैं ?

वा. स. - ''स्वप्न गजादिकं सत्यं अर्थक्रिया कारित्वात् ईश्वर सृष्टत्वात् जागृत पदार्थवत्''

जागृत पदार्थ ईश्वरसे सृष्ट हैं। वे अन्य पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं, वे जैसे सत्य होते हैं, वैसे ही स्वप्नके गजादि भी ईश्वरनिर्मित होनेके कारण, स्वप्नकामिनी संभोगसे रेतोत्सर्जनादि होते हैं। वे कार्य ही है। अर्थक्रियाकारित्व के कारण ये सभी सत्य सिद्ध होते हैं।

क्रॉस एक्झामिनेशन्

प्र. व. - आचार्यजी ! ''वैधर्म्याच न स्वप्नादिवत्'' (ब्र.सू.२-२-२९) क्या इस सूत्रको आपने देखा है ?

वा. स. - देखा है।

प्र. व. - इस सूत्रकी प्रवृत्ति किस उद्देशसे हुई है ?

वा. स. - ''घट: सन् पट: सन्'' आदि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे घट पटादि समस्त जगतका सत्यत्व ज्ञता होता है। इसीलिये जगतके सत्यत्वका स्वीकार करना चाहिये। इस तरह सूत्रकारने कहा है। जगत्सत्यत्वके घटपटादि समस्त पदार्थ सहित ही जाने जाते हैं। वैसे स्वप्नपदार्थोंको भी सत्य मानना चाहिये। जागृत कालमें सत्यरूपमें ज्ञात शुक्ति रजतादि को सत्य मानना चाहिये। पर इसको किसीने सत्य नहीं माना है। जागृत कालके पदार्थोंको सत्य मानना आवश्यक नहीं, इस तरह के बौद्धोंके आक्षेप के परिहार के लिये यह सूत्र प्रवृत्त हुवा है।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''वैधर्म्याच्च न स्वाप्नादिवत्'' (ब्र.सू. २-२-२९) क्या इस सूत्रको आपने देखा है ?

वा. स. - देखा है।

प्र. व. - इस सूत्रकी प्रवृत्ति किस उद्देशसे हुई है ?

वा. स. - ''घट: सन् पट: सन्'' आदि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे घटपटादि समस्त जगतका सत्यत्व ज्ञात होता है। इसीलिये जगतके सत्यत्वका स्वीकार करना चाहिये। इस तरह सूत्रकारने जगत्सत्यत्वके स्वीकार करनेके लिये बौद्धोंसे कहा है। जागृत कालके घटपटादि समस्त पदार्थ सत्य ही जाने जाते हैं।वैसे स्वप्नपदार्थोंको भी सत्य मानना चाहिये। जागृत कालमें सत्यरूपमें ज्ञात शुक्ति रजतादि को सत्य मानना चाहिये। पर इसको किसीने सत्य नहीं माना है। जागृत कालके पदार्थोंको सत्य मानना आवश्यक नहीं, इस तरह के बौद्धोंके आक्षेपके परिहार के लिये यह सूत्र प्रवृत्त हुवा है।

प्र. व. - इस सूत्रका अर्थ क्या है ?

वा.स. - स्वप्न पदार्थों का शुक्ति रजतादिकोंका बाध ज्ञान आता है। अत: स्वप्नमें सत्यके रूपमें ज्ञात पदार्थोंके जाग्रतके कालमें, जाग्रत कालमें ज्ञात शुक्तिरजतादिकोंको सत्य न समझें। जागृतकालमें सत्यभूत घटपटादि पदार्थोंके लिये बाध मान नहीं आता। ये पदार्थ तीनों कालमें नहीं रहनेवाले है, बाध नहीं होता। अत: जगतको सत्य मानना होगा। यही अर्थ है।

प्र. व. - आचार्यजी ! यह सूत्र स्वप्नपदार्थ बाधित होते हैं। यह बोध करता है या नहीं।

वा. स. - जिन स्वप्न पदार्थोंका ज्ञान असत्य है, बाध ज्ञान है, बाध ज्ञान प्राप्त होता है, वे पदार्थ मिथ्या होंगे। इस विषयका बोध यह सूत्र करता है। समस्त स्वप्न पदार्थ मिथ्या है। ऐसा बोध नहीं करता।

वा. स. - जिन स्वप्न पदार्थोंके मिथ्यात्वके विषयमें प्रमाण है वे स्वप्न पदार्थ मिथ्या हैं, इस विषयको हम मानते हैं।

प्र. व. - कुछ स्वप्न पदार्थोंके मिथ्यात्व बोधक प्रमाण कौनसे हैं ?

वा. स. - "स्वप्ने..... सच्चासच्च सर्वं पश्यति (षट् ४.५) यह श्रुति स्पष्टरूपमें कहती है - जीव स्वप्नावस्थामें सत् पदार्थोंको असत् पदार्थोंको देखताहै, स्वप्नावस्थामें हो जाग्रदावस्थामे हो ज्ञात पदार्थोमें जो बाधित होते है, वे पदार्थ मिथ्या है। जो बाधित नहीं होते वे सत्य हैं। शुक्तिरजतादि जागृतावस्थामें ज्ञात होनेकी तरह दिखाई देंगे तो बाध प्राप्त होनेके कारण उस सत्य रजतको सत्य न समझे। रथादि स्वप्नावस्थामें ज्ञात होनेपर बाध न होनेसे उनको सत्य ही समझना चाहिये।

प्र. व. - समस्त स्वप्नपदार्थोंके विषयमें क्या जागृतकालमें बाध नहीं आता ?

वा. स. - समस्त स्वप्न पदार्थ मिथ्या है। ऐसा बाधज्ञान नहीं आता।" नेदं जागृत् किन्तु स्वप्नमेव" इस तरह स्वप्नावस्थामें ज्ञात पदार्थ जागृत कालमें ज्ञात पदार्थोंमें स्वप्नावस्थामें विद्यमान पदार्थ ही है। ऐसा ज्ञान होता है। किंतु नात्ररजतं - यहाँ चाँदी नहीं। इस प्रकारका बाध ज्ञान जो आता है, वैसे नात्र = वस्तु (स्वप्नावस्थामें) पदार्थ ही नहीं, इस प्रकारका बाधज्ञान नहीं आता। स्वप्नावस्थामें ज्ञात पदार्थोंको जागृतकालीन पदार्थ समझेंगे तो दोनों पदार्थोंमें अभेद समझेंगे। वह अभेद बाधित होता है। स्वप्नपदार्थोंका स्वरूप ही बाधित नहीं होता।

वा. स. - स्वप्नकालमें जिन पदार्थोंके दर्शन होते हैं, वे स्वप्नमें ही दीखते हैं, जागृत कालमें दीखनेवाले पदार्थोंके रूप नहीं। इस प्रकारके ज्ञानमात्रसे स्वप्नकालीन पदार्थोंको मिथ्या नहीं कह सकते। अगर ऐसा कहेंगे तो वैशाखमासमें जिस मनुष्यको देखा नहीं, उस मनुष्य के बारेमें "हमने इसको वैशाखमासमें देखा है, ऐसा ज्ञान होगा, थोडेसे समय के बाद, हमने इसको कार्तिकमासमें देखा है, यह बाध ज्ञान आयेगा तो वह मनुष्यही मिथ्या है ऐसा नहीं होता। उस मनुष्य के विषयमें वैशाखमासमें उस मनुष्यको देखना मात्र मिथ्या होगा, उसी तरह स्वप्नमें वो गतादि पदार्थ दीखे गये, वे गजादि दिनमें देखे गये गजादि नहीं यह बाध ज्ञान होगा, तो वैशाख मास वृत्तित्वमात्र मिथ्या होगा। स्वप्नपदार्थोंको मिथ्या नहीं कह सकता।

प्र. व. - स्वप्न पदार्थोंको पैदा करनेवाला उपादान कारण नहीं है न ?

वा. स. - पूर्वमें (इस जन्ममें भी जन्मान्तरमें भी) जिन पदार्थोंका श्रवण, दर्शन आदिसे उत्पन्न संस्कार मनमें होते है। वे संस्कार ही उपादान कारण बनते हैं।

प्र. व. - आपको किस तरह ज्ञात हुवा की संस्कार ही स्वप्नपदार्थोंके उपादान कारण है ?

वा. स. - हमारे आचार्योके उपदेशसे प्रमाण वाक्योंसे ज्यादा क्या कहे शंकराचार्य के ग्रंथोंसे भी ज्ञात होता है। यह प्रसिद्ध विषय है, सर्वसम्मत विषय है।

प्र. व. - स्वप्नावस्थामें चक्षुरादि इन्द्रियाँ उपरत होती है। (व्यापार रहित बनते हैं) उस समय देखना सुनना आदि क्रियायें किस तरह चलती है ?

वा. स. - ''स्वप्ने... .सच्च असच्च पश्यति'' यह श्रुति जीव स्वप्नावस्थामें पदार्थोंको देखता है, इस तरहका बोध करती है और सबोंको स्वप्नपदार्थ ज्ञान अनुभव सिद्ध होनेके कारण, स्वप्न पदार्थोंका ज्ञान उपपन्न नही होता कहना या आक्षेप करना संभवेगा नहीं।

प्र. व. - स्वप्नपदार्थोंका ज्ञान अनुभवसिद्ध होनेसे भलेही उसका ज्ञान हो पर कारण क्या है कहिये।

वा. व. - यह प्रश्न इस समय अनुपयुक्त है। स्वप्न पदार्थोंका ज्ञान स्वप्नावस्थामें सर्वानुभवसिद्ध है। उसके लिये कोई ना कोई कारण का रहना अनिवार्य है।इस समय उस कारणका नाम निर्देश नहीं कहेंगे। क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं, अत: इस तरह के प्रश्न न पूंछे। कोर्ट मना करे और आज्ञा दें।

कोर्ट - आचार्य जानते हैं तो प्रतिवादि वकीलोंके प्रश्नोंकाउत्तर दे, न जानते हैं, नहीं जानते हैं ऐसा कहें। प्रश्नकी उपयुक्तता या अनुपयुक्तता कोर्टसे संबद्ध है। आचार्यजी आगे बढिये प्रश्नका उत्तर कहिये।

वा. व. - प्रभु की आज्ञा इस तरह ही हो उत्तर कहेंगे। मिस्टर शर्मा ! स्वप्न पदार्थोंको देखता है। स्वरूपभूत ज्ञानसे, साक्षीसे भीदेख सकते हैं।

प्र. व. - स्वप्न पदार्थोंका निर्माण कौन करते हैं ?

वा. स - ईश्वर ही स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करता है। इस तरह श्रुतियाँ कहती हैं।

प्र. व. - वह ईश्वर सगुण है या निर्गुण ?

वा. स. - इस सिलसिलेमें यह प्रश्न अनुपयुक्त होनेसे इसका उत्तर इस समय नहीं कहेंगे।

प्र. व. - मायलॉर्ड ! ब्रह्म निर्धर्मक है, धर्मरहित है, वादिके कथन: के अनुसार स्वप्न पदार्थोंके कर्तृत्व उसके लिये उपपन्न नहीं होता। अतएव इस प्रश्न के उत्तर देनेका आदेश कोर्ट दे।

कोर्ट - आचार्यजी ! प्रतिवादि के वकीलके प्रश्नोंका उत्तर दे।

वा. स. - विश्वमें निर्धर्मक पदार्थ ही अप्रसिद्ध होनेके कारण ब्रह्म निर्गुण है या सगुण है, इस प्रश्नके लिये मौका ही नहीं।

प्र. व. - क्या शशविषाणमें (खरगोश के सींगमें) कोई धर्म है ?

वा. स. - असत्वस्वरूप धर्म, ज्ञेयत्यादि धर्म है।

प्र. व. - स्वप्नपदार्थ पूर्वक्षणमें नहीं होते, उत्तरक्षणमें भी नहीं होते। बीचमें उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, यह किस तरह संभव है ?

वा. स. - बिजुरी पूर्वक्षणमें भी, उत्तरक्षणमें नहीं होती, बीचके समय ही पैदा होती है और नष्ट होती है यह अनुभवसिद्ध है। उसी तरह स्वप्न पदार्थ उसी समय पैदा होते हैं, उसी समय नष्ट भी होते हैं। इस कथनके लिये कोई बाधा नहीं। इसलिये परमात्मासे उत्पन्न स्वप्न पदार्थ सत्य ही है।

प्रतिवादी वकीलने विचारक्रम बन्द कर दिया। आगे नहीं बढने दिया।

संयमनीपुरका हायकोर्ट
O. S. No. 564 of 1927
२६ इस्युके विषयमें प्रतिवादि साक्षीदार की विचारणा
(ता. १५-६-१९२८)

प्र. व. - स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थ सत्य हैं या मिथ्या है ?

प्र. सा. - स्वप्नमें द्वष्ट पदार्थ मिथ्या हैं।

प्र. व. - मिथ्या का अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - रज्जुमेंभासमान सर्प जैसे तीनों कालमें नहीं रहता वैसे तीनों कालोंमें न रहनेवाला पदार्थ मिथ्या है।

प्र. व. - स्वप्न पदार्थ जाग्रदावस्थामें दिखायी देनेवाले पदार्थ की भाँति ही होते हैं या नहीं ?

प्र. सा. - स्वप्न पदार्थ जागृत पदार्थ की तरह नहीं होते।

प्र. व. - वैसे क्यों नहीं ?

प्र. सा. - सूत्रकारने कहा है - ''मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनाभिव्यक्त स्वरूपत्वात्'' (ब्र. सू. ३-२-३) इस सूत्रमें स्वप्नपदार्थोंके पैदा होनेके लिये आवश्यक उपादानकारण और जागृत पदार्थ के जैसे रहने योग्य २) देश ३) काल नही ४) निमित्त कारण भी नहीं ५) पदार्थज्ञान योग्य साधन भी नहीं ६) स्वप्न तीनों कालोंमें नहीं रहते ऐसा बाधज्ञान भी है। इसलिये स्वप्नपदार्थ मिथ्या है। जागृतकालके पदार्थ की तरह नहीं।

प्र. व. - स्वप्नपदार्थ तीनों कालोंमें नहीं रहते, इस प्रकारका बाधज्ञान किस प्रमाण से प्राप्त होता है ?

प्र. सा. - बाधज्ञान श्रुतिसे प्राप्त होता है।

प्र. व. - वे श्रुतियाँ कौनसी है ?

प्र. सा. - न तत्र रथा रथयोगा न पंथानो भवन्ति न तत्र आनंदा: मुद: प्रमुदो भवन्ति - न तत्र वेशान्ता: पुष्करिण्य: स्रवन्त्यो भवन्ति (बृ. ४-३-१०)

प्र. व. - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - उस स्वप्नकालमें रथ नहीं, रथको ले जानेवाले घोडे नहीं, रास्ता नहीं, सुख नहीं यह अर्थ है।

प्र. व. - इस श्रुतिसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - स्वप्नावस्थामें कोईभी पदार्थ नहीं होता यह सिद्ध होता है।

प्र. व. - इससे स्वप्नपदार्थोंका मिथ्यात्व किस तरह सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - किसीभी कालमें न रहनेवाला पदार्थ ही मिथ्या होता है। स्वप्न पदार्थ किसी भी समयमें न रहते अत: मिथ्या हैं।

८३ - सिविल सूट (१-२)

प्र. व. - स्वप्न पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले उपादान १* कारण और निमित्तकारण २* कारण नहीं, ऐसे क्यों कहते हो ?

प्र. सा. - स्वप्नके समय स्वप्न पदार्थोंको एक ही क्षणमें निर्माण करनेवाला समर्थ निमित्तकारण पुरुष नहीं। स्वप्न पदार्थोंका उपादान कारण - रथादिरूपमें परिणाम होनेवाले काष्ठरूप पदार्थ नहीं होनेसे उपादान कारण भी नहीं।

प्र. व. - स्वप्न पदार्थोंके लिये योग्य देश काल क्यों नहीं ?

प्र. सा. - रातमें सोया हुवा मनुष्य स्वप्नमें दिवसको देखता है। उस समय दिवस नहीं होता और जिन रथादिको देहमें देखा गया है, उन रथोंके योग्य जगह भी देहमें नहीं, अत: स्वप्न पदार्थोंके योग्य देश और काल नहीं।

प्र. व. - स्वप्नपदार्थोंका ज्ञान क्यों नहीं होता ?

प्र. सा. - पदार्थोंके ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले, चक्षुरादि इन्द्रियाँ स्वप्नकालमें काम नहीं करते। अत: स्वप्न पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता।

इस तरह स्वप्नपदार्थोंके ज्ञानकारण एकही क्षणमें उत्पन्न करनेवाला समर्थकर्ता, रथादि रूपमें परिणित होनेवाला काष्ठादि उपादानकारण नहीं। योग्य देशकालभी नहीं, स्वप्नपदार्थोंके अभाव का बोध करनेवाला बाधज्ञान है। अत: स्वप्नपदार्थ मिथ्या हैं।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - ''न तत्र रथा'' इस श्रुतिके उत्तर वाक्यको देखा है क्या ?

प्र. सा. - देखा है।

वा. व. - उस श्रुतिवाक्यको कहिये।

प्र. सा. - न तत्र रथ न रथयोगा न पंथानो भवंन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते न तत्रानंदा मुद: प्रमुदो भवन्त्ययानंदान्मुद: प्रमुद: सृजते = न तत्र वेशान्ता: पुथारिण्य: ष्कवन्त्यो भवन्ति अथ वेशान्तान् पुष्करिणी: स्रवन्त्यो भवन्ति अथ वेशान्तान् पुष्करिणी: स्त्रवन्ती: सृजते सहि कर्ता (बृ. ४-३-१०)

वा. व. - इस श्रुतिका आशय क्या है ?

प्र. सा. - स्वप्नावस्थामें रथ, घोडे, मार्ग आदि पदार्थ नहीं होते। बादमें परमात्मा रथ, घोडे आदिका निर्माण करता है। वही परमात्मा सभी पदार्थोंका निर्माण करता है। इसीलिये वही स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करता है। यही इस श्रुतिका आशय है।

१* जो कारण कार्यरूपमे परिणित होता है वह उपादान कारण है। जैसे मिट्टी घडेके रूपमें परिणित होता है। मिट्टी उपादान कारण है।

२* जो कारण कार्यरूपमे परिणत न होकर पदार्थको उत्पन्न करता है। वह निमित्त कारण है। कुम्हार स्वयं घटरूपमें परिणत न होकर, घटका निर्माण करता है। वह निमित्त कारण है - जैसे कुम्हार।

वा. व. - ''य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मिमाण:'' यह श्रुति किस उपनिषत् में है ? इस श्रुतिका तात्पर्य क्या है ?

प्र. सा. - यह श्रुति काठकमें (५-८) में है। जीव सोता रहता है। जो पुरूष जागता रहता है, लोगोंके लिये अपेक्षित पुत्रादिकोंका निर्माण करता है। यही श्रुतिका अर्थ है।

वा. व. - ये दोनों श्रुतियाँ जागृत पदार्थोंकी भाँति स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करती है। वही परमात्मा है ऐसा कहा गया है न ?

वा. स. - सही है, ईश्वर ही स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करता है। ऐसा कहा गया है।

वा. व. - आपकी कितनी संताने हैं ?

प्र. सा. - तीन संताने हैं।

वा. व. - क्या विवाहके पहले ये बच्चे थे ? नहीं थे। ये बच्चे कब पैदा हुए ?

प्र. सा. - विवाह होनेके पाँच साल बाद पैदा हुये।

वा. व. - क्या आपके बच्चे स्वप्न पदार्थकी तरह मिथ्या है ?

प्र. सा. - ये बच्चे स्वप्न पदार्थकी तरह मिथ्या कैसे हो सकते है ?

वा. व. - विवाह के पहले ये बच्चे नहीं थे, मिथ्या क्यों बनते ?

प्र. सा. - ये बच्चे विवाहके पहले न होनेपर भी, विवाहके बाद पैदा हुवे हैं, वर्तमान समयमें हैं, अत: तीनों समय वे नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। इसीलिये उन बच्चोंका मिथ्यात्व संभवेगा नहीं।

वा. व. - ''न तत्र रथा न रथयोगा: ...... अथ रथान्'' यह श्रुति कहती है - स्वप्न पदार्थ स्वप्नावस्थाके पहले नहीं थे। स्वप्नके समय पैदा हुवे हैं। अत: स्वप्न पदार्थोंका मिथ्यात्व कहा नहीं जा सकता।

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''अथ रथान् रथं योगान् पथ: सृजते अथ मुद:...... स हि कर्ता - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - स्वप्न के समय परमात्मा रथादिकोंकी सृष्टि करता है।

वा. व. - ''य एष: सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मिमाण:'' इस श्रुतिका आशय क्या है ?

प्र. सा. - जब लोग सोते रहते हैं, उस समय परमात्मा लोगोंके अपेक्षित पुत्रादिकोंका निर्माण करता रहता है।

वा. व. - स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करनेवाला कौन है ? इस श्रुतिने क्या कहा ?

प्र. सा. - श्रुति कहती है - ईश्वर स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करता है।

वा. व. - ''विकरणत्वान्नेतिचेत्तदुक्तं'' (ब्र.सू. २-१-३१) इस सूत्रभाष्यके भामती व्याख्यान क्या आपने देखा है ?

प्र. सा. - देखा है।

वा. व. - उसमें क्या कहा है ?

प्र. सा. - १* बाह्य काष्ठोंकी अपेक्षा न कर, देहान्त कारणोंसे ही (वासनाओंसे) रथादिसृष्टि दीखती है। यह सृष्टि नहीं हो सकती, इस कारणसे उस सृष्टिको नकारा नहीं जा सकता।

वा. व. - ''अथ रथान्'' इस उपनिषत्के शांकरभाष्यको देखा है ?

प्र. सा. - रोज पाठ पढानेवाले हमसे ''क्या देखा हैं?'' ऐसा क्यों पूछते है ? देखा हीहै।

वा. व. - उसमें रथादिकोंके उपादान कारण क्या कहा है ?

प्र. सा. - ''अथ वेशान्तादीन् सृजते वासनामात्र रूपम्'' - शं. भा. । 'वासनामयी सृष्टिः' इत्यादि वाक्योंमें रथादि मनोवृत्तिरूप वासनाओंसे निर्मित हुए हैं। (वासना उपादान कारण है) इस तरह कहा गया है।

वा. व. - बाह्य रथादिकोंके लकडियॉ जिस तरह उपादानकारण बनती हैं उसी तरह स्वप्नमें गोचर होनेवाले रथादिकोंको मनोवृत्त्तरूप संस्कार उपादान कारण बनते हैं। परमात्मा निमित्त कारण है। भाष्यादि ग्रंथोंसे सिद्ध होनेपर, स्वप्न रथादि सृष्टि करनेवाला नहीं, उपादान कारण नहीं ऐसे क्यों कहते हैं ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - स्वप्नमें पदार्थनिर्माण करनेवाला उपादान कारणभूत संस्कार कहॉ होता है ?

प्र. सा. - मनमें संस्कार होता है।

वा. व - मनस्थित वासनाओंसे परिणत रथादि, मनके आधारभूत देहमें ही रहनेयोग्य हैं। वासनापरिणत रथादिकोंके लिये योग्य देश देह ही है।

प्र. सा. - वासनापरिणत रथादिकोंके लिये योग्य देश देह ही है।

वा. व. - स्वप्नावस्थामें परमात्मा जैसे रथादिकोंका निर्माण करता है वैसे वसंत, काल, रात्रि वगैरह पदार्थोंका निर्माण कर सकता है न ?

प्र. सा. - समस्त पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाला परमात्मा वसंतकाल, रात्रि वगैरहोंका निर्माण कर सकता है।

वा. व. - ग्रीष्म कालमें दिनमें हम सोते हैं, उस समय परमात्मासे निर्मित वसंत काल, रात्री के देखनेमें क्या बाधा हो सकती है ?

प्र. सा. - स्वप्नमें निर्मित वसंतकाल, रात्रीके दीखनेमें कोई बाधा नहीं।

वा. व. - मायलॉर्ड ! ''मायामात्रं'' इस सूत्रके व्याख्यानमें स्वप्न पदार्थोंके मिथ्यात्व प्रतिपादन करते वक्त छ कारणोंको प्रस्तुत किया है, वे छ कारण व्यक्त्यसंगत, स्वव्याहत हैं। (अपने पूर्वकथनके विरूद्ध कथन स्वव्याहति है)

१) बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यमें ''वासनामात्ररूपान्'' ''वासनामयी सृष्टिः'' इन वाक्योंसे वासना (संस्कारको) स्वप्नपदार्थोंके उपादान कारण कहकर ''मायामात्रं तु'' इस सूत्रभाष्यमें स्वप्न रथादि पदार्थोंका उपादान कारण न होनेके कारण स्वप्नपदार्थोंको असत्य कहना अयुक्त और स्वव्याहत भी है। उसी तरह शांकर भाष्यके व्याख्यान कर्ता अद्वैतियोंमें महापण्डित

१* तदनपेक्षान्तर (ब्राह्य कारणानपेक्षानन्तर) करणमात्र साध्सा दृष्टा स्वप्ने रथादि सृष्टिरशक्यापन्होतुं। (भामती)

कहलानेवाले भामतीकारने ब्र. सू. २-१-३१ के भाष्य व्याख्यानमें अन्त:करण मात्रसाध्या द्दष्टा स्वप्ने रथादिसृष्टि: अशक्या अपहनोतुं'' इस वाक्यमें देहान्तस्थ मनमें परिणत वासनारूप कारणसे स्वप्नके रथादि उत्पन्न होते हैं। कहा है अतएव स्वप्नपदार्थ मिथ्या हैं कहना, उसके समर्थनमें स्वप्नपदार्थोंके लिये उपादान कारण नहीं कहना, यह पहला कारण युक्त नहीं।

२) स्वप्नरथादिकोंको, देहस्थित मनोजन्य वासनाही उपादानकारण होनेसे मनोजन्य वासनासे परिणत रथादिकोंको काफी जगह देहमें होनेके कारण कोई बाधा नहीं। अत: देहमें द्दष्टिगोचर होनेवाले पदार्थोंको मिथ्या कहना, यह दूसरा कारण भी असंगत है।

३) देहमें स्वप्नरथादिकोंकी सृष्टि जैसे परमात्मा करता है उसी भाँति रात्रिका ग्रीष्मऋतुका निर्माण भी करता है। अतएव ''स्वप्नमें दिन होते हुवे भी रातका दीखना वसन्तऋतुमें ग्रीष्मऋतुका दीखना, वसंतऋतुमें सोये को ग्रीष्मऋतुका दिखना असंभव नहीं, उस समय दिन नहीं रहता, ग्रीष्मऋतु नहीं होती, अत: स्वप्नमें दिखायी देनेवाले काल न होनेके कारण स्वप्नको मिथ्या कहना यह तीसरा जो कारण वह भी युक्त नहीं।

४) ''सहिकर्ता'' इत्यादि श्रुतियोंमें ईश्वर ही स्वप्न पदार्थोंका कर्ता, कहे जानेके कारण भी, सर्वोपेताच तद्दर्शनात्'' (ब्र.सू. २-१-३०) इस सूत्रमें ''सर्वकर्मा'' ''एतस्य अक्षरस्य प्रशासने गार्गि, ''इत्यादि प्रमाणोंका उध्धरण देकर ईश्वरमें विचित्र सामर्थ्य है, ऐसे शंकराचार्यने भी स्वीकार किया है। इसलिये, एक शिक्षणमें स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करनेवाला समर्थ पुरूष की सिद्धि होनेसे, एक ही क्षणमें स्वप्नपदार्थोंकी सृष्टि करनेवाला पुरूष न होनेके कारण स्वप्न पदार्थ मिथ्या है यह चौथा कारण भी युक्तियोंके विरूद्ध हैं।

५) स्वप्नपदार्थोंका ज्ञान सबोंके लिये अनुभवसिद्ध है। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति असंभावित है। इस स्वप्नीय ज्ञानके कारणको मानना पडेगा। वह कारण कौनसा है ? इस प्रकार विचार करनेपर, स्वप्नके समय मन उपरत नहीं होता। अत: मन ही कारण है ऐसा कहना चाहिये। स्वप्न पदार्थोंके ज्ञानका कुछ कारण न होनेके कारण वह स्वप्न मिथ्या है, यह पाँचवा कारण भी युक्तिसंगत नहीं।

६) 'न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवन्ति अथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते'' यह श्रुति कहती है - जिस स्थानमें पहले रथादि नहीं थे उस स्थानपर ईश्वरने रथादिकोंकी सृष्टि की। इसलिये रथादि पहले नहीं थे यह सिद्ध होता है। लेकिन तीनों कालोंमें नहीं होंगे यह सिद्ध नहीं होता। विवाह के पहले बच्चे नहीं बादमें पैदा हुये, कहनेसे विवाहके पहले बच्चोंका न रहना सिद्ध होगा, बच्चोंका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। 'पहले नहीं था बादमें उत्पन्न हुवा' यह कहनेमात्रसे उस पदार्थका मिथ्यात्व सिद्ध होगा तो, पूर्वमें बि. ए. नहीं था, बादमें बि.ए. हुवा। पूर्वमें घर नहीं था बादमें घर हुवा, इस कथनसे घरके मिथ्यात्वको कहना पडेगा। इसीलिये यह श्रुति कहती है -पहले रथादि नहीं थे, बादमें उत्पन्न हुये, इस श्रुतिकी उक्ति के कारण स्वप्न पदार्थोंका मिथ्यात्त्व सिद्ध नहीं होता। अत: स्वप्न पदार्थोंके लिये ''न तत्र रथा'' श्रुतिसे बाधज्ञान नहीं आ सकता। ''इदं रजतं'' इस ज्ञानके लिये ''नेदं रजतं'' बाधज्ञानके कारण जैसे उस चॉदी का स्वीकार नहीं करते वैसे ही ''न

तत्र रथा न रथ योगा:'' श्रुतिसे बाधज्ञान उत्पन्न होनेके कारण स्वप्न पदार्थोंको मिथ्या समझना चाहिये, इस तरह छटा कारणभी युक्त नहीं अत एव शंकराचार्यका सूत्रार्थ सही नहीं। कोई उसपर गौर करे।

वादि वकीलोंकी दलील (आर्ग्युमेंट)

वादिके विज्ञापनपत्रके अनुसार ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादि परलोक और यह लोक इत्यादि समस्त जगत् सत्य है। इसके लिये श्रुति, ब्रह्मसूत्र गीतारूप प्रस्थानत्रय और प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण हैं। ये सभी प्रमाण जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिपादन करते हैं।

१) ''विश्वं सत्यं'' ऋ. यह वाक्य ब्रह्मातिरिक्त जगतके सत्यत्वका बोध करता है। अद्वैतियोंमें पंडित के नामसे प्रसिद्ध विद्यारण्यस्वामिजीने भी इस वेदके व्याख्यानके समय ''सत्यं'' पदका अर्थ ''अनारोपितं विद्यमानमेव'' किया है। अत: जगत् पारमार्थिक सत्य है, असत्य नहीं इस तरहका अर्थ श्रुति कहती है, यह प्रतिवादिके लिये सम्मत है।

२) ''तदेतत् सत्यं'' (मुं) यह उपनिषत् भी ब्रह्मातिरिक्त कर्मादि जगतको सत्य कहता है। ''तदेतत् सत्यं'' यह वाक्य मांडूक्योपनिषद् में ब्रह्मके और जगतके विषयमें प्रसक्त है। तत् एतत् = वह पूर्वोक्तगुण विशिष्ट ब्रह्म सत्यं – सत्यं है, मिथ्या नहीं इस तरह शंकराचार्यने ही अर्थ लिखा है। और जगतके विषयमें लिखते समय भी एतत् – कर्मादि जगत् सत्यं – सत्य है, मिथ्या नहीं। सत्य ही है ऐसा अर्थ किया है। पर अपने मतके आग्रहसे ''जगत् अपेक्षिक सत्य है, तात्कालिक सत्य है) अपनीकल्पनासे जोडकर ''अपेक्षिक'' पदसे युक्त कराके अर्थ किया है। भले ही शंकराचार्य मतके आग्रहसे किसी भी पदको जोडकर, कोईभी अर्थ करे, पर वेद ब्रह्मके विषयमें ''तदेत्तत्त सत्यं'' इस वाक्यसे ''उसी तरहके सत्यत्त्वका बोध जगतके विषयमें करता है। इस विषयमें कोई विवाद नहीं। अत: यह वाक्य ब्रह्मके सत्यत्वके विषयमें जैसे प्रमाण है वैसे जगतके सत्यत्वके विषयमें भी प्रमाण है।

३) ''याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्य: समाभ्य:'' यह ईशावास्य श्रुतिभी कहती है ''ईश्वरने यथातथ्यको युक्त जगतकी सृष्टि करता है, जगतके सत्यत्वका बोध करता है।

४) '' यच्चिकेत् सत्यमित्तन्नभोघं'' (ऋग्वेद ८-१-१०) यह ऋग्वेद वाक्य कहता है – जो जगत परमात्मासे सृष्ट है वह जगत् सत्य है, इस वाक्यसे भी जगतका पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध होता है।

५) ''असत्यमप्रतिष्ठं ते जगत दाहुरनीश्वरम्'' (गीता अ. १६-८) गीता वाक्यभी कहता है – जगतको असत्य माननेवाले लोग असुर स्वभावके होते हैं। उनको नित्यनरक प्राप्त होता है। इस तरह जगतके असत्य माननेवाले की निन्दा भी करनेके कारण जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

६) ''अथाथो ब्रह्मजिज्ञासा'' ''जन्माद्यस्ययत:'' इन सूत्रोंसे लेकर ''अनावृत्ति: शब्दात्

अनावृत्ति: शब्दात् इस आखरी सूत्रतक सभी सूत्र निम्नरूपसे निरूपण करते हैं। जगतकी सृष्ट्यादि करनेवाला परमात्मा आनंदादिगुणोंसे परिपूर्ण हैं । उस परमात्माको श्रवण, मनन, ध्यानसे जगत्कर्ता, सुवर्णकी तरह वर्णयुक्त, चतुर्मुख का भी कारण नियामक समझकर उ स परमात्माके अपरोक्षज्ञानको प्राप्त करके, प्रकृतिबंधसे मुक्त होकर अपने स्वरूपानंदको प्राप्त करके 'एतत् सामगायन्नास्ते'' इस श्रुतिमें उक्त तरहसे, सामगानसे ईश्वरका स्तोत्र करते रहना चाहिये। जगत् प्रमाणप्रमित है । उसको मिथ्या न माने । ''नाभाव उपलब्धै:'' इत्यादि सूत्रोंसे ''जगन्मिथ्थात्ववादियों के मतका खण्डन करके, जगतको सत्यभूत मानना चाहिये ऐसा निरूपण करता है। इससे जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है।

७) अधिक क्या कहें ? वेद, सूत्र, गीता, प्रस्थानत्रय, प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणोंके सद्भावमें वेदादिमें उक्त समस्त वस्तुवोंके सत्यत्वका स्वीकार करना चाहिये । इसके लिये यह कारण है - ''प्रमाण'' पदमें प्र, मा, ल्युट (अप) इस तरह तीन भाग हैं। प्र - नैज वस्तुका, मा - ज्ञानके लिये, ल्युट - कारण (यथार्थ ज्ञानको पैदा करनेवाला जो है वही प्रमाण है) वेदादिसे ज्ञात समस्त पदार्थ सत्य हैं। इस तरह प्रमाण शब्दका अर्थ होता है। इसीलिये प्रमाणभूत वेदादिसे ज्ञात सभी पदार्थ सत्य हैं। यही सिद्ध होता है। अतएव ''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'' यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा:'' ''इमं मे गंगे यमुने सरस्वती'' इत्यादि वेद, गीता सूत्रोंसे ज्ञात ब्राह्मणादि समस्त जगत् पारमार्थिक सत्य है, मिथ्या नहीं यह सिद्ध होता है। धर्मराज इसपर विचार करें।

प्रतिवादि वकीलकी बहस

ब्राह्मणादि समस्त जगत् मिथ्या है इसके लिये निम्नलिखित कारण हैं।

१) ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'' (छां.) यह वेद ''वाचारंभण मात्रं'' इस पदसे भी ''नामधेयमात्रं'' इस पदसे भी, कार्यभूत घटादिकोंका मिथ्यात्व, कारणभूत मृत्तिकाको सत्यत्व कहकर, घटादि द्दष्टान्तोंसे कार्यभूत जगतके मिथ्यात्व कारणभूत ब्रह्मके सत्यत्व का प्रतिपादन करता है। इस द्दष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मातिरिक्त कार्यभूत जगत मिथ्या है। कारणभूत ब्रह्म एक ही सत्य है। यद्यपि उपनिषदमें (वाचारंभणं विकारो नामधेयं'' इतने पद हैं। उन पदोंका अर्थ ''मिथ्या'' ऐसा नहीं होता। फिर अन्यवाक्योंके अनुसार ''मात्रं'', ''मात्रं'' पदोंको जोडकर वाचारंभणं मात्रं = केवल नाम है, वस्तु नहीं। इस तरहका अर्थ होता है, जिससे कार्यभूत जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

२) ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं'' छांदोग्य यह श्रुतिभी तत् एव = वह ब्रह्म ही सत्यं = सत्य है। दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं। इस तरह यह श्रुति कहती है कि ब्रह्म एक ही सत्य है, ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं । यद्यपि वह वाक्य ''तत् सत्यं'' ब्रह्म सत्य है इतना बोध करता है, पर शंकराचार्यके निरूपण के अनुसार अनेक वाक्योंके अनुसार - ''तत् एव'' ब्रह्म एक सत्य है। दूसरा कुछ भी सत्य नहीं। ऐसा अर्थ होता जिससे जगतका मिथ्यात्व ज्ञात होता है।

३) ''इदं सर्वं यदयमात्मा'' (बृ) यह श्रुति ''इदं सर्वं'' यह सबकुछ अयमात्मा = ब्रह्ममें कल्पितं है, जगतके मिथ्यात्वका बोध करती है।

४) ''ब्रह्मैवेदं सर्वं'' (मुंडक) यह श्रुतिभी, इदं सर्वं = यह सबकुछ, ब्रह्मैव = ब्रह्म ही है, ब्रह्ममें कल्पित है, जगतके मिथ्यात्व का प्रतिपादन करती है।

५) ''आत्मैवेद सर्वं ''छांदोग्य'' यह उपनिषद् भी ''इदं सर्वं आत्मैव'' आत्मामें कल्पित है, जगतके मिथ्यात्वका बोध करती है।

६) बृहदारण्यक (४-४-१९) और काठक ११ इन दोनों उपनिषदोंमें रहा ''नेहनानास्ति किंचन' यह वाक्य नाना किंचन नाना प्रकारका यह विश्व। इह = ब्रह्ममें, नास्ति = नहीं। इस तरह जगतके निषेध होनेके कारण, जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

७) बृहदारण्यकोपनिषत् का ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' यह उपनिषदस्थ श्रुति यत्र= जिस अविद्यावस्थामें (अज्ञानमें), द्वैतमिव = मिथ्याभूत द्वैतकी सत्ता होती है, उस अवस्थामें एक दूसरे को देखता है, कोई शब्दका श्रवण करता है, इत्यादि ''यत्र तु......अस्य सर्वं आत्मैवाभूत तत् केन कं पश्येत्, जिस ज्ञानावस्थामें ज्ञानीके लिये समस्त आत्माही होता है, आत्मातिरिक्त कुछ भी नहीं रहता उस ज्ञानावस्थामें कौन किसको जानेगा, कौन शब्दको सुनेगा, कौन गंधकी महकका अनुभव करेगा ? 'येनं इदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्' जो जीव समस्त जगतको देखता है, उसको कौन जानेगा (कोई किसीको जानेगा ही नही) इस तरह यह वाक्य ज्ञानावस्थामें आत्मातिरिक्त समस्त जगतके अभावका बोध करता है। अत: इस श्रुतिसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

८) ''अथात आदेश: नेति नेति'' (बृ) यह श्रुति, मूर्तामूर्तात्मक समस्त प्रपंचका निषेध करती है, जिससे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

९) ''सर्वंखल्विदं ब्रह्म'' (छां.) यह श्रुति इदं सर्वं = यह पूरा जगत् ब्रह्ममें कल्पित है कहती है।

१०) सूत्रकार बादरायणने भी ''तदनन्यत्वमारंभणादि शब्दादिभ्य:'' (ब्रह्मसूत्र २-१-१४) में वाचारंभण इत्यादि श्रुतियोंसे जगत ब्रह्ममें कल्पित है। यह सिद्ध होनेके कारण, जगतके मिथ्यात्वका प्रतिपादन किया है। इसीलिये ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, स्नान, संध्या, यज्ञ, वेद, देवता, तीर्थ, स्वर्गादि परलोक, यह लोक इत्यादि समस्त जगत् मिथ्या है। जगतके सत्यत्व के विषयमें वादिसे उक्त ''विश्वं सत्यं'' इत्यादि श्रुति, प्रत्यक्ष, अनुमान, सूत्र, गीता ये समस्त प्रमाण जगतके मिथ्यात्व का बोध करनेवाले ''वाचारंभणं'' आदि श्रुतियोंसे दीखनेवाला जगतका सत्यत्व व्यावहारिक सत्य है। ऐसा समझना चाहिये। पारमार्थिक सत्य नहीं। अत: ''विश्वं सत्यं'' इत्यादि प्रमाणोंसे जगतका पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध नहीं होगा। इसीलिये ब्राह्मण वर्णादि जगत् पारमार्थिक सत्य नहीं, मिथ्या है यह सिद्ध होता है। कोर्ट इसपर विचार करे यह हमारी प्रार्थना है।

वादि वकील की फिरसे बहस

धर्मराज प्रभु !

१) ''वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं'' इत्यादि श्रुतियोंको, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म

एक ही सत्य है'' इस विषयमें मि. हरिहर शर्मा अपने कथन के आधाररूपमें प्रस्तुत करते हैं। पर इस तरह आधारके रूपमें लेना निम्नलिखित अनेकों कारणोंसे योग्य नहीं।

अ) ''वाचारंभणं'' श्रुतिमें मिथ्यात्व का बोध करनेवाला पद नहीं।

ब) ''वाचारंभणं'' इस पदके आगे ''मात्रं'' पदको जोडकर ''वाचारंभण मात्रं'' शब्द मात्रसे प्रतिपाद्य वास्तवमें पदार्थ नहीं। ''वाचारंभणं'' पदका अर्थ होता है। उसी तरह ''नामधेयं'' पदके आगे भी ''मात्रं'' पदको जोडकर, केवल नाम है वस्तु नहीं। ऐसा अर्थ होता है। यही नामधेयं पदका अर्थ इस तरहका कथन युक्तिसंगत नहीं। वेदगत पदोंके आगे, अपने पसंदके किसी पदको रखकर, किया हुवा अर्थ वेदार्थ नहीं होगा। इसी तरह किसी पसंद के शब्दके साथ किया हुवा अर्थ वेदार्थ होगा तो ''सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' इस श्रुतिमें भी सत्यं इत्यादि पदके साथ न. न. न को रखकर ब्रह्म न सत्यं ब्रह्म सत्य नहीं, ब्रह्म न ज्ञानं = ब्रह्म ज्ञानरूप नहीं, ब्रह्म न अनंतं = ब्रह्म अपरिच्छिन्न नहीं, इस तरह किया हुवा अर्थ भी श्रुत्यर्थ बन सकता है। इसीलिये वेदमें अविद्यमान पदको नये रूपमें जोडकर प्राप्त अर्थ श्रुत्यर्थ नहीं हो इसे स्वीकार नहीं करना चाहिये, प्रतिवादिको भी यह सम्मत है। अत: ''वाचारंभणं'' श्रुति कार्यरूप घटादि पदार्थोंका मिथ्यात्व बोधक नहीं हो सकती।

क) मृत्तिका रूप कारण का सत्यत्व बोधक ''सत्यं'' पद वेदमें होनेपर भी ''मृत्तिका'' ब्रह्मातिरिक्त होनेसे अद्वैतमतके अनुसार वह मृत्तिका मिथ्या ही होगी। अत: उस पदको मृत्तिकाके सत्यत्व प्रतिपादनमें तात्पर्य नहीं, इसे अद्वैती भी मानते हैं, इसीलिये मृत्तिकाके कार्यरूप घटादि पदार्थोंको मिथ्यात्व और मृत्तिकारूप कारणका सत्यत्व बोधक वेद नहीं होगा। अद्वैतमतके अनुसार मृत्तिका भी कार्य है, घट भी कार्य है, मृत्तिका सत्य है, घट मिथ्या है यह कहना युक्ति युक्त नहीं।

ख) मृत्तिकारूप कारण सत्य है, मृत्तिकाके कार्यरूप घटादि असत्य है, यह श्रुतिका कथन है ऐसा माननेपर भी ब्रह्मातिरिक्त मृत्तिका सत्य होनेपर, ब्रह्म एक ही सत्य है, समस्त जगत् मिथ्या है, यह सिद्ध नहीं होगा। इस कारणसे ''वाचारंभणं'' श्रुति जगतके मिथ्यात्व के विषयमें आधार नहीं बनता।

२) ''तत् सत्यं'' इस वाक्यमें मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। यह वाक्य तत् - ब्रह्म सत्यं - सत्य है यह बोध करता है। जगतके मिथ्यात्त्व का बोध नहीं करता। तत् पदके साथ एव पदको मिलाकर ''तत् एव'' ब्रह्म एक ही सत्य है, दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं, इस तरह अर्थ करना चाहिये। यह जो शंकराचार्यका कहना है, सही नहीं। पूर्वोक्त रीतिसे नये रूपमें पदको मिलाकर जो श्रुत्यर्थ होना चाहिये। इस प्रकारके शास्त्रार्थके रहनेपर भी शंकराचार्य अपने मतके साधन करनेके आग्रहसे, किसी पदको जोडकर कोई अर्थ करे, वह श्रुत्यर्थ नहीं होगा। इतना ही नहीं जगतके मिथ्यात्व बोधक एक भी पद वेदमें नहीं।

इस कारणसे, अन्य वाक्य मिथ्यात्व बोधक होनेके कारण, उन वाक्योंके अनुसार ''तत् सत्यं'' के साथ एव पद जोडकर अर्थ करना चाहिये। इसी तरह वाचारंभणं वाक्यमें मात्रं मात्रं पदको जोडकर अर्थ करना चाहिये यह प्रतिवादिका कथन संगत नहीं।

३) 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इस वाक्यमें जगतके मिथ्यात्वज्ञापक पद ही नहीं। ''आत्मा'' पदका

आत्माधीन अथवा आत्माश्रित इस प्रकारका अर्थ क्यों न करें ? इतना नहीं ''योन्यत्रात्मनो ब्रह्मवेद'' इस पूर्ववाक्यमें ब्रह्मसे भिन्न वस्तुमें ब्रह्मक्षत्रादि आश्रित हैं। ऐसे समझनेवाले की निंदा की गयी है। ''यो परादात्'' इन शब्दोंसे। इसलिये ब्राह्मणक्षत्रियादि सभी पदार्थ परमात्मा के आश्रयमें ही हैं यही विचार पूर्व वाक्यमें होनेसे ''यदयमात्मा'' इस उत्तर वाक्यस्थ ''यत्'' इस शब्दको सप्रम्यन्त समझकर ब्राह्मणादि समस्त जगत जिस पुरुषमें आश्रित है वही परमात्मा है, ऐसा अर्थ करें। अद्वैतियोंका अर्थ पूर्ववाक्यके विरूद्ध होता है और ''यदयं'' इस पदका यत् पद व्यर्थ होता है।द्वैतसिद्धान्तके अनुसार ब्राह्मणादि अद्वैतियोंका अर्थ पूर्ववाक्यके विरूद्ध होता है और ''यदयं'' इस पदका 'यत्' पद व्यर्थ होता है। द्वैतसिद्धान्त के अनुसार ब्राह्मणादि जगत् ''यत्'' जिसमें आश्रित है वही परमात्मा है यह अर्थ पूर्ववाक्यके अनुकूल होगा। ''यत्'' पदकी सार्थकता होगी। सर्व वैदिक पदोंका मुख्यार्थ स्वीकार भी होगा। अत: इदं सर्वं यदयमात्मा ''यह वाक्य जगन्मिथ्यात्व बोधक नहीं।

४) a) ''ब्रह्मैवेदं विश्वं'' श्रुतिमें जगन्मिथ्यात्व बोधक पद नहीं।

b) ''ब्रह्मैवेदं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणत: ''इत्यादि पूर्व वाक्योंसे ब्रह्म सामने है, ब्रह्म पीछे है, इस तरह ब्रह्मके अस्तित्व का निर्देश विशिष्ट स्थानोंमें कहकर ''ब्रह्मैवेद विश्वं'' वाक्य ब्रह्म विश्वं = जगतमें व्याप्त ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व:'' इस गीता वाक्यके अनुसार विश्वमें ब्रह्मकी व्याप्तिका प्रतिपादन किया है।

c) ''विश्व ब्रह्म है'' इस तरह कहनेपर भी ब्रह्मसे जगत् अभिन्न है ऐसा अर्थ सिद्ध होता है। जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता।

d) मिथ्याजगत सत्य ब्रह्मस्वरूप नहीं हो सकता, ब्रह्मस्वरूपका आशय है ब्रह्ममें कल्पित यह अर्थ भी संगत नहीं होगा। क्योंकि जगत्के मिथ्यात्व सिद्धिके विना सत्यभूत ब्रह्मस्वरूप नहीं होता, कथन भी अप्रासंगिक है। जगत सत्यभूत ब्रह्म स्वरूप नहीं यह प्रमित होनेतक जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होगा। अत इस वाक्यसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता है।

५) इस उपनिषतमें ही ''तदेतत् सत्यं'' वाक्य जिस प्रकार ब्रह्मका पारमार्थिक सत्यत्वका बोध करता है, उसी प्रकार दूसरा ''तदेतत् सत्यं'' वाक्य कर्मादिरूप जगतके सत्यत्वका बोध करता है। इस तरह शंकराचार्यने भी कर्मादि जगत सत्यं - अवितथतं मिथ्या नहीं, इस तरह अपने भाष्यमें कहकर अपने मतके आग्रहसे कहा है, ब्रह्मके सत्यत्वका प्रतिपादन करते समय जगतका सत्यत्व अपेक्षित है। शंकराचार्य कुछ भी कहे हमारी वेदमाता ''तदेतत् सत्यं'' वाक्यसे ब्रह्मके सत्यत्वका जिस तरह प्रतिपादन करती वैसे ही जगतके सत्यत्वका भी प्रतिपादन करती है। ''अत: ब्रह्मैवेद सर्वं'' इस वाक्यसे भी जगतका सत्यत्व सिद्ध नहीं होता।

a) ''आत्मैवेदं सर्वं'' इस वाक्यमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद नहीं।

b) ''आत्म'' शब्दके मुख्यवृत्तिसे प्रतिपाद्य अर्थ को छोडकर अमुख्यवृत्तिसे अभिधेय अर्थको कहना हो तो ''आत्मा'' शब्दसे अमुख्यवृत्तिसे प्रतिपन्न ''आत्मामें कल्पित'' इस अर्थका ग्रहण ही

क्यों करे ? ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वं'' इत्यादि वाक्यके अनुसार आत्मा, सर्वं = सर्वव्याप्त अर्थका स्वीकार क्यों न करे ? यह अर्थ ''आत्मैवाधस्तात्, आत्मा उपरिष्टात्'' इत्यादि पूर्ववाक्योंके और अन्य वाक्योंके अनुकूलऔर अविरूद्ध होगा।

आत्म शब्दका आत्मामें कल्पित यह अर्थ पूर्ववाक्योंके सत्यबोधक अनेक वाक्योंके विरूद्ध होगा। ''जगत् कल्पित है'' इस अर्थके लिये अनुकूल प्रमाण नहीं इसलिये यह अर्थ ग्राह्य नहीं होगा।

c) इस मंत्रके बाद ''सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति'', ''एवं पश्यन् एवं मन्वान:'' इत्यादि वाक्योंमें परलोक के सद्भावका उल्लेख है। उस परलोकमें ज्ञानी घूमते रहते हैं। इस तरह परलोक, ज्ञान, संचार अनेक जगतके संबंद्ध अनेकोंका उल्लेख है। इनके पहले ''आत्मैवेदं सर्वं'' अर्थ जगतके मिथ्यात्व के विषयमें प्रस्तुत करना ''मेरी मा वंध्या है'' वाक्यकी तरह स्वव्याहत है। पूर्व वाक्यका विरूद्ध होगा। इसलिये इस वाक्यका अर्थ जगतके मिथ्यात्वपर नहीं होगा।

d) पूर्व वाक्यस्थ आत्माको उद्देश करके, आत्मा पूर्व, पश्चिम, सर्वत्र व्याप्त है, इसका विधान करता है। यह कहना आवश्यक है। ''सर्वं आत्मा'' आत्माको उद्देश करके आत्मामें कल्पित है, ऐसा विधान युक्तिसंम्मत नहीं। ''अत:'', ''आत्मैवेदं'' वाक्य मिथ्यात्व बोधक नहीं। बल्कि '' इदं जगत् वरिष्ठं वरतमं। इस तरह शंकराचार्यने जगतको उत्तमोउत्तम कहा है, जगत सत्य है यह सिद्ध होता है। जगत मिथ्या होगा तो उसका उत्तमोत्तम किस तरह संभवेगा ? इसलिये ''आत्मैवेदं सर्वं'' वाक्य मिथ्यात्व साधक नहीं होगा।

६) काठक और बृहदारण्यक विद्यमान ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यमें जगतके मिथ्यात्वज्ञापक पद नहीं।

काठक वाक्यके पूर्वमें रहे पाँचवे मंत्रमें परमात्माको पूर्वकालमें स्थित भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले जगतका स्वामी नियामक कहा गया है। इस युक्तिसे जगतका सत्यत्वही प्रतिपादन हुवा है।

''यतश्चोदेति सूर्य: अस्तं यत्र च गच्छति'' इस नवम मंत्रमें भी सूर्यका उदय, सूर्यका अस्त जिस परमात्माकी प्रेरणासे होते हैं, उस परमात्माके आश्रयमें देवता रहते हैं। कोईभी परमात्माका अतिक्रमण नहीं कर सकता। इस पूर्व वाक्यसे सूर्यादि उदय और अस्त सत्य सिद्ध होते हैं।

''नेहनाानस्ति किंचन'' वाक्यसे जगतके निषेध के लिये जगतका अनुवाद किया गया है, कहना भी युक्त नहीं। क्योंकि पूर्वमें किसी प्रमाणसे पदार्थ प्रसक्त होनेपर, उसका अनुवाद करके अन्य प्रमाणसे उसका निषेध करना होगा। अन्य प्रमाणोंसे स्वर्गादि प्रसक्त ही नहीं हुये है। वेद स्वयं स्वर्गादि लोकोंकी सत्ताको कहकर लोगोंमें भ्रम को पैदा करके, वेद उसका निषेध करता है यह कथन भी सही नहीं। ''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'' न्यायके विरूद्ध है। उद्देश पूर्वक कीचडमें पैर रखकर कीचडसे सजे पैरोंका धोनेकी अपेक्षा, कीचडसे दूर रहना ही अच्छा है। अत: वेद स्वर्गादि लोकोंके भ्रमको पैदा करके, उसकाही निषेध करता है, यह कहना भी युक्तियुक्त नहीं।

''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यके अनंतर १२ और तेरहवे मन्त्रोंमे ''ईशानो भूतभव्यस्य'' इस तरह परमात्माको भूत भविष्य जगतके स्वामी के रूपमें पुन: पुन: कहा गया है। निषेध करनेके

बाद पुन: किसी वस्तुके सद्भावको कहना संभव नहीं। इसलियें यह श्रुति निषेधके लिये अनुवाद करती है, श्रुतिको उस विषयमें तात्पर्य नहीं ऐसा कहना कतई युक्त नही। अत: इस श्रुतिमें उक्त जगतको सत्य ही मानना चाहिये।

''नेहनानास्ति किंचन'' काठक और बृहदारण्यक वाक्यके पूर्वमें ''मनसैवेदमाप्तव्यं मनसैवेदं द्रष्टव्यम्'' वाक्य हैं। इन वाक्योंमें कहा है - जीव, परमात्माको मनसे जानता है। इस वाक्यमें जीव ज्ञाता परमात्मा ज्ञेय मन करण है। आदिका वर्णन है और जीव, परमात्मामें ज्ञातृ ज्ञेय संबंध होनेके कारण, जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता है। इस तरह शंकराचार्यने अपने ग्रंथमें अनेकों स्थानोंपर कहा है। उनका कथन स्वीकारके रूपमें है। इसलिये जीव परमात्माका भेद ज्ञान, करण (मन) इत्यादि जगत सत्य है। यह ''मनसैवेति'' वाक्यसे सिद्ध होता है। अत: ''नेहनानास्ति किंचन'' इस श्रुतिका अर्थ जगत के मिथ्यात्वपर न करके, ''यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्यो: स मृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति'' (काठक ४-१०) जो परमात्मा इस लोकमें वही परमात्मा है। परलोकमें रहा परमात्मा ही इसलोकमें है। उस परमात्माके रूपमें भेद नहीं। परमात्माके रूपमें जो भेदको जानता है, वह मृत्यु प्राप्त करता है। इस तरह पूर्व वाक्यमें उक्त होनेके कारण ''मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानास्ति किंचन'' इस लोकमें, परलोकमें भी रहनेवाले परमात्माके ज्ञानको शुद्ध मनसे प्राप्त करना चाहिये। अर्थात परमात्माके नियामकरूपमें भेदकी कल्पना न करें। (इस लोकस्थित परमात्मा अन्य है, परलोकस्थित परमात्मा दूसरा है, मेरा नियामक परमात्मा अलग है, तुम्हारा नियामक परमात्मा भिन्न है ऐसा न समझे) इह - इस परमात्मामें किंचन नाना परमात्माके अन्तर्यामिरूपादिमें भेद नहीं। परमात्माके अन्तर्यामि रूपोंमें भेद समझनेवाले नरकादिको प्राप्त करते हैं, ऐसा अर्थ करे। ''नेहनानास्ति किंचन बृहदारण्यकके १९ वाक्यके पहले 'ईशानो भूतभव्यस्य ' १५ वे मंत्रमें परमात्माका वर्णन भूभव्य भविष्यतं जगतके स्वामीके रूपमें कहकर जगतके सत्यत्वका प्रतिपादन किया है।

सोलहवे मंत्रमें भी, प्रकाशमान पदार्थोंको भी प्रकाश देनेवाला ''इस तरह देवता परमात्माकी उपासना करते हैं, सत्रहवे मंत्रमें प्राण, चक्षुरादि, आकाश वगैरह जिस परमात्माके आश्रयमें है, वह परमात्मा सर्वाश्रय है। इस तरह जाननेवाले मोक्ष प्राप्त करते हैं। अठारहवे मंत्रमें परमात्मा प्राण, चक्षु, श्रोत्रादिकोंको क्रियाकरण शक्ति देता है, देखनेकी सामर्थ्थ देता है। ऐसे परमात्माको मनसे ही जानना चाहिये। इस प्रकार देवादिलोक, प्राण, चक्षु, आकाश, मन, ज्ञातृज्ञेय, उपासना आदि पूरा जगत सत्य सिद्ध होता है।

आगे बावीसवें मंत्रमें ''सर्वस्य वशी, सर्वस्येशान:, सर्वस्याधिपति:'' आदिवाक्योंसे पूरे जगतका स्वीकार करके, परमात्मा उस जगतका स्वामी है, नियामक आश्रय है। इत्यादि कहा गया है। ''वंध्याका पुत्र ही नहीं, उस समय ईश्वर वंध्यापुत्र का नियामक और आश्रय है कहना युक्त नहीं। इसलिये ''नेहनानास्ति किंचन'' इस बृहदारण्यक वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्योंसे जगतका सत्यत्व सिद्ध होता है। यही नहीं ''नेहनानास्ति किंचन'' इस वाक्यके पहले विद्यमान ''मनसैवानुद्रष्टव्यम्'' भी जीवपरमात्माके भेदको, ज्ञान, ज्ञाता, करण, मन आदि जगतको सत्य

कहता है। इस तरह ब्रह्मविद्याभरणकारने अप्पय्य दीक्षितने अपने अपने ग्रंथभी कहा है।

''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' वाक्यमें ''इव'' पद प्रयुक्त होनेके कारण, यह वाक्य द्वैत प्रपंच के पारमार्थिक सत्यत्वका बोधक है। इस तथ्यका स्वीकार शंकराचार्यने टीकाकार आनंदगिरीने, सुरेश्शराचार्यने किया है। अत: यह श्रुति जगतके मिथ्यात्व प्रतिपादक है यह कहना अद्वैतियोंके कथन के विरूद्ध है।

''यत्र द्वैतमिव भवति'' वाक्य यद्यपि जगतके सत्यत्वका बोध करता है। ''वाचारंभणं'' ''एकमेवाद्वितीयं'' ''आत्मैवेदं सर्वं'' ये वाक्य जगतके मिथ्यात्व प्रतिपादक हैं, अत: जगतको मिथ्या ही समझें। इस तरह शंकराचार्यने अपने ग्रंथमें जो कहा है वह सही नहीं। क्योंकि ''वाचारंभणं'' आत्मैवेदं सर्वं'' श्रुतियोंमें मिथ्यात्व बोधक पद नहीं। यही नहीं इस श्रुतिका अर्थ मिथ्यात्व पर है,शंकराचार्यने अपने उपनिषत्के भाष्यमें नहीं कहा है। एकमेव = सृष्टि के पहले अपनेसे सष्ट पदार्थसे रहित था। अद्वितीयं = सहकारी बने द्वितीय पदार्थसे रहित। शंकराचार्यने इस प्रक. अर्थ किया है। अत: यह श्रुति जगतके मिथ्यात्वबोधक नहीं। ''यत्र वा अस्य सर्वं आत्मैवाभूत् तत्केनं कं पश्येत्'' येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विजातारमरे केन विज्ञानीयात्'' यह वाक्य स्वरसत: जीवेश्वर भेदका बोधक है। इस तरह ब्रह्मविद्याभरणकारने और अप्पय्य दीक्षितने अपने अपने ग्रंथमें कहा है। ''विज्ञातारम्'' पद मोक्षमें भी ज्ञान कर्तृत्व का ज्ञापक है,शंकराचार्यने इस तरह कहकर, अपने मतके अभिमानसे संसार कालीन कर्तृत्वका बोधक है। ऐसा कहते है।

''येनेदं'' वाक्य सरसरूपसे भेद प्रतिपादक है। हमारा (अद्वैतियोंका) अर्थ अस्वरस है। हमारी वाक्ययोजना क्लेशकारक है। पर पूर्वमें अभेद प्रसक्त होनेके कारण, स्वरसत: प्राप्त भेदरूप अथ का त्याग करके अस्वरस अर्थ का ही ग्रहण करना चाहिये। अद्वैतियोंने वाक्य योजना के क्लेशको स्वीकार किया है, इसलिये पूर्ववाक्यमें अभेदके प्रसक्त न होनेपर भी यह श्रुति जगतके मिथ्यात्वका जीवेश्वरके अभेदका प्रतिपादक नहीं।

जगत प्रमाणोंसे उपलब्ध है। उपलब्ध होनेपर भी जगतके मिथ्यात्वको कहना यह दोष है। इसलिये सूत्रकारने जगतके मिथ्यात्त्वका प्रतिपादन करनेवाले बौद्धमतका खण्डन नहीं किया है कहकर पुन: जगतके मिथ्यात्त्व का प्रतिपादन करना स्वद्व्याहत है।

द्वितीय वस्तुके सद्गावमें ही कोई अन्यकारणोंसे दूसरी वस्तुको देखता है, यह युक्त है। अद्वैतमतके अनुसार आत्मातिरिक्त वस्तु न होनेसे, किन इन्द्रियोंसे किसके रूपको देखेगा ? जिस परमात्मासे जीव सबकुछ जानता है, जीव उस परमात्माको किस तरह जानेगा ? अपने आपको किस तरह जानेगा ? अपने आपको किस तरह समझेगा ? इसीलिये मोक्षावस्थामें अपना ज्ञान, परमात्मा ज्ञान, गंधादि विषयक ज्ञान अवश्य रहते हैं। ऐसा मानना चाहिये। जक्षन्, क्रीडन्, रममाण: इस श्रुतिमें कहा गया है। अत: मोक्षावस्थामें सबकुछ आत्मारूपमें रहता है ऐसा न कहे। इस प्रकार यह श्रुति मोक्षावस्थामें ज्ञाता, ज्ञेय, प्रपंचके सद्भावका बोध करती है, इस पर कोर्ट सूक्ष्म द्दष्टिसे देखे यह हमारी प्रार्थना।

८) नेति नेति वाक्य मूर्तामूर्तात्मक प्रपंचसे परमात्मा अन्य है। ऐसा प्रतिपादन करता है (ब्रह्म जगद्रूप नहीं, पर जगतही नहीं ऐसा बोध नहीं करता। पर नहीं कहनेसे पट मिथ्या होगा। किन्तु घट पटरूप नहीं कहनेसे पट मिथ्या नही होगा। घट अन्य है, पट भिन्न है कहनेसे भेद सिद्ध होता है। उसी तरह ब्रह्म मूर्त नहीं, अमूर्त नहीं कहनेसे, ब्रह्ममें मूर्तामूर्तात्मक जगतसे भेद सिद्ध होता है। मूर्तामूर्तात्मक प्रपंचका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता।

इस वाक्यमें मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। इस वाक्यसे जगतके मिथ्यात्वका साधन नहीं कर सकते।

९) ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' श्रुतिमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं। ब्रह्म शब्दसे ब्रह्ममें कल्पित अर्थ मुख्यवृत्तिसे नहीं हो सकता। लक्षणावृत्तिसे यह अर्थ होगा। ब्रह्म शब्दके मुख्यार्थका त्याग करनेपर इतर प्रमाणोंके अविरूद्ध अर्थका ही ग्रहण करना चाहिये। इस वाक्यके अगले वाक्य सर्वकाम, सर्वगंध. वाक्यका व्याख्यान करते हुये, शकंराचार्य कहते है - कामोऽस्मि भरतर्षभ'' इस गीता वाक्यके अनुसार ''परमात्माको सर्व कामरूप क्यों न कहे ? इस तरहकी शंका लेकर, काम परतंत्र है। जन्य है। इस कामका और परमात्माका अभेद कहनेपर परमात्माका स्वातंत्र्य, अनादित्व, नष्ट हो जायेंगे। अत: सर्वकाम पदके लिये सर्वकाम स्वामी ऐसा अर्थ शंकराचार्यने कहा है। ''कामोऽस्मि''गीता वाक्यके लिये कृष्णपरमात्मा कामरूप है। ऐसा न कहकर काम ईश्वर के वशमें है ऐसा ही अर्थ कहे। (कृष्ण परमात्मा कामका स्वामी है ऐसा ही अर्थ कहना चाहिये) ऐसा ही अर्थ शंकराचार्य कहते है। ''सर्वस्य वशी एष सर्वेश्वर: सर्वस्याधिपति: स्र्वस्येशान: एष भूताधिपति: एष भूतपाल:'' इत्याद्यनेक वाक्योंके अर्थ लिखते समय इसी तरह शंकराचार्यने लिखा है। जगत ब्रह्मके अधीन ब्रह्म जगतका स्वामी है और बृ. २-५-१ मंत्रके व्याख्यानमें अद्वैतिभी ''इदं सर्व'' यह सर्वप्राप्ति साधन है (सबकुछ पानेके लिये यही कारण है) इस तरह सर्व शब्दका अर्थ लिखा गया है। इसी तरह ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' वाक्यकाभी अर्थ होगा। जैसे - यह पूरा विश्व ब्रह्मके वशमें है अथवा इदं ब्रह्म यह ब्रह्म सर्वं - सर्वप्राप्ति का साधन है। यह अर्थ समर्पक है। इसलिये ''ब्रह्मैवेदं सर्वं'', '' सर्वं यदयमात्मा'' आत्मैवेदं सर्वं इत्यादि वाक्योंकी तरह यह वाक्यभी जगतके मिथ्यात्व बोधक नहीं।

१०) a)''वाचारंभणं'' इत्यादि श्रुतियोंसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। पर शंकराचार्यने कहा है - इस श्रुतिसे जगतका मिथ्यात्व सिद्ध होता है। इस तरह शंकराचार्य का व्याख्यान करना युक्ति संगत नहीं।

b) ''तदनन्यत्वमारंभणादि शब्दादिभ्य:'' सूत्रमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पद ही नहीं।

c) इस सूत्रमें जगतके मिथ्यात्व बोधक पदही नहीं। ''तत्''पदसे जगतका ग्रहण करना चाहिये। इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। अत: यह सूत्र जगतके मिथ्यात्त्वका बोधक ऐसा कहना युक्त नहीं।

d) ''तदनन्यत्व'' पदगत ''तत्'' पदसे ब्रह्मका ग्रहण करना चाहिये इस विषयमें कोई आधार नहीं। अन्य प्रमाणोंके अनुसार ''तत्'' पदसे प्रकृतिका ग्रहण करके जगत् प्रकृतिसे अभिन्न है ऐसा

अर्थ क्यों न करें ? इसलिये ''तत्'' पदसे ब्रह्म ही ऐसा अर्थ करना युक्त नहीं ।

e) ''तत्'' पदसे ''ब्रह्म'' अर्थ ग्रहण करनेपरभी ''अनन्यत्व''पद तत् पदसे बोध्य जो ब्रह्म है, उस ब्रह्मके अभेदको ही दिखाता है, न कि जगतके मिथ्यात्व का बोधक है ।

f) भेदाभेद विरूद्ध है, इसलिये जगत ब्रह्मसे भिन्न हो या अभिन्न हो, जगत ब्रह्मसे भिन्न भी नहीं अभिन्न भी नहीं। इस प्रकार अद्वैतियोंका कहना सही नहीं।

g) अद्वैतमत माया कल्पित होनेके कारण, जितने दोष आ जायेंगे वे दोष अद्वैतियोंके लिये भूषण है, वे अद्वैतियोंके साथी, अद्वैतियोंके अनूकुल है। इस अद्वैती कहते है। इस तरहके अनुपपन्न मतका स्वीकार किस तरह करेंगे। इसी कारणसे ''तदनन्यत्व'' प्रतिज्ञाभाग जगतके मिथ्यात्व प्रतिपादक है ऐसा कहना अयुक्त है।

h) ''आरंभण'' पद '' वाचारंभणं'' पदकाउत्तर भाग है, उत्तर भागको ग्रहण करके, श्रुतिको उदाहरण के तौरपर दिखाना यह संप्रदायके अनुरूप नहीं होगा । ''आरंभण शब्दादिभ्य: हेतुभाग स्थित आरंभण शब्दसे वाचारंभणं विकारो नामधेयं श्रुतिको सूत्र सूचित करता है, यह कहना भी असंगत है।

पूर्वमें उक्त तरहसे जगत मिथ्या है । इस विषयमें श्रुति, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष अनुमानमें एकभी प्रमाण न होनेके कारण, जगत पारमार्थिक सत्य है। इस विषयमें श्रुति, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण हैं। जगत पारमार्थिक सत्य है, मिथ्या नहीं। धर्मराज इसपर विचार करे।

भ्रमके विषयमें वादिके वकीलकी बहस

प्रतिवादि (अद्वैत) मतके अनुसार ब्रह्ममें जगतके भ्रम युक्ति संगत नहीं, अत: ब्राह्मणवर्णादि जगत् कल्पित है ऐसा कहना युक्त नहीं।

भ्रमके लिये अधिष्ठान, आश्रय (भ्रान्त मनुष्य) होने चाहिये। अधिष्ठानमें सामान्य धर्म, विशेष धर्म आरोपित होनेवाली वस्तुका साद्दश्य हो । भ्रान्त होनेवाले मनुष्यको अधिष्ठानगत सामान्य धर्मका ज्ञान, विशेष धर्मका अज्ञान आरोप्य वस्तुका साद्दश्य ज्ञान हो। इस ज्ञानके लिये कारणीभूत देहेंन्द्रिय चाहिये । उदाहरण - रज्जुमें सर्प का भ्रम पैदा होनेके लिये कारणीभूत ''इदंत्व'' रूप (अर्थात् सामने दीखना) सामान्य धर्म और रज्जुत्वरूप विशेषधर्म सर्पकी लंबार्ध की लंबाई हो, भ्रम प्राप्त करनेवाले मनुष्यमें ''इदं'' रूप सामान्य धर्मसे युक्त रज्जुका ज्ञान है। पर रज्जुत्वका ज्ञान नहीं। रस्सेका ज्ञान नहीं (अज्ञान है) सर्प की लंबाईके जैसे लंबाई का ज्ञान है। उस ज्ञानके लिये कारणीभूत इन्द्रियादि होनेके कारण रज्जुमें सर्पका भ्रम पैदा होता है।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' कहनेवाले अद्वैतियोंके अनुसार ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तु न होनेसे ब्रह्ममें ब्रह्मको भ्रम आता है। (ब्रह्म ही भ्रमका अधिष्ठान ब्रह्मही भ्रमका आश्रय है) ऐसा मानना पडेगा । ब्रह्म निर्धर्मक है (समस्त धर्म रहित है) इसी कारण उस ब्रह्ममें, अधिष्ठान योग्य सामान्य धर्म, विशेष धर्म आरोपके आवश्यक जगतका साद्दश्य नहीं। भ्रम प्राप्त करनेके लिये कारणीभूत सामान्य

ज्ञान विशेष धर्म का अज्ञान , साद्दश्यज्ञान, ज्ञानके लिये कारणीभूत देह इन्द्रियॉं नहीं । अत: ब्रह्म जगत् विषयक भ्रमके लिये अधिष्ठान और आश्रय नहीं होगा। भ्रमका अधिष्ठान और आश्रय न होने के कारण जगद्विषयकभ्रम युक्त नहीं होगा।

अद्वैतमतमें भ्रमसंभवता नहीं । इसे हमही नहीं कहते, पूर्वोक्त कारण प्रकार न होनेसे शंकराचार्य, भामतीकार आदि अद्वैतियोंने ही ४-१-३ ब्रह्मसूत्र व्याख्यानमें ''युक्तंहि'' इत्यादि वाक्योंसे स्वीकारा है । अत: जगद्विषयक भ्रम युक्त होनेसे ब्राह्मणवर्णादि जगत् रज्जुसर्पकी तरह भ्रममूलक दीखनेवाला मिथ्या कहना युक्तियुक्त नहीं।

भ्रमके विषयमें प्रतिवादि वकील की दलील

ब्राह्मण वर्णादि जगत् ब्रह्ममें कल्पित है (भ्रमसे दीखता है) जगत मिथ्या है (तीनों कालोंमें नहीं)

यद्यपि ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'' अद्वैतमतके अनुसार ब्रह्ममें ब्रह्मको भ्रमको मानना पडेगा । भ्रमके अधिष्ठानभूत ब्रह्ममें सामान्य धर्म विशेषधर्म आरोपित होने योग्य जगतका साद्दश्य ये सत्य न होनेपर भी, कल्पित धर्म है। अत: भ्रमका अधिष्ठान बन सकता है। भ्रमके आश्रय बननेवाले ब्रह्ममें सत्यभूत सामान्य धर्म ज्ञान, विशेष धर्मका अज्ञान, देह इंद्रिय न होनेपर भी कल्पित सामान्य धर्मका अज्ञान देह इंद्रिय न होनेपर भी कल्पित सामान्य धर्मका ज्ञान, विशेष धर्मका अज्ञान, देह, इन्द्रियाँ होनेके कारण ब्रह्म भ्रमका आश्रय बन सकता है। धर्मादिकोंकी कल्पना के लिये (भ्रमके लिये) कारणीभूत भ्रमादि पूर्व भ्रमसे कल्पित है। इस तरह भ्रमपरंपरा को मानना बीजांकुर न्यायकी तरह योग्य होती है।

भ्रम मायिक होनेसे भ्रमकी अनुपपत्ति भूषण ही है । (मायाया: अनुपपत्ति: भूषणमेव) इस कारणसे जगत भ्रान्तिकल्पित है, अत एव मिथ्या है। कोर्ट इसपर गौर करे।

भ्रमके विषयमें वादिके वकीलकी फिर दलील

शंकराचार्य, भामतीकारादि अद्वैतियोंने कहा है - भ्रम पैदा होनेके लिये, अधिष्ठानमें सामान्य धर्म विशेष धर्म, आरोप्यमाण पदार्थका साद्दश्य वैसे ही सामान्य धर्म जाननेवाला, विशेष धर्म न जाननेवाला ये सभी चाहिये। अद्वैतमतमें ये न होनेके कारण भ्रमही उपपन्न नहीं होता। अत: ब्रह्ममें जीव तत्त्वका आरोप उपपन्न नहीं होगा। जीव जीव ही है, ब्रह्म ब्रह्म ही है। जीव भिन्न है, ब्रह्म भिन्न है। इस तरह शंकाको लेकर प्रतिवादि वकीलके कथनके अनुसार, अविद्या कल्पित सामान्य धर्म होनेसे धर्मयुक्त पदार्थोंमें जिस तरह भ्रमका आभास होता है। उसी तरह अज्ञानावस्थामें भ्रमका आभास होता है। सूक्ष्म विचार करनेपर भ्रमही नहीं। भ्रम कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्वरूप संसार ही नहीं।

अद्वैतमतके अनुसार भ्रमका संयोजनही नहीं हो सकता। संसार युक्त नहीं होता। इन विषयोंमें द्वैतवादियोंने जिन दोषोका आरोपण किया है उन समस्त दोषोंकी आपत्ति होती है, इसलिये वह

भ्रम, वह संसार कैसे आये उनका उत्तर नहीं दे सकते। (अनिर्वचनीय कहना ही युक्त है। इस तरह (ब्र.सू. ४-१-३) के व्याख्यानमें भामतीकारने कहा है। अत: अद्वैतमतके अनुसार भ्रमकी घटना ही नहीं होती। धर्मराज प्रभु अपने मनमें रखें।

बौद्धोंने अद्वैतियोंकी तरह भ्रम परंपराको स्वीकार किया था। अद्वैतियोंने अनवस्था दोषसे बौद्धोंको दूषित किया। तब बौद्धोंने उत्तर दिया, बीजांकुरन्यायके जैसे भ्रमपरंपराको मानते हैं। बीज अंकुरका कारण, अंकुर बीजका कारण, यह स्पष्ट है। उनका कार्यकारण भाव प्रमाणिक है। प्रामाणिक कार्यकारण भावकी घटना के लिये बीजांकुर न्याय को मानना योग्य है। विज्ञानवादमें जगतका भ्रम अप्रामाणिक होनेके कारण उस अप्रामाणिक कार्यकारण भावके संयोजनके लिये अप्रामाणिक भ्रमपरंपराको मानना दोषयुक्त है। इस परंपराको मानना ठीक नहीं। अद्वैतियोंने ही बौद्धोंपर दोषोंको कहा है। ब्रह्ममें जगतका भ्रम ही नहीं। (अप्रामाणिक) मानकर जगद्विषयक भ्रमके संयोजनके लिये कल्पना की जानेवाली भ्रमपरंपरा दूषित है। अत: उसका स्वीकार करना योग्य नहीं। यह तथ्य अद्वैतियोंके वाक्योंसे सिद्ध होते हुये भी, उस दोषपूर्ण परंपराको मानना अयुक्त है, कोर्ट इसपर ध्यान रखे।

भ्रम अविद्याकल्पित होनेके कारण युक्ति विषय नहीं बन सकता। अर्थात् युक्तियोंसे भ्रमका संयोजन नहीं किया जा सकता यह भूषण है। भ्रमकी प्रामाणिकता हो तो ब्रह्म एक सत्य, भ्रम सत्य, दो सत्योंके सिद्ध होनेपर अद्वैतमतही नष्ट हो जायेगा। इसलिये ब्रह्मातिरिक्त भ्रम या अद्वैतमत कोई भी प्रामाणिक नहीं। इसे प्रतिवादी मान चुका हैं। अद्वैतमतके अनुसार ब्राह्मणादि वर्णादि युक्त जगतका भ्रम घटित नहीं होता। अत: जगतको कल्पित मानना अयुक्त है।

स्वप्न पदार्थके विषयमें वादि वकील की बहस स्वप्नपदार्थ सत्य हैं, मिथ्या नहींइसके लिये कारण -

१) अथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते - अथानंदान् मुद: प्रमुद: सृजते..... .अथ वेशान्ता पुष्करिणी: स्रवन्ती: सृजते स हि कर्ता (४-३-१०) इस श्रुतिमें जो समस्त जगतका निर्माण करता है, वही स्वप्नावस्थामें रथ, घोडे, संतोष, सरोवर, नदी पदार्थोंका निर्माण करता है। ऐसा उक्त होनेके कारण स्वप्न पदार्थोंकी सत्यता सिद्ध होती है। ईश्वर मिथ्या पदार्थोका निर्माण करता है। ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं होगा।

२) ''य एषु सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मिमाण: (कठ) यह श्रुतिभी कहती है जीव की सुप्तावस्थामें परमात्मा उन पुरुषोंके ईप्सीत पुत्रादि पदार्थोंका करता है। इससे भी स्वप्न पदार्थोंकी सत्यता सिद्ध होती है।

३) '' स्वप्ने..... सच्च असच्च पश्यति (षटप्रश्न) इस उपनिषत् में भी कहा गया है। जीव स्वप्नावस्थामें सत्य पदार्थोको देखता है। इससे भी स्वप्नपदार्थोंका सत्यत्व सिद्ध होता है।

४) ''यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेभिपश्यति समृद्धि तत्र विजानीयात् तस्मिन् स्वप्न निदर्शने'' (छां) पुरूषं कृष्णदंत पश्यति स एव हन्ति (ऐ) ये दोनों श्रुतियाँ कहती है - स्वप्नपदार्थ शुभके और अशुभके सूचक होते हैं। स्वप्न पदार्थोके शुभाशुभ सूचकत्व होनेके कारण और ''स्वप्न

पदार्थो: सत्या: अर्थक्रियाकारित्वात् '' इत्यादि अनुमानोंसे भी स्वप्न पदार्थ सत्य सिद्ध होते हैं।

५) 'गज सन्, घट: सन् ' इत्यादि अबाधित प्रत्यक्षसे भी स्वप्न पदार्थ सत्य सिद्ध होते हैं।

स्वप्न पदार्थ सत्य होनेके कारण स्वप्न पदार्थ की तरह जगत मिथ्या है यह कहना युक्त नहीं होता।

स्वप्नपदार्थ के विषयमें प्रतिवादि वकीलके ऑर्ग्युमेंट

स्वप्न पदार्थ मिथ्या है सत्य नहीं कारण –

१) स्वाप्नपदार्थोंके कोई उपादान कारण नहीं इसलिये स्वाप्न पदार्थ मिथ्या है।

२) देहमें दिखाई देनेवाले स्वप्न रथादि पदार्थोंके लिये पर्याप्त जगह न होनेके कारण स्वप्न रथादि मिथ्या हैं।

३) स्वप्नावस्थामें रात्रिके समय दीखनेवाला दिन, वसंतऋतुमें दीखनेवाली ग्रीष्मऋतु न होनेसे स्वप्न पदार्थ मिथ्या है।

४) एक ही क्षणमें विचित्र नानाविध स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करनेवाला पुरूष न होनेसे स्वप्नपदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध होता है।

५) स्वप्नावस्थामें सर्वेंद्रिय उपरत होनेके कारण स्वप्न पदार्थोंको दिखाने के लिये इन्द्रिय न होनेसे स्वप्नपदार्थ मिथ्या है।

६) ''नेदं रजतं'' यह रजत नहीं। रूप बाधज्ञान के कारण सीपमें दीखनेवाली चाँदी जिस तरह मिथ्या होती है, उसी तरह ''न तत्र रथा: न रथयोगा: न पंथानो भवन्ति तत्र आनंदा मुद:प्रमुदो भवन्ति' (बृ. ४-३-१०) इस श्रुतिसे स्वप्नपदार्थके अभावरूप बाधज्ञानसे स्वापपदार्थ मिथ्या सिद्ध होते हैं। ''मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात्'' इस ब्रह्मसूत्रमें भगवान् बादरायणने कहा है। अत: स्वप्नपदार्थ मिथ्या है, न सत्य।

''वैधर्म्याश्च न स्वप्नादिवत्'' सूत्रमें ''जाग आते ही, यह जागृतावस्था नहीं थी, यह तो स्वप्न था। इस तरहका बाधज्ञान प्राप्त होता है, इसीसे यह सिद्ध होता है कि स्वप्नपदार्थ मिथ्या है। सत्य नहीं।

स्वप्ने .... सच्च असच्च पश्यति (षट्) यह श्रुति, पदार्थोके प्रतिभासिकत्व का बोध करती है। इस श्रुतिसे स्वप्नपदार्थोंका पारमार्थिक सत्यत्व सिद्ध नहीं होता।

स्वाप्नपदार्थके विषयोंमें वादि वकील का री-ऑर्ग्युमेंट

वा. व. – माय लॉर्ड ! प्रतिवादिने ''मायामात्रंतु'' सूत्रपर शंकराचार्यके लिखे व्याख्यान के अनुसार स्वाप्नपदार्थोंके मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिये जो छ कारणोंको कहा है वे कारण अयुक्त,

स्वव्याहत हैं।

१) बृहदारण्यकोपनिषत् के भाष्यमें ''वासनामात्ररूपान्'' वासनामयी सृष्टि, इन वाक्योंसे स्वाप्न पदार्थोंके लिये संस्कार (वासना)को उपादान कारण है ऐसा स्वयं कहकर, सूत्रभाष्यमें स्वप्न रथादि पदार्थोंके उपादान कारण नहीं। उपादान कारण न होनेके कारण स्वप्नमें दीखनेवाले रथादि पदार्थको मिथ्या कहना अयुक्त, स्वव्याहत होगा। उसी तरह शंकरभाष्यका व्याख्यान करनेवाले, अद्वैतियोंके महापण्डित के रूपमें प्रसिद्ध भामतीकारने अपने ब्र.सू. २-१-३१ व्याख्यानमें ''अन्त:करण साध्या द्दष्टा स्वप्ने रथादि सृष्टि:, अशक्या अपन्होतुं'' इस वाक्यसे स्वप्नपदार्थ देहगत मनसे परिणत वासनारूप कारणोंसे रथादि उत्पन्न कारण न होनेसे, स्वाप्न पदार्थ मिथ्या है ऐसा कहना युक्त नहीं। स्वाप्न पदार्थोंका उपादान कारण ही न होनेसे उनका मिथ्यात्व सिद्ध होता है यह कहना सही नहीं।

२) मनोजन्य वासनासे बने स्वाप्न रथादिकोंको, योग्य पर्याप्त स्थान शरीरमें ही है, अत: कोई बाधक नहीं। स्वाप्न पदार्थोंके लिये योग्य जगह देहमें न होनेके कारण, देहमें दिखाई देनेवाले रथादि मिथ्या, इस तरह उक्त दूसरा कारण युक्त नहीं।

३) परमात्मा देहमें जिस तरह स्वप्न पदार्थोंका निर्माण करता है, वैसे ही दिनको, ग्रीष्मऋतुको भी पैदा करता है।अत: स्वप्नमें रातमें दिन दीखता है, वसंतऋतुमें सोया हुवा मनुष्य स्वप्नमें ग्रीष्मऋतुको देखता है। उस समय ग्रीष्मऋतुभी नहीं होती। उस समय दिन भी नहीं होता। अत: स्वप्नमें दीखनेवाला काल न होनेसे, कालको, स्वप्नको मिथ्या कहना, यह तीसरा कारण भी युक्त नहीं।

४) ''स हि कर्ता'' इत्यादि श्रुतिमें स्वाप्न पदार्थोंका कर्ता ईश्वर ही है, ऐसा उक्त होनेके कारण और ''सर्वोपेताच तद्दर्शनात्'' (ब्र.सू. २-१-३०) सूत्रमें ''सर्वकर्मा'' ''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' इत्यादि प्रमाणोंका व्याख्यान करके, ईश्वरके विचित्र सामर्थ्यको शंकराचार्यने स्वीकार किया है। एक ही क्षणमें स्वप्न पदार्थोंके निर्माण करनेवाला समर्थ पुरुषके सद्भावकी सिद्धि होती है। एक ही क्षणमें स्वप्नपदार्थ निर्माण करनेवाला समर्थ पुरूष न होनेसे स्वाप्न पदार्थ मिथ्या, कहना, यह चौथा कारण भी युक्त है।

५) स्वाप्न पदार्थोंका ज्ञान पैदा होता है। यह सबोंके लिये अनुभव सिद्ध है। कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति असंभवित है। अत: स्वाप्नीय ज्ञानके लिये कोई कारण होना चाहिये। इसे सबोंको मानना पडेगा। यह कारण कौनसा होगा ? विचार करनेपर स्वाप्नंकालमें मन उपरत नहीं होता उस मनको ही कारण समझे। अथवा दूसरे किसीकारण बताना पडेगा। स्वाप्नपदार्थोंके ज्ञानके लिये कारण न होनेसे स्वप्न पदार्थोंको मिथ्या कहना यह पाँचवा कारण भी युक्त नहीं।

६) 'न तत्र रथा न रथ' होगा 'न पंथानो भवन्ति, अथ रथान् रथयोगान् पथ: सृजते' यह श्रुति कहती है। जिस स्थानमें पहले रथादि नहीं थे, बादमें ईश्वरने रथादिकोंका निर्माण करता है। इसलिये पूर्वमें रथादि नहीं थे, यह सिद्ध होता है न कि रथादि कभी नहीं थे, कभी न रहेंगे यह सिद्ध

नहीं होता।

विवाह के पहले बच्चें नही थे, बादमें पैदा हुये, शादी के पहले नहीं थे यही सिद्ध होता है। न कि बच्चे तीनों कालमें नहीं रहेंगे ऐसा सिद्ध नहीं होता।

पहले नहीं थे बादमें पैदा हुये कहनेमात्रसे पदार्थोंका मिथ्यात्व सिद्ध होता तो, पहले बि.ए. नहीं। अब वह परीक्षा पास करके बि. ए. हुवा। पहले घर नहीं था, अब घर निर्माण हुवा इस कथनसे घरको मिथ्या समझना पडेगा। इसीलिये श्रुतिमें पहले नहीं रथ थे बादमें निर्माण हुवे यह कहनेसे स्वप्न रथादिकोंके लिये ''न तत्र रथा'' इस श्रुतिसे बाधज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ''इदं रजतं'' ज्ञानके लिये ''नेदं रजतं'' रूप बाध ज्ञान प्राप्त होनेके कारण, जैसे उस रजतको रजत नहीं समझते,उसी तरह ''न तत्र रथयोगा'' इस श्रुतिसे स्वप्नपदार्थ तीनों कालोंमें नहीं होते इस बाध ज्ञानके कारण भी युक्त नहीं। अत: शंकराचार्यका सूत्रार्थ सही नहीं।

''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' सूत्रमें स्वप्न पदार्थोंको बोध प्राप्त होता है ऐसा सूत्रकारने नहीं कहा है।

समस्त स्वाप्नपदार्थ मिथ्या हैं। ऐसा बाधज्ञान कभी नहीं आता। ''नेदं जागृति किंतु स्वाप्नेमेव'' इस तरह - स्वप्नावस्थामें ज्ञात पदार्थ, जागृत कालमें ज्ञेय पदार्थ नहीं। स्वाप्न कालके वे पदार्थ है ऐसा बाध ज्ञान आता है। ''नात्र रजतं'' यहाँ रजत नहीं। बाध ज्ञानकी तरह ''नात्र वस्तु'' यहाँ पदार्थ ही नहीं ऐसा बाधज्ञान नहीं आता। स्वाप्नकालमें ज्ञात पदार्थोंको जागृत अभिन्न मानता है। उन जागृत पदार्थोंका अभेद बाधित होता है। स्वप्नपदार्थोंका स्वरूप ही बाधित नहीं होता।

स्वाप्नपकालमें जो पदार्थ ज्ञात होते हैं, वे स्वप्नकालमें ही रहेंगे। जागृतकालमें विदित होनेवाले वे पदार्थ नहीं। इस तरह के ज्ञानके कारण ही उन पदार्थोंको मिथ्या कहेंगे तो, वैशाख मासमें अनदेखे मनुष्यके विषयमें, मैंने उसको वैशाखमासमें देखा नहीं। कार्तिकमासमें देखा है। इस तरह बाधज्ञान प्राप्त होनेपर उस मनुष्यको मिथ्या समझना पडेगा। वह मनुष्यही मिथ्या नहीं होगा।उस मनुष्यके विषयमें भासमान वैशाखमासमें रहना मिथ्या होगा। उसी तरह गजादि पदार्थ स्वप्नमें द्रष्ट पदार्थ है। वे जागृत कालमें द्रष्ट नहीं। इस प्रकार बाधज्ञान आयेगा तो, स्वप्न पदार्थके विषयमें विदित जागृत कालवृत्तित्व ही मिथ्या होगा। स्वप्नकालमें पदार्थ ही मित्या है ऐसा बाधज्ञान नहीं आयेगा। जागृतकाल वृत्तित्व ही मिथ्या होगा। स्वप्नपदार्थ मिथ्या नहीं होंगे।

''संध्ये सृष्टिराह हि'' इत्यादि सूत्रोंमें ईश्वर स्वप्नपदार्थोंका निर्माण करता है, ऐसा सूत्रकारने कहा है। स्वप्ने सच्च...... असच्च पश्यन्ति (षट् प्रश्न) यह श्रुति भी स्वप्न पदार्थोंको सत्य कहना चाहिये ऐसा निरूपण करती है। समस्त प्रमाण पारमार्थिक सत्यत्व का ही प्रतिपाद न करते हैं। व्यावहारिक सत्यत्व का बोध नहीं करते। इस तरह प्रतिवादि अद्वैतियोंने बौद्धोंका खण्डन करते वक्त ''सच्च पश्यति'' श्रुतिसे ज्ञात सत्यत्वको मिथ्या कहना स्वव्याहत होगा। इन कारणोंसे स्वप्न पदार्थ मिथ्या नहीं। परमार्थ सत्य ही हैं। इस विषयपर कोर्ट विशेषरूप से विचार करें।

श्री गुरूभ्योनम :

संयमीनीपुर के हायकोर्टमें ओ. यस्. न. ५६४-१९२७

२८ के कलियुग के शालिवाहन शक १८४९

चीफजस्टिस धर्मराज एच्. बी. के सामने चली वेदान्त की विचारणा।

सिविलसूट ३ इश्यू

जज्मेंट

वादि : विष्णुदासाचार्य	प्रतिवादि : गंगाधर शास्त्री
वकील : माधवदास	वकील : हरिहर शर्मा
P.P.D.	P.B.S.

दावा

वादीसे लिखी गयी पैरवी :

१. वादिने वैदिक आस्तिक समाज के प्रतिनिधी के रूपमें कोर्ट की अनुमति पाकर पैरवी की है :

२. कोर्ट की इजाजतसे, इस दावेमें अद्वैत समाजके प्रतिनिधिके रूप में , गंगाधर शास्त्री को चुना है।

३. वादी आस्तिक वैदिक मतका पक्षधर है।

४. वैदिक मत के तत्त्व

१) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, यज्ञादि क्रियायें, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादिपर लोक, यह लोक, इत्यादि समस्त जगत सत्य है।

२) विष्णु (परब्रह्म) सर्वोत्तम सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, अनंत कल्याण गुणोंसे परिपूर्ण है।

३) परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है।

४) परब्रह्म सर्वोत्तम, सर्वकर्ता जीवोंसे भिन्न है ''इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्षका साधन है।

५) उपरोक्त तत्त्व वेदोंमे, वेदार्थ निर्णायक ब्रह्मसूत्रोंमें, श्रीमद्भगवद्गीता में कहे गये है। समस्त वैदिक इनतत्त्वोंका स्वीकार करने में आबध्द हैं।

६) यह वैदिकमत अनादिकालसे प्रचलित हैं।

७) तत्त्वों की वास्तविकता यही होनेपर भी, गौडपादाचार्य, उनके परमशिष्य शंकराचार्यने, वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता, इन के दूसरे अर्थोंकी कल्पना करके विज्ञानवादि बौध्दमतको, शून्यवादि बौध्दमतको, वैदिक मत की वेषभूषा चढाकर, उस मतको वैदिकमत की भॉति भासमान करके, लोगों को गुमराह किया है, अवैदिक तत्त्वोंका उपदेश किया है।

इस प्रकार करना प्राचीन शिक्षा नियम के अनुसार भगवद्गीताके अध्याय १६ वे अनुसार दण्डनीय अपराध होगा.

८. अद्वैत मतका प्रतिवादी इस तरह उपदेश करता है -

१०३ - सिविल सूट (३)

१. विष्णु सर्वोत्तम, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता नही, अनंतगुणपूर्ण भी नही. ब्रह्म समस्त धर्मोसे रहित है.

२. चौथे विभाग के (a) विभाग में उक्त ब्राह्मणादि समस्त जगत् मिथ्या है (तीनों कालों में नहीं)

३. परब्रह्म जीवोंसे भिन्न नहीं.

४. परमात्मा जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्म है, यह ज्ञान मोक्ष के लिये साधन नही; अहं ब्रह्मास्त्रि, मैं ही ब्रह्म हूँ. इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्ष साधन है.

९. वेद, सूत्र गीता में. उक्त तत्त्वोंको विपरीतरूपमें समझकर 'नष्टात्मानोऽल्पबुध्दय: प्रभवन्त्युग्रकर्माण : (गीता, १६ अध्याय श्लोक ९) में उक्त तरहसे, स्वयं अधोगति प्राप्त करते हैं, दूसरोंको भी आस्तिकमतसे च्युत करके अवैदिक अद्वैतमत का आश्रय लेनेके लिये बाध्यकरके, अधोगति की ओर ले जाते है।

इसलिये हम अदालतसे प्रार्थना करते हैं - वे निम्न लिखित रूप निर्णय लेनेकी कृपा करें ।

१. परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है सर्वोत्तम है। ब्राह्मणादिवर्ण, ब्रह्मचर्यान्निश्रम, वेद, यज्ञ, देवता, गंगादि तीर्थोसे युक्त यह जगत सत्य है। मिथ्या नहीं। यही वैदिक मतके तत्त्व हैं। प्रतिवादिसे उक्त ब्रह्म का निर्गुणत्व, जीवोंसे आभिन्नता जगतका मिथ्यात्व वैदिक मतके तत्त्व नही।

२. वेद, ब्रह्मसुत्र, गीता का विरूध्द अर्थ की कल्पना करके जगत् के मिथ्यात्व का, ब्रह्मके निर्गुणत्वका, उपदेश जो प्रतिवादीसे किया जाता है, यह शास्त्र के विरूद्ध है, इस तरह का निर्णय अदालत करें।

९. अदालत जिसे युक्ति युक्त समझती है, उसका भी निर्णय करें।

१०. कोर्ट इस तरह का निर्णय नहीं करेगा तो लोगोंको बडे दु:खका अनुभव करना पडेगा।

इस तरह वादिने २५-३-२७ के दिन वकील माधवदास के द्वारा पैरवी कराके प्रमाणपत्र भी दिया गया है। बादमें प्रतिवादि के नामपर समन जारी किया गया. प्रतिवादि से ३०.०३.२७ के दिन लिखित स्टेटमेंट दाखिल किया गया है।

प्रतिवादिका स्टेटमेंट

१. वादि की अर्ज में उक्त समस्त विषय झूठ है।

२. वादिने अर्जी के चौथे विभाग में लिखित तत्त्व, वेद, सूत्र, गीता में उक्त होने पर, थे सभी विषय सत्य हैं ऐसा तात्पर्य नहीं. अत: ये तत्त्व वैदिक नही. असंबध्द आलाप है।

३. वादि का मत अनादिकालसे प्राप्त नही.

४. वादिने चौथे विभाग में जो कहा है वह पूरा झूठ है।

१. अद्वैतमत ही वैदिक मत है।

२. अद्वैतमतको बौध्दमत कहना युक्ति संगत नहीं ;

३. हमसे उक्त अर्थ ही वेदार्थ है

५. अद्वैतमतके तत्त्व -

१. ब्रह्मातिरिक्त ब्राह्मणादि वर्ण,देवता,संध्यावन्दनादि कर्म इत्यादिसे युक्त जगत् स्वप्न की तरह असत्य है.

२. परब्रह्म निर्गुण है. (समस्त धर्मोंसे रहित है)

३. जीव ब्रह्म एक ही है.

४. ''अहं ब्रह्मास्मि ''मैं ही ब्रह्म हूँ, इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्ष साधन है.

५. इस विषय का निर्णय पहले ही हो चुका है, अत: पुन: विचार करने का आधिकार कोर्ट को नही. (The case is barred by Resjudicate)

६. वादिने जो नववे विभाग में कहा है असत्य है.

७. अद्वैतमतके आश्रयसे कोई भी नष्ट नहीं हुवा। दु:ख नहीं हुवा।

इन कारणोंसे कोर्ट वादि के विषय में कोई भी निर्णय न देकर उसके दाखले को खारिज करें.

इस प्रकारके स्टेटमेंट को वकील हरिहर शर्मा से दाखला करके प्रमाणपत्र लिखकर दिया है। इसके पश्चात् वादि प्रतिवादि के सामने, उनकी उपस्थिति में निम्नलिखित विषय कहे गयै है.

वादग्रस्त विषय

१. रेस्ज्यूडिकेट हैं. या नहीं ? अर्थात् इन विषयोंका निर्णय पूर्व में हो जाने के कारण, पुन: विचार करनेका अधिकार कोर्टको है या नहीं ?

२. अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, आदि जगत् सत्य है या असत्य है ?
   ब) स्वप्न सत्य है या मिथ्या ?

३. परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है या अभिन्न ?

४. परब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्त और जागत्कर्ता, समस्त कल्याणादि गुणोंसे परिपूर्ण है या नहीं ?

५. अ) अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या नहीं ?
   ब) अद्वैतमत वैदिक है या नहीं ?

पहला जो विचारणीय विषय ३.७.२७ के दिन दोनों पक्षके मध्यमें दलीलोंके पेश करनेके उपरान्त यह दावा रेसज्युडिकेट नहीं हो सकता ऐसा निर्णय किया गया है।

अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, आदि पूरा विश्व सत्य है या असत्य ?

ब) स्वप्न पदार्थ सत्य हैं या असत्य है इस दूसरे इश्शयूका विचार करके, ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम यज्ञादि क्रियासे युक्त जगत सत्य है, मिथ्या नहीं, इसका निर्णय कोर्टने दिनांक २८-८-१९२८ के दिन किया है।

ब्रह्म जीवसे भिन्न है, या अभिन्न यह तीसरे इश्यूका विचार करके, जीवब्रह्मके भेद विषयमें वादिके प्रमाणित श्रुतियाँ, सूत्र, गीता के प्रमाणोंसे जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है, इस तथ्यको प्रतिवादिने स्वीकार किया है। वास्तवमें सभी प्रमाण भेदबोधक हैं। जीवब्रह्मके ऐक्य बोधक के विषयमें प्रतिवादिसे प्रस्तुत तत्त्वमस्यादि श्रुतियाँ, सूत्र, गीता के वाक्य, जीवब्रह्मके ऐक्य बोधक

होनेके कारण, जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन मुख्यवृत्तिसे करते हैं, इस तथ्यकी स्वीकृतिके कारण -

ब्रह्म जीवोंसे भिन्न है, अभिन्न नहीं।

कोर्टने निर्णय किया है जैसे -

(वादि एक्झिबिट) प्रतिवादि एक्झिबिट

१) 'स आत्मा तत्त्वमसि' वाक्यमें ''अतत्'' ऐसा पदविभाग किया जा सकता है, ''त्वं'' तुम ''अतत्'' परमात्मासे भिन्न हो, इस तरह यह (तत्त्वमसि वाक्य) परमात्मा और जीवके भेद बोधक है।

२) तत् 'ऐसा विभाग करने पर भी संसर्गासङ्गि सम्यग्धि हेतुताया गिरामियं। उक्ताखण्डतातत्त्वाद्वा तत्प्रतिपदिकार्थता। इत्यादि वाक्योंसे यह तत्त्वमसि वाक्य ''चित्'' ऐसा बोध उत्पन्न करता है। (अखण्डार्थ बोधक है) इस तरह स्वीकार किये जानेके कारण यह वाक्य जीवेश्वर के ऐक्यका बोध नहीं करता।

३) सखण्डार्थबोधक होनेपर ''तत्'' पदसे वाच्य १* सर्वेशत्वादि गुणविशिष्ट परमात्मासे ''त्व'' पदसे वाच्य अल्पज्ञत्वादि गुणविशिष्ट जीवके साथ एकता नहीं होगी। इस प्रकार शंकराचार्यका कथन है। वास्तवमें अल्पज्ञत्व, सर्वज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मोंसे युक्त जीवपरमात्माकी एकता युक्तिसंगत नहीं होती। अत: यह ''तत्त्वमसि'' वाक्य अल्पज्ञत्वादि धर्मविशिष्ट जीवके साथ सर्वज्ञत्वादि गुणविशिष्ट परमात्माके साथ एकताका बोध नहीं करता।

४) यद्यपि मुख्यवृत्तिसे ''तत्'' पदसे सर्वेशत्वादि गुण विशिष्ट चेतन वाच्य होता है (वह परमात्मा) लेकिन लक्षणावृत्तिसे सर्वेशत्वादि गुणोंका त्याग करके, केवल (चित्) अर्थ ही बोधक होगा। उसी तरह ''त्वं'' पदका अर्थ मुख्यवृत्तिसे अल्पज्ञत्वादि गुणविशिष्ट ''चित्'' (जीव) बोधित होगा, ब्रह्मचित् के साथ जीवचित् से ऐक्य कह सकते हैं। यही तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य है। यह कथन युक्तियुक्त नहीं। क्योंकि -

a) लक्षणावृत्तिसे पद उसी समय बोधक होता जब, पूर्वमें इस पदार्थ का ज्ञान हो ब्रह्म (चित्) प्रत्यक्ष, अनुमानसे ज्ञात नहीं होता, लक्षणावृत्तिसे प्रयुक्त शब्दसे ही जानना होगा। लक्षणावृत्तिसे जाननेके लिये पहले उस पदार्थका ज्ञान होना आवश्यक है, इस प्रकार अनवस्था आयेगी। जिससे चित् पदार्थ का ज्ञान नहीं होगा। ''तत्'' ''त्व'' पदोंसे लक्षणावृत्तिसे ''चित्'' का ज्ञान होता है, ऐसा कहना भी संगत नहीं। इसलिये ''चित् चिदसि'' इस तरह तत्त्वमसि वाक्य कहता है, यह भी दलील योग्य नहीं।

b) ''तत्'' ''त्वं'' पदोंसे ''चित्त्'' का बोध होता है ऐसा माननेपर भी, यस्सर्वज्ञ: सर्ववित्''

१* सर्वेशत्व स्वतंत्रत्वे सर्वज्ञत्वादिभि: गुणै:। सर्वोत्तम: सत्यकाम: सत्यसंकल्प ईश्वर:। किंचिज्ञो दु:ख जीवन: संसार्ययं तद्वतिक: जीव: प्राकृत लक्षण: ७२२ कथमेकत्व मनयोर्घटते विपरीतयों: प्रत्यक्षेण विरोधोऽयमुभयोरूपलभ्यते ७२३ विरूद्ध धर्माक्रान्तां त्। परस्पर विलक्षणौ: जीवेशौ वन्हि तुहिना इव शब्दार्थतोपिग (सर्ववेदान्त सार संग्रह:) ७२४।

एक्यं तर्योर्लक्षितयोर्न वाच्ययो:। निगद्यतेऽन्यान्य विरूद्धधर्मिणो। खद्योत भान्वोरिव राजभृत्ययो: कूपांबुराशयो: परमाणुमेर्वो: २२४१ विवेक चूडामणि:।

''सर्वस्यवशी सर्वस्येज्ञान:'' इत्यादि श्रुतियोंसे सिद्ध सर्वज्ञत्वादि धर्म परमात्मामें होनेके कारण, जीवमें अल्पज्ञत्वादि धर्म साक्षिसिद्ध होनेसे, ''तत्'' ''त्वं'' पदोंसे बोधित न होनेके कारण सर्वज्ञत्वादि गुण विशिष्ट ब्रह्मचेतन्यका अल्पज्ञत्वविशिष्ट जीव चैतन्य का ऐक्य कहना युक्तिसंगत नहीं।

c) ''य: सर्वज्ञ:'' इस श्रुतिसे, साक्षिसिद्ध अल्पज्ञत्वादि गुणोंके लिये कोई बाधा नहीं। अत: उन धर्मोंका मिथ्यात्व भी नहीं सिद्ध होगा, धर्म मिथ्या न होते तो बाधक होते, मिथ्यात्वके बाधा नहीं यह उक्ति भी ठीक नहीं।

d) ''चित् चित् है'' इस प्रकार निर्धर्मितावच्छेदक शब्दबोध अनुभव विरूद्ध है। (एक वस्तुको उद्देश करके) अर्थात् (धार्मिक उद्देशसे किसी धर्मका ज्ञापन करना हो तो वह वस्तु किसी धर्मसे युक्त हो। धर्मरहित किसी वस्तु के उद्देशसे किसी धर्मको कथन अनुभव विरूद्ध है।

e) इस स्थितिमें धर्मितावच्छेदकको ग्रहण करके (धर्मसे युक्त चित्त् पदार्थके उद्देशसे, चित्से अभेद कहना धर्मितावच्छेदक धर्मसे युक्त ''चित्त'' अद्वैतमतके अनुसार मिथ्या होनेके कारण, मिथ्या चित्के साथ दूसरे चित्का ऐक्य नहीं होगा।

क्या यह वृक्ष शिंशुपा है या नहीं, संदेह, शिशुपावृक्षरूप भ्रम, अज्ञान, आनेपर, अज्ञानसे उत्पन्न संशय या विपरीत ज्ञान के निवारणके लिये यह वृक्ष शिंशुपावृक्ष ही है, ऐसा कहना होगा। शिशुपावृक्षके ज्ञात होनेपर भी, यह शिशुपावृक्ष कहना अनावश्यक है। वैसे ही, 'चित्' 'चित्त्' के रूपमें सबोंको ज्ञात है, यह 'चित्' है कहना अनावश्यक है। ज्ञात पदार्थका ही पुन: ज्ञात कराने जैसा है। अनधिगतार्थ बोधकत्व, (अज्ञात को ज्ञात कराना रूप वाक्य प्रामाण्य प्राप्त नहीं होगा। अत: तत्त्वमसि वाक्य चित् चित् है' बोध करता है यह कहना भी प्रमाण विरूद्ध है।

g) ''तत्'' पदसे मुख्यवृत्तिसे बोधित सर्वेशत्वादि गुणविशिष्ट ब्रह्म चैतन्य के साथ, 'त्वं' पदसे मुख्यवृत्तिसे बोध्य अल्पज्ञतादिगुण विशिष्ट जीव चैतन्यके साथ ऐक्य बाधित होगा। इस अवस्थामें स्वीकार करने योग्य, अन्य प्रमाणोंसे अबाधित अनुकूल होना चाहिये, प्रकृतमें लक्षणावृत्तिसे ''तत्'' पदसे सर्वज्ञत्वादिगुणोंका बोध न होनेपर भी, श्रुतियोंके अनुसार ब्रह्ममें उक्त सर्वेशत्वादि धर्म सत्य होंगे, मिथ्या नहीं। इसी कारणसे सर्वेशत्वादि धर्मोंसे युक्त ब्रह्मचैतन्यके साथ अभेदका कथन बाधित होगा। इतना ही नहीं अभेद बोधक वाक्य ही नहीं है। प्रमाणोंकी अनुकूलता भी नहीं। लक्षणावृत्तिसे सर्वज्ञत्वादि गुणोंका परित्याग करके दूसरे चैतन्यके साथ ऐक्य कहना भी युक्त नहीं। लक्षणावृत्तिसे ग्रहण करने योग्य अर्थ, अन्य प्रमाणोंसे बाधित होनेपर भी, प्रमाणोंकी अनुकूलता के अभावमें भी स्वीकार करनेके लिये योग्य हो तो, ''तत्'' पदसे लक्षणावृत्ति द्वारा ''शशविषाण'' ऐसा अर्थ करके 'त्वं' - तुम वह शशविषाण हो इस अर्थका भी ग्रहण किया जा सकता है। इसलिये ''तत्त्वमसि'' वाक्य जीवचैतन्य और ब्रह्मचैतन्यका प्रतिपादन नहीं करता। इस तरह कोर्ट निश्चय करता है।

३) 'येनाश्रुतं श्रुतं भवति, अमतं मतं भवति, अविज्ञातं विज्ञातं भवति (छा.६-१-३) वाक्य कहता है। परमात्माके ज्ञानसे जीव जडात्मक प्रपंचका ज्ञान होता है। जीव परमात्मासे भिन्न होगा तो

१०७ – सिविल सूट (३)

परमात्माके ज्ञानसे जीव जडात्मक प्रपंचका ज्ञान होता है कहना युक्तिसंगत नहीं होगा, अत: 'तत्त्वमसि' वाक्य जीव जडात्मक प्रपंचका ऐक्य का बोधक होता है। आरंभ वाक्यके अनुसार 'तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य जीवपरमात्मा ऐक्य ही, इस प्रकार प्रतिवादियोंका कहना युक्त नहीं इसका निर्णय कोर्टने किया है।

कारण

सींपमें आरोपित रजत ''सींपके यथार्थ ज्ञान होनेतक दीखता है। 'यह सींप है' इस ज्ञानके बाद पूर्वमें द्दष्ट रजत दीखता नहीं, नूतनरूपमें दिखायी नहीं देता। इसी तरह अद्वैतमतके अनुसार जगत ब्रह्ममें अध्यस्त है, वह अध्यस्त जगत् ब्रह्मज्ञान होनेतक द्दष्टिगोचर होगा। ब्रह्मज्ञान होते ही जगत् द्दश्य न हो। ब्रह्मज्ञानके उपरान्तभी जगत् दीखता है, तो वह अयुक्त है। शंकराचार्यने केनोपनिषद् भाष्यमें भी १* भाष्यकी टीकामें भी २* आरोपित पदार्थ अधिष्ठान के ज्ञान होनेतक दीखता है, अधिष्ठान का ज्ञान होते ही दीखता नहीं। ऐसे स्पष्ट कहने से –

'येनाश्रुतं श्रुतं भवति' वाक्य अधिष्ठान भूत परमात्माके ज्ञान होते ही, उसमे अध्यस्त जीवजडात्मक प्रपंचका ज्ञान होता है यह कहना युक्तिसंगत नहीं। इतना ही नहीं ! परमात्माके ज्ञानके पश्चात् पूर्वमें विद्यमान जगतके ज्ञानका लोप होता है। अद्वैतमतके अनुसारभी यही कहना होगा।

शंकराचार्यने ''येनाश्रुतं श्रृतं भवति'' वाक्यके व्याख्यानके समय, इस भाष्यकी टीकामें ३* आनंदगिरीने भी कहा है, समस्त वेदोंका अध्ययन करके वेदार्थको जानकर, कृतकृत्य अपने पुत्रसे, उसके पिता पूछते हैं – क्या तुमने परमात्माको जान लिया है ? अधीत पुत्रसे क्या इस तरह प्रश्न योग्य है ? इस प्रकारकी शंका पैदा होती है, उस शंकाका समाधान इस प्रकार है – समस्त वेदाध्ययन के बावजूद भी, वेदार्थ को जाननेपर भी, परमात्माके परमार्थ तत्त्वके जाने बिना वेदाध्ययन करनेवाला अकृतार्थ ही रहेगा; संपादन करने योग्य वस्तुकी प्राप्तिसे कृतार्थता प्राप्त होगी। परमात्माके ज्ञानसेही वेदाध्ययनका वेदार्थज्ञानका प्रयोजन सिद्ध होता है। परमात्मासे भिन्न जगतके जानके लिये परमात्माका ज्ञान फल कहलाता है। परमात्माके साथ जगतकी एकताका ज्ञान का बयान नहीं किया गया है, यही नहीं। ''अश्रुतमपि अन्यत्'' ''अन्यत् वेदमधिगम्यपि'' स्पष्ट किया गया है। वेद्य जगत परमात्मासे भिन्न है ऐसा कहा गया है।

१* अथवा हेत्वर्थ: उत्तरार्धो अविज्ञातमित्यादि (के. शां. भा. २-११)

२* अथवा हेत्वर्थ हति। लोके शुक्त्यादि तत्त्वं विजानतां यतोऽध्यस्तं रूपाद्यविज्ञातं भवति अजानतामीवत्वध्यस्तं विज्ञातं भवतीति सुप्रसिद्धम्। तथा ब्रह्मणि ज्ञेयत्वत्यस्य अध्यस्तत्वादेव तत्त्वविदो न ज्ञातंब्रह्म पश्यन्तित्यर्थ:। (आनंदगिरी)

३* किमीत्यधीत्य सर्ववेदमधिगततदर्थं च पुत्रममात्मविद्याधिकृत्य पिता पृच्छति तस्य सर्ववेदाध्ययनादिनैव कृतार्थत्वात् इत्यांश्यक्या सर्वानपीति (छां. आनंदगिरी ६-१-३) येनादेशेन श्रुतेन अश्रुतमपि अन्यत् श्रुतं भवति। सर्वान् वेदांतधीत्य सर्वंचान्यद्वेद्यमधिगम्या प्रकृत्तार्थ एव भवति यावदत्मितत्त्वं न जानाति व्याख्याकातोऽ वगम्यते (छां. ६-१-३)

गीताके अनुसार ''कृतकृत्यश्च भारत'' १* व्याख्यानके अवसरपर भगवानके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करनेसे, उत्तम कुलमें जनमें ब्राह्मण की कृतकृत्यता मानी गयी है। विहित कर्तव्यकर्माचरण की पूर्णताका फल मिलता है। भगवानके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं करेंगे तो वेदार्थज्ञान, किये गये समस्त कर्म भी अपूर्ण ही रहेंगे। ज्ञानके बिना समस्त प्रयास व्यर्थ है। कृष्णने कहा है - अर्जुन तुमने मुझसे भगवानके तत्त्वज्ञान को प्राप्त किया है, जिससे तुम कृत कृत्य हो चुके हो। इसी तरह शंकराचार्यने भी कहा है, परमात्माके ज्ञानके अर्जनसे जगतका ज्ञान होता है और अन्य कर्मभी सफल होते हैं, यह सिद्ध होता है। इस वाक्यके अनुसार येनाश्रुतं भवति'' वाक्यका भी यही अर्थ होगा। अर्थात् ज्ञानके प्राप्त होनेसे सभी कर्म सफल होते हैं। अत: परमात्माके ज्ञानसे जीवजडात्मक प्रपंच का ज्ञान होता है ऐसा अर्थ न करें।

''येनाश्रुतं श्रृतं भवति'' वाक्यमें ''ब्रह्म श्रुत होनेपर भी, मत (ज्ञात) होनेपर भी, अश्रुत, अज्ञात, अविज्ञात जगत् श्रुत होता है, मत (ज्ञात) होता है, विज्ञात होता है। कहनेसे श्रुतत्व, अश्रुतत्त्व, मतत्त्व, अमतत्त्व, विज्ञातत्व, अविज्ञातत्व इन विरूद्ध धर्मोसे जगत् ब्रह्मसे भिन्न है यह सिद्ध होता है। मृतपिंड घटका उपादान कारण नहीं। नखनिकृंतन (नाखून काटनेवाला साधन) कुल्हाडी नहीं बनती। अत: मृत्पिडके ज्ञानसे घटका ज्ञान होता है, कहनेमात्रसे उपादान कारणोंके ज्ञानसे उपादेय कार्योका ज्ञान होता है, इस प्रकार अर्थ नहीं होता। परमात्माके ज्ञानसे जगतका ज्ञान पैदा होता है, इससे ब्रह्म जगतका उपादान कारण जगत ब्रह्मका उपादेय कार्य यह सिद्ध होता तो जगत और ब्रह्मकी एकता सिद्ध हो जाती पर ऐसा नहीं है।

शंकराचार्यके कथनके अनुसार ब्रह्मज्ञानसे जगतका ज्ञान सफल होता है। जगतके ज्ञान होनेपर भी परमात्माके ज्ञानके अभावमें जगतका ज्ञान निष्फल बनेगा।

अथवा

यावानर्थ उदपाने सर्वत: सम्प्लुतोदके
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत: ॥ गीता २-४६ ॥

श्लोकमें उक्त प्रकारसे जगतके ज्ञानसे जो फल मिलता है। वह फल जगतको जाने बगैर भी ब्रह्मज्ञानसे प्राप्त होता है। इसलिये ''ब्रह्मज्ञानसे जगतका ज्ञान पैदा होता है'' कहा गया है। अत: जीव जडात्मक प्रपंचका ब्रह्मके साथ अभेद है ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं। स्वव्याहतिरूप दोषभी प्राप्त होगा। इसलिये '' येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' रूप उपक्रमवाक्य जीव परमात्माके अभेद प्रतिपादक है, अत: इस वाक्यके अनुसार ''तत्त्वमसि'' वाक्यका अर्थ कहना होगा, इस वाक्यका तात्पर्य अभेद कथनमें है यह कहना भी असंगत है।

प्र. व. - 'एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यका कथन इस प्रकार है - परमात्मा एकही है, परमात्माके अतिरिक्त

१* 'कृतकृत्यश्च भारत'' कृतं कृत्यं कर्तव्यं येन सकृतकृत्यो, विशिष्ट जन्म प्रसूतेन ब्राह्मणेन यत्कर्तव्यं तत्सर्वं भगवतत्त्वे विदिते कृतं भवति ।

(१) नचान्यथा कर्तव्यं परिसमाप्यते कस्यचिदभिप्राय: सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते इति चोक्तं. एतद्धि जन्मसामग्न्यं ब्राह्मणस्य विशेषत:। प्राप्यैतत् कृतकृत्यो द्विजो भवति नान्यथा इति मानवं वचनं। यत एतत्परमार्थतत्त्वं मत्त: श्रुतवानसि तत: कृतार्थस्त्वं भारतेति।

दूसरी वस्तु ही नहीं, अत: जीवपरमात्मा की एकताका निरूपण करता है। अत: इस उपक्रम वाक्यके अनुसार जीवपरमात्माके अभेदविषयमें ही तात्पर्य है इस प्रकार प्रतिवादियोंका कथन युक्त नहीं। इस प्रकार अदालत निर्णय करती है। इस निर्णय के कारण इस प्रकार है –

''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यका अर्थ ''स्वकार्यपतितमन्यन्नास्ति'' इति एकमेवत्युच्यते। सृष्टिके आरंभमें परमात्मासे सृष्ट पदार्थ न होनेके कारण परमात्मा एकमेव कहलाता है (एक सृष्टिके समय अपनेसे सृष्ट पदार्थोंसे रहित) (अद्वितीयं सहकारी कारण रहित, ऐसा अर्थ किया गया है। द्वितीय पदका अर्थ है – सजातीय द्वितीय वस्तु ''नत्वत्समोऽस्त्यम्यधिकश्च द्दश्यते' इत्यादि वेदमें भी गीतोक्त प्रकारसे परमात्मा सजातीय वस्तुरहित ऐसा ही अर्थ है।

''नत्वत्समोऽश्चम्यधिक कुतोन्य:'' (श्वेताश्वेतर) वेदमें, ''नत्वत्समोऽस्त्वभ्यधिक: कुतोन्य:'' गीतोक्त रीतिसे परमात्मा सजातीय वस्तुरहित ऐसा ही अर्थ होता है। ''एकं'' शब्दका मुख्य, अन्य असहाय अर्थ होता है। ''प्रकृतिं पुरूषंचैव विध्यनादी उभावपि'' गीतामें ''तमसागूळ्हमग्रे'' श्रुतिमें, होनेके कारण ब्रह्मातिरिक्त प्रकृति अनादि कालसे विद्यमान है। इस प्रमाणके आधारपर, ''जीव ईशो विशुद्धाचित्'' अद्वैतियोंने भी स्वीकार किया है।

जीव ईशो विशुध्दाचिभ्ददस्तस्यास्तयो:द्वयो: ।
अविद्या तग्रितो योग: षडस्माकं हयनादय: ॥

''एकं'' पदका ''अद्वितीयं'' पदका, दूसरी वस्तु ही नहीं ऐसा अर्थ नहीं कर सकते। इस कारणसे ''एकमेवाद्वितीयं'' श्रुति दूसरी वस्तुका निषेध नहीं करती। इन युक्तियोंके कारण 'तत्त्वमसि' वाक्य जीवपरमात्माकी एकतापर नहीं हो सकता।

प्र. वा. २ – सेयं देवतैक्षत् हन्ताहममिमस्तिस्त्रो: देवता अनेन जीवेनात्मनात्मनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि''

(छां ६-३-१) यह वाक्य परमात्माही जीवरूपसे तेज, जल, आदिमें प्रवेश कर चुका है, ऐसा कथन होनेके कारण ''समस्त पदार्थोंमें दिखाई देनेवाला जीव परमात्माही है'' यह सिद्ध होता है।

इन्हीं कारणोंसे आरंभ वाक्यके अनुसार ''तत्त्वमसि'' वाक्य जीव परमात्माके अभेद विषयमें तात्पर्ययुक्त है। ऐसा जो प्रतिवादिका कहना है, वह कथन युक्ति संगत नहीं, यह कोर्टका निर्णय है।

कारण

करणमात्राशंकानिवृत्तये १* इत्यादि वाक्योंसे देवता शब्द चेतनवाचक कहे जाने के कारण ''त्रयोविशंतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् सोऽनुप्रविष्टो भगवान् – चेष्टारूपेण तं गणं। भिन्नं संयोजयामसि सुप्तं कर्म प्रबोधयन्। इत्यादि प्रमाणोंसे परमात्मा चेष्टकरूपसे (जीवरूपसे) पृथिव्यादि

१* करणमात्र शंकानिवृत्तये अधिष्ठान चेतन परिग्रहाय देवता शब्देत विशिषन्ति एताहवैदेवता अहं श्रेयसि विवदमाना इति तावा एता देवता प्राणे निश्रेयसं संविदित्वा (ब्र. सू. शां. भा. २-१-४) इति चेतना वाचि देवता शब्देन (रत्नप्रभा) २-१-५)

तत्त्वभिमानी देवताओंमें प्रवेश करके, ''य: पृथिव्यादि तिष्टन्'' इत्यादि वाक्योंमें पृथिव्यादि शब्द पृथिव्यायभिमानी देवता वाचक है, ऐसा शंकराचार्यने कहा है। इसे कहकर पृथिव्याद्यभिमानी देवतावोंमें नारायण नियामक है, ऐसा कहनेके कारण ''जीव'' इति अनिरूद्धसारख्या प्रमाणके अनुसार जीव शब्द अनिरूद्ध नामक परमात्माका वाचक है। ''जीवो जीवमजजीजनत्'' जीव नामक अनिरूद्ध का वाचक होनेसे अनिरूद्धने जीवोंकी सृष्टि की, ऐसा उक्त होनेके कारण ''यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मक: । ज्ञेय: स एव राजेंद्र जीवस्संकर्षण प्रभु: (म.भा.शां.३३९.४०) अहं हि जीवसंज्ञो वै (म.था.शा. ३३९-४) जीव शब्द परमात्मा वाचक कहा गया है। देवता शब्दसे और जीव शब्दसे युक्त 'इमास्तिस्रो: देवता अनुप्रविश्य'' वाक्य कहता है - परमात्मा तेज, जल, पृथिव्यादि पदार्थोंके व्यापार प्रवर्तक होता है। उसी अनिरूद्ध परमात्मा का नाम जीव है। देवताओंको प्रेरित करके सृष्टि करता है, इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि प्रवेश करनेवाले परमात्मामें, प्रवेश्यभूत जडपदार्थोंमें, जडपदार्थ अभिमानी देवताओंमें भेद है। यह वाक्य जीव परमात्माकी एकता का प्रतिपादन नहीं करता।

शंकराचार्य, १* भामतीकार आदि अद्वैति II - IV - 10 के ब्रह्मसूत्र व्याख्यानमें २* एतस्यैव सर्वे रूपमभवन्'' (बृ. १-५-२१) वाक्यसे सर्वे = सभी इन्द्रियाँ एतस्यवै रूपं = प्राणरूप है। इस तरह इन्द्रियोंके और प्राण अभेद प्रतीत होते हुये भी, ''अयं वैन: श्रेष्ठ:'' इत्यादि वाक्योंसे प्राण और इन्द्रिय भेद प्रतीत होनेके कारण, विरूद्ध धर्म होनेसे, इन्द्रियोंके प्राण का अभेद कहनेपर, अनेक श्रुतियोंका विरोध पूर्वापर विरोध आता है। इसलिये इन्द्रियों प्राणाधीन है। ऐसा ही अर्थ करना संगत होगा, प्राण और इन्द्रियोंमें अभेद नहीं कहना चाहिये।

''असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्'' (तै) वाक्यमें, जो ब्रह्मको ''असत्'' मानता है, वह ''असत्'' ही होता है, ऐसे कहनेपर भी असत् उपपन्न नहीं होता अत: असत् असत्सम: अर्थ शंकराचार्यने किया है।

अहं ब्रह्म, अहं यज्ञ:, अहं लोक:, त्वं ब्रह्म, त्वं यज्ञ:, त्वं लोक: इत्यादि वाक्योंका अभेदपर अर्थ उपपन्न नहीं होता। अतएव त्वं = त्वत्कर्तृकं ब्रह्म = वेदाध्ययनं, त्वं = त्वत्कर्तृका: यज्ञा: त्वं = लोक: त्वज्ञया: लोका: ''त्वं'' शब्दका अर्थ तुमसे किया जानेवाला, तुमसे जय प्राप्त किये जानेवाला होगा। ब्रह्मपदका वेदाध्ययन ऐसा अर्थ जिस प्रकार किया गया है, उसी तरह ''त्वं'' ''तत्'' पदसे बोध्य जीवेश्वरको सर्वज्ञत्वा सर्वज्ञत्वरूप विरूद्ध धर्म होनेके कारण अभेद अन्वित नहीं होता।

१* यदुक्तं एतस्यैव सर्वे रूपमभवन्'' (बृ.१-५-२१) इति श्रुते: प्राण एवेन्द्रियाणीति तदयक्तम्। तत्रपि पौवीपर्यालोचनध्देव भेदप्रतीते: । तथा हि ''अयं वैन: श्रेष्ठ:) बृ. १-५-२१ इतिच श्रेष्ठतामस्यावधारस्यति। तस्मातदविरोधेन वागादिषु परिस्पंद लाभस्य प्राणायत्वत्वेन तदूपभवनं वागादिनामिति बृ. शां. भा. २-५-१९

२* इन्द्रियाणी मुख्यत: प्राणात् तत्त्वान्तराणि तत्र भेदेन व्यपदेशात् मृत्युप्राप्यत्व, अप्राप्युत्व लक्षण विरूद्ध धर्म संसर्गश्रुते:, न अर्थक्रिया भेदाच्च यापि प्रा॰रूपतामिन्द्रियाणामभिददाति श्रुति: तत्रापिपौर्यालोचनयां भेद एव प्रतीयते इत्युक्तं भाष्यकृता (शंकराचार्य) तस्मद्वहु श्रुति विरोधाच्च, पूर्वापर विरोधाच्च प्राणरूपतभिधान: इन्द्रियाणां प्राणयुक्ततया भाक्तं गमयितव्यम्।

न च प्राणे भेदव्यपदेश बाहुल्यं तथा नेतुं युक्तम् (भामती)

इसीलिये भेदप्रतिपादक पूर्वोत्तर वाक्योंसे, भेदप्रतिपादक है, ऐसे अद्वैतियोंके कहनेके कारण, अनेक श्रुतियोंसे विरोध पैदा होता है। इसलिये,

१) 'स आत्मा तत्त्वमसि' वाक्यमें ''अतत्'' पदविभाग करके त्वं-तुम अतत् - हो = उस परमात्मासे भिन्न हो अथवा ''तत्'' ऐसा पदविभाग करनेपर भी ब्रह्मणेत्वमासे, ओमित्यात्मानं युंजीत् इस श्रुतिके अनुसार ''तत्'' इस प्रतिपदसे प्राप्त चतुर्थी विभक्ति के लिये ''सुपां सुलुक्'' सूत्रसे ''सु'' आदेश, या लोप करनेपर (तत्-तस्मै) जगत्कारण परमात्माको तुम समर्पित हो अर्थ किया जा सकता है।

२) 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' श्रुति के अनुसार तत् तस्मात् जीव परमात्मासे पैदा हुवा है।

३) स कारणं करणाधिपाधिपः, सर्वस्य वशी, भूतपाल, इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार षष्ठि विभक्ति को स्वादेशादिसे तत् - तस्यं स्वामित्वम्, उसके स्वामित्वके अधीन तुम हो।

४) ''प्राणबन्धनं हि सौम्यमनः इत्यादि वाक्योंके अनुसार सप्तमी विभक्ति को स्वादेशादि करके तत् -तस्मिन् तुम उस परमात्माके आश्रित हो।

इत्यादि बहुतसे अर्थ मुख्यवृत्तिसे किये जा सकते है। ''श्रुतिलक्षणा विशयेच श्रुतिः न्याय्या न लक्षणा'' लक्षणावृत्तिसे अर्थ करनेकी अपेक्षा मुख्यवृत्तिसे अर्थ करना न्याययुक्त है, ऐसा शंकराचार्यने ३-१-२२, ४-२-१ के ब्रह्मसूत्र भाष्यमें कहा है। इसलिये लक्षणावृत्तिसे अर्थ करना युक्ति युक्त नहीं। लक्षणावृत्ति प्राप्त अर्थको ग्राह्य माननेपर भी, ''तत्'' ''त्वं'' इस दोनों पदोंकी लक्षणासे एक पदकी लक्षणा अच्छी है। ''तत्'' पदका लक्षणासे अर्थ ग्रहण करके, पूर्वोत्तर प्रमाणोंके लिये अविरूद्ध, प्रमाणोंके अनुकूल, नौ दृष्टान्तोंके अनुकूल भेदपर अर्थ कर सकते हैं।

तत् - तदधीन

तज्जन्यः - तदाश्रयः इत्यादि अर्थ उपपन्न होते हैं। अतः यह वाक्य (तत्त्वमसि वाक्य) जीव परमात्माके भेद प्रतिपादक हैं, जीव परमात्माके ऐक्य प्रतिपादक नहीं। कोर्टने इस प्रकार निर्णय लिया है।

वा. ए. २ : प्र. ए. ५'' अहं ब्रह्मास्मि.... यो देवानां प्रत्यबुध्यत्' वाक्य जीवपरमात्माका ऐक्य बोधक नहीं हो सकता। भेदबोधक ही है। यही कोर्ट का निर्णय है।

इस निर्णय के कारण -

'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यके १* पूर्वोत्तर वाक्य, ब्रह्मज्ञानसे सर्वभाव (पूर्णत्व) प्राप्त करते है। मनुष्य जिस विषयकी जानकारी प्राप्त करता है, उस विषयका ही विचार करता है, ब्रह्म पूर्णत्व प्राप्त

१* तदाहु र्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यंतो मनुष्या मनन्यन्तो किमुतद्ब्रह्मावेत् यस्मात् तत्सर्वंभवथ् अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात्त्सर्वमभवत् योयो देवानां प्रत्यबुध्यत् स (त्व तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्याणां (भृ.१-४-९-१०)

कर चुका है। उसने किस विषयका ज्ञान प्राप्त किया ? ऐसी शंका १* आती है। इस शंकाके परिहार के लिये ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेत्'' .''अहंब्रह्मास्मीति'', ''तस्मात् तत्सर्वमभवत्'' इत्यादि वाक्य प्रवृत्त हैं।

ऋषियोंमें और देवताओंमें, जिन्हों ब्रह्मका ज्ञान हुवा वे सभी अपनी योग्यता के अनुसार पूर्ण हो गये। मनुष्योंमें जिन्होंने ब्रह्मके ज्ञानको प्राप्त किया, वे सभी पूर्ण हो गये इस, कथनसे यह सिद्ध होता है कि परब्रह्म, देवता, ऋषि, मनुष्योंमें परस्पर भेद है। शकंराचार्यने भी कहा है कि 'ब्रह्मा देवानां' २* ''ऋषिणां मनुष्याणां'' रूपमें ब्रह्म, देवता और मनुष्योंमें परस्पर भेद कहा गया है।

इस तरह भेदका कथन करके भी अपने मतके आग्रहसे पुर: पुरूष: आविशत्। श्रुतिमें ब्रह्म ही समस्त प्राणियोंके शरीरमें प्रवेश कर चुका है ऐसी उक्ति है, जिससे जीव ब्रह्म की एकता के लिये देवतामें, ऋषियोंमें, मनुष्योंमें जो ब्रह्मका भेद दिखता है, उसे अविद्या कल्पित कहना होगा। सत्य नहीं इस प्रकार जो शंकराचार्यने कहा है वह युक्ति संगत नहीं। क्योंकि 'पर: पुरूष: आविशत्'' श्रुतिमें उक्त प्रवेश मिथ्या है। प्रवेशक्रिया परमात्मामें उपपन्न नहीं होती। परमात्माने प्रवेश किया इसके कहनेमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं। इस तरह तैत्तरीय भाष्य बृहदारण्यक भाष्यमें स्वयं ही खण्डन करने के कारण, उनके मतके अनुसार ''पुर: पुरूष:'' ऐक्य प्रतिपादक नहीं, अत: ''यो देवानां प्रत्यबुध्यत'' वाक्य किसी रोकठोक के बगैर भेदका बोध करता है।

''तदात्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मि'' यह परमात्मासे कहा हुवा वाक्य है। अगर राजा कहेगा ''मैं राजा हूँ'' राजाके कहनेके मात्रसे अन्य ऐसे नहीं कह सकते नहीं राजा हो सकते। उसी तरह जीव अपने को ब्रह्म कहेगा तो ब्रह्म नहीं बन सकता। अत: ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यसे जीवब्रह्म का ऐक्य सिद्ध नहीं होगा। ऐक्य बोधकके पक्षमें ''तत्त्वमसि'' के अभेदपक्षमें जो दोष कहे गयें वे समस्त इस वाक्यके अभेदपक्षमें आपन्न होंगे जैसे -

अद्वैतमतके अनुसार यह वाक्य अखण्डार्थ बोधक है। अर्थात् ''चित्'' मात्र बोधक होगा। अत: जीवब्रह्मके अभेदका बोधक नहीं होगा। ''द्वासुपर्णा'' आदि वाक्योंसे बोध्य भेदका बाधकभी नहीं बनेगा।

सखण्डार्थके पक्षमें भी ''अहं'' पदसे बोध्य अन्त:करणावच्छिन्न चैतन्य का और ब्रह्मपदसे

१*

२* देवानां इत्यादि लोकदृष्ट्यपेक्षया न ब्रह्मबुद्ध्या उच्यते। पुरं: पुरूष: आविशत् इति सर्वत्र ब्रह्मैवानुप्रविष्ट: इत्थमवोचाम अत: शरीरोपाधिजनित लोक दृष्ट्यपेक्षया देवानामित्याद्युच्यते।

एवं तर्हि वै नास्ति प्रवेशो (फूटनोट १) न च गत्यन्तरमुपलभामहे तदेवानुप्रविशत्

इति श्रुते: अन्यार्थत्वात् तत्प्रवेश: प्रकल्प्यते।

तस्मादंधो मणिमविन्दत् इतिवत् अर्थशून्यमेवेदं वाक्यमिति निगमयति हन्तेति (आनंदगिरी)

नतु सर्वगतस्य निरवयवस्य दिग्देश कालान्तरापक्रमण प्राप्ति लक्षण प्रवेश: कदाचिदुपलभ्यते (बृ. भा. १-४-७)

आत्मज्ञानार्थत्वेन प्रवेशादीनां कल्पितत्वात् तद्वाक्यानां न स्वार्थे पर्यवसानतित्यर्थ : (आनन्दगिरी)

तस्मात् कार्यस्थोपलभ्यते प्रवेश इत्युपचर्यते। (बृ. भा. १-४-७)

बोध्य पूर्णत्वादिविशिष्ट चैतन्य का ऐक्य नहीं हो सकता। लक्षणावृत्तिसे चैतन्य विषयक बोध भी नहीं होगा। इस तरह अनेक दोषोंसे युक्त होता है अद्वैतपर वाक्यार्थ।

''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यमें स्थित ''अहं'' ''ब्रह्म'' पदोंके मुख्यार्थ ऐक्य बाधित होगा। अमुख्यार्थ के स्वीकार करनेपर ''त्वं ब्रह्म अहं ब्रह्म'' त्वं यज्ञ: अहंयज्ञ: अहं लोक: (बृ. १-५-११) इत्यादि वाक्य ''त्वं'' ''अहं'' पदसे बोध्य जीवके साथ ब्रह्मादि पदसे बोध्य वस्तुके ऐक्य बोधक होनेके जैसे दीखता है। पर यह ऐक्य बाधित होगा। अत: ''त्वं'' त्वत्कर्तृकं, ब्रह्म = ब्रह्माध्ययनं, तुमको वेदाध्यन करना होगा। अहं – मुझसे किया जानेवाला वेदाध्ययनं मुझको ही करना होगा। अहं यज्ञ: – मुझसे किया जानेवाला यज्ञ, त्वं यज्ञ: तुमसे लोकोंपर विजय प्राप्त करनी चाहिये, अहं लोक: – मुझे लोकोंकी विजय प्राप्त करनी चाहिये। ऐसा शंकराचार्यने अर्थ किया है। उसी प्रकार मैं ब्रह्मोपासना करनेवाला, अथवा ब्रह्माप्राप्ति कर्ता, अथवा मैं ब्रह्मका दास हूँ, आदि इतर प्रमाणोंके अविरूद्ध अर्थ क्यों नहीं किये जा सकते।

''सर्वस्य वशी आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य''

इत्यादि वाक्योंके अनुकूल अर्थ स्वीकार करना ही योग्य होगा। इसलिये तदात्मानमेवावीत् ''अहं ब्रह्मास्मि'' यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत्, वाक्य जीव परमात्मा भेद बोधक ही होगा। ऐक्य बोधक नहीं, इस तरह अदालत निर्णय करती है।

वा. ए. ३ प्र. ए. ६ – शंकराचार्यने ही ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' वाक्यका अर्थ – प्रज्ञानं = परमात्मा, ब्रह्म = नित्यशुद्ध स्वभावका है ऐसा अर्थ नहीं किया है।

तत्सर्वं = चतुमुर्खादि समस्त देवता; आकाशादि जड प्रपंच, प्रज्ञानेत्रं = प्रज्ञानामक परमात्मासे नियम्य है। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं = प्रज्ञानामक परमात्माका आश्रित है। इस पूर्व वाक्यमें प्रज्ञानामक परमात्मा चतुर्मुखादि चेतनोंके साथ, आकाशादि प्रपंचके साथ भेद ही कहा गया है।

प्रज्ञानं = प्रज्ञानामक परमात्मा ब्रह्म = पूर्ण है। परमात्माके पूर्णत्व का कथन किया गया है। जीवपरमात्माके ऐक्य का कथन नहीं करता। ऐसा कोर्टने निर्णय किया है।

अद्वैतमतके अनुसार ''एष:'' पदसे बोधित प्रज्ञानरूप ब्रह्म शुद्ध है। चतुर्मुख, इन्द्र, प्रजापति आदि उपाधि विशिष्ट है। विशिष्ट और शुद्धमें ऐक्य नहीं होगा।

जडभूत पंचभूतोंमें और चेतनमें अभेद का कहना युक्तिसंगत नहीं।

''इमानि भूतानि'' इत्यादि वाक्योंमें ''एष: एष:'' पदको अपनी कल्पनासे रखकर एष: एष: पदके लिये ''आत्मामें कल्पित'' ऐसा अयुक्त और असंगत अर्थका ग्रहण करना शास्त्रीय नहीं।

अद्वैतमत के अनुसार आत्मा निधर्मिक है। (धर्मशून्य) होनेसे उसमें भ्रम युक्त नहीं होगा। एष: पदके लिये 'आत्मामें कल्पित' ऐसा अयोग्य अर्थ ग्रहण करना अयुक्त है।

''एते सर्वेदेवा:'' ''इमानि पञ्चभूतानि इमानि क्षुद्रामिश्राणि'' इत्यादि वाक्योंमें जैसे ''एते इमानि'' इत्यादि शब्द देवताको, भूतोंके लिये प्रसिद्ध है। इसलिये विशेषण बने हैं। उसी तरह इस वाक्यमें एष: एष: एष: (तीन) एतत्शब्द चतुर्मुख ब्रह्म, इन्द्र, प्रजापति प्रसिद्धद्योतक शब्द हैं, उनके विशेषण हैं ऐसा कहना योग्य होगा। विद्यारण्यने इन अनुपपत्तियोंकों देखकर, एष: ब्रह्मा, एष: इन्द्र: इत्यादि

एष: एष: शब्द प्रसिद्ध बोधक विशेषण हैं, ऐसा कहा है।

अत: एष: एष: पदसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण करके वह, आत्मा चतुर्मुख, इन्द्र, प्रजापति ऐसा अर्थ न करें। ''एष: ब्रह्म'' इत्यादि वाक्योंमें एतत् शब्दसे प्रज्ञानरूपी आत्माके ग्रहण करनेसे, वैसे ही ''एते सर्वे देवा'', इमानि पञ्चभूतानि, इमानिक्षुद्रामिश्राणि इत्यादि वाक्यस्थ एतत् शब्दसे प्रज्ञानरूपी आत्माको ग्रहण करना होगा। ''एते इमानि'' बहुवचनांत होनेसे प्रज्ञानरूपी परमात्मा को नहीं ले सकते।

इन अनुपपत्तियोंको ध्यानमें रखकर शंकराचार्यने ''एष: ब्रह्म'' इत्यादि वाक्यगत एतत् शब्दोंसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण करनेपर भी, ''एते देवा:'' इमानि भूतानि वाक्यस्थ एतत् शब्द देवताओंके भूतादिकोंके प्रसिद्धिद्योतक विशेषणको मानकर, अपने मतके आग्रहसे अन्य एष: एष: शब्दोंको लेकर ''एते देवा: एष:'' '' इमानि भूतानि एष:'' वाक्यको ग्रहीत समझकर, एते = प्रसिद्ध देवता, एष: = प्रज्ञानरूपी आत्मा है। इमानि भूतानि = प्रसिद्ध + आकांशादि भूत, एष: – प्रज्ञानरूपी आत्मा, ऐसा अर्थ किया है। इस तरह अर्थ करनेपर, एष: ब्रह्म, एष: इन्द्र: वाक्यस्थ एतत् शब्दोंके लिये प्रज्ञानरूपी ब्रह्म ऐसा अर्थ स्वीकार करना एते देवा: इमानि भूतानि, वाक्यगत एतत् शब्दोंसे प्रसिद्धरूप अर्थ ग्रहण करना चाहिये। वह अर्थ प्रज्ञानरूपी ब्रह्म ही होगा।' एते देवा:', 'इमानि भूतानि', इन वाक्यगत एतत् शब्दसे प्रसिद्धरूप अर्थ ग्रहण करना चाहिये। वह अर्थ प्रज्ञानरूपी ब्रह्म ही होगा। एते देवा:, इमानि भूतानि, इन वाक्यगत एतत् शब्दसे 'प्रसिद्ध'रूप अर्थका ग्रहण करना, इन वाक्योंमें स्वकीय कल्पनासे एष: एष: पदका समावेश करना, अयुक्त होगा, इसलिये 'एष ब्रह्मा, एष इन्द्र: एष प्रजापति: एते सर्वे देवा इमानि पंचभूतानि पृथिवी वायु, आकाश, ज्योतीषि, इत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव। बीजानीतराणि। चेतराणि चांडजानीच जारूजानि स्वेदजानिचोद्भिजानि चाशा गाव: पुरूषा: हस्तिनो यात्किंचेदं प्राणिजंगमंच पतत्रिच यच्च स्थावरं। सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं (ऐ. २-१) रूप वाक्य प्रज्ञानामक परमात्मा इमानि पंचभूतानि = ये पांच महाभूत एष: = परमात्मा प्रतिवादियोंके उक्त अर्थका निराकरण करती है अदालत।

एष ब्रह्म = इस प्रमाणसे सिद्ध चतुर्मुखब्रह्म (कार्यब्रह्म) एष इन्द्र: = यह इन्द्र, एष प्रजापति: = यह प्रजापति एते सर्वे देवा: = समस्त देवता, इमानि पञ्चभूतानि = ये पांचमहाभूत, अण्डज, जरायुज, स्वेदज, वृक्षपक्षी, समस्त स्थावर, तत् प्रज्ञानेत्रं = प्रज्ञानामक परमात्मासे नियंत्रित हैं। (परमात्मा इन सबोंको अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करता है) प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं – प्रज्ञा नामक परमात्माके आश्रित हैं। प्रज्ञा प्रतिष्ठा = प्रज्ञानामक परमात्मा इनकी स्थापना करता है। प्रज्ञानामक परब्रह्म = पूर्ण है।

चतुर्मुखादि देवतामें और अन्य प्राणियोंमें आकाशादि समस्त जडोंमें, परमात्मासे आश्रय आश्रयी भावसे नियम्य नियामक भावसे, स्थाप्यस्थापक भावसे भेद का कथन करके ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' वाक्यसे परमात्माके पूर्णत्वका कथन करता है। ''सन्मूला: सौम्येमा: प्रजा: सदायतना: सत्प्रतिष्ठा:'' वाक्यमें जैसे समस्त प्रजा परमात्मासे पैदा हुई है, परमात्माके आश्रित है, परमात्माही समस्त प्रजाका स्थापक है, ऐसा कहा गया है वैसे ही, यह ब्रह्म (एष ब्रह्म) वाक्य रूपी श्रुति नियम्य नियामक भावसे जीवब्रह्मके भेदका कथन करके, परमात्माके पूर्णत्वका कथन करती है। इस प्रकार कोर्टने निर्णय किया है।

११५ - सिविल सूट(३)

वा. ए. ४, प्र. ए. ८ = 'य: पृथिव्यां तिष्ठन्' - नान्यतोस्ति द्रष्टा (वृ. ३-७-३-२३) वाक्यका उदाहरण प्रतिवादि अद्वैती जीवब्रह्मके ऐक्यके विषयमें प्रमाणतया प्रस्तुत करते है। (फूटनोट १)

दोनोंके कथन के कारणों का विचार करके ''य: पृथिव्यां तिष्ठन् - नान्यतोस्ति द्रष्टा'' वाक्य जीवब्रह्म के भेदका कथन करता है, ऐक्यका कथन नहीं करता, ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

उपरोक्त निर्णय के लिये कारणयुक्तियाँ और प्रमाण

इस वाक्यमें जीवब्रह्म की एकता बोधक पद ही नहीं। 'य: पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अंतर: यं पृथिवी न वेद य: पृथिवीमंतरो यमयति एव त आत्मान्तराम्यामृत:'' आदि इक्कीस पूर्ववाक्य, पृथिवी, जल, अग्नि, अन्तरीक्ष, वायु, स्वर्ग, आदित्य, दिशायें, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश, तमस्स, तेजस् सर्वभूत, प्राण वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वक्, आत्मा अथवा विज्ञान जीव, रेतस्, इत्यादियोंमें भी उनकी अभिमानी देवताओंमें सर्व प्राणियोंमे भी, उन देवताओंमें अदृश्य, अन्तर्यामि नारायण, उन देवतोंको प्रेरणा देता है, समस्त चेतनाचेतनात्म विश्वके अन्तर्यामि नारायण (परमात्मा) के भेद की उद्घोषणा यह श्रुति करती है।भगवान वेदव्यासने 'अंतर्याम्यधिदेवादिषु' 'तध्दर्मव्यपदेशात्' 'शारीरश्चोभये हि भेदेनैनमधीयते' 'भेदव्यपदेशान्त्यान्य:' इत्यादि ब्रह्मसूत्रोंमें ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्'' इत्यादि इक्कीस वाक्य जीवपरमात्मा के भेदके बोधक है, ऐसानिर्णय किया है।

''य: पृथिव्यांतिष्ठन्'' इत्यादि वाक्य पृथिव्याद्यभिमानी जीवोंको परमात्मासे भिन्न समझता है। ऐसा सूत्रकार बादरायणने निर्णय किया है। इस तरह शंकराचार्यने लिखा है। इसलिये ''य: पृथिव्यांतिष्ठन्'' इत्यादि इक्कीस वाक्योंसे जीव परमात्माका भेद ही प्रमाणित होता है। इन वाक्योंमें जीवब्रह्ममें अभेद साधक एक भी पद नहीं। इसलिये ऐक्य प्रतिपादन करनेकी गुंजाईश नहीं।

'नान्योऽतोस्ति द्रष्टा' वाक्य अत: अन्तर्यामि परमात्मासे अन्य द्रष्टा नहीं ऐसा कहा गया है। इस वाक्यमें जीव परमात्माका ऐक्य कहा गया है ऐसा जो प्रतिवादियोंका कहना है, कोर्ट उस कथनको बरखास्त करती है ।

क्योंकि

'आत्मावाऽरे द्रष्टव्य:' 'द्रश्यतेत्वग्रयाबुध्या' 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' 'जुष्टं यदा पश्यति' यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्ण' इत्याद्यनेक श्रुतियाँ, जीव को द्रष्टा, परमात्माको द्रश्य कहती हैं। इन वाक्योंके विरोधमें ''नान्योऽस्ति द्रष्टा'' वाक्यका अर्थ परमात्माके अतिरिक्त द्रष्टाही नहीं ऐसा कहना अत्यंत अयुक्त है।

'कस्मात् पुन: कारणात् पृथिव्यादि देवता महाभागा: सत्यो मनुष्यादिवदात्मनि तिष्ठन्तं आत्मनो नियन्तारमन्तर्यामिणं न विदुरित्यत आह - ''अद्दष्ट इति'' वाक्यसे अल्पमनुष्य अपने अन्तर्यामि परमात्माको जिस तरह नहीं जानता, वैसे ही, महानुभाव पृथिव्याद्यभिमानी देवता अपने अन्तर्यामि, नियामक परमात्माको नहीं जानते ऐसा कहना किस तरह योग्य होगा ? इस तरह आक्षेप करनेपर इस आक्षेपके समाधान के लिये ''अद्दष्टो द्रष्टा, अश्रुत श्रोता, रूप वाक्य प्रवृत्त हैं, इस तरह शंकराचार्यने

कहा है इसलिये ''अद्दष्टो द्रष्टा अश्रुतश्रोता वाक्य अद्दष्ट: = धर्माधर्म (पुण्यपाप) को देखना जैसे असंभव है, वैसे ही परमात्मा कहता है -एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिती द्दश्यते'' अपने प्रयत्नसे उस परमात्माके दर्शन नहीं कर सकते । द्दष्टा = स्वयमेवात्मनानात्मानं वेत्थत्वं'' पुरूषोत्तम गीत्तोक्त प्रकारसे ईश्वर अपने आपको देखता है। अत: - परमात्मा धर्मादिकी तरह स्वत: द्दश्य नहीं, इसलिये ''अन्य: द्दष्टा'' परमात्मासे भिन्न, स्वत: परमात्माको देखनेवाले नहीं (स्वातंत्र्येण नहीं देख सकते) इस उद्देशसे मान्यतोऽस्ति द्दष्टा'' रूप निषेध वाक्य प्रवृत्त है, द्दष्टा जीवका निषेध नहीं।

उसी तरहह, भिन्न जीवका निषेध करना, भेद बोधक ''य: पृथिव्यां तिष्ठ न्'' इत्यादि वाक्यका विरूद्ध होगा। ''द्दष्टा जीव ही नहीं'' यह कहना ''आत्मावारे द्रष्टव्य:'' इत्यादि वाक्य विरूद्ध होगा। इसलिये ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टा'' वाक्य परमात्मासे भिन्न द्दष्टा जीवका निषेध नहीं करता। अत: 'य: पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या: अन्तरो'' यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरं'' य: पृथिव्यामंतरो यमयत्येष आत्मन्तर्यामि, अमृतो, नान्यतोऽस्ति द्दष्ट: (बृ.३, ७-३-२३) तक ये वाक्य भेद परमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करते है ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

वा. ए. २८, प्र. ए. १८ -''स यश्चायं पुरूषे, यश्चासावादित्ये स एक:'' वाक्य य आदित्ये तिष्ठन् य आत्मनि तिष्ठ न् इत्यादि वाक्योंकी तरह आदित्यान्तर्गत (उत्तम जीवान्तर्गत) आदित्य नियामक परमात्मा पुरूषान्तर्गत (साधारण जीवान्तर्गत) जीव नियामक परमात्मा एक ही है। नियामक रूपोंमें भेद नहीं, ऐसा उक्त होनेके कारण उत्तमाधमजीवोंमें परमात्मासे भेद है। जीव और परमात्मामें आधाराधेय भाव है। आदित्यादि जीवोंमें परमात्मामें ऐक्य बोधक एक भी पद न होनेके कारण यह वाक्य ऐक्य बोधक नहीं।

वा. ए,५,प्र,ए.९ - 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासनेगार्गि। सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत: ..... नान्यदतोऽस्ति द्दष्टृ - आकाश ओतश्च प्रोतश्च (बृ.३.८.९.१०.११) ये बृहदारण्यक अक्षर प्रकरण के वाक्य हैं, सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवीलोक, निमेष, मुहुर्त आदि समस्त चेतना चेतनात्मक जगत् अक्षरनामक परमात्माकी आज्ञासे धृत है। इनपर परमात्माका ही शासन है। इस अक्षर नामक परमात्माके ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। अक्षरसे भिन्न जडभूत प्रकृत्यादि, जगतके शासक है। द्दष्टा नहीं बन सकते इस तरह परमात्मासे सूर्यचन्द्रादि समस्त चेतनाचेतनात्मक प्रपंचसे भिन्न ही उक्त है। शंकराचार्यने ऐसा ही अर्थ कहा है, लिखा है। अत: इस वाक्यसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता, ऐसा कोर्ट का निर्णय है।

किसीके निषेध करनेके पहले, वह निषेध्य वस्तु पदार्थ पहले हो। सूर्य, चन्द्रादि देवतासे परमात्मा का भेदनिषेध करनेके पूर्वमें वह भेद प्रसक्त हो। चन्द्रसूर्यादिकोंका जो भेद परमात्मासे है। वह प्रत्यक्ष से प्राप्त नहीं। वेद पूर्ववाक्योंसे स्वयं चन्द्रसूर्यादिकोंका परमात्मासे भेदका बयान करके, उत्तरवाक्यमें स्वयं उस भेदका निषेध करता है यह कहना योग्य नहीं। ''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं'' कीचडमें पैर रखकर बादमें साफ करनेकी अपेक्षा कीचडमें पैर न रखना ही बेहतर है। इस न्यायके अनुसार भेदका अकथन ही अच्छा होगा। अत: वेद पहले भेदका कथन करके उत्तरत्र उसका निषेध करता है यह मानना युक्त नहीं।

११७ – सिविल सूट (३)

''आत्मावाऽरे द्रष्टव्यो श्रोतव्यः'' इत्यादि वाक्योंसे जीवोंका द्रष्टत्व, श्रोतृत्व, जीव परमात्माका भेद प्रमाणित होता है और 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' इत्यादि पूर्व वाक्योंमें भेद सिद्ध है, ''प्रधानादि अचेतन प्रशासक बने, वही अक्षर हो ''इस सांख्यके आक्षेप के परिहार के लिये, यह वाक्य प्रवृत्त है परमात्मा ही द्रष्टा है, अचेतन प्रधान, पृथिव्यादि द्रष्टा नहीं। इसलिये प्रधान द्रष्टा अक्षर नहीं होगा। ऐसा शंकराचार्यने ही कहा है, अतः –

''नान्यदतोऽस्ति द्रष्टा'' वाक्य परमात्मातिरिक्त जीव ही नहीं, जीव परमात्माके भेदका निषेध करता है, यह कहना संगत नहीं। इस हेतुसे भी इस अक्षर प्रकरणसे जीवेश्वरका भेद ही सिद्ध होता है।

''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' इत्यादि पूर्व वाक्योंमें सूर्य चंद्रादिकोंको शास्य और अक्षरको शासक कहा गया है। प्रसक्त भेद का ही कथन ''नान्यदतोस्ति द्रष्ट'' वाक्य परमात्मासे अन्य द्रष्टा नहीं। इस तरह निषेध करनेके कारण पूर्ववाक्यमें उक्त जीव परमात्माका भेद स्वीकार ही नहीं होगा। ''नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ'' वाक्यसे उक्त भेदभावको (ऐक्यको) स्वीकार्य बनाने के लिये कहा गया है। इस दलीलको कोर्ट बरखास्त करता है।

बा.ए.अ. प्र. ए. १४ – 'यत्र हि द्वैतमिव भवति'' वाक्यसे द्वैतप्रपंचका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता। यह निर्णय दूसरे इश्यू के जजमेंटमें कहा गया है।

वा. ए. ७ ''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' तदा इतरः इतरं जिघ्रति यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत तत्केन कं जिघ्रेत्'' दूसरी वस्तु के होनेपर ही (द्वैतके होनेपर ही) घ्राणेन्द्रियादि गंधादिकोंका अनुभव करते हैं, देखते हैं, यह कहना उचित होगा। अद्वैतियोंके अनुसार आत्मातिरिक्त द्वितीय वस्तु ही न होनेके कारण कौनसी इन्द्रिय किस विषयका भोग लेगी ?

''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' जिस परमात्माके कारण इस जगतको देखता है, उस परमात्मा को किस तरह जानेगा ? ''विज्ञातारमरे केनं विजानीयात्'' जाननेवाले स्वयंको किस तरह जानेगा ? मोक्षावस्थामें समस्त इन्द्रियाँ रहती हैं, काम करती है।अपने स्वकीयताका मोक्षकी अवस्थामें गंधादि ज्ञान होता है, अपना (खुद) ज्ञान होता है, इस विषयमें श्रुति ही प्रमाण है – ''जक्षन् क्रीडन् रममाणः'' कामान्नीकामरूप्यनुसंचरन्'' इत्यादि श्रुतियोंमें उक्त है। गंधादि ज्ञान आत्माको होगा, ज्ञान के लिये दूसरा पदार्थ नहीं। अतः मोक्षकी अवस्थामें ज्ञातृ, ज्ञेय भावसे जीव परमात्माका भेद ही इस वाक्यसे सिद्ध होता है। यही कोर्टका निर्णय है।

प्रतिवादियोंका युक्तिपद – यद्यपि ''जक्षन् क्रीडन्'' इत्यादि श्रुतियाँमें क्रीडादियोंके वर्णन है। पर उनविषयोंमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं। मुक्तोंको सर्वभाव (सर्वतादात्म्य) प्राप्त होनेके कारण, योगी, संसारी के क्रीडादि, मुक्तोंको कहा गया है। मोक्षावस्थामें भक्षण, क्रीडादि, पितरोंके दर्शन, मुक्तोंको नहीं हो सकते। इन दर्शनादिकोंके लिये अनेक भिन्न पदार्थोंको मानना आवश्यक नहीं।

क्योंकि – जक्षन्, क्रीडन् इत्यादि श्रुतियाँ मोक्षावस्थामें मुक्तोंको भक्षण दर्शनादिकोंके सद्भावको

मानकर १* ''मुक्त सर्वभाव प्राप्त करनेके कारण, योगियोंके भक्षणादिसे प्राप्तव्य सुखका निरूपण करती हैं श्रुतियाँ। बाधक न होनेपर भी गौणार्थ के ग्रहण करनेसे, स्थावरादिकोंके दु:खको भी मुक्तोंको कहना पडेगा। दु:ख अविद्या कल्पित होनेसे ''मिथ्या'' है। इसलिये मुक्तोंके लिये दु:खका बयान करना आवश्यक नहीं।

इसीलिये योगियोंसे प्राप्तव्य भोगोंका कथन मुक्तोंको कहती है श्रुति, कहना तर्कसंगत नहीं। अत: मुक्तिमें मुक्तोंको परमात्माका ज्ञान, भक्षणं, रमण, पितरोंके दर्शनादिका वर्णन करती है श्रुति। इन भोगोंके लिये कारणीभूत आत्मातिरिक्त द्वितीय वस्तुका स्वीकार मोक्षमें स्वीकार करना अनिवार्य होगा।

ब्रह्मविद्याभरणकार, अप्पय्य दीक्षित आदि अद्वैति ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' वाक्य, जीव परमात्माके भेदका ही कथन करता है, अद्वैतको माननेवाले अद्वैतियोंके लिये अनन्तगुण है। इस वाक्यसे भेदका ही प्रतिपादन होता है, इस तरह प्रतिवादियोंसे भी रीतिसे ही यह वाक्य भेद प्रतिपादक ही है।

प्रतिवादियोंका अर्थ इस प्रकार है - ''येनेदं सर्वं विजानाति वाक्यका अर्थ यह है - जिस परमात्मासे इस समस्त जगतको जानता है, उस परमात्माको किस तरह जानता है ? इस प्रकारके अर्थको योग्य अर्थ समझनेपरभी अपने मतके आग्रहसे ''येन'' पदका विकृत करके ''य:'' प्रथमान्त रूपमें भेदकर, य: जो जीव इस जगतको जानता है, वह जीव अपनेको किस तरह जानेगा ? यह अर्थ युक्त नहीं। क्योंकि, ''येनेति तृतीया प्रथमार्थे योजना क्लेश:स्यात्'' (ब्रह्मविद्याभारण) ''क्लेशेन योजनिय: - येनेदं सर्वं विजानातीत्यस्य योजना क्लेश: अद्वैतप्रस्तावानुरोधार्थत्वात् न दोषाय इत्याशय: इति (अप्पय दीक्षित न्यायरक्षामणि) इत्यादि वाक्योंसे ''येन'' पदको ''य:'' प्रथमान्तमें बदलना क्लेशकर है, ऐसे मानते हैं, और कहते हैं कि यह परिवर्तन अद्वैत प्रस्तावके अनुरोधके लिये।

पूर्ववाक्यमें अद्वैत का प्रस्ताव नहीं, इसलिये इस क्लिष्ट कल्पनारूप अर्थ की आवश्यकता नहीं। यही नहीं एक वाक्यमें वाच्यमान ''यत् तत्'' पदोंका एक ही अर्थ कहना चाहिये। ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् स एष नेति नेति'' येनेदं वाक्यके बादमें 'स वा एष नेति नेति' वाक्य होनेके कारण इस वाक्यस्थ 'स वा एष:' पदोंसे परमात्माका ही ग्रहण करना होगा, इसे मान चुके हैं। अत: 'स एष:' पदोंसे ग्रहण योग्य का ही येन पद ग्रहण चाहिये। इसलिये ''येन'' पदका बदलाव करके जीवका ग्रहण अयुक्त होगा।

येन पदसे जीव के ग्रहण करनेपर य: = जो जीव जगतको जानता है, वह अपने आपको किस

१* ''जक्षन् क्रीडन् रममाण:'' स यदि पितृलोककामो ''स: सर्वज्ञ: सर्ववित्'' सर्वान्कामान् समश्नुते'' इत्यादि श्रुतिभ्यो मोक्षी सुखं संवेद्यमिति'' (बृ.भा. ३-९-७-२८) योग्यादिषु तथा प्राप्त जक्षणादिवत् स्थावरादिषु यथा प्राप्त दु:खित्वमपीचेत् न। नामरूप कृत कार्य कारणोपाधि संपर्क जनित भ्रांत्यद्यारोपितत्त्वत्सुखित्वदु:खित्वादि विशेषस्येति परिहृतमेतत्सर्वं (बृ.भा. ३-९-७-२८)

अविद्यात्मक नामरूपविरचितोपाधिव्दय संबंधनिबंधन मिथ्या ज्ञानाधीनत्वादात्मनि। दु:खित्वादि प्रतीति न तत्र वस्तुतो दु:खित्वं न जक्षणाद्यपि वास्तवं। अविद्यस्यैव मुक्तिस्तुतये अनुवादात् दु:खित्वस्य हि नानुवादो अति हीनत्व प्राप्तेरिति परिहरति नेतृत्वादिना। (बृ. आनंदगिरी ३-९-७-२८)

तरह जानता है, इस तरह अर्थ करनेसे ''विज्ञातृ'' जाननेवाला जीव अपनेको (जीवको किस तरह जानता है। कहनेसे) विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' वाक्य की पुनरुक्ति होगी। व्याख्यान व्याख्येय भाव स्पष्ट पदोंके लिये योग्य नहीं। इसलिये ''येनेदं'' वाक्य जीवपरमात्माके भेदका ही प्रतिपादक है। ''विज्ञातारं'' पद मोक्षावस्थामें जीवके कर्तृत्वका बोध करता है। जिससे परमात्माका और जीवका भेद विशद होता है।

'यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत्'' मोक्षावस्थामें जब सबकुछ आत्मरूप ही होगा, उस समय किन इन्द्रियोंसे गन्धादि ज्ञान प्राप्त करेगा ? परमात्मा के ज्ञानकी प्राप्ति किस तरह होगी ? अपने ज्ञानको किस तरह पायेगा ? अर्थात् किसी भी ज्ञानको प्राप्त नहीं करेगा, इस तरह दूसरे ज्ञानका निषेध करते हुये, भेदका भी निषेध करता है। इस तरह प्रतिवादियोंका उपपादन युक्ति संगत नहीं। 'मोक्षकी दशामें कुछभी नहीं होगी' श्रुतिका यही तात्पर्य होता तो 'मोक्षे किमपि नास्ति' - मोक्षमें कुछ भी नहीं इस तरह छोटा वाक्य ही पर्याप्त था। केन कं जिघ्रेत' आदि बहुतसे वाक्य व्यर्थ हो जायेंगे। ''जिघ्रेत् पश्येत् विजानीयात्'' विधिलिङ्ग पद व्यर्थ बनेंगे। अत: इस वाक्यसे जीव परमात्मा भेद ही ज्ञात होता है, ऐक्य ज्ञात नहीं होता, कोर्टने ऐसा निर्णय लिया है।

वा. ए. ८ - ''ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमान:'' (मुं ३-१-८) श्रुति द्दष्टृ, द्दष्ट्रव्य भावसे, ध्यातृ, ध्येयभावसे भी, जीव परमात्माके १* भेद का ही प्रतिपादन करती है। शंकराचार्यने भी स्वीकार किया है कि ध्यातृध्येय भावसे भेदका कथन ही करता है। शांकरभाष्यमें ऐसा व्याख्यान किया गया है। वा. ए. १०, प्र. ए. १० - ''परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'' मुं. ड. ३-२-९

वाक्य ''परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्'' ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष प्राप्त होता है। उक्त फलके लिये, श्रेयस् को विघ्नोंकी संभावना २* होती है, देवता विघ्न करते हैं। विघ्न के कारण क्या ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मको ही प्राप्त करता है, या वह ब्रह्म होकर रहेगा ? इस शंकाके उत्तरमें शंकराचार्य कहते है, ब्रह्मज्ञान के फलके लिये कोई भी विघ्न नहीं कर सकता ऐसा कहकर पूर्वमन्त्रमें उक्त ब्रह्मप्राप्ति फलको ही द्दढ करते ''ज्ञातृज्ञेय भावसे, प्राप्य प्राप्तव्यभावसे भेदका ही कथन करती श्रुति इस प्रकार शंकराचार्यने ही व्याख्यान किया है।३*

सुरेश्वराचार्यने भी इसीको स्वारसिक अर्थ कहा है।

वा. ए. - परंज्योतिरूप संपद्य स्वेनरूपेणाभि निष्पद्यते...........

स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: (छां. ८-१२-३) जीव परमात्माको प्राप्त करके, अपने स्वरूपसे अभिव्यक्त होकर, उस परमात्मामें सैर करता, भक्षण करता, स्त्रियोंके साथ विहार करता

१* क्वचिद् जीव प्राज्ञयो: भेदोव्यपदिश्यतेततस्तु तं पश्यते निष्फलं ध्यायमान: (मुं. अ. ८) इति ध्यातृ ध्येय भावेन, द्दष्ट्र द्दष्टव्य भावेन च परामत्परं पुरूषमुपैति दिव्यं (मुं. ३-२-८) इति गन्तृगन्तव्यत्वेन'' ''यस्सर्वाणि भूतानि अन्तरोयमयति'' इति नियन्तृ नियंतव्यत्वेन तानि अन्तरो यमयति (ब्र.सू.शा.भा. २-३-२८)

२* परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं (३-२-८) ब्रह्मणश्च मुक्तोपसृत्यत्वं प्रसिद्धं शास्त्रे (ब्र. सू.भा. १-३-२)

३* ननु श्रेयस्थानेके विघ्ना:प्रसिद्धा: अत: क्लेशानामन्यतमेनवा देवादिना विघितो ब्रह्मविदण्यन्यां गति'मृतो गच्छति ब्रह्मैव न भवति। स नान्यां गच्छति दैवरपि तस्य ब्रह्मप्राप्ति प्रति विघ्नो न शक्य ो कर्तुं (मु ३-२-९)

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति त्रिवर्णादन्यो जीवो ज्ञानद्वारा ब्रह्मप्राप्नोतीत्यभ्युपगमात् (तै वा.टी २-८-५४)

रहता है। यह श्रुतिका अर्थ है। ''उप संपद्य'' पद प्राप्यप्रापक भावको, ''तत्र पर्योति'' शब्द आधार आधेय भावको, कहकर जीवपरमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करती है यह श्रुति। मोक्षमें ''जक्षन्, क्रीडन्, रममाण:'' भक्षण:, रममाण का बोध करती है। जिससे जीवके अनुभय सुखका संकेत मिलता है। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें १* जीवपरमात्माका भेद ही कहा गया है ऐसा लिखा है। शकंरभाष्य व्याख्यान ब्रह्मविद्याभरणके २* यह वाक्य भेदप्रतिपादक ही है, ऐसा कहा है।

वा. ए. १२ - ३* 'सोन्वेष्टव्य: (छा. ८-७) श्रुति ''अन्वेष्टव्य:'' शास्त्र, आचार्यका उपदेश, इनसे जाननेवाला, विजिज्ञासि तव्य: = विचारणीय अन्वेष्टव्यान्वेष्टव्या भावसे जिज्ञास्य जिज्ञासक भावसे जीवपरमात्माके भेदका ज्ञापक है, शंकराचार्यने अपने भाष्यमें इस अर्थका स्वीकार किया है।

वा. ए. १३ - 'आत्मावाऽरे द्रष्टव्यो, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्य: (बृ. २-४-५) श्रुति द्रष्ट्र द्रष्टव्य भावसे, श्रोतृश्रोतव्य भावसे, मन्तृमंतव्य भावसे ध्यातृ ध्येयभावसे भेदका ही प्रतिपादन करती है। शंकराचार्यने भी यह सम्मत है। ४*

वा. ए. १७ - 'ब्रह्मविदाप्नोति परं'' वाक्य ज्ञातृज्ञेय भावसे, प्राप्यप्राप्त भावसे भेदका ही ज्ञापक है। शंकराचार्य इससे सहमत है।

वा. ए. १५ - ''एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति'' श्रुति कहती है। इस परमात्माको जानकर, मननशील होता है, ज्ञातृज्ञेय भावसे भेदका निरूपण करती है श्रुति। शंकराचार्य इससे सहमत है। ५*

वा. ए. १६ - 'अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वा रूढ: (बृ ४-३-३५) श्रुति भी भेदका प्रतिपादन करती है। जीव, प्राज्ञनामक परमात्माको उपपने कंधेपर उठाकर जाता है। आरोहण कर्तृत्व, कर्मत्वसे जीव परमात्माका भेद प्रमाणित होता है। शंकराचार्य इससे सहमत है। ६*

वा. ए. १७ - ''सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चित् '' (तै) यह वाक्य भी भेदप्रतिपादक है - जैसे ब्रह्मज्ञानी अपने पसंदके समस्त भोगोंका अनुभव परब्रह्मके साथ करता है, जीव परमात्मा सहभोग उक्त होनेके कारण, भेदका बोध होता है। इस तरह वार्तिक कारने ७* स्वीकार किया है।

१* स तत्र पर्येति (छं. ८-१२-३) इत्यधिकरण कर्तव्य निर्देशात् ''ज्योतिरूपसंपद्य (८-१२-३) इति च कर्तृकर्मनिर्देशात् भेदेनैवावस्थानं (ब्र. शा. ४-४-५)

२* स तत्र पर्येतितीत्यादि भेदनिर्देशस्य फलोपदेशतया साधनीभूत ज्ञानोपदेशता भेद निर्देश: औपचारिको यथाकथचिन्नेय: (ब्रह्मविद्याभारण)

३* सोन्वेष्टव्य: सविजिज्ञासितव्य: (छा. ८-७-१) इत्येवं जातीयक: कतृकर्मादि भेद निर्देशो जीवादिधीकं (अन्यत्) ब्रह्म दर्शयति (ब्र.सू.भा. २-१-२२)

४* ''आत्मावाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्य: २-४-५) इत्येवं जातीयक: कर्तृकर्मादि भेदनिर्देशो जीवाद धिकं (अन्यत्) ब्रह्म दर्शयति (ब्र.सू.भा. २-९-२२)

५* 'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति' य आत्मनितिष्ठन् आत्मानमन्तरो यमयति'' एवं जातीयको भेद निर्देशो नासति भेदे युज्यते (ब्र. सू. २-३-४३)

६* शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मान्यरूढ: (बृ. ३-४-३५) इत्येवं जातीयक : कर्तृकर्मादि भेदनिर्देशो जीवादधिकं ब्रह्म दर्शयती। ब्र.सू.भा. २-१-२२

७* ,प्रतीचिनस्यात् तद्ब्रह्म। भेदार्थ चेत्सहार्थता। (तै. सु. वार्तिक २-१-१७) सहशब्दस्य यथाश्रुतार्थत्वं किं न स्यादि तित्याशं क्याह - प्रतीचीति - सह शब्दस्य मुख्यार्थत्वे सत्यात्म ब्रह्मणो भेदाद्बेदार्थता। सह शब्दस्य स्यात् (तृ. आनन्दगिरी टीका २-१-१७)

१२१ – सिविल सूट(३)

वा. ए. २७ – 'सता सौम्य तदा संपन्नो भवति (छा. ६-८-१) यह वाक्य प्राप्त प्राप्तव्य भावसे जीव परमात्माके भेदका कथन करता है। शंकराचार्यने इस अर्थको मान लिया है।१* अत: ८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,७ इन श्रुतियोंसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता है, ऐसा निर्णय कोर्ट करता है।

'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' नान्यतोऽस्ति द्रष्टा, नान्यतोऽसि द्रष्टा, वाक्य जीव परमात्माकी ''एकता'' कहता है, इसलिये ८ से १७ तककी श्रुतियाँ २३,२७ अंककी श्रुतियोंसे सिद्ध होनेवाला भेद मिथ्या (व्यावहारिक) है प्रतिवादि कहते हैं। कोर्ट इस कथनका निराकरण करता है, क्योंकि तत्त्वमसि वाक्यसे ऐक्य सिद्ध नहीं होता।

वा. ए. २६ 'द्वसुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिष्वस्वजाते तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन्नन्योऽभिचाकाशीति (ऋ.मुं.श्वे) इस वेद वाक्यगत ''द्वौ'' शब्द द्विशब्द: द्वित्वसंख्यायां भेदेचापि प्रयुज्यते, इस कोशके अनुसार जीव परमात्माके भेदका बोधक है।

अथवा ''द्वि'' शब्द द्वित्वसंख्या युक्त जीवेश्वर को कहनेपर भी द्वित्वसंख्या भेदसे व्याप्त है। अत: ''द्वि:'' श ब्दसे भेदही सिद्ध होता है। ''सयुजा'' पद संबंधिका संकेत देता है। भेदके बगैर संबंध युक्त नहीं होता; इस पदसे भी भेद की सिद्धि होती है.।

''सखायौ' पदसे मित्रोंका भेद बोध होता है। ''तयोरन्य:'' उक्त है, ''अनश्ननन्य:'' कहनेके कारण कर्मफलभोक्तृत्व भाव रूप विरूद्ध धर्मोके कथनसे भेद सिद्ध होता है।

मुंडकोपनिषत् के व्याख्यानमें शंकराचार्य लिखते हैं – निरन्तर साथ रहनेवाले दो वृक्षरूप शरीरमें आश्रित हैं। इन दोनोंमें एक जीव है, जो कर्मफलका अनुभव करता है। दूसरा कर्मफल का अनुभव नही करता। भोग्यभूत कर्मोसे भोक्ता जीवको प्रेरक होता है। इस तरह यह वाक्य प्रेर्य प्रेरक रूप विरूद्ध धर्मोसे जीव परमात्मामें भेद का प्रतिपादन करता है। इसी तरह १-२-१२ २* ब्रहसूत्रमें भी (ब्र.सू. १-३-७) ३* व्याख्यान किया है यह वाक्य जीवपरमात्मामें भेदका ही बोध करता है।

विद्यारण्यने ऋग्वेदका जो व्याख्यान किया है उन्होंने भी इस वाक्यको भेद प्रतिपादक माना है। ४*

१* सता सोम्य तदा संपन्नो भवति (छा. ६-८-१) इत्येवं जातीयक: कर्तृकर्मादि भेद निर्देशो जीवादधिकं (अन्यत्) ब्रह्म दर्शयति ब्र. सू. भा. २-१-२२

२* द्वौ सयुजा सदैव सर्वदा युक्तौ वृक्षं शरीरं
परिष्वक्तवन्तौ तयो: परिष्वक्तयोरन्य एक: क्षेत्रज्ञ: (जीव:)
कर्मनिष्पन्नं फलं अत्ति भक्षयति अनशन्नन्ये इतर:
ईश्वरो नाश्नाति प्रेरयिता ह्यसौ उभयोर्भोज्य भोक्त्रो: (मुं. ३-१-१)

३* द्वासपुर्णा सयुजा सरवाया (मु. ३-१-१) एवमादिष्ठपि तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्ति अदनलिंगात् विज्ञानात्मा भवति। अनश्नन्योऽभिचाकशिति इत्यनशनचेनत्वाम्यां परमात्मा ईश्वरक्षेत्रज्ञा (ईश्वरजीवौ) तत्र गुह्येते इति (ब्र. सू शां. भा. १-३-७)

४* लौकिक बुद्धया भेदमच्युपेत्योच्यते तयोरन्य: जीवात्मा पिप्पलं स्वादु स्वादुभूतं अति भुक्ते, यस्य यदुपार्जित तत्तस्य स्वादुभूतं अत्ति युक्ते यस्य यदुपार्जितं तत्तस्य स्वादु भवति। अन्य: परमात्मा अनश्नन् आप्तकामत्वेन अभुंजान तस्मादवास्तवभेदमुजीव्य तयोरन्य इत्युक्तं भवति इति (ऋ. २-३-१७-२०) विद्यारण्यभाष्य)

वा. ए. १९ द्वासुपर्णा श्रुतिके उत्तरमें ही समाने वृक्षे पुरूषोनिमग्रोऽनीशया शोचति मुह्यमान: जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमान् मिति वीतशोक: यह श्रुति कहती है - देहरूपीवृक्षमें आसक्त होकर दु:खी जीव, सर्वस्वामि परमात्माके दर्शन करता है, जो परमात्मा सर्वसेव्य है। अन्यं - जीवजडात्मक प्रपंचसे भिन्न है इस तरह के परमात्माके दर्शनसे ही मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सेव्यसेवक भावसे, भृत्यस्वामिभावसे, द्रष्ट द्रष्टव्य भावसे, जीवपरमात्माका भेद ही कहा गया है। इस श्रुतिमें ''अन्य'' पद ही भेदज्ञापक है। इस कारणसे ''द्वासुपर्णा'' श्रुतिसे भी, जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं - श्रुतिसे भी जीवपरमात्माका भेद ही सिद्ध होता है - यही कोर्टका निर्णय है।

प्र. वा. - 'तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वतीति सत्वं अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति - ज्ञ: तावेतौ सत्वक्षेत्रज्ञौ इति .... तदेतत्सत्यं येन स्वप्नं पश्यति, अथ योऽयं शारीर: उपद्रष्टा स क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्वक्षेत्रज्ञातिति - न हवा एवं विधि किंचन रज: अध्वस्यैव 'इस तरह पैंगीरहस्य ब्राह्मण - ''द्वासुपर्णा'' वाक्यको ग्रहण करके कर्मफलभक्षण के विषयमें कहा है। वह सत्वं = अन्त:करण, (बुद्धि) कर्मफलभक्षण किये बिना प्रकाशित रहता है। इस तरह जिसका उल्लेख किया गया है। वह ज्ञ: = जीव है। ''द्वासपुर्णा'' वाक्य अन्त:करण, जीवका बोध करता है। अत: द्वासपुर्णा वाक्य अन्त:करण, और जीवका कथन करता है, न जीवका न परमात्माका भेद कहता है। भेदकी सिद्धि इन वाक्योंसे होती है यह कहना उचित नहीं। ''द्वासपुर्णा'' जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं'' भेदबोधक है, समझनेपर भी, अभेद प्रतिपादक तत्त्वस्यादि, वाक्योंके विरूद्ध होनेके कारण उस भेदको मिथ्या समझे। अत: ''द्वासपुर्णा'' जुष्टं यदा वाक्य जीवपरमात्माके पारमार्थिक (सत्य) भेदके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकते। इस तरह प्रतिवादिके कथनको अदालत निरस्त करती है। क्योंकि.....

''तत्त्वमस्यादि'' वाक्य अभेद बोधक नहीं, इस तरह पूर्वमें निर्णीत होनेके कारण, इन वाक्योंसे कोई बाधा नहीं आ सकती।

पैंगीरहस्य ब्राह्मण - तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्ति सत्वं'' कर्मफल भोक्ता सत्त्व है, कहा गया है।

अन्त:करण जड होनेके कारण उसका कर्मफल भोक्तृत्व संभव नहीं। जीवके लिये निम्नलिखित श्रुतिमें कर्मफल भोक्तृत्व उक्त है। श्रुति इस प्रकार है - रमणीय चरणा: रमणीयां योनिमापद्यन्ते (छां.) नाकस्य पृष्ठे सुकृते तेनुभुक्ता इमं लोक हीनतरं वा विशंति (मुं) इन मन्त्रोंसे जीवोंका कर्मफलभोक्तृत्व प्रमाणित होता है। ''सत्वं'' पद प्रकृतिजैमुक्तं (गी-१८.५०) वाक्यमें जीव बोधक कहा गया है। ''सत्वं प्राणिजातं'' शंकराचार्यने अर्थ किया है। अनेक ग्रंथोंमें ''सत्व'' शब्दको जीवके अर्थमें उपयुक्त है। ''तदेतत्सत्यं येन स्वप्नं पश्यति'' वाक्यमें ''येन'' पदको ''य:'' रूप विभक्तिमें बदलाव करके य: - जो स्वप्नं जो स्वप्नको देखता है वह सत्वं - जीव है। इस तरह अर्थ करनेसे युक्त होता है। अत: कर्मफलका भोग करनेवाला जीव ही है। ''अनश्नन अन्यो अभिचाकशीति'' पैंगि रहस्यका वाक्य कर्मफल भक्षण न करनेवाले परमात्माका बोध (ज्ञ:) पदसे बोधक है।

''अथ योऽयं शारीर उपद्रष्टा स क्षेत्रज्ञ:'' इस पैंगीरहस्य के वाक्यमें उक्त शारीरकत्व (शरीरवृत्तित्व) उपद्रष्टत्व, क्षेत्रज्ञत्व, ''योऽस्यात्मन: कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते'' स्मृति,

उपद्रष्टानुमन्ता च । भर्ता भोक्ता महेश्वरः । परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरूषः परः । (गीता १३-२२) इत्यादि प्रमाणोंसे परमात्मामें ही युक्त होते हैं। कर्मफल भक्षण न करना जीवमें संभवता नहीं । और उपद्रष्टत्वभी घटित नहीं होता । इसलिये जीव ''ज्ञः'' पदसे ज्ञेय नहीं होगा । वेदार्थ निर्णय के लिये प्रवृत्त नारायणावतारी भगवान् बादरायणने ''स्थित्यदनाभ्यां'' इत्यादि सूत्रोंसे ''द्वासुपर्णा'' श्रुति जीवपरमात्माका कथन करता है, इस तरह व्याख्यान किया है।

''द्वासुपर्णा'' मन्त्रके आगे ''जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं'' वाक्य पूर्वमन्त्रमें उक्त जीवब्रह्मका प्रतिपादन करता है, ऐसा शंकराचार्यने कहा है। पैंगिरहस्य ब्राह्मण ''द्वासुपर्णा'' मन्त्र जीवपरमात्माका प्रतिपादन करता है, अन्तःकरणका प्रतिपादन नहीं करता। अतः ''द्वासुपर्णा'' जुष्टं पश्यत्यन्यमीशं ''दोनोंवाक्य जीवपरमात्माके भेदके विषयमें प्रमाण होते है। इस तरह अदालत फैसला करती है।

वा. ए. २० - ''पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टं ततस्तेनामृतत्त्वमेति'' (श्वे. १-६) श्रुति कहती है - जीव परमात्माको पृथक् = अपनेसे भिन्न, जीव जडात्मक प्रपंचसे भिन्न, जीवजडात्मक प्रपंचका प्रेरक जानकर, जुष्टं = परमात्माके प्रेमपात्र बनकर, बादमें उसी परमात्मासे अमृतत्वं मोक्ष प्राप्त करता है, इस विषयका निर्देश पृथक् पदसे किया गया है। प्रेर्य, प्रेरकभावसे, प्रेम कर्तृत्व, प्रेमकर्मत्व भावसे, मोक्षप्रापक, मोक्षप्राप्तव्य भावसे, जीवपरमात्माका भेद ही उक्त है।

भेदज्ञान मोक्षजनक है, प्रेर्यप्रेरक ज्ञानभी मोक्षजनक है, ऐसा कहे जानेके कारण, यह ज्ञान यथार्थ ही होगा। अतः अदालत निर्णय करती है कि भेद और प्रेर्यप्रेरकभाव सत्य ही है।

''पृथक्'' पदसे भिन्न, ''प्रेरितारं'' पदसे भिन्न प्रेरक रूपमें कहे जानेपरभी ''पृथक्'' अज्ञान कालमें भिन्नरूपसे दिखायी देनेवाला, अज्ञान रहते प्रेरकके रूपमें दिखनेवाला ऐसा अर्थ करना अत्यंत अयुक्त है। स्वमतके आग्रहसे इस तरहका अर्थ किया जा सकता है। और कुछ प्रमाण नहीं। परमात्मा मुझसे अत्यंत भिन्न है, वही मेरा प्रेरक है, इस ज्ञानसे ही जीव मोक्ष प्राप्त करता है। यह स्पष्टरूपमें कहे जानेपर भी, यह ज्ञान परंपरासे मोक्ष साधन है, इस तरहके कथनके लिये कोई आधार नहीं। भेदज्ञान, प्रेरकत्व ज्ञान भ्रम होगा तो भ्रमज्ञानसे साक्षात्, अथवा परंपरासे कुछ अनर्थ होना चाहिये। मोक्ष प्राप्तिकी संभावना नहीं की जा सकती। इसलिये भेदज्ञान, प्रेरकत्वज्ञान परंपरासे मोक्षजनक होनेपर भी वह यथार्थ ज्ञान ही है। प्रमात्मक ज्ञान है। अतः मोक्षजनक ज्ञानके लिये विषयभूत भेद, प्रेरकत्व सत्य होनेसे भी ''पृथक्'' = अज्ञानावस्थामें पृथक्त्वेन = जीवसे भिन्न दिखाई देनेवाला, प्रेरितारं = अज्ञानवस्थामें जीवोंके प्रेरकके भासमान, इस तरह अर्थ करनेसे अभेद, और प्रेरकत्व दीखते हैं, वास्तवमें वे नहीं, जीवपरमात्मामें भेद हो प्रेर्य प्रेरकभाव हो, सिद्ध नहीं होते, ऐसा जो प्रतिवादियोंका कहना है। 'अथवा यह श्रुति जीव परमात्माका भेद, प्रेर्यप्रेरक भाव, मोक्षसाधनके रूपमें वर्णित है, वह भी परंपरासे मोक्ष साधन है साक्षात् मोक्षसाधन नहीं, इस तरह जो प्रतिवादियोंकी दलील है, कोर्ट उसका निराकरण करती है।

वा. ए. २१ - 'भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीष्मास्मादाग्निश्चेंद्रश्च मृत्युर्धावति पंचम इति ' (तै. २-८) श्रुति प्रशास्य प्रशासक भावसे जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करता है।

शंकराचार्यने इस विषयका स्वीकार अपने भाष्यमें १* माना है।

वा. ए. २२ - ''अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णां बव्हीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः (श्वे.४-५) श्रुति जीव परमात्माके भेदका बोध करते करते, अनंत जीवोंसे परमात्माके भेदका प्रतिपादन करती है। शंकराचार्यने स्वीकारा है कि यह श्रुति जीवोंके परस्पर भेदका निरूपण करती है। उनके भाष्यमें इस दाखला है।२*

इसलिये वादिने जिन २१-२२ वाक्योंका दाखला दिया है, उन वाक्योंसे जीवपरमात्माका भेद ही सिद्ध होता है। कोर्टने ऐसा फैसला किया है।

वादिका दाखला - २३ तद्यथाप्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं एवमेवायं पुरूषः प्राज्ञेनात्मना संपारिष्वक्तः न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं (ब्र. म. ३-२१) वाक्य प्राप्य प्रापक भावसे जीवपरमात्माके भेदको स्पष्ट करता है।

शंकराचार्यने अपने १-३-४२ के सूत्रभाष्यमें ३* भेदको ही स्वीकार किया है। यह सबकुछ होते हुये भी ब्रह्मदारण्यकोपनिषद्भाष्यमें ''४* कामुक पुरूष प्रिय स्त्रीसे आलिंगनमें जब बद्ध होता हैं तब बाह्यान्तर पदार्थोंको जानता है। आलिंगनमें स्त्रीसे एक होनेपर बाह्यान्तर किसी पदार्थको नहीं जानता, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इस दृष्टान्तसे जीव परमात्मासे आलिंगनमें बद्ध होनेपर, बाह्यान्तर पदार्थोंको जाननेपर भी सुषुप्तिकालमें परमात्मासे एक होनेपर कुछभी नहीं जानता। परमात्माका एकी भाव ही अज्ञानका कारण है। इस तरह शंकराचार्यने कहा है यह कथन व्याहति का अच्छा नमूना होगा। लोकानुभव विरूद्ध है।

रतिके समय स्त्रीके साथ पुरूष एक होता है, ऐसा अनुभव किसीको भी नहीं। भविष्यमें इस तरह के अनुभवकी संभावना भी नहीं की जा सकती। अतः शंकराचार्यका यह व्याख्यान उपादेय नहीं हो सकता है, इस वाक्यसे भी जीवपरमात्माका भेद ही सिद्ध होता है। इस तरह अदालत निर्णय करती है।

१* वातादयो हि महार्हा स्वयमीश्वराः सन्तः परनादि कार्येष्वायासबहुलेषु नियताः प्रवर्तन्ते। तद्युक्तं प्रशास्तरि सति, यस्मात् नियमेन तेषां प्रवर्तनं, तस्मादस्ति भयकारणं तेषां प्रशास्तृ ब्रह्म। यतस्ते भृत्या इव राज्ञोऽस्यात् ब्रह्मणो भयेन प्रवर्तन्ते तच्च भयकारणमानंदं ब्रह्म। (तै. शां. भा. २-८)

२* नचेदमाशं तितव्यमेकः क्षेत्रज्ञोऽनुशेतेऽन्यो जहातीत्यतः क्षेत्रज्ञ भेदः पारमार्थिक परेषामिष्टः प्राप्नोतीति। नही यं क्षेत्रज्ञभेदप्रतिपिपाददिषा किंन्तु बन्धमोक्ष व्यवस्था प्रतिपादयिषा त्वेषा। प्रसिद्धंत् भेदमनूद्य बन्धमोक्षव्यवस्था प्रतिपाद्यते। भेदस्तूपाधि निमित्तो मिथ्याज्ञान कल्पितो न पारमार्थिकः। (ब्र.सू.भा. १-४-१०)

३* सुषुप्तौ उत्क्रान्तौ च शारीराद्भेदेन परमेश्वरसत्य व्यपदेशात् सुषुप्तौ तावत् अयं पुरुषोः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः न बाह्यं किंचन वेदनांतरं (बृ. ४-३-२१) इति शारीराद्भेदेन परमेश्वरं व्यपदिशति ब्रह्म सू. शां. भा. (१-३-४२)

४* श्रुण्वात्राज्ञान हेतुं एकत्वमेवाज्ञान हेतुः तत्कथमिति उच्यते दृष्टान्तेन हि प्रत्यक्षं भवति विविक्षितोर्थः इत्याह तत्तत्र यथालोके प्रियंः येष्ठ या स्त्रिया संपरिष्वक्तः काम्रभन्त्या कामुक सन्नबाह्य आत्मनः किन्चन किंचिदपि वेद मत्येऽन्यदस्ति। ति-परेण ज्योतिषा संपरिष्वक्तऽ संपरिष्वक्तः एकीभूत यदपाक्षीस्तत्रायं हेतुर्म योक्तं एकत्व यथा स्मीपुंसह्नोः संप्तरिष्वक्तयेः. (बृःशं.भा. ४-३-२) किंचिदपि वेद मत्तोन्यदस्ति इं।ेा - परेण ज्योतिषा स परिष्वक्त सम्परिष्वक्तः यथा स्त्रीपुंसो संपरिष्वक्तो। (ब्र. शां. भा. ४-३-२) एकीभूत :यदप्रा।ःा' 'त्रायं हेतुम क्त एकत्वं यथा स्त्रीपुंसक्को संपरिष्ववतयोः।

१२५ – सिविल सूट (३)

वा. ए. २४ : एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां एकं रूपं बहुधा य: करोति तमात्मस्थं येनानुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् – ''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान् तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्ति: शाश्वती: नेतरेषां'' श्रुतियाँ सर्वस्वामित्व, चैतन्य प्रदत्वं, ज्ञेयत्वादिसे जीवब्रह्म भेदका प्रतिपादन करती है। स्वामित्वादि ज्ञानसे मोक्षकी उपलब्धि होती है, इस तरह उक्त होनेके कारण इस ज्ञानके प्रामाण्य का बोध करते करते, इस ज्ञानके विषयीभूत स्वामित्वादिसे, उससे सिद्ध होनेवाला भेद प्रमाणभूत सिद्ध होता है। और पारमार्थिक सत्यत्व भी ज्ञात होता है। **वा. ए. २५** ''ज्ञा ज्ञौ द्वावजावीशानीशौ'' यह श्वेताश्वेतर वाक्य जीवपरमात्माको सर्वज्ञत्वासर्वज्ञ, ईशत्वानीशत्व, विरूद्ध धर्माका वर्णन करके भेदका प्रतिपादन करता है। ''द्वा'' पदसे भी भेद ज्ञात होता है। इस तरहका भेद प्रमाणभूत श्रुतिसे भी सिद्ध होनेके कारण भेदका पारमार्थिकत्व प्रमाणित होता है।

वा. ए. २९ प्र. ए. १७ ''अथ योन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव'' (बृ. १-४-१०) वाक्य यं = अन्य: =अन्यजीव अन्यां देवतां = अपनेसे भिन्न परमात्मा रूपदेवताको, अन्य भूत परमात्मा मैं हूँ = मैं परमात्मा हूँ, इस तरह ऐक्योपासना करता है, वह कुछ जाननेवाला नहीं होता। इस तरह अभेदोपासना की निन्दा करते, जीवब्रह्मके अभेद की निन्दा करते, जीवब्रह्मके भेदका ही बोध करता है, ऐसा कोर्ट, मानता है।

'यस्य येनाभि संबंध: दूरस्थेपानि तेन स:'' न्याय का स्वीकार अद्वैतियोंने ३-२-२२ के सूत्रभाष्यमें भामत्यादिमें किया है, इस न्यायके अनुसार ''अन्य'' पदका अर्थ दूरमें स्थित ''य:'' पदसे उचित होगा। समीपस्थ ''अहं'' पदसे अन्वित नहीं होगा। अत: अन्यस्थान स्थित ''अन्य'' पदका अन्वय दूसरी जगह करके, अर्थ करनेपर दूरान्वय दोषकी प्राप्ति होती है, प्रतिवादिके इस कथनका निराकरण अदालत करती है।

शंकराचार्यने अपने उपनिषद्भाष्यमें, गीता भाष्य में ऐसा लिखा है – यह वाक्य मोक्षके साधनीभूत ब्रह्मज्ञान की प्राप्तिको तजकर, शीघ्र फलदेनेवाले अल्पफलके लिये लिया गया है। ऋण लेनेवाला अमीर की जिस तरह इज्जत करता है, वैसे ही परमात्मासे भिन्न इंद्रादि देवता पूजा यज्ञादिसे करता है। वह अज्ञानी है। इस तरह शंकराचार्यने कहा है, न कि जीव परमात्माके भेदको जाननेवाले व्यक्ति की निन्दा करती है। ऐसा शंकराचार्यने नहीं कहा है।

उपनिषद्भाष्यमें ''उपास्ते'' पदका भेद करके उप आस्ते, उप-उपगम्य (ऋण लेनेवाला कर्जदार के पास जिस तरह कृतज्ञता से जाता है वैसे) कर्जदारका मानसम्मान करता रहता है। ''उपास्ते'' इस एक ही पदका ग्रहण करके जान लेता है, यह अर्थ नहीं किया है। अत: भेद ज्ञानीकी निन्दाकी गयी है, यह कथन युक्त नहीं होगा। जो बि. ए. पास हो चुका हो, उसे बि. ए. कहोगे या नहीं, घरको घर समझनेवाला क्या अज्ञानी कहलायेगा, उसे अज्ञानी कहनेवाला ही अज्ञानी होगा। इसी तरह ''अन्यां देवतां'' अन्य देवताको ''अन्योसावन्योहमस्मि न स वेद'' तुम अन्य हो, मैं अन्य हूँ। इस प्रकार अज्ञ समझनेवालेको ही अज्ञानी कहना पडेगा। अत: यह वाक्य भेदज्ञानी की निन्दा करती है, और भेदका निषेध करता है, इस तरह प्रतिवादियोंका कथन अयुक्त है, कोर्टने इस प्रकार निर्णय

किया है।

वा. ए. प्र. ए. ११ - ''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (बृ. ४-४-६) इस वाक्यका प्रतिपादन इस प्रकार है - ज्ञानी जीवभावको छोडे बगैर ब्रह्मको प्राप्त करता है। प्राप्य प्रापक भावसे जीवब्रह्मका भेद ही ज्ञात होता है। यही अदालत का निर्णय है। 'ब्रह्म अप्येति' इन पदोंका देह संतति का नाश प्राप्त करता है, इस अर्थके विषयमें कोई आधार नहीं। अत: कोर्ट की तरफसे प्रतिवादिके अर्थका निराकरण किया जाता है।

''अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति?'' बृहंति बृंहयतिचेति इत्यादि श्रुतियोंसे पूर्णत्वादि, गुणयुक्त ब्रह्म ही होगा। ''ब्रह्मैव सन्'' संसारावस्थामें ब्रह्म ही बनकर (गुणपूर्णत्वादि गुणोंसे युक्त होकर रहा) यह अर्थ सही नहीं होगा।

''चित्त्'' पूर्वमें ज्ञात नहीं होता, लक्षणावृत्तिसे ब्रह्म शब्दका अर्थ ''चित्त्'' मात्र यह अर्थ गृहण नहीं कर सकते। उस प्रकार ''चित्त'' ऐसा अर्थ लेनेपरभी जीव ब्रह्मैव सन् - चेतन बनकरही ब्रह्माप्येति = देहसंतति विच्छेद युक्त होता है ऐसा ही अर्थ निकलता है। जीवब्रह्मके ऐक्यका साधक नहीं होगा। जीव, जीवभावको न छोडकर ब्रह्मको प्राप्त करता है। जिसके कारण प्राप्य प्रापक भाव अर्थ स्फुट होगा। जीवब्रह्मका भेद स्पष्ट होता है। यह कोर्टका निर्णय है।

प्र. ए. ७ ''अयमात्मा ब्रह्म'' श्रुति, यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य संततो भाव: तस्मादात्मेति भण्यते, इस भारतके वचनके अनुसार आत्म शब्द परमात्मा बोधक है।

''द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्'' सूत्रमें द्युभ्वादिकोंका (यह लोक और परलोक) आश्रय कौन है? क्या जीव, वायु, प्रकृति, हिरण्यगर्भ होंगे या नहीं ऐसी शंकाको लेकर, ''तमेवैकं जानथ आत्मानं'' द्युभ्वाद्यायतन शब्द आत्म शब्दका प्रयोग हुवा है, जिसके कारण आत्म शब्दसे परमार्थरूपसे परमात्मा ही उपादेय है, जीवादिकोंका अर्थ युक्त नहीं होगा। शंकराचार्यने कहा है आत्मशब्द: परमात्मा परिग्रहे कहा है। जीवादिकोंके ग्रहण करनेसे संगत नहीं होगा। ऐसा शंकराचार्य कहते हैं। आनन्दगिरी २) रत्नप्रभा, ३) ब्रह्मविद्याभरण आदि ग्रंथोंमें इसी तरह कहा गया है। ''आत्म'' शब्द मुख्यवृत्तिसे परमात्माका ही बोधन है। इसलिये ''अयमात्मा ब्रह्म'' (मां.२) श्रुति अयं = प्रमाणसिद्ध परमात्मा ब्रह्म = पूर्ण है। परमात्माके पूर्णत्वका ही बखान किया है।

''अयमात्मा'' जीव ही परब्रह्म है, ऐसा ऐक्यार्थ का बोधक नहीं, ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

''जन्माद्यस्य यत:'' सूत्रस्थ ''अस्य'' शब्द प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तुका ही निरूपण करता है, जो प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं। ऐसे समस्त जगत् प्रतिपादक नहीं, शंकराचार्यने ऐसी शंका लेकर ''प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्धस्य'' वाक्यसे प्रमाणसिद्ध वस्तुका बोध करता है; प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्धस्य वस्तुत: बोधक नहीं। शंकराचार्यने कहा है। अत: ''अयं'' शब्द प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका ही निरूपण करता है। जीव प्रत्यक्षसिद्ध है। ब्रह्म प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका ही निरूपण करता है। जीव प्रत्यक्षसिद्ध है। ब्रह्म प्रत्यक्षसिद्ध नहीं। इसलिये - ''अयं'' प्रत्यक्षसिद्ध आत्मा जीव ही परमात्मा है ऐसा अर्थ करना चाहिये। इस प्रतिवादियोंकी दलीलोंका खण्डन करता है।

प्र. ए. १२ - 'एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरूते अथ तस्य भयं भवति' इस वाक्यसे यह ज्ञात होता है

कि जो परमात्मामें भेदके ज्ञान को प्राप्त करता है, उसे भय की प्राप्ति होती है। इस तरह भेद की निन्दा करके, भेदका निषेध करनेसे जीव परमात्मा की एकता को मान लेना चाहिये। प्रतिवादिकी इस दलील की बरख़ास्त करती अदालत

क्योंकि -

इस वाक्यके पूर्वमें ''अद्दश्येनात्मेऽनिरूक्तेऽनिलयने अभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति'' वाक्य - द्दश्यमान पदार्थोंसे परमात्मामें भेदको निर्वचन योग्य पदार्थोसे भेदको, आश्रय भेदको, ज्ञातृज्ञेय भावसे जीवसे परमात्मामें भेदको, अभयंगतो भवति'' प्राप्यप्रापक भावसे भेद, ''भीषादस्यस्मद्वात: पवते'' इत्यादि मन्त्रोंसे, भय दातृत्वसे, अग्न्यादिसे परमात्माके भेदका प्रतिपादन हुवा है।

''सत्यं ज्ञानमनंतं'' इत्यादि वाक्य असत्य, अज्ञानादिसे भेदबोधक है।

''द्वासुपर्णा'' इत्यादि वाक्य जीवोंसे परमत्माके भेदका प्रतिपादन करते हैं।

अत: ''एतस्मिन्नुदमंतरं कुरूते'' मन्त्र परमात्मागत स्वगतभेदका निषेधक ही है। अन्य भेदका नहीं, जैसे इस गाँवमें द्वेष नहीं, ग्राममें बसनेवाले लोगोंको ग्रामस्थ लोगोंसे भय नहीं, द्वेष नहीं ऐसा अर्थ होता है। वैसे ही ''एतस्मिन्नुदरमतंर कुरूते'' मन्त्रमें परमात्मामें कोई भेद नहीं। पूर्वोत्तर विरूद्ध वाक्यार्थ नहीं हो सकता। अनेक भेद बोधक वाक्योंके विरूद्ध, जीवपरमात्माके भेदका निषेध नहीं कर सकते, अत: पूर्वोत्तर वाक्यके विरूद्ध, अनेक भेदबोधक वाक्यके विरूद्ध, यह वाक्य जीव परमात्माके ऐक्य के विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता।

प्र. ए. १३ 'यन्मदन्यनास्ति कस्मानु बिभेमि....... द्वितीयाद्वै भयं भवति' वाक्यमें कहा गया है। दूसरी वस्तुसे भय पैदा होता है। मेरे अतिरिक्त दूसरी वस्तुको भयकारणत्व कहा गया है। द्वितीय वस्तु ही नहीं, कहकर जीवब्रह्मकी एकताका बोधक है यह वाक्य ऐसा प्रतिवादियोंका कहना अयुक्त है, ऐसा कोर्टने निर्णय लिया है।

क्योंकि -

द्वितीय वस्तु ही भयजनक होती तो, 'सद्वितीयमैच्छत् ' वाक्यसे चतुर्मुख ब्रह्म अकेले थे, स वै नैव रेमे...... सुखी नहीं हुए, सुखके अनुभवके लिये द्वितीय वस्तुकी कामना की, यों द्वितीय वस्तुको सुखकारणत्व के रूपमें वर्णन किया गया है, दूसरी वस्तुके अभावमें अकेले रहते, सुखाभाव का बयान संगत नहीं होगा। अत एव इस वाक्यका आशय इस प्रकार है - दूसरी वस्तु ही भयजनक नहीं, बाधक होनेपर दूसरीवस्तु भयजनक होगी। शंकराचार्यने यों कहा है अपने भाष्यमें - विरोधीभूत द्वितीय वस्तु ही भयजनक हैं।अपने विरोधी द्वितीय वस्तुके अभावमें चतुर्मुख ब्रह्मा भयपीडित नहीं हुये। यही इस श्रुतिका आशय है। शंकराचार्यने द्वितीय वस्तुके अभावको नहीं माना है।

विरोधी हो या अविरोधी द्वितीय वस्तु ही भय कारण है। चतुर्मुख ब्रह्म अविवेकी था, इसीलिये उसने द्वितीय वस्तुको सुखकारण माना और द्वितीय वस्तुकी अपेक्षा की। ऐसा जो प्रतिवादियोंका कथन है, वह अयुक्त है। अगर प्रतिवादी चतुर्मुखको अविवेकी समझते हैं, तो मुझसे भिन्न कोई वस्तु नहीं, अतएव मुझे डर नहीं। यह भी चतुर्मुखका अविवेकी विचार हुवा। इस विचारसे दूसरी वस्तुका अभाव सिद्ध नहीं होगा। ''ज्ञानमप्रतिघं'' रूपमें स्मृतियोंमें महाज्ञानी के रूपमें उक्त चतुर्मुखको

अविवेकी कहनेवाले अविवेकी होंगे।

चतुर्मुख ब्रह्मा विवेकी है, इसीकारण ''स वै नैव रेमे.... सद्वितीयमैच्छत्, ''वह अकेला सुखी नहीं हो सका, उसने द्वितीयमैच्छत्, वह अकेला सुखी नहीं हो सका, उसने द्वितीय पदार्थ की कामना की, यह विचार ब्रह्माका विवेकी विचार है, इससे १* द्वितीय वस्तुका सुख कारणत्व सिद्ध होगा, भयकारणत्व का लोप होगा, द्वितीय वस्तुकी सिद्धि भी होगी। ''उभयत: पाशारज्जु'' न्यायके अनुसार चतुर्मुखको विवेकी माननेपर या अविवेकी समझनेपर द्वितीय वस्तुका भयकारणत्व प्रमाणित नहीं होता। द्वितीयवस्तुका अभाव भी सिद्ध नहीं होगा। द्वितीय वस्तुको भय कारण माननेपर भी, बाधसे भय पैदा होता है, सर्पसे डर लगता है, कहनेपर जैसे व्याघ्रका और सर्पका अभाव कैसे सिद्ध नहीं होता। वैसे द्वितीय वस्तु भय पैदा होता है ऐसे कहनेपर द्वितीय वस्तुका अभाव सिद्ध नहीं होगा।

अत: यह वाक्य विरोधी दूसरी वस्तुके अभावका कथन करता है, द्वितीय वस्तुके अभावका बयान नहीं करता। इसलिये यह वाक्य जीवब्रह्मकी एकताका प्रतिपादक नहीं होगा।

प्र. ए. १५ - ''योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि'' ''भेदव्यपदेशाच्च'' (ब्र. सू. १-११७) सूत्रमें 'य आदित्ये तिष्ठन्'' वाक्य आदित्य और आदित्यांर्गत परमात्मामें भेदका बोधक है, इस तत्त्वको सूत्रकारने ही कहा है। शंकराचार्यने भी भेदपर ही व्याख्यान किया है। इसी प्रकार ''योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि'' (ईशा.१६) वाक्य कहता है। आदित्यमें परमात्मा है। आदित्यमें और परमात्मामें भेद है। ''सोऽहमस्मि'' वाक्यमें ''अहं स: अस्मि'' मैं आदित्यांतर्गत परमात्मा ही हूँ, आपातत: अभेदके उक्त होनेपरभी ''स:'' पदसे मुख्यवृत्तिसे बोध्य आदित्यांन्तर्गत परमात्मा विशिष्ट है, मिथ्या है। अहं पदसे मुख्यवृत्तिसे बोध्य अन्त:करणावच्छिन्न जीव विशिष्ट (मिथ्या) है। इन दोनों विशिष्ट परमात्मामें विशिष्ट जीवमें ऐक्य संपन्न होगा ही नहीं, इस तरह अद्वैतियोंने ही स्वीकार किया है। लक्षणावृत्तिसे ''अहं स:'' पदोंसे बोध्य चित्, चित्में ऐक्य कहते हैं। ऐसे कहनेसे ''तत्त्वमसि'' वाक्यार्थके विचार करते समय उक्त दोष ही आपन्न होंगे। अत: लक्षणावृत्तिसे बोध्य चित्तमें ऐक्य की घटना नहीं होगी।

''कामोऽस्मि भरतर्षभ'' (गीता ७-११) श्लोकमें काम और परमात्मामें अभेद के प्रतीत होनेपर भी, काम परतंत्र है, जन्य है, ईश्वर स्वतंत्र है, अनादि है। काम और परमात्मामें विरूद्ध धर्म होनेके कारण ऐक्य नहीं होगा। इसलिये काम परतंत्र है, (कृष्ण कामका स्वामी है) ऐसा अर्थ करना होगा। इस प्रकार शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने छांदोग्य व्याख्यानमें लिखा है। २*

उसी प्रकार 'एतस्यैव सर्वेरूपमभवन्'' बृ. १-५-२१ श्रुतिमें इन्द्रियोंके साथ मुख्यप्राणसे ऐक्यकी

१* अस्या श्रुते: अविवेक पुरूष परत्त्वाम् (अव्दैसिध्दा) आगम बाधोध्दार:

२* सर्वकाम: सर्वेकामा: दोषरहिता अस्येति सर्वकाम:। धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि'' इति स्मृते:। 'ननु कामोऽस्मि''इति वचनादिह बहुव्रीहिर्नि संभवति सर्वकाम इति। न, कामस्य कर्तव्यत्वाच्छब्दादिवत् पारार्थ्य प्रसंगाच्च देवस्य। तस्माद्यथेह सर्वकाम इति बहुव्रीहि: ''तथा कामोऽस्मि'' इति श्रुत्यर्थो वाच्य: (३-१४-२) उदाहृतां स्मृतिमाश्रित्योक्तमाक्षिपति - नन्विति - कामसामानाधिकारणे बाधकोपलंभात् बहुव्रीहिरेवेति परिहरति - न कामस्येति। तस्य कार्यतात्मादैक्ये ब्रह्मणो अनादित्वं बध्यते चेतनशेषत्वाच्च।कामस्य तदैक्ये ब्रह्मण: स्वातंत्र्यं हीयते। तथाच कर्मधारय संभवात् बहुव्रीहिरेवेत्यर्थ: कथं कामेश्वरयो: सामानाधिकरण्यांसभवात् प्रकृत श्रुतौ बहुवीहिर्यथेष्टस्तस्ता: मृतावपि ब्रह्मपारतंत्र्य मात्रं कामस्य विवक्षितं श्रृत्यनुसारेण स्मृतेर्नेयत्वात् इत्यर्थ: (आनंदगिरी)

प्रतीति होनेपर भी भेदप्रतिपादक अनेक श्रुतियोंके विरूद्ध होनेके कारण, विरूद्ध धर्मोंके कारण ऐक्य की संभावना नहीं की जासकती। समस्त इन्द्रियाँ मुख्यप्राणके अधीन हैं, ऐसा कहना पडेगा। इस तरह शंकराचार्यने १* अपने ब्रह्मसूत्र भाष्यमें कहा है।

''असन्नेवस भवति'' २* वाक्यमें असत्‌के साथ अभेदके दिखाई देनेपर भी, बाधित होनेसे ''असत्समनु'' अर्थ किया है शंकराचार्यने।

३* अहं ब्रह्म त्वं ब्रह्म इत्यादि वाक्यस्थ ''अहं, त्वं पदोंसे बोध्य वस्तुवोंके साथ, ''ब्रह्म'' आदि पदोंसे बोध्य वस्तुके साथ अभेदके प्रतीयमान होनेपर, वह अभेद बाधित होनेके कारण ''अहं'' आदि पदोंके लिये लक्षणा करके भेदपर अर्थ किया है।

इसी तरह ''सोऽहमस्मि'' ''अहं स: अस्मि'' अहं = मैं, स: = आदित्यांतर्गत परमात्माके वश हूँ, इस प्रकार ही अर्थ करना चाहिये, इसको छोडकर मैं ही आदित्यांन्तर्गत परमात्मा हूँ, ऐसा अर्थ नहीं कर सकते। अत: यह वाक्य जीवपरमात्माकी एकता का प्रतिपादक न होकर, भेदप्रतिपादक ही है। यही कोर्टका निर्णय है।

प्र. ए. १६ ''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषुचात्मानं ततो न विजुगुप्सते'' यह मन्त्र ''यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्'' एतस्मिन् खल्वक्षरे आकाश: ओतश्च प्रोतश्च (बृ.) सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिचात्मानि ईक्षते '' (गी) इत्याद्यनेक वेदोंसे और गीतावाक्योंसे, परमात्मा सर्वप्राणिनियामक है, समस्त प्राणि परमात्मामें आश्रित है। इस आधार आधेयभावसे, ज्ञातृज्ञेयभावसे ये सभी मन्त्र भेदबोधक ही हैं। शंकराचार्यने इन वाक्योंका अर्थ इसी प्रकार किया है। अत: ''यस्सर्वाणि'' वाक्य - इन वाक्योंकी भाँति समस्त प्राणि परमात्मामें आश्रित है, परमात्मा समस्त प्राणियोंमें नियामक है। इस तरह जो जानता है, आधार आधेयभाव ज्ञातृज्ञेयभाव उक्त होनेके कारण जीव परमात्माका भेदबोधक है। यही कोर्टका निर्णय है।

''सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानुपश्यति'' वाक्यमें ''आत्मनि'' सप्तम्यन्त पद है। जिससे यह अर्थ निकलता है - जो परमात्मामें (आत्मनि) समस्त प्राणियोंको देखता है। यह स्पष्ट अर्थ है। ''आत्मनि पश्यति'' आत्मस्वरूप के रूपमें ही देखता है, यह अर्थ संगत नहीं होता। 'सर्वभूतेषु' 'चात्मानं' सर्व प्राणियोंमें परमात्मा है, यही अर्थ होता है। सर्वभूतोंमें मै ही आत्मा हूँ, ऐसा अर्थ संभव

१* प्राणस्यैव वृत्तय एकादशेद्रियाणीति एवं प्राप्ते ब्रूम: - (सिद्धान्त:) मुख्यात्प्राणात् तत्त्वान्तराणीद्रियाणि। तत्र तत्र भेदेन व्यपदेशात् मृत्युप्राप्ताप्राप्त लक्षण विरूद्ध संसर्ग श्रुते: अर्थक्रिया भेदाच्च याच प्राणरूप तामिन्द्रियाणामभिददाति श्रुति: तत्रापि पौर्यापर्यालोचनयां भेद एव प्रतीयते इत्युक्तम् भाष्य कृता। तस्मात्बहु श्रुतिविरोधात् पूर्वापर विरोधाच्च प्राणरूपमभिदधानीद्रियाणी प्राणायत्ततया भाक्तं गमयितव्यम् (ब्र. सू. भामती २-४-१७) यदुक्तं त एतस्यैव सर्वेरूपभवन् (वृ. १-५-२१) इति श्रुते: प्राणएव इन्द्रियाणीति, तदयुक्तं तत्रापि कार्यालोचनाद्भेव प्रतीते। तस्मात्तदविरोधेन वागादिषु परिस्पंदलाभस्य प्राणायत्तत्वं, तद्रूपभक्तं वागा दीनामिति मन्तव्यं न तादात्म्यम्। ब्र.सू.शां भवति २-४-९९)

२* असन्नेव असत्सम: एव (तै. शां भा. १-५-१७)

३* योऽध्ययन व्यापारो मम कर्तव्य आसीत् एतावन्तं कालं वेदविषय: स इत ऊर्ध्वं त्वं ब्रह्म त्वत्कर्तृकोऽस्तु इत्यर्थ:। मत्कर्तृका यज्ञा य आसन् इत ऊर्ध्वं त्वं यज्ञ: त्वत्कर्तृका: भवन्ति इत ऊर्ध्वं त्वं लोक: ऊर्ध्वलोक: त्वयाज्ञेतव्या:। (बृ. शा. भा. १-५-१७)

नहीं। इसलिये ''सर्वभूतोंको आत्माके रूपमें देखता है। आत्माके सिवा और कुछ नहीं देखता, प्रतिवादियोंके इस अर्थको ''सर्वभूतेषुचात्मानं'', सर्वभूतोंमें मैं ही आत्मा हूँ इस अर्थको अदालत बर्खास्त करती है।

''यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत विजानत: तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत:'' इस मन्त्रका आशय यह है - ज्ञानी जिस परमात्मामें, जिस समय समस्त भूतोंको आत्माके रूपमें देखता है, सर्वभूत परमात्मा स्वरूप नहीं, इस प्रकारका अज्ञान और भ्रम निवृत्त होनेपर, उस प्रकारके एकत्वको देखनेवाले ज्ञानीको शोक कैसा ? मोह क्यों ? यह जो प्रतिवादिका अर्थ है, कोर्ट उस अर्थका निराकरण करता है। क्योंकि ''अभूत'' एकवचनांत क्रियापदके साथ सर्वभूतानि कर्ताके रूपमें नहीं होगा।

अद्वैतमतके अनुसार सर्वभूत सदैव परमात्माका स्वरूप है, इस प्रकारका अर्थ संभवता नहीं। ''भूतानि आत्मैवाभूत'' भूत आत्मस्वरूप नहीं। इस प्रकार अज्ञान और भ्रम निवृत्त हो चुके हैं, इस प्रकार जो प्रतिवादिका अर्थ वह भी संभव नहीं।

सर्वभूत आत्मस्वरूप (आत्मातिरिक्त नहीं) इतना कहना ही पर्याप्त था। ''यस्मिन्'' ''आत्मानि'' पद व्यर्थ होंगे। और सर्वभूत परमात्मामें है, वे सभी परमात्मा है यह अर्थ असंगत होगा।

''यस्मिन् काले'' ऐसा अर्थ करनेपर अद्वैतमतके अनुसार कालादि मिथ्या है (अज्ञान कल्पित) ज्ञानसे जिसका अज्ञान निवृत्त हो गया हो, उस ज्ञानीके लिये काल न होनेसे 'जिस कालमें' यह प्रयोग नहीं होगा। समस्त आत्मस्वरूप हो गये ऐसा अर्थ युक्तियुक्त नहीं होगा।

''यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत विजानत:। तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत:'' यह ईशावास्य मन्त्र पूर्वमें उक्त श्रुतियाँ, गीता, इन प्रमाणोंके अनुसार इस प्रकार अर्थ होगा - जिस परमात्मामें समस्त भूत है। तत्र = उन भूतोंमें आत्मा नियामक है, ऐसा जो जानता है उस अन्तर्यामि यदेकमव्यक्तमनन्तंरूप '' श्रुतिके अनुसार सर्वपदार्थोंमें नियामक अनेक रूप एक ही है। परमात्माके रूप एक ही हैं, ऐसा जो जानता है, उसको शोक नहीं होगा, मोह पैदा नहीं होगा, अर्थात् मुक्त हो जाता है, इस वादिके अर्थका स्वीकार कोर्ट करता है।

दूसरा भाग
ब्रह्मसूत्रके विषयमें न्यायलय का निर्णय

१* जीवब्रह्म की एकता का उल्लेख सूत्रकारने किसी भी सूत्रमें नहीं किया है। सर्वत्र भेद ही कहा गया है। सूत्रकार जीवब्रह्मकी एकता को कहना नहीं चाहते। जीवब्रह्मका ऐक्य उन्हें प्रिय नहीं। इस

१* ननु जीवब्रह्मणोरैक्यं न क्वापि सूत्रकारो मुखतो वदति। किंतु सर्वत्र भेदमेवातो नैक्यमिष्टं। तत्राह - (प्रतिपाद्यंविति) ब्र. सू. आनंदगिरी (१-३-१९)

तरहकी शंका आयेगी। अथवा **१*** सूत्रोंमें ऐक्य उक्त ही नहीं। इस तरहके भ्रम पैदा होनेपर **२*** प्रतिपाद्यंतु वाक्यसे, शास्त्रोंसे वक्तव्य जीवब्रह्मका ''शास्त्रद्दष्टयातूपदेशो वामदेववत्'' (ब्र.सू. १-१-३०) आदि सूत्रोंमें ऐक्य उक्त है, ऐसा शंकराचार्यने कहा है। शंकराचार्य के उक्त ''इत्यादिना'' वाक्यस्थ आदि पदसे ''आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्तिच (ब्र. सू. ४-१-३) सूत्रका ग्रहण करना चाहिये, यों आनन्दगिरी, **३*** रत्नप्रभाकारोंने कहा है।

उपरोक्त वाक्योंसे यह ज्ञात होता है। सूत्र ५६४ हैं। ''शास्त्रद्दष्टया'', ''आत्मेति'' दो तीन सूत्रोंमें मात्र अद्वैतका प्रतिपादन। अन्य सभी सूत्रोंमें जीव परमात्माका भेद ही उक्त है, शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने स्वीकारा है। अन्य ५६० सूत्रोंमें जीवब्रह्मभेद ही भेद कहा गया है, इसका निर्णय कोर्टको करना चाहिये।

शेष तीन चार सूत्रोंमें **प्र. ए. १** पहले सूत्रमें शास्थद्दष्टया तूपदेशो वामदेववत्'' (ब्र. सू. १-१-३०) प्रतिवादियोंके अनुसार, वामदेव ब्रह्मात्मैक्य द्दष्टिसे, सर्वाभेद द्दष्टिसे, जैसे कहता है - मैं ही मनु हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, अभेदोपदेश करता है, उसी तरह इन्द्र शास्त्रके अनुसार ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' मैं ही प्राणशब्द बोध्य हूँ, अत: मैं परमात्मा हूँ, उपदेश करता है, इस तरह प्रतिवादियोंका अर्थ है। प्रतिवादियोंका यह अर्थ अयुक्त है। अत: कोर्ट इस अर्थका निराकरण करता है।

निराकरण के लिये कारण 'अहं मनुरभवं सूर्यश्च' कहनेवाले वामदेवको, गर्भेनु सन् ४* ''नघासमामयजोषं'' आदि मन्त्रोंसे, परमात्मा समस्त देवताओंका उत्पादक है, सबोंका प्रेरक है। पूर्ण, गर्भस्थ मेरे शत्रुवोंका नाश कर चुका है। इस तरह कहनेके कारण परमात्मा देवताओंमें भिन्न है, वामदेवसे भिन्न है, सर्वान्तर्यामि (ईर्मा - सर्वप्रेरक है) इस तरह भेदज्ञान वामदेवको था।

१* सूत्रेष्वभेदो नोक्त इति भ्रान्तिं निरस्यति प्रतिपाद्यमिति (रत्नप्रभा) (१-३-१९)

२* ''प्रतिपाद्यंतु शास्त्रार्थ आत्मैकत्वमेव दर्शयति'' शास्त्रद्दष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् (ब्र. सू. १-१-३०) इत्यादिना।

३* आदिमात्मेति तूपग = छंत्तीत्यादि संग्रहार्थं आंनदगिरी (१-३-१९) आत्मेतितूपगच्छन्ति त्यादि सूत्राप्यादि पदार्थ:। (रत्नप्रभा)

४* गर्भेनुसन्नन्वेषामेवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा शतं मापुरयाशीर्षि गर्भेनु गर्भे एव सन् विद्यमानोऽहं वामदेव: एषामिन्द्रादीनां देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि जनिमानि जन्मानि अन्ववेदं आनुपूर्वेणाज्ञासिषु परमात्म: सकाशात् सर्वेदेवा जाता इत्यवेदिषमित्यर्थ: (ऋ. ६-१६-१)

न घासमामयजोषं जभारा भीमा सतसा वीर्येण इमान्
पुरंधिरजहार रातीरूतवातान् अतर च्चुशुवानु॥२॥
स गर्भ: मां वामदेवं जोषं पर्याप्तं नघनैवाप जभार
अपजभार गर्भेऽपि वसतो मोहोमाभूदित्यर्थ:।
अहं तु ई इदं गर्भ संदु:खं त्वक्षसा तीक्षेण वीर्येण ज्ञानसामर्थ्य।
अभ्यास अभ्यभवम् ईमा सर्वस्य प्रेरका: पुरंधि
पुरांधारक: परमात्मा अराति: गर्भसंस्थितान्।
शत्रून् अजहात् अत्यजत् जघान उतापिच शूशवानं
वर्धमान: परिपूर्ण: परमात्मा वातान् गर्भक्लेशकरान्।
वायुन् अतिरीत् (ऋ. ६-१६-२)

ऐक्य ज्ञान हो चुका हो ''अहं भूमिमददामार्याय'' मैं पूज्यलोगोंको भूमि दे चूका हूँ, इत्यादि भेदज्ञान कार्य की घटना नहीं हो सकती। शंकराचार्यको ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार के होते हुए भी (अभेदज्ञान) जिस तरह शास्त्र निर्माण, वाद, उपदेश, अमरूकशरीरमें प्रवेश आदि कार्य संभवते हैं, वैसे ही यहाँ भी जम सकता है, यह कहना सही नहीं क्योंकि वादि शंकराचार्य को ज्ञानी नहीं मानते।

अद्वैतमतके अनुसार, विशिष्ट मन्वादिसे विशिष्ट वामदेवसे ऐक्य नहीं हो सकता। लक्षणावृत्तिसे मन्वादिपदोंसे ''चित्'' ग्रहण करनेपर, चित् चित् में ऐक्य कहते हैं, ऐसा कही नही। ''तत्त्वमसि'' वाक्यमें उक्त अनेक दोष आयेंगे। इसलिये ''वामदेववत्'' वाक्यके लिये निम्नलिखित अर्थ भी युक्त नहीं होता। वह अर्थ इस प्रकार है - मैं मनू हूँ, मैं सूर्य हूँ, ऐसा वामदेव समझ गये है। यही ऐक्य द्दष्टि है। यह अर्थ संगत नहीं होगा। वामदेवका द्दष्टान्त कहा गया है, उस द्दष्टान्तके बलपर इंद्रने ऐक्य द्दष्टिसे, मैं ही प्राण हूँ, ऐसा समझ चूका हूँ। यह अर्थभी युक्त नहीं। ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' यों कहनेवाला शास्त्र ही नहीं। ''शास्त्रद्दष्टया'' पदके लिये मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसा कहना अयुक्त होगा।

विशिष्ट इन्द्रके साथ विशिष्ट प्राणशब्द बोध्य परमात्माके साथ ऐक्य नहीं होगा। मैं ही ''प्राण हूँ'' अद्वैतरीतिसे भ्रम ही है। मैं ही ब्रह्म हूँ इस द्दष्टिसे ''मामेव विजानीहि'' ऐसा उपदेश दिया यह कहना भी अयुक्त है।

''प्राणस्तथानुगमात्'' यह मुख्य सूत्र है। शास्त्रद्दष्ट्यातूपदेशो वामदेववत्'' गुणसूत्र है। १*

अत: ''प्राणस्तथानुगमात्'' सूत्रमें प्राणशब्दवाच्य इन्द्र है या परब्रह्म है, इस प्रकारकी शंका आनेपर प्राणशब्दवाच्य इन्द्र है परमात्मा नहीं है, इस तरहके पूर्वपक्ष प्रस्तुत होनेपर, प्राणशब्द बोध्य परमात्मा ही है, इन्द्र नहीं, इस प्रकारका सिद्धान्त होनेपर, शंकराचार्यने ऐसा ही अर्थ किया है, इसलिये इस सूत्रमें इन्द्रसे प्राणका भेदही उक्त है। इस अर्थकी स्थापना के लिये प्रवृत्त ''शास्त्रद्दष्टया'' सूत्र, ''प्राणस्तथानुमात् सूत्रमें उक्त इन्द्रपरमात्मा विद्यमान भेदके विरूद्ध होगा ''जीवमुख्यप्राणलिंगादिति चेन्नोपासात्र्यैविध्यानाश्रित्वात् दिह तद्योगात्'' सूत्र इन्द्रादि जीवोंके साथ परमात्माका भेद ही कहा गया, इस उपसंहार सूत्रके ''शास्त्रद्दष्ट्या'' सूत्र अभेदबोधक है यह कहना अयुक्त है।

''य: आत्मनि यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठ न्'' इत्यादि वेदवाक्य ''अन्तर्याम्यधिदेवादिषु तद्धर्म व्यपदेशात्'' ''भेदव्यपदेशाच्य (१-१-२१) सूत्र, परमात्मा इन्द्राद्यन्तर्यामि है, भिन्न है, कहते हैं। शंकराचार्यने भी ऐसा ही अर्थ किया है। ''अत: शास्त्रद्दष्टयातूपदेशो वामदेववत्'' सूत्रका इसी प्रकार अर्थ होगा - वामदेव, परमात्मा सर्वान्तर्यामी है, प्रेरक है, इसी द्दष्टिसे ''अहं मनुरभवं सूर्यश्च'' जैसे कहा है, वैसे इन्द्र, प्राण - परमात्मा, अन्तर्यामि प्रेरक है। शास्त्रके अनुसार मैं (इन्द्र) प्राण हूँ, यों उपदेश दिया है।

इसलिये यह सूत्र जीवपरमात्माके ऐक्य बोधक नहीं, भेदबोधक ही है, ऐसा कोर्टने निर्णय किया है।

१* प्राणस्तथानुगमात् सूत्रमें उक्त अर्थको ही साधन बनाकर बाधकका परिहार करके, अर्थ स्थापना के लिये प्रवृत्त सूत्र।

१३३ - सिविल सूट (३)

प्र. ए. २ ''आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राह्यन्तिच '' सूत्र '' उपगच्छन्ति'' ''ग्राह्ययन्ति'' पदोंसे ज्ञातृज्ञेयभाव, उपदश्योपदेशक'' कहकर भेदका ही प्रतिपादन कहते हैं।

प्र. ए. २ सूत्र २ इस सूत्रमें जीवपरमात्माके अभेदबोधक पद ही नहीं। भेदप्रतिपादक वाक्योंके, ५६० सूत्रोंके विरूद्ध, भेदप्रतिपादक अपनेको (आत्मेति सूत्रको) विरूद्ध 'परमेश्वररूप' पदका अध्याहर करके आत्मा -' मैं ' जानते हैं, इस तरहसे अर्थ करना युक्त नहीं।

''परमेश्वर:'' पदका अध्याहार करनेपरभी द्युभ्वाद्यायतनं स्व शब्दात्'' सूत्रमें सूत्रकारने कहा है कि आत्म शब्द परमात्माका ही बोधक है। जीववाचक नहीं शंकराचार्याद्यद्वैतियोंने भी इस विषयको स्वीकारा है। ''आत्मेति'' सूत्रस्थ आत्म परमात्माका ही प्रतिपादन करता है। अत: परमेश्वर ही आत्मा है, जगज्जन्मादिकर्ता नारायण ही है, ऐसा अर्थ होता है। जीव परमात्मा है ऐसा अर्थ नहीं होगा।

आत्मशब्दके मुख्यार्थका परित्याग करके अमुख्यार्थ ग्रहण करनेपर, अन्य प्रमाणोंके अनुसार ''परमेश्वर दास:'' पदका अध्याहार करके, आत्मा = मैं परमेश्वरका दास हूँ, यह अर्थ उत्तम होगा।

अध्याहार के विना भी आत्माशब्दका आवर्तन करके आत्मा = परमात्मा, आत्मा = मेरा स्वामी है, मेरे जनक है, ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है।

इसलिये ''आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राह्यन्तिच'' सूत्र जीवपरमात्मा का ऐक्य प्रतिपादक नहीं। भेद प्रतिपादक ही है। यही कोर्टका निर्णय है।

प्र. ए. सूत्र ३ - ''अविभागेन द्दष्टत्वात्'' सूत्रमें अभेदबोधक पद ही नहीं। ''अविभागेन'' पद जीव परमात्माके बगैर नहीं ''अविभागेन'' पद जीव परमात्माके बगैर नहीं रह सकता। निरन्तर जीव परमात्माके साथ ही रहता है। प्रतिवादी इस सूत्रके भाष्यमें अभेदको सिद्ध करनेके लिये उक्त ''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादि वाक्य जीवपरमात्माके ऐक्यको सिद्ध नहीं कर सकते। पूर्वमें ही निर्णीत है।

''यथोदक शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एव मुने: विजानत: आत्मा भवति गौतम'' (कठ २-४-१५) शुद्ध जलमें, शुद्धजलके मिश्रण करनेपर मिश्रितजल पहले विद्यमान जलकी तरह ही होता है, पहले विद्यमान उदक नहीं होगा। वैसे ही जीव परमात्मा के जैसे होता है, परमात्मा ही नहीं होता, ''ताद्दगेव पद'' ही इस अर्थको सूचित करता है वही होता है, ऐसा आशय रहता तो ''तदेव भवति'' कहना चाहिये था। वैसे तो नहीं कहा गया है।

वास्तवमें ''न हि भिन्नमभिन्नतां याति'' यह न्याय द्वैताद्वैतियोंके लिये समान न्याय है, दोनोंको सम्मत है। पूर्वमें जो जल है, बादमें मिलाये जानेवाले जलसे एक नहीं होगा।इसी कारण नदी जल समुद्रमें पहले विद्यमान जलसे एक नहीं होता। भामतीकार, अप्पय्य दीक्षित आदि अद्वैतियोंने कहा है - नदियाँ समंदरसे एक नहीं होती, अत: जीवपरमात्माके ऐक्यके विषयमें नदी समुद्रका द्दष्टान्त नहीं दिया गया, इस तरह अपने मतको स्पष्ट किया है। इस तरह जीवपरमात्माके ऐक्यके विषयमें प्रतिवादियोंसे उक्त कोई प्रमाण ऐक्य की स्थापनमें समर्थ नहीं होता।

''परंज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते'' स तत्र पर्येति जक्षन् क्रिडन् रममाण: स्त्रीभिर्वा

यानैर्वा'' (छा. ८-१२-३) श्रुति कहती है - जीव परमात्माको प्राप्त करके, अर्थात् परमात्माके पास जाकर, अपने स्वरूपसे अभिव्यक्त होता है कर्तृ, कर्मभाव उक्त होनेसे, भेदके कथनसे मोक्षमें जीव परमात्मासे भिन्न ही रहता है।

अत: ''अविभागेन द्रष्टत्वात्'' सूत्र मोक्षमें जीवपरमात्माका अभेद नहीं कहता, इसलिये यह सूत्र मोक्षमें जीवपरमात्मा के ऐक्य विषयमें यह प्रमाण नहीं हो ऐसा कोर्टने निर्णय लिया है। तत्त्वमस्यादि ४-६ वाक्योंको छोडकर, शेष ९९% भागके वेदवाक्योंमें ३-४ सूत्रोंके, शिष्ट समस्त सूत्रोंमें, भेद ही उक्त है, ऐसा शंकराचार्यने ही स्वीकारा है। अभेद प्रतिपादके रूपमें आभासमान दो तीन, वाक्यभी अभेदपर न होकर भेदपर ही होते है। इसी कारण ४/५ वेदवाक्य, ३-४ ब्रह्मसूत्र, २-३ गीता वाक्यभी अभेदपर अर्थमें असमर्थ होनेसे, समस्त वेद, सूत्र, गीता, भेद प्रतिपादक है। इसमें कोईभी विवाद नहीं। ''भेदव्यावहारिक है, मोक्षप्राप्ति तक रहेगा, मोक्षावस्थामें कोई भेद नहीं रहेगा। ''इस तरह जो प्रतिवादियोंका कथन है, वह अत्यंत अयुक्त है।

सूत्रकारने वेदार्थनिर्णयके लिये सूत्रोंकी रचना की है, वेद जीवपरमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करते हैं, ऐसा निर्णय करके, उपसंहारमें ''अनावृत्तिशब्दाथ् अनावृत्ति शब्दात्'' सूत्रसे सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृत: समभवत्'' यह श्रुति प्रतिपादन करती है - जीव मोक्षको प्राप्त करके, वैकुंठादि स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके भोगोंका अनुभव करते रहते हैं। पुन: संसारमें नहीं आते। इस तरह मोक्षदशामें भेद ही उक्त है। अत: समस्त वेदनिर्णायक सूत्र, जक्षन्, क्रीडन्, रममाण इत्यादि वेद, जीव, मोक्षकी दशामें अनेक सुखोंका अनुभव करते हैं। इस उक्तिसे जीव परमात्माका भेद स्पष्ट होता। यही कोर्टका निर्णय है।

प्र. वा. ए, गीता १ - ''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' शरीर कहे जानेवाले क्षेत्रको कृष्णने स्पष्ट किया है - तत्क्षेत्रं यच्च याद्दकच यद्विकार... .तत्समासेन मे श्रुणु''

१३-३ गीताश्लोकसे, क्षेत्र कौनसा है ? कैसा है ? उसके विकार कौनसे हैं ? विषय कहता हूँ सुनो महाभूतान्यहंकार: बुद्धिरव्यक्तमेव च ।इन्द्रियाणि दशैकं च पंचचेंद्रिय गोचरा (गी. १३-३)

इच्छाद्वेष: सुखं दु:खं संघातश्चेतना धृति: ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

महाभूतादि समस्तविकार युक्त जगत् ही क्षेत्र है, इस देहको ही क्षेत्र समझना योग्य नहीं देह ही क्षेत्र है, तो क्या उसे समझता है ? नहीं समझता तो डाक्टरोंके पास क्यों जाता ? जगदात्मक क्षेत्रको जीव नहीं जान सकता, परमात्मा ही इस क्षेत्रको जानता है।

''ज्ञेयं यत्तत्तप्रवक्ष्यामि यज्ञात्वाऽमृमतश्नुते'' वाक्यसे ज्ञेयभूत क्षेत्रज्ञ के विषयमें कहता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करके, 'अनादि मत्परं ब्रह्म' वाक्यसे जिस क्षेत्रज्ञके ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त करता है, वह क्षेत्रज्ञ ब्रह्म ही है। कहनेके कारण, शंकराचार्यने भी '' क्षेत्रज्ञो वक्ष्यमाविशेषणो यस्य सप्रभावस्य क्षेत्रज्ञस्य परिज्ञानादमृतत्वं भवति (क्षेत्रज्ञं) तं ज्ञेयं यत्तत्तप्रवक्ष्यामीत्यादिना सविशेषण स्वयंमेव वक्ष्यति, वाक्यसे ''ज्ञेययतत्त्प्रवक्ष्यामि'' श्लोकसे परब्रह्म ही क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, इस तरह कहनेके कारण क्षेत्र - यह पूरा जगत्; क्षेत्रज्ञ परमात्मा, परब्रह्म, अत: क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि श्लोक, क्षेत्रज्ञभूत परब्रह्मको मुझे जान लो। (मैं कृष्ण हूँ मुझको ही क्षेत्रज्ञ समझ लो) इस तरह अर्थ होगा। ''परंब्रह्म परंधाम पवित्रं

परमं भवान्' आहुस्त्वां ऋषयस्सर्वे स्वयं चैव ब्रवीषिमें सर्वमेतद्दतंमन्ये यन्मां वदसि केशव (१०-१२-१३) श्लोकोंमें श्रीकृष्णसे अर्जुन कहता है तुम अपनेको परब्रह्म कहते हो। इसी तरह नारदादि कहते हैं, अर्थके अनुगुण होता है।इसलिये क्षेत्रज्ञं = जीव को श्रेष्ठ समजो यहँ अर्थ होगा नहीं। अत: यह वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यकें विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता। और ज्ञेयं इत्यादिसे जीव ब्रह्मका ज्ञातृ नहीं हो सकता। और ज्ञेयं इत्यादिसे जीव ब्रह्मका ज्ञातृज्ञेय भाव उक्त होनेसे भेद ही सिद्ध होता है, यही कोर्टका निर्णय है।

प्र. ए. गी. २ ''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतस्सनातन: (गी १५-७) वाक्यका इस प्रकार अर्थ होगा। ''नागायुतबलोभीम:'' भीमका बल दसहजार हाथियों के जैसे था। यन्त्र (Ten horse-power) दस अश्वशक्तिके समान है। उसी तरह जीव परमात्माका अंश है। अर्थात् जीव परमात्माके अंशसा है, अत्यल्प है। अद्वैतमतके अनुसार ब्रह्म निरंश है। अत: जीवको ब्रह्मका अंश कहा नहीं जा सकता। शंकराचार्यने अपने सूत्रभाष्यमें ऐसा ही कहा है। कोर्ट यह निर्णय करता है कि प्रतिवादियोंके कथनके अनुसार ऐक्य बोधक नहीं।

प्र. ए. गी. ३ - वासुदेवस्सर्वमिति वाक्यका निर्णय सर्वकाम: सर्वरस: (भा. ३-१४-२) मन्त्रमें सर्वकाम: पदका बहुव्रीहि समास करके, परमात्मासे कामका भेद कहना चाहिये, या ''सर्वश्चासौ कामश्च सर्वकाम: कर्मधारय समास करके कर्म और परमात्मामें अभेद कहें, यह संशय पैदा हुवा, ''भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ (गी. ७-२) गीता श्लोकमें परमात्माको कामरूप (कामतादाम्य) कहेंगे, उसीके अनुसार ''सर्वश्चासौ कामश्च'' कर्मधारय समास करके काम और परमात्मामें अभेद कहना चाहिये। इस तरहका पूर्वपक्ष प्राप्त हुवा। शंकराचार्यने कहा है काम परतंत्र है, जन्य है। इसलिये काम परमात्माका स्वरूप होगा तो, परमात्माभी परतंत्र होगा, आदिमान् होगा, (जन्यत्वका स्वीकार करना पडेगा) अत: ''सर्वेकामा: यस्य स:'' बहुव्रीही समास करके परमात्माको कामसे भेद ही कहना चाहिये। ऐक्य न कहे। काम और परमात्मामें यही अर्थ करना चाहिये। काम ईश्वराधीन है, परतंत्र है। परमात्माको कामस्वरूप नहीं कहना चाहिये। शंकराचार्यके इस उपपादन के अनुसार ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व:'' गीता वाक्यस्थ ''सर्व'' पदका ''सर्वव्यापक'' अर्थ करे। बृहदारण्योपनिषत्में (२-५-१) ''सर्वपदका सर्व फल प्राप्तिका साधन ऐसा अद्वैतियोंने अर्थ किया है। उसीको अनुसार ''वासुदेवस्सर्वमिति'' गीता वाक्यस्थ ''सर्व'' पदका अर्थ 'वासुदेव: सर्वस्वामि' है, अथवा सर्वव्याप्त है, या फल प्राप्तिका साधन हूँ, अर्थ होगा ''सर्वरूप'' ऐसा अर्थ नहीं करते। अत: यह वाक्य परमात्माको सर्वपदार्थोंसे अभिन्न प्रतिपाद नहीं करता। इसके विरूद्ध ज्ञातृज्ञेयादिसे भेदका बोधकही है। इस प्रकार कोर्ट निर्णय करता है।

प्र. ए. गीता ४ : विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे, गविहस्तिनि.... समदर्शिन - वाक्यार्थ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता:॥ (गी. च-१९)

निर्दोष ब्रह्म ही सम है, समशब्द वाच्य है सम कहलाता है। ''समदर्शिन:'' निर्दोष (दोषरहित ब्रह्मको देखनेवाले) समदर्शी होते हैं। श्रीकृष्णने इसका व्याख्यान किया है। विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिचैव श्वपाके च पंडितास्समदर्शिन: (५-१८) विद्यादि गुण ब्राह्मणमें, गायोंमें, हाथियोंमें, कुत्तोंमें, चण्डालमें, पण्डित इनमें परब्रह्मको निर्दोषके रूपमें देखते हैं। कुत्तोमें आदि

नीचस्थानमें रहनेवाले परमात्माको कोई दोष का संस्पर्श नहीं होता, ब्राह्मणादि उत्तमोंमे रहनेवाले परमात्माको गुणसंबंधभी नहीं होता। नीचोचस्थानमें परमात्मा दोषरहित ही रहता है। जीव परमात्मामें आधार आधेय भाव उक्त होनेसे समदर्शिन: शब्दसे द्रष्टृ द्रष्टव्यभाव कहनेसे कारण गीता आदि प्रमाणोंसे सिद्ध ज्ञातृज्ञेय भावयुक्त जगत् सत्य ही है। भेदभी सिद्ध होता है। कोर्टने इस प्रकार निर्णय किया है।

उक्त प्रकारसे ''समदर्शिन:'' पदका अर्थ यह हुवा। निर्दोष परब्रह्मको देखनेवाले, इस श्लोकमें ऐक्य का बोध करनेवाला पद ही नहीं, इसलिये इस वाक्यसे ऐक्य की सिद्धि नहीं होगी। प्रमाणोंके अभावमें भी पदार्थ सिद्ध होते हैं, ऐसा स्वीकार करेंगे, शशविषाण भी सिद्ध हो जाये। खरगोश के सींगको स्वीकार करना पडेगा। इस गीतावाक्यसे ऐक्य की सिद्धि भले ही न हो ऐक्य स्वप्रकाश होकर ब्रह्मस्वरूप होनेसे, ब्रह्मको प्रमाणोंसे जान लेना असंभव है, तो भी ब्रह्म स्वयं सिद्ध है। उसी तरह, ऐक्यको प्रमाणोंसे जान लेना अशक्य होनेपर स्वयंसिद्ध क्यों न हो। प्रतिवादियोंकी यह दलील अयुक्त है, ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

''ईश्वर: सर्वभूतानां'' आदि गीताश्लोक भेदका ही प्रतिपादन करते हैं ऐसा ''स्मृतेश्च'' सूत्रमें सूत्रकारने कहा है। इस तरह शंकराचार्यने ही व्याख्यान किया है। भगवान वेदव्यासको और शंकराचार्यको गीता वाक्यसे श्रीकृष्णसे उक्त जीवेश्वर भेद सम्मत होनेके कारण, यह भेद मिथ्या है व्यावहारिक है, इस विषयमें कोई आधार न होनेसे गीतावाक्य पारमार्थिक भेदका ही प्रतिपादन करते हैं। कोर्टका यही निर्णय है।

''ईश्वर: सर्वभूतानां'' श्लोकमें सर्वभूतानां = सर्वप्राणिनां, २-३-४४ ब्रह्मसूत्रभाष्यमें भूत शब्द जीववाचक ऐसा शंकराचार्यने माना है। शंकराचार्यके व्याख्यानके अनुसार भूत शब्द जीववाचक है, द्वाविमौ पुरूषौ लोकें क्षरश्चाक्षर एवच। क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते'' इत्यादि गीताश्लोक भूतशब्दवाच्य जीवोंसे परमात्माके भेदका ''उत्तम: पुरूषस्त्वन्य: परमात्मेत्युदाहृत:'' स्पष्टरूपमें कहते हैं। प्रवेष्टृ प्रवेश्य, ज्ञातृज्ञेय, रक्ष्यरक्षक, भावोंसे भेद ही उक्त है। मिथ्या कथनका कोई कारण नहीं। अत: भेद पारमार्थिक ही है। गीताश्लोक जीवपरमात्माके भेदविषयमें प्रमाण हैं, कोर्टने ऐसा निर्णय किया है।

''ईश्वरोऽहं'' गीता श्लोक कहता है कि आसुरी स्वभावके लोग ''मैं ईश्वर हूँ'' ऐसा समझकर सज्जनोंको इसी प्रकारका उपदेश देते हैं। स्वयं नष्ट होते है। सज्ञनोंका भी नाश करते है। नरकमें असह्य दु:खोंका अनुभव करके, असुर जन्म पाकर, पुन: इसी उपदेशके क्रमको आगे बढाते हैं। ''मैं ही परमात्मा हूँ'' इस ज्ञानसे श्री कृष्ण परमात्माको प्राप्त न कर अधोगति प्राप्त करते है। ४-१-३ ब्रह्मसूत्रभाष्यमें शंकराचार्यने 'तत्त्वज्ञानके रूपमें उपदेश' ''ईश्वरोह'' ज्ञानकी निंदा की है, अत: जीवेश्वर भेद अप्रामाणिक है। अद्वैतियोंका जो कहना है कि अद्वैतके विषयमें प्रमाण है, वह भी अयुक्त है। क्योंकि अद्वैती कहते है कि ऐक्य ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्म अज्ञेय, तथा ऐक्य भी अज्ञेय होगा। प्रमाणोंसे अवेद्य होगा, अत :ऐक्य के विषयमें प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इस तरह जो अद्वैती कहते हैं, वह कथन भी युक्ति विरूद्ध है। इन युक्तियोंसे जीवेश्वर भेदको कोर्ट प्रामाणिक मानता है।

संयमनीपुर हायकोर्ट सिविल सूट
O. S. 564 of 1927
''तीसरा इश्यू''
डिक्री

१) श्रुति, सूत्र, गीता जीवेश्वर भेदका ही समर्थन करते हैं। जीव परमात्मा का भेद प्रामाणिक है।

२) अद्वैति कहते हैं - अभेद (ऐक्य) ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म अज्ञेय है। ब्रह्मस्वरूपभूत ऐक्य भी अज्ञेय है जीवेश्वर के अभेदके विषयमें अद्वैतियोंका प्रमाण प्रस्तुत करना अत्यंत अयुक्त है। उक्त प्रकारसे जीवेश्वरके ऐक्यके विषयमें श्रुति, सूत्र, गीता प्रमाण नहीं होते। अत: जीवेश्वरोंका अभेद शशविषाण के जैसे अप्रामाणिक है।

३) ''अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति (का. १-२-८) अनन्येन जीवेश्वराभेद ज्ञानिना अद्वैतिना प्रोक्तेगति: नास्ति: ''जीवेश्वराभेद ज्ञानी अद्वैतियोंसे उपदेश प्राप्त करनेपर सद्गति नहीं होगी। ''प्रोक्तान्येनैव सुज्ज्ञानायप्रेष्ठ (का. १-२-९) भेद ज्ञानीसे (द्वैतियोंसे) उपदेश ग्रहण करनेपर ही श्रेष्ठ ज्ञानके लिये (मोक्षके लिये कारणीभूत ज्ञानके लिये) कारण होता है। ''ईश्वरोऽहं'' प्रकारका ज्ञान अधोगतिका साधन है। सात्विक लोग जीवेश्वरोंके भेदको अच्छी तरह समझकर उपदेश देनेवाले द्वैतगुरूसे द्वैतोपदेशको ग्रहण करके ''पृथगात्मानं प्रेरितारंच मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति इति '' - इस वाक्यमें उक्त रीतिसे परमात्माको जीव जडात्मक प्रपंचसे अत्यंत भिन्न समझकर, जगत्प्रेरक, जगत्कर्ता, हिरण्यादि देवताका भी जनक, यही स्वामी है। अनंत कल्याण गुणपूर्ण के रूपमें जानकर, उसके प्रसादपात्र बनकर मोक्षको प्राप्त करके। प्रकृतिबंधको तजकर योग्य आनंदका अनुभव करना चाहिये।

संयमनीपुर
६-८-३४

धर्मराज
(मुख्य न्यायाधीश) हायकोर्ट

श्री:

संयमिनीपुर हायकोर्ट सिविल केस

O. S. No. 564 of 1927

तीसरे इश्श्यू पर विचार

(परब्रह्म परमात्मा जीवोंसे भिन्न है, या अभिन्न)

श्रुतिविचार (Part I)

वादी : विष्णुदासाचार्य — प्रतिवादी : गंगाधर शास्त्री

वकील : माधवदास — वकील : हरिहरशर्मा

P. B. D. — P. B. S.

वादिसे पूछताछ

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

वादी - विष्णुदासाचार्य

कोर्ट - 'ईश्वरके साक्षीसे कोर्टके सामने मैं जो कुछ कहूँगा वह सच है ' ऐसा कहो।

वा. वि. -. ईश्वरके साक्षीसे कोर्टके सामने जो कुछ मैं कहूँगा वह सबकुछ झूठ नहीं, सच है'

वा. व. - आपका दावा क्या है ?

वा. वि. - जीव ब्रह्मसे भिन्न है, जीव ब्रह्म नहीं। प्रतिवादी जीवब्रह्ममें अभेद कहते हैं। इस विषयपर विचार करना चाहिये यही हमारा दावा है।

वा. व. - जीव ब्रह्मसे भिन्न है इस विषयमें प्रमाण क्या है ?

वा. वि. - इस विषयमें वेद, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष, अनुमान ये समस्त प्रमाण आधार है।

वा. व. - आचार्यजी ! जीवब्रह्मके भेद विषयमें प्रमाणभूत श्रुतियोंको कहिये।

वा. वि. - प्रतिवादी अद्वैती भी यह स्वीकारते है कि शांकरभाष्य, भामती, कल्पतरू, परिमळ, आदि ग्रंथोंमें १* तत्त्वमस्यादि चार पांच वाक्योंके बावजूद सृष्टि, उपासना, इनका प्रतिपादन करनेवाले समस्त उपनिषत् कर्मकाण्ड, जीवेश्वरोंके भेदके बोधक हैं। चार पांच वाक्य अद्वैत या अभेदका प्रतिपादन कर भेदका ही प्रतिपादन करते हैं। फलाने वेद जीवेश्वर भेदका प्रतिपादन करते हैं। ऐसा कहना अनावश्यक है। क्योंकि सभी वेद भेदका ही प्रतिपादन करते हैं।

१* न केवलमुपनिषद: (तत्त्वमसीत्याद्या:) ब्रह्मैकत्वं प्रतिपादयन्त्य: स्वार्थविघातकं कर्मकाण्ड प्रामाण्य विघातं च कुर्वन्ति ॥ प्रत्यक्षादि निश्चित भेद प्रतिपत्यर्थ प्रमाणैश्च विरूध्यन्ते। तस्माद प्रामाण्येमेवोपषिनदाम्। अन्यार्थतावास्तु नत्वे व ब्रह्मैक्यत्व प्रति प्रित्यर्थता इत्यादि (ब्र. शां. भा. २-१-२०) न तावत् संसार्यतिरिक्तस्य तस्य भाव:। तत्प्रतिपादका शतश: आगमा: ''ईक्षतेर्ना शब्दं गतिसामान्यात्'' इत्यादिभि: सूत्रसंदर्भ: उपपादित: (ब्र.सू. १-३-४२)

न हि सकल जीव जड विक्षणमेकमीश्वरं प्रतिपादयतामेताव तामुपनिषद्वाक्यानां अति क्लिष्ट नयनं युक्तमिति (ब्र. सू. कल्पतरू परिमळ)

१३९ - सिविल सूट (३)

वा. व. - आचार्यजी ! प्रतिवादियोंके कबुल करनेपर मिसाल के तौरपर कयी वाक्य कहिये।

वा. वि. - १) स आत्मा तत्त्वमसि (छां. ६-८-७)

१) येनाश्रुतं श्रुतं भवतिः (छां. ६-१-३)

अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य (छां. ६-३-२)

२) ब्रह्म वा इदमग्र आसीतदात्मानमेवावेत् ''अहं ब्रह्मास्मि'' इति योयो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् तथा ऋषिणां मनुष्याणां (बृ. १-४-१०)

३) प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐ. ३-३ प्रकरण)

४) यः पृथिव्यां तिष्ठन्...... य आत्मनि तिष्ठन् एषत आत्मान्तर्यामृतो दृष्टो, द्रष्टा, श्रुतः श्रोता...... नान्यतोऽस्ति द्रष्टा नान्यतोऽस्ति श्रोता इस प्रकारका अन्तर्यामी प्रकरण (ब्र.सू.भा. ३-७-३-२२)

५) नान्यदतोऽस्ति अन्तर्यामी प्रकरण (ब्र.सू.भा ३-७-३-२२)

६) यत्र हि द्वैतमिव भवति (ब्र. सू. २-४-१४)

७) यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत (बृ.२-४-१४)

८) ततस्तुतं पश्यते निष्फलं ध्यायमानः (मुंडक ३-१-८)

९) परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं (मुंडक ३-२-९)

१०) परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति (मुंडक ३-२-९)

११) परंज्योतिरुपसंपद्य स्वेनरूपेणाभि निष्पद्यते स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः (छां. ८-१२-३)

१२) सोऽन्वेष्टव्यो स विजिज्ञासितव्यः (छां. ८-७-३)

१३) आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः (बृ. २-४-५)

१४) ब्रह्मविदाप्नोति परं (तै. २-१-१)

१५) एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति

१६) अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वारूढः (ब्र. ४-३-३५)

१७) सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता (तै. २-१)

१८) सन्मूला सौम्येमाः सर्वा प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः (छां. ६-८-४)

१९) जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानामिति वीतशोकः (शो. ४-७, मुंड ३-२)

२०) पृथगात्मानं प्रेरितारंच मत्वा जुष्टस्त ततस्तेनामृतत्त्वमेति (श्वे. ४-७)

२१) भीषास्माद्वातःपवते भीषोदेति सूर्यः भीषास्यादग्निश्चेंद्रश्च (तै. २-८)

२२) अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजन्यः (श्वे. ४-५)

२३) प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं (बृ. ४-३-२१)

२४) नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां (श्वे. ६-१३, कठ २-१३)

२५) ज्ञाज्ञौ द्वावजा मीशानीशौ (श्वे. १-१९)

२६) द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिष्वजाते। तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्योऽभिचाकशीति (श्वे. ५-६ मुं. - ३-१)

२७) 'सता सोम्य तदा संपन्नो भवति (छां. ६-८-१)

२८) सयश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये (तै. २-८)

२९) अथयोऽन्यां देवतांमुपासते (बृ. १-४-१०)

३०) ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (बृ. ४-४-६) इत्यादि वेदवाक्य आधार है।

वा. व. - आचार्यजी ! भेदके विषयमें प्रमाणभूत वेदार्थ निर्णायक सूत्रोंको कहिये।

वा. वि. - दो तीन सूत्रोंके सिवा अन्य सभी सूत्र जीवब्रह्मके भेद बोधक ही हैं। इस तरह अद्वैतियोंने ही ब्रह्मसूत्र १-३-१९ भाष्यमें, आनंदगिरीटीकामें, रत्नप्रथा, ग्रंथोंमें १* स्वीकार किया है। ये दो तीन सूत्र अभेदका प्रतिपादन न कर भेदका ही प्रतिपादन करते हैं, ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' प्रथम सूत्रसे लेकर ''अनावृत्ति: शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्'' अन्तिम सूत्र तक।

सूत्रोंतक प्रमाण हैं।

वा. व. - जीवब्रह्म के भेदविषयमें आधारभूत गीता के श्लोकोंको प्रस्तुत कीजिये।

वा. वि. - ''स्मृतेश्च''२* १-२-६ के ब्रह्मसूत्रकेभाष्यमें ''ईश्वर: सर्वभूतानां (गी. १८-६१) तमेवशरणंगच्छ (गी.१८-६२) आदि गीताश्लोक जीव परमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करते हैं, इस तरह शंकराचार्यने ही कहा है, अन्य वाक्य भी स्पष्टरूपसे भेदको भेदक धर्मका ही प्रतिपादन करते हैं।

धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेता युयुत्सव:।
मामका: पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥

श्लोकसे ''यत्र योगीश्वर: कृष्ण: ..... ''अन्तिम श्लोकतक समस्त ७०० श्लोक आधार है।

वा. व. - आचार्यजी ! इस विषयको अनुमान के द्वारा स्थिर कीजिए।

वा. वि. - 'विमतौ भिन्नौ विरूद्ध धर्माधिकरणत्वात्, सलिलवत्

प्र. व. - शास्त्रीजी ! अभेदके विषयमें प्रमाणभूत श्रुतियोंको कहिये।

प्र. गं. - १. स आत्मा तत्त्वमसि (छां. ६-८-७)

२. अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य (छां. ६-३-१)

३. उततमादेशमप्राक्ष्य: येनाश्रुतं श्रुतं भवति (६-१-३)

१* ननु जीवब्रह्मणारैक्यं न क्वापि सूत्रकारो मुखतो वदति॥ किन्तु सर्वत्र भेदमेव। अतो नैक्यमिष्टं तत्राह - प्रतिपाद्यत्विति (आनंदगिरी) प्रतिपाद्यं शास्त्रार्थमात्मैकत्वं दर्शयति शास्त्रद्दष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् ब्र. सू. शां. भा. (१-३-१९) आदि पदं आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति'' इत्यादि संग्रहार्थ (आनंदगिरी) सूत्रेष्भेदो नोक्त इति भ्रान्ति निरस्यति आत्मेतीत्यादि सूत्राणयादि पदार्थ: (रत्नप्रभा)

२* स्मृतिश्च शारीरपरमात्मनो र्भेदं दर्शयति ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देवार्जुन तिष्ठति: भ्रमयन् सर्वभन्तानि यन्मरूढानि मायधा॥ इत्याद्या : (सू.शां. -भाष्य) स्मृतेश्चेति: तमेदशरणं राच्छा इत्यादि वाक्यमादि शब्दार्थ : (आनन्द गिरि)

१४१ - सिविल सूट (३)

४. सदेव सौम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम् (छां. ६-१-३)

५. अहं ब्रह्मास्मि (ब्र. १-४-१०)

६. प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय ३-१)

७. अयमात्मा ब्रह्म (मां. २)

८. नान्यतोऽस्ति द्रष्टा (बृ. ३-७-२३)

९. सन् ब्रह्माप्येति (बृ. ४-४-६)

१२. एतस्मिन्नुदर मन्तरं कुरूते (तै.१.७)

१३. व्दितीयाव्दै भयं भवति (बृ. १.४.२)

१४. यत्र हि द्वैतमिव भवति ..... यत्र तु सर्वमात्मैवाभूत (बृ. २-४-१४)

१५. योऽसावसौ पुरूषस्सोहऽमस्मि (इशावास्य बृ. ५-१२-१)

१६. यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूतद्विजानत: (इ.७)

१७. अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योसाववनन्योहमस्मीति (बृ. १-४-१०)

१८. स यश्चायं पुरूषे यश्चावादित्ये स एक: (तै. ३-१०-४)

प्र. व. - शास्त्रीजी ! इस विषयमें वेदार्थ निर्णायक सूत्रोंको प्रमाणित कीजिये ।

प्र. गं. - १. शास्त्रद्रष्टयातूपदेशो वामदेववत् (ब्र.सू. १-१-३०) (XIII -2)

२. आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्तिच (ब्र. सू. १०-१-३) (XI -7)

३. अविभागेन द्दष्टत्वात् (ब्र. सू. ४) - ये सूत्र आधार है । (VII -19)

प्र. व. - शास्त्रीजी ! इस विषयमें आधारभूत गीता श्लोकोंको कहिये ।

प्र. गं. - १) क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि - सर्वक्षेत्रेषु भारत

२) ममैवांशो जीवलोके जीवभूतस्सनातन:

३) बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते वासुदेवस्सर्वमिति

४) विद्याविनय संपन्ने ! ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिचैव श्वपाकेच ! पंडितास्समदर्शिन:'' ये श्लोक अभेदके विषयमें आधारभूत है ।

प्र. व. - जीवब्रह्मके अभेद विषयमें अनुमान कहिये ।

प्र. गं. - विमता: आत्मान: परमात्मन: तत्त्वतो न भिद्यन्ते आत्मत्वात् परमात्मावत् ।

Cross Examination
प्रतिवादिसे जिरह

वा. व. - शास्त्रीजी ! आपने ''तत्त्वमसि'' वाक्यको किस विषयमें प्रमाण के तौरपर कहा है ।

प्र. गं. - जीवपरमात्माके अभेद के विषयमें ''तत्त्वमसि'' वाक्यको आधारके रूपमें प्रस्तुत किया है ।

वा. व. - इस वाक्यको पूर्ववाक्योंके साथ पढिये ।

प्र. गं. - ''स आत्मा तत्त्वमसि''

वा. व. - इस वाक्यका पदविभाग कीजिये।

प्र. गं. - स आत्मा, तत्त्, त्वं असि यही पद विभाग है।

वा. व. - स: आत्मा अतत्, त्वं, असि इस प्रकार पदविभाग होगा कि नहीं ?

प्र. गं. - ''अतत्'' ऐसा पदविभाग हो सकता है।

वा. व. - इस तरह पदविभाग करनेपर क्या अर्थ होगा ?

प्र. गं. - त्वं = तुम (जीव) अतत् = वह ब्रह्म नहीं, जीव परमात्मामें भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - अगर ऐसा है तो अपने अभेदके विषयमें इस वाक्यका दाखला क्यों दिया ?

प्र. गं. - ''अतत्'' पदच्छेद न करें ''तत्'' यों ही पदच्छेद करना चाहिये। इससे त्वं = तुम (जीव) तत् = ब्रह्म हो ऐसा अर्थ होता है, जिससे अभेद सिद्ध होता है अत: अभेदके विषयमें इस वाक्यको प्रस्तुत किया।

वा. व. - ''अतत्'' ऐसा पदच्छेद न करें। ''तत्'' ऐसा पदविभाग कर ऐक्यको सिद्ध करें, इस विषयमें क्या आधार है ?

प्र. गं. - ''एकमेवाद्वितीयं'' (छां. ६-१-१) रूप उपक्रम वाक्यमें द्वितीय वस्तुका निषेध करनेके कारण, इस वाक्यके अनुसार ''तत्'' ऐसा पदविभाग करके ऐक्यका कथन करना चाहिये।

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्य प्रमाणान्तरोंकी अपेक्षा न करके क्या अर्थ कह सकता है ?

प्र. गं. - ''तत्'' ''अतत्'' दोनों प्रकारसे पदविभागकी संभावना है। इस वाक्यसे भेदका बोध होता है, अभेदका भी ज्ञान होता है।अन्य प्रमाणोंकी अपेक्षा न करके यह वाक्य प्रमाण नहीं होगा।

वा. व. - ''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यके अर्थका निर्णय होनेतक इस वाक्यको अभेदके विषयमें प्रमाणके रूपमें उदाहृत नहीं कर सकते। उस समयतक इस वाक्यको अनिश्चित समझेंगे।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

कोर्ट - ''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यका अर्थ शंकराचार्यने क्या लिखा है, उसीपर विचार करेंगे। प्रकृत तत्त्वमसि वाक्यपर विचार चलने दीजिये।

वा. व. - वैसे ही हो महाप्रभो 'एकमेवाद्वितीयं' वाक्यका विचार करते वक्त, दूसरी वस्तुका पूरा निषेध नही करता यह वाक्य। ऐसा शंकराचार्यने व्याख्यान किया है। अत: यह वाक्य अद्वैतियोंके लिये साधक नहीं इसे समझाने के लिये विचार किया जा रहा था। आपकी आज्ञाके अनुसार आगे विचार करेंगे।

वा. व. - शास्त्रीजी ! अखण्डार्थबोधक इसका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - संसर्गासंगिसम्यग्धी हेतुताया गिरामियं

उक्ताखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता। यह श्लोक हमारे पूर्वाचार्योंने विशेषण विशेष्योंके संबंधको प्रदर्शित न करके वस्तुमात्र को ज्ञात कराना, यही इस पदका अर्थ है।

वा. व. - अखण्डार्थ बोधक वाक्य कौनसे हैं ?

प्र. गं. - ''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादि वाक्य

१४३ - सिविल सूट (३)

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' '' अहं ब्रह्मास्मि'' अखण्डार्थ होनेपर इन वाक्योंसे किस तरह अवबोध होता है ?

प्र. गं. - ''चित्'' इतना ही बोध होता है।

वा व. - केवल ''चित्'' बोधसे जीवब्रह्मका अभेद किस तरह सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - ''चित्'' मात्र बोधसे अभेद सिद्ध नहीं होगा।

वा. व. - तो इस वाक्यको अभेदके विषयमें क्यों उद्धरण किया ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. गं. - धर्मराज प्रभु। हमारे लिये दूसरा एक गवाह, उसी पूछताछ करनी चाहिये।

कोर्ट - ऐसा ही होगा (बारमें खडे साक्षीसे) शास्त्रीजी आपका नाम क्या है ?

प्र.सा. - चिदंबर दीक्षित

कोर्ट - आप सबकुछ सच कहेंगे न ?

प्र. सा. - हमारा पूरा कथन व्यावहारिक सत्य होगा।

कोर्ट - जीवब्रह्मके अभेदके विषयमें प्रमाण कहिये।

चिदंबर - ''तत्त्वमसि'' श्रुति ही प्रमाण है।

प्र. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्य अखण्डार्थ बोधक है। वह केवल ''चित्''का बोध कराता है। केवल इस बोधसे जीवब्रह्मका अभेद किस तरह सिद्ध होगा।

चिदंबर - ''तत्त्वमसि'' वाक्य ''चित्त्'' मात्र विषयमें तात्पर्य है। पर जीवब्रह्मके अभेद विषयमें ही तात्पर्य है इस दूसरे तात्पर्यसे जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध होता है।

वा. व. - क्या ये दोनों तात्पर्य मुख्य हैं या एक मुख्यतात्पर्य दूसरा अमुख्य तात्पर्य है ? ऐसा है तो इन दोनोंमें मुख्यतात्पर्य कौनसा है ? और अमुख्यतात्पर्य कौनसा है ?

चिदंबर - ''चित्''रूप अखण्डार्थ बोधमें ही मुख्य तात्पर्य है। जीवब्रह्मके ऐक्य बोधमें अमुख्यार्थ तात्पर्य है।

वा. व. - ऐक्यके अवबोधनमें इस वाक्यका मुख्यतात्पर्य नहीं न ?

चिदंबर - नहीं।

वा. व. - इस वाक्यका ऐक्यके विषयमें मुख्य तात्पर्य नहीं तो भी अमुख्यार्थतात्पर्यसे क्या बोध करता है ?

चिदंबर - त्वं - तुम, तत् = ब्रह्म, असि = हो इस प्रकार यह वाक्य अभेद का ज्ञापक है।

वा. व. - यजमान: प्रस्तर: वाक्य यजमानके साथ क्या प्रस्तर (दर्भका मुष्टिमित समूह) अभेदका बोधन और गौर्वाहीक: वाक्य भारढोनेवाले आदमी के साथ अभेदका बोधन करता है या नहीं ?

चिदंबर - अभेदका बोधन नहीं करता।

वा. व. - अभेद का बोधन क्यों नहीं करता ?

चिदंबर - वाहक मनुष्य है, मनुष्य त्व रहित बैलके साथ अभेद उपपन्न नहीं होता, इसी प्रकार यजमान चेतन है, प्रस्तर जड है। जडत्वचेतनत्वरूप विरूद्ध धर्म होनेसे अभेद नहीं होगा, इसी

कराणसे ये दोनों वाक्य अभेदबोधक नहीं होंगे।

वा. व. - अन्य किस प्रकारके बोधको पैदा करता है ?

चिदंबर - भार ढोनेवाला (गौ:) बैलके जैसे है। अर्थात् बैल जैसे कर्तव्य अकर्तव्य बुद्धि रहित है। इसी तरह यजमान: प्रस्तर: में प्रस्तर मुष्टिपरिमित दर्थ यजमानका कार्य करता है।

वा. व. - क्या आपने इस ग्रंथको देखा है ?

चिदंबर - देखा है। हमारे शंकराचार्यसे प्रणीत सर्ववेदान्त सिद्धान्तसार संग्रह है।

वा. व. - इन श्लोकोंका अर्थ कहिये।

चिदंबर - सर्वेशत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त सर्वोत्तम सत्यकाम सत्यसंकल्प जो ईश्वर है, वह तत्त्वमसि वाक्यमें स्थित ''तत्'' पदका अर्थ है। अर्थात् तत् पदसे बोध्य है। अल्पज्ञ, दु:खी, संसारी, जो परमात्माका आश्रित है, जो शरणागत है वह जीव त्वं पदसे बोध्य है। इस भाँति सर्वज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मसे युक्त जीवब्रह्ममें किस तरह ऐक्य की घटना होगी ? ऐक्य उपपन्न नहीं होगा। ऐक्य प्रत्यक्ष विरूद्ध होगा।

''जीवेशौ भिन्नौ विरूद्ध धर्माधिकरणत्वात् वन्हि तुहिनवत्,'' जलमें शैत्य, अग्निमें उष्णता इन दोनोंमें विरूद्ध धर्म होनेसे, जैसे भिन्न ही है, भिन्न ही रहेंगे, वैसे ही सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मोसे जीवब्रह्म भिन्न ही होंगे। यह इस श्लोकका अर्थ है।

वा. व. - शंकराचार्यके वाक्यसे क्या सिद्ध होता है।

चिदंबर - ''त्वं'' पदसे बोध्य अल्पज्ञत्वादि धर्मविशिष्ट जीवके साथ, ''तत्'' पदसे बोध्य सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ब्रह्मका ऐक्य उत्पन्न नहीं होगा।

वा.व. - फिर अभेदके विषयमें इस वाक्यको क्यों प्रमाणित किया ?

चिदंबर - ''त्वं'' पदसे मुख्यवृत्तिसे ज्ञात अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट जीव चित्तके साथ, ''तत्'' पदसे मुख्यवृत्तिसे ज्ञेय सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ब्रह्मचित्तिके साथ ऐक्य संभवेगा नहीं तो भी लक्षणावृत्तिसे (Secondary Meaning) जीव चित्तमें विद्यमान अल्पज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मोका परित्याग करके, ''त्वं'' पदसे केवल ''चित्'' अर्थका ग्रहण करके तत् पदसे अमुख्यवृत्तिसे ब्रह्मचित्तमें रहे सर्वज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मोका त्यागकर जीव चित्त्में ब्रह्मचित्तमें ऐक्य होगा। इसी अर्थका संकेत ''असि'' पदसे दिया गया है। अत: तत्त्वमसि वाक्य अभेदके विषयमें प्रमाण है।

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्य मुख्यवृत्तिसे जीवब्रह्मके अभेदका प्रतिपादन नहीं करेगा न ?

चिदंबर - नहीं।

वा. व. - ''गौर्वाहीक:'' वाक्य भार ढोनेवाला बैल यह अर्थ होनेपर भी यह अर्थ बाधित होनेके कारण भार ढोनेवाले बैल के जैसे यह अर्थ किया जाता है, उसी तरह ''त्वं'' तुम (जीव) ''तत्''उस परमात्माके जैसे हो। अथवा उस परमात्माके वशमें हो, आदि अर्थ क्यों न करें ?

चिदंबर - मुख्यवृत्तिका परित्याग करनेपर अमुख्यवृत्तिसे जीव परमात्माके अधीन है, आदि अर्थ किये जा सकते हैं, पर यह अर्थ ऐक्य ज्ञापक ''एकमेवाद्वितीयम्'' आदि वाक्योंमें विरूद्ध होनेसे नहीं कर सकते। इस वाक्यके अनुसार अर्थ करनेसे ऐक्य सिद्ध होगा, इसलिये ''तत्त्वमसि'' वाक्यका अर्थ, अर्थात् (''जीवब्रह्मका'' ऐक्य) सिद्ध होगा वैसे ही कहना पडेगा।

१४५ - सिविल सूट (३)

वा. व. - ''तत्'' ऐसा पदविभाग करनेपरभी, दूसरे वाक्यकी अपेक्षा न करके ऐक्य का बोध नहीं कर सकता। अत: यह वाक्य स्वयं ऐक्य विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

चिदंबर - उत्तर नहीं।

वा. व. - मुख्यवृत्तिको छोडकर अमुख्यवृत्तिसे दूसरे अर्थका स्वीकार करना है तो लक्षणावृत्तिसे ''तत्'' पदका ''असत्'' ऐसा अर्थ लेकर ''त्वं'' तुम (जीव) ''असत्'' हो शशविषाण की तरह हो, शशविषाणरूप हो, इस तरहके अर्थको क्यों नहीं किया जा सकता।

चिदंबर - शशविषाण असत् है, जीव सद्रूप है। इस तरह सत्वासत्वरूप विरूद्ध धर्मके कारण शशविषाण और जीवमें ऐक्य नहीं होगा। अत: यों अर्थ न करें।

वा. व. - जीव अल्पज्ञत्वादि धर्मयुक्त है, ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त है। सर्वज्ञत्वाल्पज्ञत्व विरूद्ध धर्मसे अभेद संभव नहीं। जीव ब्रह्म है ऐसा अर्थ किस तरह किया जा सकता है।

चिदंबर - हम जीवब्रह्मके अल्पज्ञत्व, सर्वज्ञात्वादि विरूद्ध धर्मोका परित्याग करते हैं, ऐक्य इसीलिये संभवता है।

वा. व. - जीवगत सत्वरूप धर्मको, शशविषाणमें रहे असत्वरूप धर्मको छोडनेसे क्या जीवका शशविषाणके साथ ऐक्य होगा ? क्या बाधक होगा ?

चिदंबर - जीवमें रहे, शशविषाणमें विद्यमान सत्वासत्वरूप धर्मोको किस तरह छोड सकते है ? उस तरह छोड नहीं सकते। अत:इन दोनोंमें ऐक्य नहीं होगा।

वा. व. - आपभी जीवब्रह्ममें विद्यमान अल्पज्ञत्व, सर्वज्ञत्वरूप धर्मोको त्याग किस तरह करेंगे ? धर्मोके त्याग न करनेसे ऐक्य किस तरह होगा ?

चिदंबर - सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्व, धर्म मिथ्या हैं। वे धर्म ब्रह्ममें और जीवमें भ्रान्तिसे दीखते हैं। वे धर्म सत्य नहीं, उन धर्मोका परित्याग करनेका अर्थ हैं, उन धर्मोका अभाव समझना विरूद्ध धर्म न होनेके कारण जीवब्रह्ममें ऐक्य घटित होगा।

वा.व. - जीवमें रहा सत्व और शशविषाणका असत्व दोनों मिथ्या हैं या सत्य है ?

चिदंबर - जीवका सत्त्व और शशविषाणका असत्व मिथ्या हैं सत्य नहीं।

वा. व. - जीवब्रह्मके अल्पज्ञत्व सर्वज्ञत्व मिथ्या होनेसे जीवब्रह्मका ऐक्य होता है, उसी तरह जीव शशविषाणके सत्वासत्त्व मिथ्याभूत होनेसे अभेद क्यों न संभवेगा ?

चिदंबर - उत्तर नहीं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! अगर हम इंग्लीश भाषामें संवाद करेंगे तो क्या आप समझ पायेंगे ?

चिदंबर - इस तरहका प्रश्न कोर्टमें पूछना योग्य नहीं। अगर हम पूछेंगे कि हम संस्कृतमें भाषण करेंगे तो क्या आप समझेंगे ? तो इस सवालका जवाब आप क्या देंगे ?

वा. व. - हम कहेंगे कि संस्कृतमें बोलेंगे तो हम नहीं समझेंगे। आप क्या कहेंगे ?

चिदंबर - इंग्लीशमें भाषण करेंगे तो हम समझेंगे नहीं, यही उत्तर देंगे।

वा. व. - ज्ञान पैदा न होनेका कारण क्या है ?

चिदंबर - शब्दसे अर्थज्ञान पैदा होनेके लिये पूर्वमें उस शब्दका और अर्थका संबंध ज्ञात हो। शब्दार्थके ज्ञानके पहले उस पदार्थका ज्ञान हो। इंग्लीश शब्द, अर्थके संबंध ज्ञान न होनेसे अर्थ

ज्ञान नहीं होता।

वा. व. - ''तत्'' पदसे ब्रह्मज्ञान होनेके पहले ब्रह्मका ज्ञान और ब्रह्मके साथ ''तत्'' पदसे संबंधका ज्ञान होना चाहिये न ?

चिदंबर - सही है। शब्दसे ब्रह्मज्ञान होनेके पहले, ब्रह्मका ज्ञान और शब्द और ब्रह्मके संबंधका ज्ञान हो।

वा.व. - ''तत्'' पदसे ब्रह्मज्ञान होनेके पूर्वमें ही ब्रह्म किस प्रमाणसे ज्ञात होता है ? (ब्रह्मज्ञान किससे पैदा हुवा)

चिदंबर - क्या कहे ? ब्रह्म, प्रत्यक्षसे (इन्द्रियोंसे) अनुमानसे ज्ञात होनेवाला नहीं। शब्दोंसे ही उसका ज्ञान होगा।

वा. व. - शब्दोंसे ब्रह्मको जाननेके पूर्वमें ही ब्रह्मका ज्ञान हुवा होगा न ?

चिदंबर - होना चाहिये।

वा. व. - इस प्रकार अनवस्था दोषकी आपत्तिके कारण ब्रह्मका ज्ञान ही नहीं होगा।

चिदंबर - होना चाहिये।

वा. व. - इस प्रकार अनवस्था दोषकी आपत्तिके कारण ब्रह्मका ज्ञान ही नहीं होगा।

चिदंबर - उत्तर नहीं।

कोर्ट - गंगाधरशास्त्रीजी ! प्रश्नका उत्तर दीजिये।

प्र. गं. - शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान उत्पन्न होनेके लिये, शब्दका और ब्रह्मका संबंध ज्ञान अनावश्यक है। १* शब्दको सुनते ही ब्रह्मका ज्ञान पैदा होता है।

वा. व. - इस विषयमें क्या सबूत हैं ?

प्र. गं. - शब्द और अर्थका संबंध अज्ञात होनेपर, जैसे सोये हुये मनुष्यको शब्दसे ज्ञान पैदा होता है, वैसे ही वेदोक्त शब्दोंके साथ ब्रह्मका संबंध अज्ञात होनेपर भी, ब्रह्मका ज्ञान पैदा होता है। इस तरह सुरेश्वराचार्यने कहा है। मधुसूदन सरस्वतीने अद्वैतसिद्धि ग्रंथमें इसीका उद्धरण किया है।

वा. व. - वादग्रस्त पदार्थोंके निर्णयके विषयमें, दोनों पक्षोंके प्रमाणके रूपमें स्वीकृत प्रमाणका ही उद्धरण करना होगा। हमारे आचार्यने कहा है यह किस तरह युक्त होगा ? उभय सम्मत प्रमाण हो तो कहिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - जब आप सोते रहते हैं, तब हमसे बोले जानेवाले इंग्लीश शब्दोंको क्या आप समझेंगे ?

प्र. गं. - जाग्रदावस्थामें जब ज्ञान नहीं होता, सुषुप्तावस्थामें अर्थज्ञान किस तरह होगा ?

वा. व. - यह ज्ञान क्यों नहीं होता ?

प्र. गं. - अर्थका और शब्दका संबंधज्ञान न होनेसे इंग्लीश भाषाका अर्थज्ञान नहीं होगा।

वा. व. - निंद्रावस्थामें शब्दसे अर्थ बोध होनेके लिये शब्दार्थ संबंध ज्ञान आवश्यक नहीं, ऐसा जो आपके सुरेश्वराचार्यने कहा है, मधुसूदन सरस्वतीने लिखा है, ऐसा आपने कहा। शब्दसे अर्थज्ञान

१* वृत्तिभंतरेणापि सुप्तोत्थापक वाक्यसेव, वेदान्त उक्केश निर्विशेषे प्रामाण्यस्य वार्तिक कृद्भिरूपपागीतत्साच तथाहि आग्रहीतेनैव संबंधमभिधानाभि ध्येययोहित्सा निप्द्रां प्रभुध्यान्ते सुषुप्तेबोधिता: परै: जागृव्दन्न ही संबंधं सुषुप्तेवेत्ति कश्चन (सुरेश्वर वार्तिक ६०४) इंत्यादिना ग्रंथेन विनापि संबंध वाक्यस्य प्रामाण्यमुपपादित्।

होनेके लिये अर्थ और शब्दका संबंध ज्ञान आवश्यक है यों अभी कहते हैं, क्या ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।
वा. व. - चिदंबर शास्त्रीजी ! आपने कितने साल अध्ययन किया ?
प्र. गं. - बीस वर्ष।
वा. व. - किसलिये आपने अध्ययन किया ?
चिदंबर - व्युत्पत्ति पैदा होनेके लिये।
वा. व. - ''व्युत्पत्ति''का अर्थ क्या है ?
चिदंबर - शब्द और अर्थका संबंध ज्ञान
वा. व. - संबंध ज्ञानरूप यह व्युत्पत्ति किस लिये ?
चिदंबर - ब्रह्मज्ञान के लिये।
वा. व. - आपने पहले कहा कि, ब्रह्मका ज्ञान पैदा होनेके लिये शब्दार्थ संबंध ज्ञान आवश्यक नहीं, पुन: संबंध ज्ञान आवश्यक है ऐसा कहते है, क्या ऐसा कहना विरूद्ध नहीं।
चिदंबर - उत्तर नहीं।

''वादिका क्रॉस एक्जामिनेशन्''

प्र. व. - विष्णुदासाचार्यजी ! ''तत्त्वमसि'' इस वाक्यका अर्थ क्या है ?
वा. वि. - इस श्रुतिके अनेक अर्थ है।
प्र. व. - इस समय एक अर्थ कहिये।
वा. वि. - ''स आत्मा तत्त्वमसि'' वाक्यमें, स: आत्मा, अतत् त्वं असि। इस भाँति पदविभाग करके, स: = सन्नामक परमात्मा, आत्मा जगत्कर्ता है, स्वामी है, त्वं = तुम (जीव) उस सन्नामक परमात्मासे भिन्न हो। यों अर्थ कहते हैं।
प्र. व. - आपने ''अतत्'' ऐसा पदविभाग क्यों किया ?
वा. वि. - क्योंकि आत्मा, अतत्, दोनों पदोंके आद्यन्त स्वरोंकी सवर्णदीर्घ संधि होगी। अत: आत्मा + अतत्'' पदविभाग के लिये कोई अनुपपत्ति नहीं।
प्र. व. - ''अतत्'', ''तत्'' दोनों तरहके पदविभाग संभव होनेपर भी, ''अतत्'' इस प्रकारके पदविभागका कारण क्या है ?
वा. वि. - दोनो तरहसे पदविभाग की शक्यता होनेपर भी, ''तत्'' रूप पदविभागके लिये अद्वैतियोंको भी कारण कहना पडेगा।
प्र. व. - हम अपने पक्षके लोगोंसे जिरह करते वक्त पूछेंगे, इस समय ''अतत्'' इस पदविभागके कारणोंको बताईये।
वा. वि. - अनेक कारण हैं, उनमें तीन चार कारणोंका बयान करूँगा, सुनिये -

१) सर्वोत्तमत्व, सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त जो ईश्वर है वही ''तत्'' पदका अर्थ है, इसके विरूद्ध अल्पज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त जीव ''त्वं'' पदका अर्थ है। त्वं - तुम तत् सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त

ईश्वर हो, इस प्रकार ऐक्य नहीं होगा। इसलिये ''तत्'' ऐसा पदच्छेद न कर ''अतत्'' ऐसा पदच्छेद करके तुम = जीव उस परमात्मासे भिन्न हो ऐसा अर्थ करना युक्त है।

२)''तत्त्वमसि'' वाक्यके पूर्वमें सन्मूला सौम्येमा:, सर्वा प्रजा: सदायतना: सत्प्रतिष्ठा: वाक्यमें समस्त जीव परमात्मासे उत्पन्न हैं, उसीमें आश्रित हैं, इस तरह कार्यकारणभावसे आश्रय आश्रयिभावसे जीवको परमात्मासे भिन्न कहा गया है।

३) ''प्राणबन्धनं हि सौम्य मन:'' इस द्दष्टान्त वाक्यमें, जीवोंका आश्रय प्राणनामक परमात्मा है। इससे आश्रय आश्रयीभावसे जीव की परमात्मासे भिन्नता सिद्ध होती है।

४) जीव परमात्माके संबंधको स्पष्ट करनेके लिये उक्त द्दष्टान्तोंमें स यथा शकुनि: इत्यादि नौ दृष्टान्तोमें भेदका ही प्रतिपादन किया गया है। अत: ''अतत्'' ऐसा पदविभाग करना होगा।

प्र. व. - ब्रह्ममें, जीवमें विद्यमान सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्व धर्म आरोपित हैं। (भ्रमसे दिखायी देते हैं) मिथ्या होनेके कारण इन गुणोंसे जीव और ब्रह्मके ऐक्यमें कोई बाधक नहीं होगा, पहला कारण, किस तरह युक्ति युक्त होगा।

कोर्ट - वह विचार पूर्वमें हो चुका है। फिर विचार करना अनावश्यक है।

वा. व. - महाप्रभो ! विचारणीय प्रत्येक विषयके साथ विचारित विषयोंका संबंध होता है, विचारित विषय पुन: पुन: आता रहता है। आपके हुकमके तहद छोड देते हैं।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''सन्मूला सौम्येमा: सर्वा: प्रजा:'' ''प्राणबन्धनं हि सौम्य मन:'' इन दो वाक्योंसे ज्ञातव्यभेद मिथ्या है। मिथ्याभूत भेद ''अतत्'' इस पदविभागके लिये किस तरह कारण होगा।

वा. वि. - वेदादिसे ज्ञेय भेदको मिथ्या कहनेके लिये कारण चाहिये। बाधकज्ञान न होनेके कारण, अद्वैतमतके अनुसार भेदका आरोप भी असंभव है, अत: भेदको सत्य ही मानना चाहिये। इस विचारसे ''अतत्'' पद विभाग कर सकते हैं। भेद सत्य होनेसे ''अतत्'' पद विभागका कारण बनता है।

प्र. व. - ४ ''स यथा शकुनि:''आदि नौ द्दष्टान्तोंमें यद्यपि भेद उक्त है, फिर ये द्दष्टान्त ''अतत्''पदविभागके लिये किस तरह कारण बनेंगे ?

वा. व. - संदिग्ध दार्ष्टान्तिकके निर्णय के लिये, द्दष्टान्त प्रस्तुत कर, उस द्दष्टान्तके अनुसार दार्ष्टिन्तिकके अर्थका निर्णय करना चाहिये। इसलिये द्रष्टान्तमें भेद रहनेपरभी दाष्टान्तिकमें भेदको न माननेपर ''अतत्'' पदच्छेद करनेके लिये मौका ही नहीं ऐसा कहना शास्त्रके लोकानुभवके विरूद्ध होगा। अत: ''अतत्'' ऐसा पदविभाग करनेके लिये चार कारण उपलब्ध हैं। और भी अनेक कारण है, कोर्टकी आज्ञा मिलनेपर करूँगा।

कोर्ट - इस समय आवश्यक नहीं। आवश्यक होनेपर पूछेंगे।

प्र. व. - प्रमाणप्रमित वेद, अन्य प्रमाणोंसे अज्ञात अर्थको ही ज्ञात कराये। ऐसा रहनेपर भी प्रत्यक्षसे सिद्ध जीव ब्रह्मके भेदके प्रतिपादन में वेदोंके क्या अवसर है ?

वा. वि. - अन्य प्रमाणोंसे ज्ञात अर्थका बोध करनेपर भी कोई बाधक नहीं। अद्वैती भी 'विमता

आत्मान: परमात्मना तत्त्वतो न भिद्यन्ते आत्मत्त्वात् परमात्मवत् इत्यादि अनुमानसे ज्ञात ''ऐक्यका'' तत्त्वमस्यादि वाक्य बोधन करते हैं, यों स्वीकारते हैं, ब्रह्म जगसत्तापेक्षया अधिक सत्ताक जगदध्यासाधिष्टानत्वात् शुक्तिवत्'' । शुक्तिरजतमें रजत प्रातिभासिक है, उस रजतका अधिष्ठान शुक्ति है। अधिष्ठानभूत सींप व्यावहारिक है। रजतमें विद्यमान प्रातिभासिक सत्ता की अपेक्षा अधिक सत्तायुक्त है। वैसे व्यावहारिक जगतका अधिष्ठानभूत ब्रह्म, जगतकी व्यावहारिक सत्तासे अधिक सत्तायुक्त है। (पारमार्थिक सत्तायुक्त है) इस प्रकार ''सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' श्रुति ज्ञापन करती है, तत्त्वमसि वाक्यसे सिद्ध अभेदका बोध ''अहं ब्रह्मास्मि वाक्य अवगत कराता है। इसी तरह प्रत्यक्षादि सिद्ध भेदको वेदके कहनेपर क्या बाधा होगी ?

प्र. व. - एक प्रमाणसे सिद्ध भेदको पुन: कथन करनेका क्या कारण है ?

वा. वि. - किसी अन्यप्रमाणसे ज्ञात वस्तुका कथन दूसरे प्रमाणके कथनपर वस्तु द्दढ बनती है। अत: पुन: कहना शास्त्रकी परंपरा है, इसे आपको मानना होगा। वास्तवमें ईश्वरसे जीवका भेद प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं।

प्र. व. - ''नाहमीश्वर:'' - मैं ईश्वर नहीं। इस तरहका प्रत्यक्ष सबोंका है। वह भेद प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं ऐसा कैसे कहते हैं ?

वा. वि. - घट प्रत्यक्ष, पट प्रत्यक्षका अनुभव हैं। इनमें विद्यमान विरूद्ध धर्म भी प्रत्यक्ष हैं। इसलिये घटमें पटका भेद प्रत्यक्ष हैं। जीवको स्वकीय स्वरूप प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेपर ब्रह्म प्रत्यक्षसिद्ध न होनेके कारण, ब्रह्मके सर्वज्ञत्वादिगुण प्रत्यक्ष सिद्ध न होनेसे, जीवमें विद्यमान ब्रह्मका भेद प्रत्यक्षसे ज्ञेय नहीं होगा। जैसे एक मनुष्यसे दूसरेने कहा क्या तुम राजा नहीं हो ? इसको सुनकर वह अपने आपको राजा ही समझता है। राजाके वशमें एक देश होना चाहिये। सभी लोग उसके शासन का पालन करते रहे हों। करोडों संपत्ति हो। हाथी, घोडे, कार आदिकी व्यवस्थित जमघट हो क्या ये सभी तुम्हारे पास हैं ? वह कहेगा नहीं। उपरोक्त गुणयुक्त ही राजा हुवा। वह यह भी समझता है कि वह राजा नहीं। राजाके लक्षणसे परिचित न होनेपर, राजा मुझसे भिन्न हैं। उसी तरह सर्वज्ञत्वादि गुणविशिष्ट ही ब्रह्म है। इस प्रकारका ब्रह्म प्रत्यक्ष नहीं होगा। अत: जीवको ब्रह्मका भेद प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होगा। ब्रह्मका सर्वज्ञत्व, जगत्कारणत्व, सर्वाश्रयत्वादि धर्मोंसे सिद्ध होनेवाले जीव ब्रह्मके भेदको वेद ही प्रतिपादन करता है। इससे वेदका अपूर्वत्व नष्ट नहीं होगा। (अन्य प्रमाणोंसे अज्ञात भेदका ही प्रतिपादन करता है वेद)

प्र. व. - उद्दालकने श्वेतकेतुसे ब्रह्मके भेदको परिचित कराया। ब्रह्मसे भेद कहनेके लिये क्या अवसर था ?

वा. वि. - ''सह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्ष: सर्वान्वेदान्नधीत्य महामना अनूमानमानी स्तभ्ध एयाय''

श्वेतकेतु की उम्र बारहसाल थी। पर उसको अध्ययनमें रूचि नहीं थी। उसको देखकर क्रोधसे उद्दलक श्वेतकेतुसे कहते हैं - बेटा ! तुम्हारे जैसे ब्रह्मबन्धुसा ज्ञानरहित बालक हमारे घरानेमें नहीं था। ऐसा मूर्ख तुम हमारे वंशमें कैसे जन्मे ? इस प्रकार क्रोधकरके बारह सालके बालकको

अध्ययनके लिये गुरूकुलमें भेज दिया। श्वेतकेतुने बारहवर्षसे आरंभ करके चौबिस सालोंतक समस्त वेदोंका अध्ययन करके, अपने आपको बडा समझकर विनय रहित होकर ''मुझ जैसा श्रेष्ठ और कोई नहीं, मैं ही सबोंमें उत्तम हूँ'' यों विचार करके पिताके पास आया। उद्दालकने उसके गर्वका परिहार करनेके लिये जीवपरमात्माके भेदका उपदेश दिया। उपदेश इस तरह है - परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वकर्ता, सर्वाश्रय है। तुम अल्पज्ञ हो, अस्वतंत्र हो, इसलिये सर्वोत्तम ब्रह्मसे तुम अत्यंत भिन्न हो। तुम अपने आपको सर्वोत्तम मत समझो। गर्व परिहार के लिये किया गया उपदेश है। श्वेतुकेतुके सर्वोत्तमत्व गर्व परिहारके लिये इस तरह उपदेश अनिवार्य था। अत: उपदेशका मौका था।

प्र. व. - तत्, त्वं, पदच्छेद करनेपर क्या ऐक्य सिद्ध नहीं होगा ?

वा. वि. - ''तत्'' पदविभाग करनेपर ऐक्य सिद्ध नहीं होगा।

प्र. व. - वह कैसे ?

वा. वि. - तत्, त्वं, पदविभाग करनेपर भी, ये पद एकविभक्त्यंत होनेसे ''तत्'' इस पदसे ज्ञेय वस्तुके साथ त्वं पदसे ऐक्यका बोध होता है, ऐसा माननेपर भी ''त्वं'' पदसे मुख्यवृत्तिसे ज्ञायमान. अल्पज्ञत्वादि धर्मोका त्याग करके, केवल ''चित्'' ऐसा अर्थ लेना होगा। ''तत्'' पदसे अमुख्यवृत्तिसे ज्ञेय ब्रह्मके साथ ऐक्य का स्वीकार अद्वैती नहीं मानते। अद्वैती कहते हैं - त्वं पदसे अमुख्यवृत्तिसे ज्ञायमान अल्पज्ञत्वादि धर्मोका त्याग करके, केवल ''चित्त्'' ऐसा अर्थ लेना होगा। ''तत्'' पदसे अमुख्यवृत्तिसे बोध्य सर्वज्ञत्वादि धर्मोको छोडकर ''चित्त्'' ऐसा अर्ग ग्रहण करके ''चित्'' चित् है। ''ऐसा अर्थ है। अर्थात चित् के साथ चित् का ऐक्य होता है। इस प्रकार अर्थ करनेपर अनेक दोषोंकी उद्भावना होती है। दोष इस तरह हैं।

१) चित्, चित्त नहीं किसीको शंका नहीं होती, अत: चित्, चित्त है। यों उपदेश करनेकी आवश्यकता नहीं।

२) अद्वैतमतमें 'अनधिगतार्थगन्तृ'' प्रमाण है, पूर्वमें अज्ञात वस्तुका ज्ञापक ही प्रमाण है। घट, घट है, पट, पट ही है। ऐसा सबोंको ज्ञात है। वैसे ही चित् चित् है यह सभी जानते ही है। ''तत्वमसि'' वाक्य इस प्रकारके अर्थका बोध करेगातो प्रमाण नहीं होगा।

३) जल, अग्नि पदोंसे जलमें, अग्निमें विद्यमान शैत्यको औष्णंको, न जाननेपर भी, जिस तरह जलका अग्निके साथ ऐक्य नहीं होगा। वैसे ही ''तत्'' पदसे अमुख्यवृत्ति ब्रह्मके सर्वज्ञत्वादिधर्मोको जीवमें अल्पज्ञत्वादि धर्मोको न जाननेपर भी, वास्तवमें इन दोनोंमें विरूद्ध होनेसे ऐक्य संभवेगा नहीं।

४) श्रुतियोंसे सर्वज्ञत्वादिधर्म ब्रह्मके, अनुभवसे अल्पज्ञत्वादि धर्मजीवके सिद्ध हैं। कारणके विना इन धर्मोको मिथ्या नहीं कह सकते, मिथ्या धर्मोका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंको भी अप्रमाण कहना पडेगा। अत: धर्मोको मिथ्या कहना सही नहीं।

५) लक्षणावृत्तिसे पदार्थ का ज्ञान उत्पन्न होनेके लिये, पूर्वमें पदार्थका ज्ञान होना आवश्यक है। ''तत्'' पदसे लक्षणावृत्तिसे चित्त् पदार्थ के ज्ञानके लिये चित् पदार्थका ज्ञान पहले हो। यह ज्ञान न

होनेसे लक्षणावृत्तिसे तत् त्व पदसे चित्का बोध होगा नहीं।

६) श्रुतिलक्षणाविशयेच श्रुतिर्न्याच्या न लक्षणा (ब्र.सू.शां.भा. ३-१-२७, ४-२-१) इत्यादि बहुतसे स्थानोंमें शंकराचार्यने कहा है - श्रुतिका अर्थ मुख्यवृत्तिसे ग्रहण करना चाहिये ? अथवा लक्षणावृत्तिसे प्राप्त अर्थको ग्रहण करें ? इस प्रकारके संशय आनेपर, शंकराचार्य कहते हैं मुख्यवृत्तिसे प्राप्त अर्थका ग्रहण करें, लक्षणावृत्तिसे आभासमान अर्थका ग्रहण न करें। तत्त्वमसि वाक्यमें मुख्यवृत्तिसे भेदको भेदकधर्मोंको बोधन करनेवाले अनेक अर्थ हैं, जो युक्ति युक्त है। इसलिये लक्षणावृत्तिसे अर्थका ग्रहण युक्तियुक्त नहीं।

७) ''त्वं'' तुम, तत् = उस परमात्माके वशमें हो। एक पदकी लक्षणावृत्तिसे अर्थ संभव होनेपर, दो पदोंका लक्षण करना न्याय्य नहीं। श्रुतिकी स्वसामर्थ्य न होनेपर मुख्यवृत्तिसे अर्थग्रहण करें। पर वह दूसरा अर्थ इतर प्रमाणोंके अनुकूल हो। अन्यथा त्वं = तुम, तत् = शशविषाण हो यह भी अर्थ हो सकता है। अत: ऐक्यबोधक वाक्यको दूसरे वाक्यकी अपेक्षा होनेसे, स्वयं ऐक्य कथन करनेवाले इस श्रुतिको, दूसरे वाक्योंके विचार होनेतक अनिर्णीत अवस्थामें रखेंगे। इस प्रकार अनेक दोषोंकी आपत्ति होनेसे लक्षणावृत्तिका स्वीकार करके इस वाक्यसे ''चित् चित्'' इतना ही अर्थ बोध होता है ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं।

प्र. व. - ''तत्'', ''त्वं'' ''असि'' पदच्छेद करनेपर मुख्यवृत्तिसे आप क्या अर्थ करेंगे ?

वा. वि. - ''तत्'' इस तरह पदच्छेद करनेपर प्रातिपदिके आगे सातो विभक्तोंके स्थानमें ''सु'' ऐसा आदेश होता है। सातों विभक्तियोंसे युक्त शब्दका स्वरूप प्रथमाविभक्त्यंत शब्दके जैसे होता है। इस विषयमें ''सुपां सुलूक्'' व्याकरण का सूत्र प्रमाण है। इसलिये ''तत्'' शब्द प्रथमाविभक्तिकी भाँति दीखता है। पर ''तत्'' शब्दके लिये तस्मिन्, तस्य, तस्मात्, तस्मै इत्यादि विभक्त्यंत शब्दोंके जो अर्थ हैं, वही अर्थ होता है। त्वं = तुम, तस्मिन् = उस परमात्माके आश्रयमें हो। तुम उस परमात्माके हो, उस परमात्माके वश हो, उस परमात्मासे पैदा हुये हो इत्यादि अर्थ कहते हैं।

प्र. व. - इस प्रकारके अर्थ करनेमें क्या सबूत है ?

वा. वि. - अनेक श्रुतियोंका आधार है।

प्र. व. - उन श्रुतियोंको कहो।

वा. वि. - तत्त्वमसि वाक्यके पहले स्थित सन्मूला: सौम्येमा: सर्वाप्रजा:, सदायतना:, सत्प्रतिष्ठा:'' यह वाक्य कहता है - समस्त जीव परमात्मासे उत्पन्न है, परमात्माके आश्रयमें हैं, सर्वस्य-वशी, सर्वस्येमान: सर्वभूताधिवास:'' इत्यादि वाक्य कहते हैं कि जीव परमात्माके वशमें हैं, परमात्मा जीवका स्वामी है, इसलिये ये वाक्य - तत्त्वमसि वाक्यगत ''तत्'' पद सातों विभक्तियोंमें, किसी एक विभक्ति के साथ जुडा है और पूर्वमें उक्त अर्थको कहता है, इस अर्थकरणके प्रमाण हैं।

''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं'' इस पूर्ववाक्यमें ''इदं सर्वं'' चेतनाचेतनात्मक पूरा ब्रह्मांड, ऐतदात्म्यं - जिस ब्रह्मांडके परमात्मा स्वामी है, जिस ब्रह्मांडका कर्ता है ऐसा यह ब्रह्मांड है। सन्नामक

परमात्मासे उत्पन्न है, उसीसे नियम्य है, ''एसा कहे जानेके कारण अचेतनात्मक जगतकी तरह तुम हो तुम सन्नामक परमात्मासे उत्पन्न हो, उसीसे नियम्य हो, इस प्रकारके अर्थ होते हैं।

प्र. व. - ''स आत्मा'' इस पूर्ववाक्यसे प्रसक्त आत्माको तत् पदसे ग्रहण न करके, दूरस्थ ''ऐतदात्म्यमिदं'' पदमें प्रसक्त अर्थग्रहण क्यों करते हैं ?

वा. वि. - आत्मा शब्द पुल्लिंग होनेके कारण; आत्माका ही स्वीकार करना चाहिये ऐसी श्रुतिकी राय हो तो ''त्वं सोऽसि'' स यह पुल्लिंग शब्द होना चाहिये। ''तत्'' रूप नपुंसक शब्दके ग्रहण करनेमें स्वारस्य नहीं, ऐतदात्म्यंरूप पद नपुंसक लिंग, स्वल्प दूर होनेपर भी ''तत्'' पदसे उसका परामर्श करना युक्त होता है।

प्रतिवादि की विचारणा

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' का अर्थ, मुख्यवृत्तिका परित्याग करके लक्षणावृत्तिसे करनेपर आचार्यकी उक्तिके अनुसार, त्वं - तुम, तत् = उस परमात्माके वश हो, परमात्माके आश्रित हो, परमात्मासे उत्पन्न हुये हो, आदि अर्थ क्यों न करें ?

प्र. गं. - ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य जीवब्रह्मके ऐक्यमें तात्पर्य होनेके कारण, अत: भेदरूप अर्थ न करें।

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्य अभेदबोधक है, अभेदमें उसका तात्पर्य है, इसके लिये क्या प्रमाण है ?

प्र. गं. - ''उततमादेशमप्राक्ष्य:'' येनाश्रुतं श्रुतं भवति, अमतं मतं अविज्ञातं विज्ञातमिति - (छां. ६-१-३) वाक्य ही प्रमाण है। परमात्माके ज्ञानसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान होता है। यों यह वाक्य कहता है। जीवजडात्मक प्रपंच परमात्मासे भिन्न होगा। परमात्माके ज्ञानसे जीव जडात्मक प्रपंचका ज्ञान किस तरह होगा ? नहीं होगा। अत: इस वाक्यसे, जीवजडात्मक प्रपंच परमात्मासे अत्यंत अभिन्न है यह सिद्ध होता है। अत: तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य अभेद बोधनमें है, यही सिद्ध होता है।

वा. व. - क्या आपने ''उततमादेशमप्राक्ष्य: येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' इस वाक्यके - शंकरभाष्य, आनंदगिरीटीका, देखा है ?

प्र. गं. - देखा है।

वा. व. - इस शांकरभाष्यका अर्थ क्या है ? १*

प्र. गं. - जिस परमात्माके श्रवण करनेसे, जिसका श्रवण नही किया हो, वह भी श्रवण किया हुवा

१* किमित्यधीत्य सर्ववेदमाधिगततदथ च पुत्रं। आत्मविद्यामधिकृत्य पिता पृच्छति ॥ तस्य वेदाध्ययनादिनैव [illegible]तार्थत्वात् इत्याशंक्य आह॥ सर्वानपिति (आनंदगिरी) तमादेशं विशिनष्टि। येनादेशेन श्रुतेन अश्रुतमप्यन्यत् श्रुतं भवति, अमतं मतं अतर्कितं तर्कितं भवति, अविज्ञातं विज्ञातं, अनिश्चितं निश्चितं भवतीति। सर्वानपि वेदानधीत्य सर्वं चान्यत् वेद्यमधिगम्यापि अकृतार्थ एव भवति यावदात्मतत्त्व न जानातीत्यारव्याताका अतोऽवगम्यते (छां. शां. भा. ६-१-३)

हो, जिसके विषयमें विचार करनेपर, मनन करनेपर, जो अमत है (अविचारित है) वह भी मतसा होता है। (मतसा होता विचारित जैसे होता है)

'क्या इस तरहके परमात्माको तुम समझ गये हो ?' – इस प्रकार पिताजीने अपने पुत्रसे पूछा। समस्त वेदोंका अध्ययन करके, उन वेदोंके अर्थको जाननेवाले अपने कुमारसे प्रश्न किया, क्या तुमने गुरूजीसे परमात्माके विषयमें पूछताछ करके उस परमात्माको जान लिया है ? इस तरह पिताने क्यों सवाल किया ? समस्त वेदोंका अध्ययन करना, वेदोंके अर्थको समझ लेना, ये मानवके आवश्यक कर्म हैं। इस प्रकारके कर्मको करचुका है पुत्र, तो प्रश्न करनेका मौका ही नहीं। इस प्रकार शंकराचार्य शंका करके, उस शंकाका समाधान इस प्रकार करते हैं। समस्त वेदोंका अध्ययन करनेके बादभी, परमात्मासे भिन्न सभी पदार्थोंको जाननेके बावजूद भी, परमात्माको जाने बिना वह अकृतार्थ ही रहेगा। (विहित कर्तव्य कर्मोंका अनुष्ठान न करनेवाला) जिस तरह ग्रेज्युएट होना वकील बनना पुरूषार्थ नहीं। वित्तार्जन करना पुरूषार्थ है। उसी तरह, वेदाध्ययन करना, परमात्मासे भिन्न जगतके ज्ञानकी प्राप्ति पुरूषार्थ नहीं। परमात्माके ज्ञानका अर्जन ही मुख्य कर्तव्य है। वेदाध्यायन, परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका ज्ञान परमात्मा के ज्ञानके लिये उपयुक्त है।

वा. व. – शास्त्रीजी ! शंकराचार्यके इस वाक्यके अनुसार ''येनाश्रुतं'' वाक्यसे ब्रह्मज्ञानसे समस्त जगतका ज्ञान होता है क्या यह सिद्ध होता है।

प्र. गं. – सिद्ध नहीं होता।

वा. व. – तो क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार, समस्त वेदाध्ययनके बावजूदभी, परमात्मासे भिन्न जगतके ज्ञानको प्राप्त करनेपरभी, परमात्माको जानने बगैर पूरा परिश्रम व्यर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्माको जानना आवश्यक है।

वा. व. – परमात्माका ज्ञान भिन्न है, जगतका ज्ञान अन्य है। क्या यह सिद्ध होता है या नहीं ? अथवा परमात्माका ज्ञान जगतका ज्ञान दोनो एक ही है यह सिद्ध होता है।

प्र. गं. – परमात्माका और जगतका ज्ञान भिन्न है यह सिद्ध होता है।

वा. व. – इस वाक्यसे परमात्मा और जीवात्मा का भेद सिद्ध होता है या नहीं।

प्र. गं. – इस वाक्यसे परमात्मा और जीवात्माका भेद सिद्ध होता हैं।

वा. व. – ''येनाश्रुतं'' वाक्य ब्रह्मसे जीवका भेद प्रतिपादक है। इस स्थितिमें आपने इस वाक्यका उदाहरण अभेदके विषयमें किस तरह दिया ?

प्र. गं. – उपनिषत् के व्याख्यानमें यद्यपि शंकराचार्यने इस तरह कहा है, पर ११-१-१४ के सूत्र भाष्यमें ''एक ज्ञानेन सर्व विज्ञानं प्रतिज्ञाय द्दष्टान्तापेक्षापमिदमुच्यते यथा सौम्येकेनेत्यादिना। न च अन्यथा एकविमानेन सर्व विज्ञानमुपपद्यते'' इन दो वाक्योंसे ब्रह्मके ज्ञानसे चेतनाचेतनात्मक जगतका ज्ञान होता है, इसलिये जीवके साथ ब्रह्मके अभेदको स्वीकार करना चाहिये। इस तरह शकंराचार्यके कथनके कारण, हमने उस वाक्यको अभेदके विषयमें प्रस्तुत किया।

वा. व. – उस सूत्रभाष्यमें इस वाक्यके अर्थ और क्या किया है ?

प्र. गं. - ''येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' वाक्यका अर्थ उस स्थानपर नहीं किया गया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' इस उपनिषद् वाक्यके व्याख्यान करते वक्त ''ब्रह्म के ज्ञानके जगतके ज्ञानका फलरूप माना है। ब्रह्मका और जगतका ज्ञान भिन्न भिन्न है। ऐसा कहकर, सूत्र व्याख्यानमें ''ब्रह्मका ज्ञान ही जगतका ज्ञान है, ब्रह्मका ज्ञान जगतके ज्ञानके अतिरिक्त नहीं। अत: जगत और ब्रह्म एक ही है यह कहना क्या परस्पर विरूद्ध नहीं।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - (कोर्टसे) धर्मराज प्रभो ! शंकराचार्यने उपनिषद्भाष्यमें एक अर्थको लिखकर (जीव ब्रह्मसे भिन्न है) यो अर्थ लिखकर सूत्रभाष्यमें उस वाक्यका कुछ भी अर्थ न लिखकर, उस वाक्यके बलपर जीवब्रह्ममें अभेदकी सिद्धि होती है, ऐसा कहा है। लोगोंको गुमराह करने ऐसा कहा होगा। अथवा भ्रमसे कहा होगा। वास्तविकताका निर्णय कोर्ट ही कर सकेगा।

वा. व. - ये कौनसा ग्रंथ हैं, क्या आपने देखा है ?

प्र. गं. - देख चुके हैं, यह शंकराचार्यका केनोपनिषद्भाष्य है; उसकी टीका आनंदगिरीने की है।

वा. व. - इस भाष्य वाक्यका, १* आनंदगिरीके व्याख्यान का तात्पर्य क्या है ?

प्र. गं. - जो सीपंको जानता है, ज्ञात सीपंमें आरोपित रजतादि ज्ञान नहीं होगा। शुक्त्यादि तत्त्वोंको जो नहीं जानते उनको उस शुक्तिमें आरोपित रजत ज्ञान होता है, यह लोकानुभव सिद्ध है। अत: ब्रह्ममें ज्ञेयत्व आरोपित होनेसे तत्त्वज्ञानी ब्रह्ममें आरोपित जगतको नहीं देखते।

वा. व. - इस भाष्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - अधिष्ठानका ज्ञान न हो तो, उसमें आरोपित वस्तुका ज्ञान पैदा होता है। अधिष्ठानके ज्ञान होतेही, उसमें आरोपित वस्तुका ज्ञान नहीं होता। ब्रह्ममें ज्ञेयत्वादि धर्म आरोपित होनेसे, ब्रह्मको जाननेवाले उन आरोपित धर्मोंको नहीं देखते। यह सिद्ध होता है।

वा. व. - आपके मतके अनुसार क्या जगत ब्रह्ममें आरोपित है या सत्य है ?

प्र. गं. - हमारे मतमें जगत् ब्रह्ममें आरोपित है अर्थात् (मिथ्या है)

वा. व. - आपके मतके अनुसार - आरोपित जगत् - अधिष्ठानभूत ब्रह्मके ज्ञानसे ज्ञात होता है या नहीं ?

प्र. गं. - ब्रह्मज्ञानिके लिये सबकुछ आत्मा है। उसके लिये ब्रह्मातिरिक्त जगत ही नहीं। उस जगतका ज्ञान किस तरह पैदा होगा ? (जगत नहीं, ज्ञाता नहीं, ज्ञान भी नहीं)

वा. व. - ब्रह्मके ज्ञानसे जगतका ज्ञान होता है। ''येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' श्रुति शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार ब्रह्मसे भिन्न चेतनाचेतनात्मक प्रपंचका बोध करती है। यह सिद्ध होता है। अद्वैतमतके अनुसार - जगत् ब्रह्ममें कल्पित होनेसे ''ब्रह्म ज्ञानसे जगत ज्ञात नहीं होता'' - ऐसा कहना संगत नहीं होता। इसलिये - ऐक्यके विषयमें जिस श्रुतिको प्रतिवादिने प्रस्तुत किया है वह

१* अथवा हेत्वर्थ: उत्तरार्धोऽविज्ञातमित्यादि (केन. शां. भा. २-११-३) अथवा हेत्वर्थ इति। लोके शुक्त्यादि तत्त्वं विजानतां यतोऽध्यस्तं रूप्याद्यविज्ञातं भवति। अजानतामेव तु अध्यस्तं विज्ञातं भवति, इदं तु प्रसिद्धं। तथा ब्रह्मणि ज्ञेयत्वस्य अध्यस्तत्वादेव तत्त्वविदो न ज्ञातं ब्रह्म पश्यन्तीत्यर्थ: (आनंदगिरी टीका)

अयुक्त है, कोर्ट इस तरफ ध्यान दे।

प्र.व.- कोर्टसे - धर्मराजप्रभो ! ''तत्त्वमसि वाक्यको ऐक्यके निरूपणमें तात्पर्य है, इस विषयमें अनेक आधार है। उनपर भी विचार होना चाहिये।

कोर्ट - मि. शर्मा ! आधार होंगे तो कहने का मौका दीजिये।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''तत्त्वमसि'' वाक्य ऐक्यके विषयमें तात्पर्ययुक्त है, इसके लिये आधारभूत श्रुतियोंको कहिये।

प्र. गं. - ''तत्त्वमसि'' वाक्यके पूर्वकमें ''एकमेवाद्वितीयम्'' वाक्य कहता है कि परब्रह्मके अतिरिक्त कोई वस्तु ही नहीं। अत: जीवब्रह्मका ऐक्य है। यह वाक्य अभेदके विषयमें तत्त्वमसिका तात्पर्य है, इसके कथनके लिये आधार होता है।

एकमेवाद्वितीयम्

वा. व. - इस वाक्यके किस पदसे परब्रह्मके सिवा और कोई वस्तु नहीं यह सिद्ध होता है।

प्र. गं. - ''एकं'' पदसे सिद्ध होता है।

वा. व. - एकं पदका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ''द्वितीय वस्तु रहित'' अर्थ है।

वा. व. - इस अर्थसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - ब्रह्मके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं - यह सिद्ध होता है।

वा. व. - शंकराचार्यने ''एकं'' पदका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - ''एकमेवेति'' स्वकार्यपतितमन्यन्नास्ति इति एकमेवेत्युच्यते। परमात्मासे उत्पन्न पदार्थोंमें, भिन्न पदार्थ कुछ भी नहीं। इसलिये ब्रह्म एक ही है। इस उक्तिके कारण, कार्यभूतवस्तु रहित ही ''एक'' पदका अर्थ होता है।

वा. व. - एकं पदका अर्थ शंकराचार्यके अनुसार दूसरी वस्तु ही नहीं। यह सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - कार्यभूत पदार्थ नहीं। ऐसा कहेजानेके कारण, नित्य पदार्थोंकी सत्तामें कोई बाधा नहीं, ब्रह्मातिरिक्त कोई पदार्थ नहीं ऐसा सिद्ध नहीं होगा।

वा. व. - जीव ईशो विशुद्धा चित् भेदस्तस्या: तयोर्द्वयों: अविद्या तच्चितो योग: षडस्माकमनादय:'' यह श्लोक किसका है ?

प्र. गं. - हमारे प्राचीन आचार्योंका है।

वा. व. - इस श्लोकका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - १) जीव २) ईश्वर ३) चित् ४) चित्त् और जीवेश्वर का भेद, और जीवेश्वर का भेद ५) अविद्या ७) अविद्या और चित् का संबंध ये छ पदार्थ अनादि हैं।

वा. व. - ''तम आसीत्'' इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ''प्रलयकालमें अविद्या थी'' यही अर्थ है।

वा. व. - ''प्रकृतिं पुरूषंचैव विध्यनादि उभावपि (गी. १३-७) इस श्लोकका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - प्रकृति और पुरूष दोनों पदार्थ अनादि हैं।

वा. व. - ''नैवेह किंचनाग्र आसीत्'', ''मृत्युनैवेदमावृतमासीत्'' बृ. १-२-१ = शंकराचार्यने इस श्रुतिका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - मृत्युनामक परमात्मा ही प्रलयकालमें था, उसीसे समस्तपदार्थ आवृत्त थे (छिपे थे)

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ? देखिये !

प्र. गं. - यह बृहदारण्यकोपनिषत् शांकरभाष्य।

वा. व. - इस वाक्यका तात्पर्य कहिये।

प्र. गं. - पूर्वमें कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं था। इसलिये कोई पदार्थ नहीं होगा, इसतरह शंका पैदा होनेपर श्रुति कहती है - ''मृत्युनैवेदमावृतमासीत्'' मृत्युसे सबकुछ आवृत था, आच्छादित था। अगर कोई पदार्थ नहीं होता तो मृत्युसे क्या आवृत्त होता ? श्रुतितो कहती है - मृत्युसे सबकुछ आच्छ..देत था। वंध्यापुत्र, आकाशकुसुमसे आवृत्त था'' १* ऐसा कोई नहीं कहता। अत: आवृत्त पदार्थ, आवरकमृत्यु ..मक, दोनों थे, इस श्रुतिसे सिद्ध होता है। यही भाष्यसे सिद्ध होता है। यही भाष्यका तात्पर्य है।

वा. व. - नैवेह किंचनाग्र आसीत् - मृत्युनैवेदमावृतमासीत् - (ऋ १-११-१) वाक्यसे इस वाक्यके शंकराचार्यके भाष्यसे

ब्रह्मातिरिक्त दूसरी वस्तु प्रलयकालमें थी, क्या यह सिद्ध नहीं होता ?

प्र. गं. - प्रलयकालमें ब्रह्मातिरिक्त दूसरी वस्तु थी ऐसा सिद्ध होता है।

वा. व. - ''आत्मावा इदमेकमेवाग्र आसीत्'' नान्यत्किंचन भिषत्'' (ऐ) इस श्रुतिका तात्पर्य क्या है ?

प्र. गं. - प्रलयकालमें परमात्मा एक ही था, व्यापारयुक्त दूसरी वस्तु नहीं थी।

वा. व. - इस वाक्यसे प्रलयकालमें अविद्यादि दूसरे पदार्थ थे यह सिद्ध होता है या नहीं।

प्र. गं. - अविद्या रही होगी, उसमें न स्वातंत्र्य था, न व्यापार था यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''जीव ईशो'' अद्वैतियोंके वाक्योंसे भी, ''तम आसीत्'' इत्यादि श्रुति, गीताके, इन वाक्योंसे प्रलयकालमें परब्रह्मातिरिक्त दूसरी वस्तु थी ऐसा सिद्ध होता है या नहीं।

प्र. गं. - परब्रह्मके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ की सत्ता सिद्ध होती है।

वा. व. - शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार ''एकं'' पद ब्रह्मातिरिक्त दूसरे पदार्थ के अभाव का बोध नहीं करता न ?

प्र. गं. - शंकराचार्यके अनुसार ''एकं'' पद दूसरे पदार्थके अभावका आकलन नहीं कराता।

१* यदि हि किंचिदपि नासीत् - येनाव्रियते यच्चाव्रियते तदा नावक्ष्यत् ''मृत्यु नैवेदमावृतं'' इति। न हि भवति गगनकुसुमाच्छन्नो वंध्यापुत्र इति। ब्रवीतिच 'मृत्युनैवेदमावृत मासीत्' इति। तस्माद्येनावृत्तं कारणेन, यच्चावृतं कार्यं, प्रागुत्पत्तेस्तभुयमासीत्'' इति श्रुते: प्रामाण्यादनुमेयत्त्वाच्च।

१५७ – सिविल सूट (३)

वा. व. - ''एक:'' पदके कितने अर्थ हैं ?

प्र. गं. - ''एके मुख्यान्य केवला:'' कोशके अनुसार ''एक: सुपर्ण:'' वेदके भाष्यमें विद्यारण्यके कथनके अनुसार - ''एक:'' असहाय अर्थ है। मुख्य, अन्य, (भिन्न) केवल, संख्या आदि अनेक अर्थ हैं।

वा. व. - अनेक श्रुतियाँ, गीताके वाक्य; अद्वैतियोंके वाक्योंके अनुसार ब्रह्मातिरिक्त अन्य पदार्थोंकी सत्ता होती है।

शंकराचार्यने ''एक'' पदसे दूसरे पदार्थके अभावको नहीं कहा है।

अत: ''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्यस्थ ''एकं'' पदके लिये मुख्य, आदि अर्थ करके, परमात्मा मुख्य है, अथवा अन्य है, अर्थात् चेतनाचेतनसे भिन्न है, अथवा दूसरोंकी सहायता अपेक्षा न करनेवाला असहाय है, इस तरह अन्य प्रमाणोंके अविरूद्ध, अन्य प्रमाणोंके अनुकूल अनेक अर्थोंकी संभावना युक्ति युक्त है।

इन अर्थोंका त्याग करके, अद्वैतमतके वेद और गीताके विरूद्ध, दूसरे पदार्थका अभाव कथन किस तरह युक्त होगा।

प्र. गं. - ''एकं'' पदसे द्वितीयवस्तुका अभाव भले ही सिद्ध न हो, पर ''अद्वितीयं''पदसे द्वितीय पदार्थका अभाव प्रमित होता है।

वा. व. - वेद, गीता इत्यादि प्रमाणोंसे द्वितीय पदार्थकी सत्ता सिद्ध होती है। इसके विरूद्ध ''अद्वितीय'' पदका द्वितीय वस्तुरहित ऐसा अर्थ करनेपर क्या प्रमाण विरोध नहीं होगा ?

प्र. गं. - वेद, गीता आदि प्रमाण व्यावहारिक दूसरे पदार्थोंकी सत्ताका निरूपण करते हैं, ''अद्वितीयम्'' पद पारमार्थिक द्वितीय वस्तुके अभावका बोध करता है। अत: कोई विरोध नहीं होगा।

कोर्ट - अनेकबार आपने कहा है - प्रमाण, व्यावहारिक पदार्थोंका बोध करते हैं, इस तरह कहते आये हैं। हम अद्वैती पारमार्थिक वस्तुवोंका निषेध करते हैं। आपका यह कथन अद्वैतियोंके विरूद्ध है। प्रमाण, पारमार्थिक पदार्थोंका ही बोध कराते है। व्यावहारिक वस्तुवोंका बोध नहीं कराते। अद्वैतियोंने ही स्वीकार किया है, इस तरह द्वैतियोंका कहना नहीं दूसरे विषयपर विचार चले।

वा. व. - शंकराचार्यने ''अद्वितीय'' पदका क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. - ''अद्वितीयमिति - मृद्वयतिरेकेण मृदो यथा अन्यत् घटाद्याकारेण परिणामयितृ कुलालादि निमित्तकारणं द्रष्टं तथा सद्वयतिरेकेण सत: सहकारिकारणं द्वितीयं वस्त्वन्तरं प्राप्तं प्रतिषिद्ध्रति ''अद्वितीयमिति'' वाक्यसे मृत्तिकाको घट बनाने के लिये, जिस तरह कुम्हार आदि सहायक आवश्यक हैं, उसी तरह सन्नामक परमात्माको, सहायक अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा न होनेके कारण, परमात्मा ही अद्वितीय कहलाता है। सहाय रहितं ऐसा अद्वितीयका अर्थ करते हैं।

वा. व. - ''अद्वितीयं'' पदके लिये शंकराचार्यके अनुसार क्या ब्रह्मातिरिक्त दूसरा पदार्थ नहीं, यह सिद्ध होता है ? अथवा परमात्माके लिये सहायभूत दूसरा पदार्थ नहीं यह सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - सहायभूत दूसरा पदार्थ नहीं यही सिद्ध होता है। दूसरी वस्तु ही नहीं यह सिद्ध नहीं

होता।

वा. व. - 'असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डव:'' वाक्यगत ''द्वितीय'' इस पदका क्या अर्थ किया गया है ?

प्र. गं. - ''असिद्वितीय:'' ''असिसहाय:'' अपनी सहायता के लिये तलवार लेकर अर्थात् द्वितीय पदका सहाय ऐसा अर्थ होता है।

वा. व. - अस्य गो द्वितीयोऽन्वेष्टव्य:'' वाक्यगत द्वितीय पदका अर्थ, शांकरभाष्यमें और महाभाष्यमें किस तरह किया गया है ?

प्र. गं. - स्वसजातीय दूसरा पदार्थ यह ''द्वितीय'' पदका अर्थ है।

वा. व. - अद्वैतसिद्धि ग्रंथमें अद्वितीय पदका कौनसा अर्थ है ?

प्र. गं. - ''अद्वितीयं'' स्वसजातीय द्वितीय वस्तु रहित ऐसा अर्थ किया गया है।

वा. व. - ''द्वितीयं'' पदका सजातीय अथवा सहाय ऐसा अर्थ है। आपके मतप्रवर्तक शंकराचार्यके अनुसार अद्वितीय - सहायरहित यों अर्थ करना, अथवा न त्वत्समोस्त्यभ्यधिक: अर्थ करना ११-४३ गीतावाक्यके अनुसार भी ''यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्'' ३-७ श्वेताश्वेततर वाक्यके अनुसार अद्वितीयं = सजातीय द्वितीय वस्तुरहितं (परमात्माके समान कोई नहीं) इस तरह प्रमाणोंके अविरूद्ध, प्रमाणोंके अनुकूल अर्थ करना युक्त है। ब्रह्मातिरिक्त दूसरा पदार्थ ही नहीं।'' ऐसा जो शंकराचार्य का अर्थ है, प्रमाण विरूद्ध है, जो संगत नहीं। 'अत: एकमेवाद्वितीयं' श्रुति स्वयं ऐक्यबोधक नहीं ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य ऐक्य निरूपणमें है, ऐसा कहना किस तरह प्रमाण होगा ?

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्य ऐक्यके विषयमें तात्पर्ययुक्त है। इस कथनमे क्या और कोई प्रमाण है ?

प्र. गं. - और भी आधार है। सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्त्रो: देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति (छां. ६-३-२) वाक्य परब्रह्मही जीवरूपसे तेजस्सादिमें प्रविष्ट है। ऐसी उक्ति होनेके कारण, सबोंमें रहनेवाला जीव ही ब्रह्म है यह सिद्ध होता है। इस उपक्रम वाक्यके अनुसार ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य भी ऐक्यमें है, इसे स्वीकारना पडेगा।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''देवता'' शब्दका अर्थ चेतन है या अचेतन है ?

प्र. गं. - देवता का अर्थ चेतन ही है।

वा. व. - चेतन ही देवता का अर्थ है इस कथनके लिये क्या प्रमाण है ?

प्र. गं. - शंकराचार्य कहते हैं - अपिच कौषीतकिन: प्राणसंवादे करणमात्रशंका निवृत्तये अधिष्ठान् चेतन परिग्रहाय देवता शब्देन विशिषन्ति एता वै देवता: अहं श्रेयसे विवदमाना: इति। तावा एता: सर्वा: देवता: प्राणे निश्रेयसं विदित्वा इतिच (ब्र. सू. शां. भा. २-१-५) वाक्योंसे देवता शब्दको चेतनवाचक कहा है। अत: देवता शब्दको चेतनावाचक कहना होगा।

१५९- सिविल सूट(३)

वा. व. - ''यः पृथिव्यां तिष्ठन् योप्सुतिष्ठन् यो विज्ञाने तिष्ठत्'' इत्यादि वाक्यमें अन्तर्यामी परमात्मा पृथिव्याभिमानी देवतामें चेतनोंमें है ऐसा कहा गया है ? या पृथिव्यादि जडोंमें है ऐसा कहा गया है ?

प्र. गं. - चेतनोंमें है, अचेतनोंमें ऐसा कहा गया है।

वा. व. -शारीरश्चोभयेऽपि भेदेनैवेनमधीयते (ब्र. सू. १-२-२०) इस सूत्रभाष्यमें देवतादि चेतनोंमें स्थित परमात्मासे देवता भिन्न है, ऐसा शंकराचार्यने कहा है या अभेद है ऐसा कहा है ?

प्र. गं. - भेद ही है ऐसा कहा है।

वा. व. - ''इमास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनु प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' वाक्यका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - इमास्त्रिस्त्रो देवताः - तेजोभिमानि, जलाभिमानि, पृथिव्याद्यभिमानि देवतावोंमें (चेतनोंमें) मैं जीवरूपसे प्रवेश करके प्रपंचकी सृष्टि करता हूँ, इस तरह सन्नामक देवताने विचार किया।

वा. व. - परमात्माने अभिमानी देवताओंमें प्रवेश किया न ?

प्र. गं. - अभिमानी देवताओंमें प्रवेश किया।

वा. व. - जिस तरह अभिमानी देवताओंमें स्थित परमात्मासे भेद है, उसी तरह पृथिव्याप्तभिमानी देवताओंमें परमात्माने प्रवेश किया इस तरह उक्त होनेके कारण, अभिमानी देवता भिन्न हैं, प्रवेश करनेवाला परमात्मा भिन्न है, ऐसा अर्थ होता है। अभिमानी देवताओंमें और परमात्मामें भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - अभिमानी देवताओंसे परमात्माका भेद सिद्ध हुवा, पर....

वा. व. - 'पर' आप क्या कहना चाहते हैं ? भेदकी सिद्धि होती है या नहीं ?

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है। पर वह भेद मिथ्या है। व्यावाहरिक है, पारमार्थिक नहीं।

वा. व. - वेदोंमें उक्त, ज्ञात, भेद मिथ्या कैसे होगा ?

प्र. गं. - केवल भेद ही मिथ्या क्यों ? अभिमानी देवतामें परमात्माका प्रवेश भी मिथ्या है। पृथिव्यादि पदार्थ, हमारे वचन, वेदादि प्रमाण यह संवाद, विसंवाद, विचार। आप, हम समस्त प्रपंच मिथ्या है। हम अपने मतके अनुसार कहते हैं। न्यायाधिश प्रभु -अपनी पसंदकें अनुसार निर्णय कर सकते हैं।

कोर्ट - श्रीमान् माधवदास ! विचार आगे चले।

वा. व. - 'तदेवानुप्राविशत् (तै) ''अनुप्रविश्य नामरूपेव्याकरवावीति''..... अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् (छां.) स एषः इहप्रविष्टः (बृ १-४-७) पुरं पुरूष आविशत् (बृ २-५-१८) इत्याद्यनेक वेदवाक्योंसे उक्त प्रवेशको मिथ्या कहनेके लिये क्या प्रमाण है ?

प्र. गं. - ''कल्पितं प्रवेशं प्रतिपादितमुपसंहरति तस्मादिति। तस्मात्कार्यस्थस्य उपलभ्यत्वमेव प्रवेश इत्युपचर्यते (बृ. शा. भा.) तत्प्रवेशः प्रकल्प्यते (तै. भा.) इत्यादि वाक्योंसे हमारे आचार्यने प्रवेशको मिथ्या कहा है।

वा. व. – प्रवेश मिथ्या होगा तो, परमात्माका जीवरूपसे प्रवेश भी मिथ्या होगा । उन्होने देवताओंमें प्रवेश नहीं किया ?

प्र. गं. – परमात्माने देवताओंमें प्रवेश नहीं किया है।

वा. व. – परमात्माने देवताओंमें प्रवेश नहीं किया हो तो, परमात्माके प्रवेशका वर्णन श्रुति क्यों करेगी ?

प्र. गं. – प्रवेश, सृष्टि ये सभी कल्पित ही है। सत्य नहीं, अत: इस वाक्यका तात्पर्य प्रवेश के विषयमें नहीं।

वा. व. – अगर यह श्रुति, परमात्माके प्रवेशका निरूपण नहीं करती तो, उस श्रुतिसे ऐक्यकी सिद्धि किस तरह होगी ?

प्र. गं. – (उत्तर नहीं)

वा. व. – 'अनेनजीवेनात्मनानुप्रविश्य' श्रुति स्वयं जब अभेदका प्रतिपादन नहीं करती, तो 'तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य ऐक्य कथनमें है, इस विषयमें वह प्रमाण नहीं होगा।

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वादिकी विचारणा

प्र. गं. – आचार्यजी ! ''अनेन जीवेनात्मना'' वाक्यसे भेद सिद्ध होता है, यह आप किस तरह कह सकते हैं ?

वा. वि. – ''अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्म व्यपदेशात्'' (ब्र. सू. १-२-१८) इत्यादि सूत्रोंमें सूत्रकारने कहा है – परमात्मा पृथिव्यादि समस्त देवतामें रहकर नियमन करता है। इसीलिये इस देवताओंसे परमात्मा का भेद सिद्ध होता है, इस तरह श्रुति ही कहती है। शंकराचार्यने इस सूत्रसे निर्णय ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्'' वेदवाक्यका अर्थ इसी तरह किया है। इसी भाँति सन्नामक परमात्मा पृथिव्यादि देवताओंमें, जीवरूपसे अर्थात् (उन विशिष्ट देवताओंके व्यापार प्रवर्तक होता है) अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके, उन पृथिव्यादि देवताद्वारा सृष्टि करता है। इस प्रकार अर्थ होनेके कारण नियम्य देवताओंमें नियामक परमात्मामें भेद सिद्ध होता है।

वादिके वकील की जिरह

वा. व. – कोर्टसे ! प्रभो ! 'स आत्मा तत्त्वमसि'' श्रुतिमें ''स आत्मा अतत् त्वं असि'' स आत्मा तत्त्वं असि पदच्छेद करनेपर त्वं – हे श्वेतकेतो ! तुम अतत् उस सन्नामक परमात्मासे भिन्न हो। इस तरह जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है। ''तत्'' पदविभाग करनेपर भी हे श्वेतकेतु। त्वं = तुम तत् उस परमात्माके आश्रित हो, उसके वशमें हो, परमात्मासे पैदा हुवे हो, इस प्रकार अनेक अर्थ किये जा सकते है । जीव परमात्मा के भेद ही प्रतिपाद्य होनेसे, ''स आत्मा तत्त्वमसि'' वाक्य

जीवपरमात्माके भेदके विषयमें प्रमाण होगा।

''संसर्गासंगिसम्यक्'' इत्यादि अद्वैतियोंके वाक्योंसे यह वाक्य, तत्, त्वं, असि पदोंसे चित् मात्र बोध्य होता है। अभेद निरूपण करता नहीं। अत: यह वाक्य अद्वैतियोंके विचारसे अभेद के विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

सर्वेशत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वोत्तमत्व, सत्यकामत्व, सत्य संकल्पत्व, ईश्वरत्वादि गुणोंसे युक्त परमात्मा ''तत्'' पदसे बोध्य है, अल्पज्ञत्व, दुखित्वादि गुणोंसे युक्त जीव ''त्वं'' पदसे बोध्य है। विरूद्ध धर्मोवाले अग्निजल, परमाणुमेरू, आदि पदार्थोंमें जैसे एकता संभवेगी नहीं। वैसे जीवब्रह्मोमें एकता की संभावना नहीं की जा सकती।

शंकराचार्यने सर्व वेदान्तसार संग्रहमें १* कहा है - परमाणु-मेरू, अग्नि-जल इनमें जैसें एकता संपन्न नहीं होती, वैसे ही सर्वेशत्वादि गुणयुक्त परमात्मामें, अल्पज्ञत्वादि धर्मसे युक्त जीवमें ऐक्य नहीं हो सकता। इसीलिये 'स आत्मातत्त्वमसि' वाक्य बाधित होनेके कारण, यह वाक्य जीवपरमात्माके ऐक्य बोधनमें समर्थ नहीं होगा, कोर्ट इस वाक्यकी ओर ध्यान दे।

प्रतिवादि के वकील की जिरह

''तत्त्वमसि'' श्रुति, त्वं -तुम (जीव) तत् - सन्नामक परमात्मा हो। यों जीवपरमात्माके ऐक्य का आकलन कराता है। यद्यपि 'स आत्मा तत्त्वमसि'' में ''स:'' - आत्मा = अतत् त्वं असि इस प्रकारके पदविभाग की शक्यता है। जिस पदविभाग के कारण, त्वं - तुम, अतत् = उस सन्नात्मक परमात्मासे भिन्न हो, अर्थ भी होता है। पर निम्नलिखित अनेकों कारणोंसे वह अर्थ अयुक्त है।

१)''आत्मा - अतत् पदविभाग क्लेशकारी है। अत: ''अतत्'' ऐसा पदविभाग करके जीवपरमात्मामें भेदका कथन करना असंगत होगा।

२)''येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' इस उपक्रम वाक्यमें जिस परमात्माके ज्ञानसे सकल जीवजडात्मक प्रपंचका ज्ञान होता है, क्या उस परमात्माको तुमने जान लिया है ? उक्त होनेके कारण, परमात्माके ज्ञानसे जीवका ज्ञान जडपदार्थका ज्ञान होता है। जीव परमात्मामें भेद होगा तो, जीव का ज्ञान परमात्माके ज्ञानसे किस तरह होगा ? ''अत: येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' उपक्रम वाक्यमें जीव परमात्माका ऐक्य उक्त होनेके कारण, उस वाक्यके अनुसार ''तत्त्वमसि'' वाक्यका अर्थ जीवपरमात्माके ऐक्यमें पर्यवसित होगा।

३)''एकमेवाद्वितीयं'' इस पूर्व वाक्यमें ब्रह्मको सजातीय भेद रहित भी कहा गया है। परमात्मासे भिन्न वस्तु ही नहीं। जीव परमात्माका ऐक्य उक्त होनेसे, जीवपरमात्मा का ऐक्य सिद्ध

१* सर्वेशत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणै: । सर्वोत्तमसत्यकाम सत्य संकल्प ईश्वर: - तत्पदार्थस्त्वमर्थस्तु किंचिज्ञो दु:ख जीवनासंसार्ययं तद्रतिक: तक्षतिक: जीव: प्राकृत लक्षण: (पृ. - ७२२)

कथमेकत्वमनयो: घटते विपरीतयो:। प्रत्यक्षेण विरोधोऽयमुभयो: रूप लभ्यते। विरूद्ध धर्मा क्रान्तत्वात् परस्पर विलक्षणौ जीवे शौ वन्हिन्तुहिनाविव शब्दार्थतोऽपि च। ऐक्यं तर्योलक्षितयो: न वाच्ययो: ॥ निगद्यतेऽन्योन्य विरूद्ध धर्मिणो:। खद्योतभान्वोरिव, राजमृत्ययो:। कूपांबुरातेयो: परमाणुमेर्वो: २४४/८ (विवेक चूडामणि)

होता है।

४) ''अनेन जीवेनात्मानं प्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ''परमात्मा जीवरूपसे प्रवेश कर चुका है। इससे भी जीवपरमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है।

५) ऐक्य प्रतिपादक अहं ब्रह्मास्मि वाक्योंसे भी।

६) ''तत्त्वमसि'' वाक्यका आवर्तन नौ बार होनेसे।

७) तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्यसे अथ संपत्स्य इति छां. (६-१४-२) अद्वैतज्ञानका फल उक्त है।

८) ''तध्दास्य विजज्ञौ'' उपसंहारमें भी जीवब्रह्मका ऐक्य ही उक्त है।

९) जीव ब्रह्मका ज्ञान प्रमाणान्तरोंसे नहीं होगा। यही अपूर्वता है, जीवब्रह्मके ऐक्य के कथनमें ही ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य है, यह निश्चय होता है। इसलिये ''अतत्'' पदविभाग करके, वह वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यका ही बोधक है, यही कहना पडेगा। ''अतत्'' ऐसा पदविभाग करके जीवब्रह्मके भेदका कथन न करें। ''तत्'' पदविभाग करनेपर त्वं = तुम, तत् = उसके वशमें हो, तत् = उस परमात्मासे पैदा हुये हो, उस परमात्माके आश्रित हो, आदि अर्थोंका कथन न करें।

जीवब्रह्मका भेद सबोंको प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध है, प्रमाणान्तरोंसे सिद्ध भेद का कथन करना वेदोंके लिये अनावश्यक है। प्रमाणान्तरोंसे सिद्ध भेदका कथन वेद करेगा तो, अज्ञातार्थबोधकत्वरूप प्रामाण्य ही नहीं रहेगा। यद्यपि ''तत्'' पदसे मुख्यवृत्तिसे ज्ञायमान सर्वेशत्वादिगुण युक्त ब्रह्मचित्में, ''त्वं'' पदसे बोध्य अल्पज्ञत्वादि गुण जीवचित्में ऐक्यकी घटना न होनेपर भी, तत् पद बोध्य सर्वेश्वरत्वादि विरूद्ध धर्मोंका त्याग करके, 'त्व' पदसे बोध्य अल्पज्ञत्वादि विरूद्ध धर्मोंका त्याग करके, केवल चित्में ऐक्यका बोधक होता है। इस विचारसे ही ''ऐक्यं तयोर्लक्षितयोर्न वाच्ययो: निगद्यते। लक्षणा ह्युपगन्तव्या ततो वाक्यार्थ सिद्धये / वाच्यार्थानुपपत्यैव लक्षणाभ्युपपद्यते वाक्यसे'', लक्षणावृत्तिसे बोधित जीव चैतन्यमें ब्रह्म चैतन्यमें ऐक्य ही प्रतिपादित होता है - ऐसा शंकराचार्य कहते है।

महाप्रभौ ! कोर्टके संबंद्ध न्यायाधीश के मनमें विरोधी विचारोंको पैदा करनेके लिये, श्रीमान दासने ''एकं तयो;.......न वाच्ययो: इतना ही कहकर बीचमें रहे ''लक्षितयो:'' भागको छोडकर कहा है। सर्व वेदान्त सिद्धान्तसार संग्रहमें स्थित ''लक्षणाभ्युपगन्तव्या'' भागको कहा नहीं। जीवब्रह्मका ऐक्य ज्ञान मोक्षका कारण है। भेद ज्ञान मोक्षप्रापक नहीं। इसलिये लोगोंके उद्धार के लिये मोक्षप्राप्ति हेतु जीवब्रह्मके ऐक्यका कथन ही किया है। अत भेद कथन के लिये कोई अवकाश ही नहीं। इसलिये तत्त्वमसि श्रुतिसे जीवब्रह्मका ऐक्य ही सिद्ध होता है। ऐसा कहना ही युक्ति युक्त है।

वादि वकीलो की फिर जिरह

वा. व. - (अदालतसे) प्रभो ! स आत्मा ''तत्त्वमसि'' वाक्य जीवपरमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करता है - जैसे त्वं = तुम, अतत् = उस परमात्मासे भिन्न हो। इस प्रकारका पदविभाग क्लिष्ट होगा ऐसा जो शर्माने कहा, वह युक्तिसंगत नहीं।

१६३- सिविल सूट (३)

''आत्मा अतत्'' दोनों पदोंको अक: सवर्णे दीर्घ: इस पाणिनी सूत्रके अनुसार सवर्णदीर्घसंधि होगी। उस संधिके अनुसार ''आत्मातत्'' होगा। इसमें पदविभाग करनेमें कोईभी कठिनाई नहीं।

''तत्त्वमसि'' वाक्यके उपक्रममें विद्यमान ''येनाश्रृतं श्रुतं भवति अमतं मतं (छां. ६-१-३) श्रुतिमें कहा गया है कि ब्रह्मज्ञानसे जीव जडात्मक प्रपंचका ज्ञान होता है। जीवपरमात्मामें ऐक्य होता तो परमात्माके ज्ञानसे जीवका ज्ञान होता है, यह कहना संगत नहीं होगा। इसलिये ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य जीवब्रह्म के ऐक्यमें है। श्रीमान शर्माकी दलील युक्तिसे दूर है। येनाश्रुतं श्रुतं भवति उपनिषत्के शांकरभाष्यमें, आनंदगिरी व्याख्यानमें स्पष्टरूपमें कहा गया है - समस्त वेदोंका अध्ययन करके, परमात्मासे भिन्न वेद प्रतिपाद्य जगतके ज्ञानको प्राप्त करके कृतार्थ बने श्वेतकेतुसे पिता उद्दालक प्रश्न करते हैं। क्या तुमने परमात्माको जान लिया है ? इस प्रकारका प्रश्न क्यों किया गया है। इस तरहके आक्षेपके आनेपर उत्तर दिया गया है। समस्त वेदाध्ययन करने के बावजूद परमात्मासे भिन्न समस्त प्रपंचका ज्ञान होनेपरभी, जब तक परमात्माका ज्ञान नहीं होता। तब तक परमात्मासे भिन्न जगतका ज्ञान, वेदाध्ययन व्यर्थ ही होता है। परमात्माके ज्ञान की प्राप्तिसे वेदाध्ययन, समस्त जगतका ज्ञान सार्थक होता है। यह इस प्रकरणसे ज्ञात होता है।

इसीलिये ''ये नाश्रुतं श्रुतं भवति'' श्रुति कहती है - परमात्माके ज्ञानको, श्रवण मननको प्राप्त करनेपर, जगतका श्रवण मनन सार्थक होता है। अन्यथा वह व्यर्थ है। इस तरह जगतके ज्ञानसे परमात्माका ज्ञान पैदा होता है। जगतका ज्ञान कारण है, परमात्माका ज्ञान कार्य है।

इससे यह विशद होता है कि परमात्माके ज्ञानसे जगतका ज्ञान नहीं होता, न परमात्मा और जीवजडात्मक प्रपंच एक ही है।

शांकरभाष्यमें, उसकी टीका आनंदगिरीमें ऐसा कहा गया है - 'अथवा हेत्वर्थे उत्तरार्धो विज्ञातमित्यादि 'अथवा' हेत्वर्थ: इतिलोके शुक् त्यादि तत्त्वं विजानतां यतोध्यस्तं रूपाद्यविज्ञातं भवति। अजानतामेव त्वध्यस्तं विज्ञातं भवति तथा ब्रह्मणि ज्ञेयत्वस्य अध्यस्तत्वेन तत्त्वतो न ज्ञातं भवतीत्यर्थ:' आनन्दगिरी व्याख्यानमें भी यही कहा गया है। जिनको शुक्त्यादिकोंका ज्ञान है, शुक्तिमें अध्यस्त रजत दीखता नहीं जिनको शुक्त्यादि तत्त्वोंका ज्ञान नहीं। उनको शुक्तिमें अध्यस्त रजत दिखता है। इसी तरह ब्रह्ममें कल्पित ज्ञेयत्वको देखते नहीं। इस तरह उक्त होनेसे, येनाश्रुतं श्रुतं भवति वाक्यसे ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्ममें अध्यस्त जगत दिखायी देता है ऐसा कहना विरूद्ध होगा।

इस कारणसे 'येनाश्रुतं' वाक्यसे परमात्मा जीवजडात्मक प्रपंचसे भिन्न ही कहा गया है। अत: तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य भेदमें ही है, अभेदमें नहीं।

''एकमेवाद्वितीयं'' (छां. ६-२-१) श्रुति भी इसी तरहका बोध कराती है - प्रलयकालमें परमात्मासे भिन्न सजातीय वस्तु नहीं थी, विजातीय वस्तु नहीं थी। परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका निषेध जीवजडात्मक प्रपंचसे परमात्माकी अभिन्नता का अवबोध करानेसे, इस उपक्रम वाक्यके अनुसार तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य जीवब्रह्मैक्यमें ऐसा जो प्रतिवादिका कहना है वह युक्त नहीं।

शंकराचार्य कहते हैं - स्वकार्यपतितमन्‍न्यन्नास्तीति एकमेवेत्युच्यते। प्रलयकालमें परमात्मासे

उत्पन्न कोई भी पदार्थ नहीं था। शंकराचार्यने यह नहीं कहा है कि एकमेवपदसे समस्त पदार्थोंका निषेध होता है। इस पदसे दूसरे पदार्थोंका अभाव सिद्ध नहीं होता।

''सद्व्यतिरेकेण सत: सहकारि कारणं प्राप्तं द्वितीय वस्त्वन्तरं निषिध्यते, अद्वितीयमितिं'' वाक्यसे अद्वितीय पदका अर्थ सहकारी द्वितीय वस्तुका अभाव ही कहा गया है। अत: अद्वितीय पदसे ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तुका अभाव सिद्ध नहीं होता।

शंकराचार्यने जो अर्थ किया उस अर्थको नजर अंदाज करनेपर, सजातीय, विजातीय वस्तु नहीं। ऐसे अद्वितीयं पदका अर्थ करनेपरभी 'नत्वत्समोत्यभ्यधिक: कुतोऽन्य: (गी. ११-४३) नत्वत्समोत्यभ्यधिक: दृश्यते (श्वे)' इत्यादि प्रमाणोंसे परमात्माके सदृश द्वितीय वस्तुका निषेध करनेसे ब्रह्मके सजातीय वस्तु नहीं ऐसा स्वीकार करनेपरभी एकं पदका, अद्वितीयं पदका अर्थ विजातीय वस्तु ही नहीं, इस तरह अद्वैतियोंका कथन युक्त नहीं। क्योंकि –

जीव ईशो विशुद्धा चित् भेदस्तस्या तयोर्द्वयो:।
अविद्या तच्चितोर्योग: षडस्माकमनादय:॥

अद्वैतियोंने छ पदार्थोंको अनादि माना है। तम आसीत् तमस्या गूळ्हमग्रे, श्रुति कहती है कि अविद्याथी ''प्रकृतिं पुरूषंचैव विध्यनादी उभावपि'' गीताके अनुसार प्रकृति अनादि है।

''मृत्युनैवेदमावृतमासीत्'' श्रुतिसे यह ज्ञात होता है कि मृत्युनामक परमात्मासे यह जगत आवृत्त था। शंकराचार्यने भी कहा है – आव्रियमाण वस्तु भी, अत: एकं पदका, अद्वितीयं पदका अर्थ अन्य वस्तुका अभाव ऐसा नहीं होता।

'एकेमुख्यान्य केवला:'
असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डव:
असिद्वितीय असिसहाय:

एकस्सुपर्ण: (असहाय) विद्यारण्यभाष्यम् अनेक ग्रंथोंसे यह ज्ञात होता है कि ''एकं'' पदके अन्य, मुख्य, असहाय इत्यादि अर्थ होते हैं।

''द्वितीयं'' पदके लिये सजातीय दूसरा पदार्थ, सहाय आदि बहुत अर्थ हैं। इसलिये इतर प्रमाणोंके अनुकूल, अविरूद्ध ''एकं'' पदके अन्य, मुख्य, असहाय इत्यादि अर्थ होते हैं।

''द्वितीयं'' पदके लिये सजातीय दूसरा पदार्थ, सहाय आदि बहुत अर्थ हैं। इसलिये इतर प्रमाणोंके अनुकूल, अविरूद्ध ''एकं'' पदके अन्य, जीवजडात्मक प्रपंचसे भिन्न, मुख्य, असहाय (अन्योंकी सहायता की अपेक्षा न करनेवाला) सजातीय वस्तुरहित ऐसे अर्थोंके होते हुए, प्रमाण विरूद्ध, अपने मतके भी अनुकूल न होनेवाले, विरूद्ध ''विजातीय वस्तु रहित'' यह अर्थ असंगत होगा। इसी तरह ''एकमेवाद्वितीयं'' वाक्य, शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार भी विजातीय वस्तुका निषेध, अर्थ न होनेसे ''तत्त्वमसि'' वाक्यका तात्पर्य अभेदमें नहीं।

''सेयं देवतैक्षत् – हन्ताहमिमास्त्रिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मानमनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' श्रुतिके अनुसार परमात्मा ही जीवरूपसे तेज, जलमें प्रविष्ट हुवा है, अत: समस्त पदार्थोंमें विद्यमान जीव परमात्मा है यह कहना उचित नहीं।

१६५ – सिविल सूट (३)

''करणमात्रा शंकानिवर्तये'' इत्यादि वाक्योंसे देवता शब्द चेतनवाचक कहा गया। त्रयोविंशति तत्त्वानां गणं युगपदाविशत् सोऽनुप्रविष्टो भगवान् चेष्टारूपेण तं गणं भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन्, आदि ग्रंथोंसे ज्ञात होता है कि पृथिव्यादि तत्त्वाभिमानी देवताओंमें प्रविष्ट होकर पदार्थोंका सृजन किया। य: पृथिव्यां तिष्ठन् इत्यादि वाक्योंमें पृथिव्यादि शब्द पृथिव्यादि देवतावाचक है। पृथिव्याद्यभिमानी देवतामें नारायण ही नियामक है, इसको शंकराचार्यने भी कहा है। ''जीव इति'' ''अनिरूद्धस्याख्या'' इस प्रमाणके अनुसार जीव शब्द अनिरूद्ध नामक परमात्मा वाचक है। ''जीवो जीवमजी जनत्'' अनिरूद्धरूप परमात्माने जीवोंका उत्पादन किया।

''योवासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मक:।

ज्ञेय: स एव राजेंद्र जीवस्संकर्षण: प्रभु:'' (म.भा.शां. ३३९-४७)

अहं हि जीवसंज्ञो वै (म. भा. शां. ३३९-४७)

वाक्योंमें जीव शब्दको परमात्मावाचक कहा है। देवता शब्दसे जीव शब्दसे युक्त ''इमातिस्त्रो देवता अनुप्रविश्य'' वाक्य परमात्मा तेजोजल पृथिव्याद्यभिमानी देवतासे भेद बोधक ही है। पृथिव्याद्यभिमानी पदार्थोंमें दीखनेवाले जीवको ही परमात्मा नहीं कहते, परमात्मा नहीं मानते।

''सेयं देवतैक्षत् हन्ताहमिमातिस्त्रा देवता'' वाक्य जीवपरमात्माके अभेदका बोध न कराके भेदका ही प्रतिपादन करता है। तैत्तरीय शांकर भाष्यादि ग्रंथोंमें कहा गया है – परमात्मा ही जीवरूपसे प्रविष्ट है, ऐसा कहना असंगत है। परमात्माके प्रवेशमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं इसका स्वीकार अद्वैतियोंने भी किया है। परमात्मा जीवरूपसे प्रविष्ट हुवा है। जीवपरमात्मा एक ही है, ऐसा यह वाक्य नहीं कहता। अत: 'स आत्मा तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य भेदमें ही, अभेदमें नहीं। ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेत्'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यमें कहा गया है कि परमात्माने अपनेको ब्रह्म समझा। तत्वमसि वाक्यके विषयमें उक्त अखण्डार्थ बोधकत्वादि दोषोंकी आपत्ति होनेसे ''अहं ब्रह्मास्मि'' आदि वाक्य स्वयं जब अभेदका बोध नहीं कराते, दूसरे वाक्यको अभेद कथनमें सहायता करता है, ऐसा कहना योग्य नहीं अभेदरूप अर्थप्रतिपादनमें असमर्थ तत्त्वमसि वाक्यको शैकडो बार कहनेसे भी अभेदकी सिद्धि नहींहोगी।

''तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽसंपत्स्ये'' वाक्यमें कहा गया है कि जबतक ब्रह्मज्ञानी प्रारब्ध कर्मसे मुक्ति नहीं पाता, तब तक मोक्षप्राप्तिमें विलंब होगा। प्रारब्धकर्मसे छुटकारा मिलनेपर ब्रह्म प्राप्त करता है। इस वाक्यमें जीव और ब्रह्ममें प्रापक प्राप्य भाव उक्त है। जो भेदबोधनमें प्रमाण है। यह फल बोधक वाक्यभी, तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य भेद कथनमें है, ऐसा कहता है। अभेद बोधनको कहता ही नहीं प्रत्युत भेदका बोधही कहता है।

''तध्दास्य विजज्ञौ'' वाक्य कहता है कि श्वेतकेतुने ब्रह्मको जान लिया। अर्थात् ज्ञातृज्ञेयभाव उक्त होनेके कारण, इस वाक्यमें अभेदबोधक पद न होनेसे, तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य अभेद बोधनमें नहीं, भेदकथनमें तात्पर्य है।

वाक्यका जो अर्थ कहा जाता है, वह अर्थ अपूर्व, अन्य प्रमाणोंके अविरूद्ध हो। जीवब्रह्मका ऐक्य प्रमाणान्तर विरूद्ध है, केवल अपूर्वताके कारण, अभेदरूप अर्थके कथनमें तात्पर्ययुक्त नहीं

होगा। अर्थ की अपूर्वतारूप हेतुसे अभेद्य प्रतिपाद्य है, ऐसा कहना हो तो, लक्षणावृत्तिसे ''तत्'' पदका अर्थ तुम शशविषाण हो कहना पडेगा।

वास्तवमें ''तत्त्वमसि'' वाक्यसे ''चित्''रूप अखण्डार्थ बोध उत्पन्न होता है। ऐसा प्रतिवादि कहते है। अद्वैतमतके अनुसार यह चित् स्वप्रकाश है, सबोंके लिये सिद्ध है। अत: यह अर्थ अपूर्व नहीं होगा। क्योंकि पूर्वमें सिद्ध है। इस वाक्यको सखण्डार्थ कहनेपर ''तत्-त्वं'' पदोंका अर्थ लक्षणावृत्तिसे ''चित्'' ऐसा अर्थ करनेसे चित् चित् ऐसा बोध होगा। घट घट, पट पट, सबोंको ज्ञात है। वैसे ही चित् चित् सबोंको ज्ञात होनेके कारण, अद्वैतियोंके इस अर्थमें अपूर्वता न होनेसे ''जीव ब्रह्मके अभेदके कहनेपर अपूर्वता प्राप्त होगी यह कहना योग्य नहीं।

भेदज्ञान के लिये प्रतियोगी ज्ञान आवश्यक है। प्रतियोगीज्ञानके अभावमें भेदज्ञान नहीं होगा, भेद प्रतियोगी ब्रह्म वेदातिरिक्त प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होगा। अत: त्वं = तुम, अतत् = उस परमात्मासे भिन्न हो, यह अर्थ जो द्वैतियोंसे उक्त है, वह प्रमाणान्तरोंसे ज्ञात नहीं होगा। इसलिये अपूर्वता भी प्राप्त होगी। इस हेतुसे तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य भेदमें है यह सिद्ध होगा।

महाप्रभो ! यह केस साधारण एक्स पार्टी केस नहीं। आप जानते ही हैं। इस केसके लिये प्रतिवादि, प्रतिवादि वकील है, शंकराचार्यके वाक्यमें एक, दो पद छोडकर कहेंगे तो प्रतिवादि या प्रतिवादि वकील कोर्टके सामने विज्ञापन करेंगे । इसे हम जानते हैं, ऐक्यं ''तयोर्लक्षितयोर्नवाच्ययो:'' श्लोकगत लक्षितयो पदको छोडकर, ऐक्यंतयोर्नवाप्ययो:'' कथनके लिये और लक्षणाह्युपगन्तव्या ततो वाक्यार्थ सिद्धये। वाच्यार्थानुपपत्यैव लक्षणाभ्युपगम्यते;'' इस श्लोकके कथन न करनेके कारण तत्, त्व पदार्थोंसे लक्षणावृत्तिसे बोधित चित्, चित् यह बोध अशक्य है, अयुक्त है। इसलिये गुणदोषौ बुधो गृण्हन् इंदुक्षेलाविवेश्वर: शिरसा श्लाधते पूर्वं परं कंठे नियच्छति।'' न्यायके अनुसार लक्षितयो: पद और लक्षणाम्युपगन्तव्या श्लोक विषदन्ति पूर्वमें उक्त प्रकारसे अत्यंत अयुक्त है, कंठमें रखे (बाहर न कहकर) न वाच्ययो: र्निगद्यतेऽन्योन्य विरूद्ध धर्मिणो सर्वेशत्व स्वतंत्रत्व सर्वज्ञत्वाभिर्गुणै, शंकराचार्य का वाक्य चन्द्रकी तरह स्वच्छ है। उसको शिरसा धारण कर कोर्टके सामने विज्ञापन किया है।

इस प्रकार 'स आत्मा तत्वमसि' वाक्य मुख्यवृत्तिसे जीवब्रह्मके ऐक्यको प्रतिपादन करनेमें समर्थ नहीं। लक्षणावृत्तिसे भी ऐक्यके बोधमें समर्थ नहीं। तत्त्वमसि वाक्यका तात्पर्य ऐक्य बोधनमें है, ऐसे ''येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' ''एकमेवाद्वितीयं'' इमातिस्रो देवता'' अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य'' आदि उपक्रम वाक्य समर्थन नहीं करते। अत: लक्षणावृत्तिसे अर्थका स्वीकार, मुख्यवृत्तिसे अर्थका स्वीकार इन दोनोंमें मुख्यवृत्तिसे अर्थका स्वीकार अच्छा है। इस तरह शंकराचार्यने (ब्र. ३-१-२२) (४-२-१) ब्रह्मसूत्र भाष्यमें कहा है। तत्त्वमसि भेदका ही बोध करता है, इसे अद्वैतियोंने भी माना है। ''सन्मूला: सौम्येमा: सर्वा: प्रजा:'' ''प्राणबन्धनं हि सौम्य मन:'' इत्यादि पूर्ववाक्योंका अनुसरण करनेपर भी, ''ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमान: इत्याद्यनेक वाक्योंका अनुसरण करनेपर भी जीव परमात्माके ऐक्यके कहनेपर पूर्ववाक्योंसे उत्तरवाक्योंसे विरोध होगा। अनेक श्रुतियोंका विरोध होगा। सर्वज्ञत्वासर्वज्ञत्वरूप विरूद्ध धर्म

होनेके कारण जीवपरमात्माका ऐक्य संभव नहीं होगा । ''अतत्'' ऐसा पदविभाग करके मुख्यवृत्तिसे, त्वं = तुम, अतत् = परमात्मासे भिन्न हो, तत् = पद विभाग करके ब्रह्मणे त्वामहसे, ओम्यित्यत्मानं युंजीत्'' इस श्रुतिके अनुसार ''तत्''रूप प्रातिपदसे प्राप्त चतुर्थी विभक्ति के लिये ''सुपांसुलुक'' सूत्रसे ''सु'' रूप आदेशको, ''सु'' के लोप करके, 'तस्मै = जगत्कारणी भूत परमात्माके लिये समर्पणीय हो, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' श्रुतिके अनुसार तत् तस्मात् - उस परमात्मासे पैदा हुये हो, स कारणं करणाधिपाधिप: - सर्वस्य वशीभूतपाल: इत्यादि श्रुतिके अनुसार षष्ठिस्वादेशोंसे तत् -तस्य, उसीके स्वामित्वसे तुम युक्त हो, (तत्स्वामिक) प्राणबंधनं सौम्यमन: -इत्यादि श्रुतिके अनुसार सप्तमीस्वादेशोंसे तत् -तस्मिन् उस परमात्माके आश्रित हो, आदि बहुतसे अर्थ किये जा सकते हैं। ये सभी अर्थ मुख्यवृत्तिसे कहे जा सकते हैं।

''तत्'' पदके लिये लक्षणावृत्तिके ग्रहण करनेपरभी पूर्वोक्त प्रमाणोंके अनुकूल, भेदप्रतिपादक नौ भेदद्दष्टान्तके अनुकूल, तत् = तज्जन्य, तदधीन, तदाश्रय इत्यादि अर्थ सुयोग्यरूपसे संभव होते हैं। वादिके एक्जिबिट १-१८ प्रतिवादिके एक्जिबिट १-२-३-४ जीवपरमात्मामें ऐक्यका बोध नहीं करते । १* कोर्ट इसपर ध्यान दे।

वादि एक्जिबिट २ प्रतिवादि एक्जिबिट ५
''अहं ब्रह्मास्मि'' श्रुति विचार

वा. व. - आचार्यजी ! 'तदात्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मिति तस्मातत्सर्वमभवत्'' यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत् स एव तदभवत्, तथर्षिणां तथा मनुष्याणां'' इस वाक्यका उदाहरण क्यों दिया ?

वा. वि. - जीव ब्रह्मके भेद सिद्ध करनेके लिये।

१* ''तस्यैव सर्वे रूपमभवन् (बृ. १-५-२१) वाक्यसे समस्त इन्द्रियाँ प्राणोंके रूप हैं। इन्द्रियोंसे प्राणसे अभेद दिखनेपर भी अवयविन: ''श्रेष्ठ:'' इत्यादि वाक्योंसे इन्द्रिय और प्राणोंमें भेद होते हुवे भी, इन्द्रियोंसे प्राणोंका अभेद कहेंगे तो बहुश्रुति विरोध प्राप्त होगा, पूर्वापर वाक्योंका विरोध होगा। विरूद्ध धर्मोके होते, इन्द्रियाँ सभी प्राणरूप हैं, प्रतीयमान वाक्यके लिये ''प्राणाद्यधीन'' यह अर्थ कहना पडेगा। प्राणके साथ अभेद न कहे। इस प्रकार शंकराचार्यने, भामतीकारने और अनेक अद्वैतियोंने २-४-१९ के सूत्रभाष्यके भामती ग्रंथमें कहा है। ''असन्नेवसभवति, असद् ब्रह्मेति वेदचेत्'' वाक्यमें, जो ब्रह्मको असत् मानता है, वह असत् होगा। ऐसा अर्थ प्रतीत होनेपर भी चेतनका असत् होना संभव नहीं'' अत: असत् असत्सम:'' असत् असत्के समान होता है, ऐसा शंकराचार्यने अर्थ किया है।

अहंब्रह्म अहं यज्ञ: अहं लोक: त्वं ब्रह्म, त्वं यज्ञ: त्वं लोक: इस अभेदार्थके रूपमें प्रतीयमान वाक्योंमें अभेद संभव न होनेसे, त्वं =त्वकर्तृका:, ब्रह्म ब्रह्मा = वेदाध्ययन त्वं = त्वकर्तृका: यज्ञा:, त्वं लोक: = त्वया जय्या: लोका:, त्वं पदके लिये त्वया अर्थ किया गया है। अहं पदके लिये मुझसे किये जानेवाले यज्ञ, मुझसे विजित होनेवाले, ऐसा अर्थ है। ब्रह्म पदका अर्थ वेदाध्ययन, शंकराचार्यने अर्थके अनुसार तत्वमसि वाक्यका भेदपर अर्थ करना चाहिये।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

प्र. व. - क्या आपका मन स्वस्थ है ? कहीं आपको पित्तविकार अथवा पागलपन सवार न हुवा हो ?

वा.वि. - मेरा मन वशमें है। आपने इस तरह क्यों पूछा ?

प्र. व. - ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य, अहं = मैं, ब्रह्मास्मि = ब्रह्म हूँ, स्पष्टरूपमें जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादक है। उस वाक्यसे आप जीवब्रह्म भेदको सिद्ध करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, ईसलिये प्रश्न किया।

वा. वि. - ''या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः (गी.२-६९) इस श्लोकमें उक्त तरहसे, वेदार्थ विचार न करनेवाले वैदिक लोगोंको वेदका अर्थ, रातके अंधकार की भाँति है। अंधकारमें जैसे पदार्थ द्दष्टिगोचर नहीं वैसे पदार्थभी ज्ञात नहीं होता। सर्वकालमें वेदार्थ विचार करनेवाले वैदिक लोगोंको वेदका अर्थ दिनके प्रकाशमें दिखायी देनेवाले पदार्थकी तरह ज्ञात होता। चूंकि हम वैदिक हैं। हमें ''अहं ब्रह्मास्मि''वाक्यका अर्थ भेदपरही ज्ञात है। आप लौकिक हैं, वेदके अर्थका विचार नहीं किया है। आपको वह अर्थ ज्ञात नहीं हुवा। इस स्थितिमें आपका प्रश्न जो हमारे मनके विषयमें पूछा गया वह उचित नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! क्रोध मत कीजिये। अहं ब्रह्मास्मि वाक्यका अर्थ मैं ब्रह्म हूँ, लौकिक कार्य करनेवाले हमारे लिये, छोटे बालकोंको भी अर्थ होता है। यही नहीं ! निरन्तर वेदका विचार करनेवाले शंकराचार्यादि महान् विद्वानोंको भी ऐसा ही अर्थ होता है। इसीलिये आपसे हमें प्रश्न करना पडा। आपका मन वशमें हो, वेदार्थ कहनेकी विचित्र शक्ति हो, इस वाक्यका अन्य अर्थ कहेंगे तो, हम अपने प्रश्नको वापस लेते हैं।

वा. व. - द्वैताद्वैत विचार चलते, हमारे आचार्य ऐसा कहते हैं। अपने अपने आचार्यको वादग्रस्तविषयमें अपने मत की सिद्धि के लिये गवाह के रूपमें न कहे। परस्पर लोगोंको अन्योंके आचार्यपर विश्वास नहीं हो सकता। अहं ब्रह्मास्मि वाक्य का विचार चले। भेद कथन करनेवाला भ्रान्त होता है, अभेद का प्रतिपादन करनेवाला भ्रान्त होता है, यह विषय स्पष्ट होगा।

प्र. व. - आचार्यजी ! बातें बस है। यह वाक्य जीव ब्रह्मके भेदको किस तरह प्रतिपादन करता है, स्पष्ट कीजिये।

वा. वि. - 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्, तदात्मानमेवावेत्' अहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत्। तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत् स एव तदभवत् तथर्षिणां तथा मनुष्याणां'.' ब्रह्मवा - इस सृष्टिके पहले ब्रह्म ही था। उस ब्रह्माने अपनेको ब्रह्म समझा। ब्रह्मज्ञान होनेसे तत् ब्रह्म पूर्ण हुवा। देवतामें जिन देवताओंने ब्रह्मको समझा वे सभी पूर्ण हुये। जिन ऋषियोंने ब्रह्मको समझ लिया वे भी पूर्ण हुये। मनुष्योंमें जिन्होंने उस ब्रह्म को समझा वे भी पूर्ण हुये। यह वाक्य ब्रह्म ''देवानां, ऋषिणां, मनुष्याणां' प्रत्येक शब्दोसे ब्रह्म देवता मनुष्य ऋषि और ब्रह्म, इनमें भेद सिद्ध होता है। देवानां, मनुष्याणां बहुवचन के कारण परस्पर भेदभी सिद्ध होता है। इस प्रकार इस वाक्यसे अनेक प्रकार के भेद सिद्ध

होते हैं।

कोर्ट - आचार्यजी ! किसी तरह जबरन्, इस वाक्यको भेद ज्ञापकके रूपमें करते हैं वैष्णवोंका (द्वैतियोंका) स्वभाव ही ऐसा होता है, ऐसा हमने सुना है। आज यह स्वभाव प्रत्यक्षसिद्ध हुवा है। अद्वैति जिस वाक्यको अभेद प्रतिपादक मानते हैं, आप उसी वाक्यको द्वैतपर कहते हैं, यह किस तरह युक्ति संगत होगा ?

वा. वि. - धर्मराज प्रभु ! आप उस तरह न समझें। अद्वैतमतके प्रवर्तक शंकराचार्यने ही स्पष्ट रूपमें कहा है - यह वाक्य देवगणको ब्रह्मसे, ऋषिगणको ब्रह्मसे भेद बोधक है। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें कहा है। इस तरह हमारा बलात्कार कैसे होगा ?

कोर्ट - आप कहते हैं कि यह वाक्य भेदपर है। यों शंकराचार्यने कहा है। इसलिये मि. हरिहर शर्माके अनुसार उनके कथन के अनुसार, आपका मन वशमें नहीं। शंकराचार्य ऐसा क्यों कहेंगे ? अगर उन्होंने कहा हो तो उनके वाक्यको बताइये।

वा. वि. - महाप्रभौ ! प्रतिवादि वकीलके कथनके अनुसार प्रभु ! आप आज्ञा न दें। अभेद को कहनेवाले भ्रान्त होंगे भेद कहनेवाले, यह विषय अगले विचारके वक्त कोर्ट समझ पायेगा। इस भाष्यमें, आनंदगिरीके व्याख्यानमें कहा है।

कोर्ट - मिस्टर शर्मा ! इस पुस्तकको लेकर वादीसे पूछताछ करें।

प्र. व. - आचार्यजी ! इस पुस्तकमें भेदबोधक वाक्यको बताइये; भेदज्ञापकके रूपमें लिखे शंकराचार्य के वाक्यको बताकर तात्पर्य स्पष्ट करें।

वा. वि. - ''देवानामित्यादि लोक दृष्टयपेक्षया'' यह वाक्य इस वाक्यपर लिखते समय 'अथ यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयात् अथऋषिणां, अथ मनुष्याणां ''यह वाक्य ब्रह्मसे देवता, ऋषि, मनुष्योंमें भेदबोधक है यही तात्पर्य है।

प्र. व. - आचार्यजी ! शंकराचार्य अपने पूर्वपक्षमें गृही यो देवानां प्रत्यबुध्यत्'' वाक्य भेद निरूपक है क्या ऐसा कहना योग्य होगा ?

वा. वि. - शास्त्रीजी ! उनके सिद्धान्त को बताईये।

प्र. गं. - ये ही वाक्य १*

वा. वि. - इनके अर्थ कहिये।

प्र. गं. - 'यो यो देवानां' वाक्यसे परब्रह्म, देवता, ऋषि, मनुष्य इन सबोंमें भेद दृष्ट होनेपरभी, यह भेद अज्ञानकल्पित है। सत्य नहीं। वेदोक्त इस भेदको सत्य क्यों न कहे ? ऐसी आशंका लेकर,

---

१* देवानामत्यादि लोकदृष्ट्यपेक्षया न ब्रह्मत्व बुद्धयाउच्यते। पुरः पुरूषः आविशत् इति सर्वत्र ब्रह्मैवानुप्रविष्टः इत्यवोचाम। शरीराद्युपाधिजनित लोक दृष्ट्यपेक्षया देवानामित्याद्युच्यते। परमार्थस्तु तत्र तत्र ब्रह्मैवाग्र आसीत् (बृ.शां. १-४-१०)

ब्रह्मैव अविद्यया संसरति मुच्यतेच विद्यया इत्युक्तत्वात् देवादीनां विद्याविद्यानांबंधमोक्षोक्तिः तद्विध्दत्वातित्याशंक्याह - देवानामित्यादिति। तत्त्वदृष्टयैव भेदवचने का हानिरित्याशंक्याह -

अविद्यकं भेदमनूद्य तत्तदात्मना स्थितं ब्रह्म। चेतनस्यैव विद्याविद्याभ्या बन्धमोक्षमार्ग पूर्वापर विरोधोऽस्तु फलितमाह - इति अविद्यादृष्टिमनूद्य तत्त्वदृष्टिमन्वाचष्टे परमार्थस्तिति।

उत्तर देते हैं। इस वाक्योक्त भेदको सत्य समझेंगे तो ''पुरू: पुरूष: आविशत्'' (बृ. २-५-१८) वाक्यमें परमात्मा ही सर्वत्र प्रविष्ट हुवा है। ब्रह्म ही जीव है कहनेवाले वाक्यका विरोध प्राप्त होगा। अत: इस वाक्यमें उक्त भेदको असत्य समझे।

वा. वि. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने सिद्धान्त करते वक्त अहं ब्रह्मास्मि...... तथा मनुष्याणां, वाक्य, जीवमें ब्रह्मके भेदका निरूपण करता है। पर यह भेद ''पुर: पुरूष आविशत्'' वाक्यके विरूद्ध होनेके कारण, उस भेदका स्वीकार न करे। भेदही प्रतिपादित नहीं ऐसा तो नहीं कहा है। अत: इस वाक्यसे भेद निरूपित होता है। इसमें कोई विवाद न हो।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यसे भेद कहा गया है, भेद विषयमें प्रमाण होता है ऐसा जो आचार्यका कहना है, वह युक्त या अयुक्त है ?

प्र. गं. - ''यजमान: प्रस्तर:'' वाक्य यजमान प्रस्तरमें (मूट्ठीभर दर्भ) ऐक्यका निरूपण करता है, क्या इसलिये उस अभेदका स्वीकार करेंगे ? प्रमाणविरूद्ध होनेसे जैसे वह स्वीकार्य नहीं होगा, उसी तरह अभेदबोधक प्रमाणोंके विरूद्ध होनेके कारण ''यो यो देवानी'' भेदके उक्त होनेपर अंगीकार्य नहीं हो सकता।

वा. व. - शास्त्रीजी ! भेद सत्य है या मिथ्या। विषय भिन्न है यह वाक्य भेदबोधक है या नहीं ?

प्र. गं. - भेद बोधक है।

वा. व. - यह वाक्य भेदप्रतिपादक है तो, अभेदके विषयमें इसको क्यों प्रमाणित किया ?

प्र. गं. - ''यो यो देवानां'' देवता, ऋषि मनुष्योमें ब्रह्मके भेद कहनेपर, इस वाक्यके पूर्वमें स्थित ''तदात्मानमवेत्'' अहं ब्रह्मास्मिति'' वाक्य जीवब्रह्ममें ऐक्य प्रतिपादन करता है, इसलिये उसका उद्धरण प्रमाण के रूपमें किया।

वा. व. - ''तदात्मानमवेत् अहं ब्रह्मास्मी'' वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - तत् = वह ब्रह्म, अपने आपको ''अहं ब्रह्मास्मि'' - मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा समझ गया।

वा. व. - इस प्रकारका अर्थ किसने किया है ?

प्र. गं. - तत् ब्रह्म आत्मानमेव नित्यद्दग्रूपं अध्यारोपित अनित्य द्दष्टयादिवर्जितमेवावेत् विदितवती...... तत्कथमवेदित्याह अहं....ब्रह्मास्मि भवामीति इस वाक्यसे ज्ञात होता है कि ब्रह्मने अपने आपको ब्रह्म समझा। यह अर्थ शंकराचार्य का है।

वा. व. - ''मैं न्यायाधीश हूँ'' इस तरह न्यायाधीशके समझने मात्रसे क्या आप सभी न्यायाधीश होंगे ?

प्र. गं. - न्यायाधीश अपनेको न्यायाधीश समझनेपर मैं कैसा न्यायाधीश बन सकता हूँ ? वे ही न्यायाधीश होंगे।

वा. व. - ब्रह्म अपने आपको ब्रह्म समझेगा तो जीव किस तरह ब्रह्म बन सकता है।

प्र. गं. - जीव अपनेको ब्रह्म समझेगा तो वह जीव ब्रह्म नहीं होगा।

वा. व. - 'तदात्मनमेवावेत्'' अहं ब्रह्मास्मि वाक्य तो ब्रह्म और जीवमें ऐक्यका प्रतिपादन नहीं कर सकता तो उस वाक्यको ऐक्य पक्षमें क्यों प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया।

१७१- सिविल सूट (३)

प्र. गं. - ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका पूर्व वाक्य जीव ब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करता है।

वा. व. - वह पूर्ववाक्य कौनसा है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्'' वाक्य

वा. व. - ब्रह्म वा = ब्रह्म ही, इदमग्रे = सृष्टिके पहले आसीत् = था। यही अर्थ इस वाक्यसे होता है। इस वाक्यमें जीव और ब्रह्मके ऐक्यज्ञापक कोई पद नहीं।

प्र. गं. - ''इदमग्रे'' वाक्यमें इदं अग्रे ऐसे दो पद है। ''इदं'' इस प्रथमाविभक्त्यन्त पदके लिये षष्टि विभक्तिका अर्थ लेना होगा, जिसका अर्थ होगा जगतका, यों अर्थ होगा ? पर षष्ठ्यन्त पदका अर्थ किस तरह होगा ?

वा. व. - आचार्यजी ! इनके प्रश्नका उत्तर दीजिये।

वा. वि. - ''इदमग्रे'' एकही पदको ग्रहण करनेपर, उस पदका अर्थ ज्ञेय होगा, इस जगतके निर्माण के पहले, ''इदं'' ऐसा भिन्न पद करनेपर भी ''सुपां सुलुक'' सूत्रसे षष्ठि विभक्ति के लिये (सु) आदेश होता है। इदं षष्ठि विभक्त्यंत पद होगा तो जगतके ऐसा अर्थ होता है। इसलिये ''इदं'' पदका ब्रह्मके साथ करें । ''इदं तदेत्तत्'' प्रेय: पुत्रात् प्रेयो, वित्तात प्रेय; अन्यस्मात्सर्वस्मादन्तर तरं यदयमात्मा अन्यस्यात सर्वस्यात्' सबोंके इस पदके लिये अन्वय अतिशय प्रिय सबोंका प्रिय रहा ब्रह्म। किमु तदह्यावेत् = वाक्यसे प्रसक्त ब्रह्म सृष्टिके पहले था। इस प्रकारके अर्थ के लिये कोई अनुपपत्ति नहीं।

कोर्ट - आचार्यजी - पूर्वापर संबंध रहित क्या कोई अर्थ कहा जा सकता है ?

वा. वि. - महाप्रभो ! यह अर्थ पूर्वापर वाक्योंसे संबंद्ध है।

कोर्ट - ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् वाक्यके पूर्ववाक्यसे संबंध दिखाकर अर्थ कहिये।

वा.वि. -तदाहुर्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते। किमु तद्ब्रआवेद्यस्मात्सर्वमभवत् (बृ. १-४-९), इस पूर्व वाक्यमें ब्रह्मज्ञानसे पूर्ण होता। मनुष्य जिस विषयको जानता है, उसी विषयका विचार करता रहता है। ब्रह्मज्ञान पूर्णत्व प्राप्तिका कारण है। जितने भी लोग पूर्ण हो चूके हैं, उनमें ब्रह्मज्ञानी होना ही चाहिये, कोई ब्रह्मज्ञान के विना पूर्ण होगा तो, उसके पूर्णत्वके लिये ब्रह्म कारण नहीं बनेगा। ब्रह्म तो पूर्ण ही है। ''किमुतत्ब्रह्मावेत्'' क्या उस ब्रह्मने ब्रह्मको जाना है ? वह ब्रह्म ज्ञानके विना क्यों पूर्ण नहीं होंगे ? इस विचारसे प्रश्न किया गया है। उस प्रश्नके उत्तरके रूपमें प्रवृत्त है यह श्रुति - ''ब्रह्म वा हदमग्र आसीत्'' वाक्यके लिये ''इदं ब्रह्म'' पूर्ववाक्यमें जिसके विषयमें प्रश्न किया गया है, वह ब्रह्म ही पूर्वमें था। वह ब्रह्म ब्रह्मको जानकर ही पूर्ण हुवा है। पूर्णत्व के लिये कारण ब्रह्मज्ञान ही कारण है। इसलिये सभी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें।

प्र. वा. - शास्त्रीजी ! ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्'' वाक्य अर्थ, जैसे आचार्यने कहा, वही अर्थ होगा तो, यह वाक्य जीव और ब्रह्मके ऐक्यका निरूपण किस तरह होगा ?

प्र. गं. - इस वाक्यका अर्थ जैसे आचार्यजीने कहा है, वह सही नहीं। इस शरीरमें वही ब्रह्म है, वही ब्रह्म सृष्टि के पहले था। ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्तिके पहले ही वह ब्रह्म था। वही सर्व था पूर्ण था। पर अज्ञान के कारण वह समझा था। 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' मैं पूर्ण नहीं हूँ। उसमें जो भ्रम उत्पन्न हुवा, उसीसे

वह अपनेको सुखी, दु:खी हूँ ऐसा भ्रान्त हुवा। सर्वरूप ही है। इस परिस्थितिमें दयालु आचार्यजीने उससे कहा – तुम संसारी नहीं हो। तुम ब्रह्म हो, उस आचार्यजीके उपदेशसे वह अपनेको ब्रह्म समझने लगा। इस वाक्यका अर्थ यही है। अत: इस वाक्यसे जीव ब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होता है।

कोर्ट – शास्त्रीजी ! 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'तदात्मानमवेत्'' वाक्यके कितने अर्थ कहे गये ? आपसे उक्त अर्थका बोध करनेवाला क्या कोई पद इस वाक्यमें है ?

प्र. गं. – इस अर्थका प्रतिपादन करनेवाला कोई भी पद इस वाक्यमें न होनेपर भी, इस श्रुतिका व्याख्यान करते समय शंकराचार्यने ऐसा अर्थ किया है, हम उसी अर्थका अनुसरण करते हैं।

कोर्ट – मिस्टर माधवदास ! इस विषयकी पूछताछ कीजिये।

वा. व. – ''जीव ही ब्रह्म है'' यह अर्थ इस वाक्यके किस पदसे व्यक्त होता है ?

प्र. गं. – ''इदं'', ''ब्रह्म'' दो पद है। इदं = यह जीव ब्रह्म वा आसीत् = ब्रह्म था। इससे जीव ब्रह्मके ऐक्य की सिद्धि होती हैं।

वा. व. – ''इदं'' पदका जीव इस अर्थके लिये आधार क्या है ?

प्र. गं. – ''इदं'' पद बुद्धिस्थ (पूर्वमें ज्ञात वस्तुका ही ज्ञापन करता है) होनेसे जीव बोधक ही होता है।

वा. व. – पूर्ववाक्यमें ब्रह्म बुद्धिस्थ होनेके कारण ''इदं ब्रह्म'' पदोंका अर्थ यह ब्रह्म ऐसा अर्थ किया जा सकता है। इस अर्थका त्याग करके ''जीव'' अर्थ लेनेमें क्या आधार है ?

प्र. गं. – ''किमु तदब्रह्मावेत्'' इस वाक्यमें दो प्रश्न पूछे गये हैं। पहला प्रश्न वह ब्रह्म कौन ? उस ब्रह्मने किसको जाना ? वह ब्रह्म कौन है ? उत्तरके रूपमें कहा गया है। ब्रह्मवा वह ब्रह्म कौन है ? उत्तरके रूपमें कहा गया है। ब्रह्मवा इदमग्र आसीत्। यह प्रश्नरूप वाक्य ''इदं'' पदके लिये शरीर प्रविष्ट जीव है यों अर्थ करनेके लिये आधार है।

वा. व. – ''किमुतद् ब्रह्म अवेत्'' वाक्यमें कितने पद हैं।

प्र. गं. – किं, उ, तत् ब्रह्म अवेत् पांच पद हैं।

वा. व. – इन पांच पदोंके अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – तत् ब्रह्म – उसने ब्रह्मने किस को जान लिया ? यह अर्थ होता है।

वा. व. – इस वाक्यसे एक प्रश्न उत्पन्न होता है या दो ?

प्र. गं. – एक ही प्रश्न उत्पन्न होता है।

वा. व. – आपने दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं, ऐसा क्यों कहा ?

प्र. गं. – किं उ तत् ब्रह्म इन चारों पदोंका आवर्तन करके ''किमु तद्ब्रह्म'' किमुतद्ब्रह्मावेत्''इस तरह दो प्रश्नोसे पहले वाक्यसे ''ब्रह्म कौन है ? दूसरे वाक्यसे ब्रह्मने किसको जान लिया ? इस तरह दो प्रश्न कहे गये।

वा. व. – इस प्रकार आवर्तन करके, दो प्रश्नोका उत्पादन करके, दो प्रश्नोंके उत्पादन के लिये आधार क्या है ?

प्र. गं. – हमारे शंकराचार्यने इस प्रकार आवर्तन करके दो प्रश्नोंको बनाया है।

१७३ - सिविल सूट (३)

वा. व. - वादग्रस्त विषयमें पुन: पुन: आचार्यजीके नाम न कहे ? अन्य कोई आधार होगा तो कहे।

प्र. गं. - अन्य आधार नहीं।

वा. व. - दो प्रश्नोंको बनाकर भी, वह ब्रह्म कौन है ? इस प्रश्नका उत्तर ''ब्रह्म'' ''इदं'' वह ब्रह्म तदेतत्प्रेय: पुत्रात्.... सर्वस्मादन्तर तर: यदयमात्मा, वाक्यमें उक्त, सबोंसे धारा, सबोंका अन्तर्यामी, यह उत्तर आसानीसे दिया जा सकता था, ''इदं'' पदसे जीवका ग्रहण करके उत्तर दिया गया है, यह पहले प्रश्नका उत्तर किस तरह होगा। आधार नहीं होगा।

प्र .गं. - (उत्तर नहीं)

वा. व. - आपके (अद्वैतियोंके कथनके अनुसार) इसको वाक्यको जीववाक्य कहनेपरभी तत्त्वमसि वाक्य के जैसे, अहं ब्रह्मास्मि अखण्डार्थ बोधक होगा कि नहीं ''चित्'' मात्र ज्ञानका उत्पादक होगा या नहीं ?

प्र. गं. - यही होगा, अर्थात् अखण्डार्थ बोधक नहीं होगा।

वा. व. - पर जीव और ब्रह्मके ऐक्यके विषयमें यह वाक्य किस तरह प्रमाण होगा ?

प्र. गं. - यह वाक्य परम तात्पर्यसे ऐक्य बोधक न होनेपर भी अवान्तर तात्पर्यसे ऐक्य बोधक होता है।

वा. व. - ''अहं'' पदसे बोध्य अन्त:करण विशिष्ट जीव, मुख्यवृत्तिसे ब्रह्मपद बोध्य पूर्णत्वविशिष्ट ब्रह्म से ऐक्य संभवेगा नहीं, तो अवान्तर तात्पर्यसे ऐक्य किस तरह निरूपित होगा ?

प्र. गं. - ''अहं ब्रह्म'' पदोंसे मुख्यवृत्तिसे बोध्य विशिष्ट जीवब्रह्ममें ऐक्य घटित न होनेपर भी लक्षणावृत्तिसे बोध्य शुद्ध चितोंमें ऐक्य संपन्न होता है, यह कहना संगत होगा।

वा. व. - अहं ब्रह्मास्मि वाक्य, अहं पदसे मुख्यवृत्तिसे बोधित जीवसे ''ब्रह्म'' पदसे मुख्यवृत्तिसे बोधित ब्रह्मके साथ ऐक्य बोधक नहीं होगा। मुख्यवृत्तिके त्याग करनेपर

१) अहं -मैं ब्रह्म = ब्रह्माधीन हूँ, यह अर्थ क्यों नहीं किया जा सकता।

२) ब्रह्ममें, जीवमें, सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्वरूप विरूद्ध धर्म होनेसे किस तरह ऐक्य होगा।

३) ब्रह्म पदसे भी, ''अहं'' पदसे ''चित्'' की उपस्थिति किसतरह होगी ?

४) ''चित्'' चित् है या नहीं यह संशय नहीं होगा। चित् ही चित् है ऐसे समझनेकी आवश्यकता नहीं होगी न ? इत्यादि आक्षेपोंका समाधान क्या है ?

कोर्ट - ये सभी विचार 'तत्वमसि' वाक्यकी चर्चा करते आ चुके हैं। पुन: इनपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं।

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभु ! उसी तरह 'तत्वमसि' वाक्य जीव ब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करता है। इस कथनपर कौनसे दोष आ सकते हैं, यह भी पूर्वमें कहा गया है। ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यपर उन्हीं दोषोंकी समापत्ति होती है। कोर्ट इस कथनपर ध्यान दे।

कोर्ट - ठीक है। वैसे ही हो।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''अथात: संप्रत्ति:'' वेदवाक्य किस उपनिषतमें है ?

प्र. गं. – ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य चतुर्थ ब्राह्मणमें है। आपसे पूछा गया वाक्य पाँचवे ब्राह्मणके सत्रहवे मंत्रमें है।

वा. व. – १* इस वेदवाक्य के अर्थ कहिये !

प्र. गं. – जिस समय मरणका संकेत मिला, क्योंकि अनिष्ट पदार्थके दर्शन हुये, व्याधियाँ सताने लगीं, उस समय पिताजीने पुत्रसे कहा – तुम ब्रह्म हो, तुम यज्ञ हो, तुम लोक हो इस कथनके उत्तरमें पुत्रने अपनी सम्मति जताई। मैं ब्रह्म हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं लोक हूँ।

वा. व. – इस वाक्यसे पुत्र और ब्रह्ममें ऐक्य, पुत्र और यज्ञमें, पुत्रमें और लोकमें ऐक्य दीखता है न ?

प्र. गं. – आपाततः पुत्र और ब्रह्ममें यज्ञ और लोकमें ऐक्यका आभास मिलता है, अतः शंकराचार्यने ''यद्वैकिंचानुक्तं'' उत्तर वाक्यके अनुसार, वेदबोधक ''ब्रह्म'' पदका वेदाध्ययन त्वं पदका = त्वत्कर्तकं, तुमसे किया गया वेदाध्ययन अर्थ करके तुमसे अनुष्ठित होनेवाला यज्ञ, तुमसे जिन लोकोंपर विजय प्राप्त होगी वे लोक, ऐसा अर्थ आचार्य जीने किया है। अतः ''त्वं'' ''ब्रह्म'' पदोंसे ऐक्य आभासित होनेपर भी लक्षणावृत्तिसे ब्रह्म पदसे बोध्य पदार्थोंसे भेद ही सिद्ध होता है। ''ब्रह्म'' पद बोध्य वस्तुके साथ त्वं पदसे बोध्य वस्तुवोंका ऐक्य का प्रतिपादन नहीं कराता।

वा. व. – अहं ब्रह्म उत्तर वाक्योंका अर्थ जिस तरह शंकराचार्यने किया है ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका भी इसी तरह अर्थ किया जाता है तो जैसे – अहं ब्रह्मा =मैं ब्रह्मके वशमें हूँ, ब्रह्मसे पैदा हुवा हूँ, ब्रह्माश्रित हूँ, इस तरह अर्थ करनेपर क्या ठीक होगा ?

वादि वकील का आर्ग्युमेंट

वा. व. – (To the court) धर्मराजप्रभु ! तदाहुर्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यतो मनुष्या मन्यन्ते किमुतद्ब्रह्मावेत्, यस्मातत्सर्वमभवत् इति । ब्रह्मवा इदमग्र आसीत् तदातमानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मिति तस्मत्तत्सर्वमभवत् (बृ. १-४-९-१०) इस वाक्यमें स्थित ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य परमात्माका वाक्य है। जिस तरह राजा कहे ''मैं राजा हूँ'', राजाके कथनसे प्रजा राजा नहीं बन सकती, उसी तरहपरमात्मा कहता है ''मैं ब्रह्म हूँ'' अपनेको ब्रह्मा समझा है, इस तरह उक्त होनेके कारण जीव ब्रह्म है यह सिद्ध नहीं होगा।

और ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यसे प्रभावित होकर जीव भी कहने लगा ''मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा अर्थ करनेपर, समस्त जीव अपनेको ब्रह्म समझकर पूर्णत्व प्राप्त कर चुके, देवताने जान लिया, ऋषि भी जान चुके, मनुष्यभी समझ गये। ये सभी वाक्य व्यर्थ होंगे। इसलिये ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका अर्थ ''मैं ब्रह्म हूँ'' करना युक्त नहीं होगा।

१* अथातस्संप्रति प्रेष्यन्मन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म। त्वं यज्ञः त्वं लोकः इति स पुत्रः प्रत्याह। अहं ब्रह्म, अहं यज्ञः अहं लोकः इति यद्वै किंचानूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्यकता, एवैकेच यज्ञास्तेषां सर्वेषां यज्ञ इत्येकता एवकेच लोकास्तेषां सर्वेषां लोकः इत्येकता। (बृ. १-५-१७)

१७५- सिविल सूट (३)

''तत्किमवेत् यस्मातत्तसर्वमभवत्'' पूर्व वाक्यमें ब्रह्म पूर्ण है। क्या यह ब्रह्म ज्ञानी है ? इस प्रश्नके उत्तरमें ''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्''....अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य प्रवृत्त हुवा है। इस वाक्यमें जीव का प्रसंग ही नहीं होनेसे ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य जीवका वाक्य है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। वह ब्रह्मका वाक्य है। इस वाक्यसे देवता, ऋषि, मनुष्य, आदिमें ब्रह्मका भेद व्यक्त हुवा है। देवानां, ऋषीणां, मनुष्याणां इनके बहुवचनांत पदोंसे, देवतामें परस्पर भेद, ऋषियोंमें मनुष्योंमें परस्पर भेदका निरूपण होता है। इस विषयपर कोर्ट गौर करे।

प्रतिवादि वकीलोंका पुन: आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (To the court) धर्मराज प्रभो ! तदात्मानमेवावेत् ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका अर्थ है। तत् = जीव आत्मानमेवातत् अपनेको ''अहं ब्रह्मास्मि'' - मैं ब्रह्म हूँ समझा। इस तरह उक्त होनेके कारण जीवका ब्रह्मत्व सिद्ध होता है।

''तदाहुर्ब्रह्मविद्यया'' वाक्यमें ब्रह्म विद्यासे पूर्णत्व प्राप्त होता है ऐसा जो समझते हैं, उनके विषयमें विचार करते हैं - वह ब्रह्म कौन है ? ब्रह्मज्ञान ही पूर्णत्वका कारण होगा तो, ब्रह्ममें सर्वभाव है। (पूर्णत्व है) वह किसको जानकर पूर्ण हुवा ? (वह ब्रह्म किसीको जाने बगैर पूर्णत्व प्राप्त कर चुका हो तो हम भी किसीको जाने बगैर पूर्णत्व क्यों न प्राप्त करें) इस तरहके प्रश्न पूछे जानेपर, वह ब्रह्म कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं - 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' इदं सर्व शरीरमें प्रविष्ट है ऐसा जिसका अनुभव होता है। वह (जीव) ब्रह्मज्ञान होनेके पहले वह ब्रह्म ही था, सर्वरूप था। पर अज्ञानवश वह समझता है कि मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ। मैं सुखी, दुःखी हूँ, संसारी, पर संसार विलक्षण ब्रह्मरूप ही है। सर्वरूप ही है। ब्रह्म कौन है ? इसका उत्तर देकर, वह ब्रह्म किसको जानकर पूर्ण हुवा ? दूसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं - ''तदात्मानमेवेत्'' दयाळु आचार्यजी के उपदेशसे उसने (जीवने) स्वयं अपनेको ब्रह्म जान लिया। उस ज्ञानसे सर्वे अभवत् सर्वभाव प्राप्त कर चुका। यद्यपि पूर्वमें सर्वभाव था ही लेकिन 'मैं सर्वरूप नहीं' यह भ्रम उत्पन्न हुवा था। आचार्यजी के उपदेशसे उस भ्रमका निवारण हुवा। (अस्य स्वरूपकी भ्रान्ति नष्ट हुई है) इस वाक्यका यह अर्थ है ''अहं'' पद बोध्य जीवके साथ, ब्रह्मादि बोध्य परमात्माके साथ अभेदको ''अस्मि शब्दसे कहा गया है। अत इस वाक्यसे जीवब्रह्म का ऐक्य सिद्ध होता है।

''यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत् स एव तदभवत्, अथर्षिणां, अथ मनुष्याणां वाक्यमें देवता, ऋषि, मनुष्य, भिन्न भिन्न कहनेके कारण भेदका बोध होता है; ऐसा शंकराचार्यने कहा है। इस वाक्यसे जीवब्रह्म भेद सिद्ध होता है। ऐसा जो वादि वकीलोंका कहना है, वह सही नहीं क्योंकि यद्यपि शंकराचार्यने इस वाक्यको भेदबोधक माना है, वह उनका सिद्धान्त नहीं। यह पूर्वपक्षका वाक्य है। सिद्धान्त वाक्यमें ''पुर: पुरूष अविशत्'' है, ब्रह्मसबोंमें प्रवेश कर चुका, इससे जीव ब्रह्मका अभेद सिद्ध होता है। पूर्वोक्त वाक्यसे भेदके सिद्ध होनेपर भी उस भेदको मिथ्या मान लेना होगा। इस तरह स्पष्टरूपमें शंकराचार्यने कहा है। पूर्व पक्षके वाक्यको सिद्धान्त के वाक्यके रूपमें कहना लोगोंको

गुमराह करना है।

''तत् आत्मानमेवावेत्'' अहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभत्, परमात्मा अपने आपको ब्रह्म मान चुका पूर्ण हुवा, यो कहना सही नहीं, क्योंकि ब्रह्ममें पूर्णत्व सदा सर्वकालमें है, अत: ज्ञानसे पूर्णत्व प्राप्त हुवा यह कहना युक्त नहीं।

'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' वाक्यमें उक्त है। जिसका आशय यह है - इदं = सर्वशरीर प्रविष्ट जीव, अग्रे पूर्वकालमें ब्रह्म ही था, ऐसा कहे जानेके कारण ''तत्'' पदसे जीवका ही ग्रहण करना चाहिये। जीवने अपनेको ब्रह्म समझ लिया ऐसा अर्थ होता है। इसके विपरीत ब्रह्मने अपने आपको ब्रह्म समझ लिया यह कहना अयुक्त है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - धर्मराज प्रभो ! ब्रह्मविद्यासे पूर्णत्व प्राप्त होता है। इस तरह समझकर, मनुष्य उस विषयमें विचार करता रहता है। उसी विषयमें यह विचार प्रस्तुत है कहकर 'किमुतद्ब्रह्मावेत्'' उस ब्रह्मने किसको समझा, यह इस वाक्यका अर्थ होता है। उस वाक्यगत किं. उ. तत्, ब्रह्म, इन चार पदोंका आवर्तन करके दो प्रश्न बनाना आवश्यक नहीं और वित्तात्प्रेय:...... सर्वस्मादन्तर: इत्यादि पूर्ववाक्यसे, ब्रह्मको सबोंसे प्रिय कहा है, उस ब्रह्मके विषयमें विचार करना आवश्यक नहीं, मौका भी नहीं। ''इदं'' पदसे पूर्ववाक्योंसे सिद्ध वस्तुका ही ग्रहण करना चाहिये। जीवके ग्रहण करनेमें कोई आधार नहीं। उस ब्रह्मने किसको जान लिया ? एक ही प्रश्न होनेसे उस प्रश्न के उत्तरमें, ब्रह्म एक ही था, उसने अपने आपको जान लिया ऐसा अर्थ होता है। अत: इन चार पदोंका आवर्तन उचित नहीं। दो प्रश्न बना लेनेपर भी ''तत् ब्रह्म किम्'' वह ब्रह्म कौन है (किन धर्मोसे युक्त है) उस प्रश्नके उत्तरमें ''यह ब्रह्म है'' ऐसा उत्तर देना आवश्यक था, उसकी परवाह न कर सर्वशरीर प्रविष्टं जीव ही ब्रह्म है, जीवको ही ब्रह्म कहना उचित नहीं। इदं पद प्रमाण से सिद्ध अर्थ का बोध करता है। अत: इदं पदसे जीव उपात्त है, इस विषयमें कोई आधार नहीं।

परमात्माका शरीरान्त प्रवेश मिथ्या है। परमात्मा शरीरमें प्रवेश करता है, इस विषयमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं। ऐसा शंकराचार्यने (२-६) तैत्तिरीय उपनिषद्भाष्यमें (१-४-८ बृहदारण्यक भाष्यमें) कहा है। इसलिये शरीरान्तप्रविष्ट जीव 'इदं' पदका अर्थ होगा अद्वैतमतके अनुसार अयुक्त होगा।

''यो आत्मनि तिष्ठन्''यो विज्ञाने तिष्ठन् य: पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अंतर:'' ''योप्सु तिष्ठन्'' ''सोनुप्रविष्टो भगवान्'' इत्यादि वाक्योंमें परमात्मा पृथिव्याद्यभिमानी चेतनोंमें नियामक है, ऐसा कहनेके कारण ''इदं'' पदसे सर्वशरीरान्तर्यामी परमात्माही प्रतिपादित होनेसे, उस वाक्यके पूर्वमें विद्यमान ''सर्वस्मादन्तरतर:'' वाक्यसे समस्तोंमें रहनेवाला परमात्मा ही है, सर्वान्तर्यामी परमात्मा ही ब्रह्म है।

''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्'' सर्वशरीर प्रविष्ट जीव ही ब्रह्म है अर्थ नहीं होता। उत्तरभागमें स्थित ''तदात्मानमेवावेत्'', ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका इसी तरह होगा। तत् उस परमात्माने अपने

१७७- सिविल सूट (३)

आपको ब्रह्म समजा राजा अगर अपनेको राजा कहेगा तो प्रजा राजा किस तरह बन सकती है ? उसी प्रकार जीव ब्रह्म नहीं हो सकता।

शंकराचार्यने इस उपनिषद्भाष्यमें ''तत्'' पदसे ब्रह्मका स्वीकारकर, उस ब्रह्मने अपने आपको ब्रह्म समझा। इस प्रकार अर्थ किया है। तत् पदसे जीवका स्वीकार करना अयुक्त है। ''इदं'' पदसे शरीरमें प्रविष्ट जीवका ग्रहण करके, वही जीव ब्रह्म ही था, अज्ञानसे मैं ब्रह्म नहीं, भ्रान्त होकर मैं कर्ता हूँ, इस तरह अपने ऊपर कर्तृत्वका आरोप करके दु:ख का अनुभव करता है। दयाळु आचार्यने उसको उपदेश दिया -तुम ब्रह्म हो, सर्वरूप हो, तुम जिस कर्तृत्व, भोक्तृत्व का अनुभव कर रहे हो, वही संसार है, पर वह संसार मिथ्या है। इस तरहका बोध करनेवाला कोई शब्द इस वाक्यमें न होनेके कारण, अपने मनमाने ढंगसे जो शंकराचार्यने कहा है वह योग्य नहीं।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' कहनेवाले अद्वैतमतमें ब्रह्मके भ्रम का कारण नहीं। मैं जीव हूँ। इस प्रकारका भ्रम भी ब्रह्मके लिये संभव नहीं, कर्तृत्वादि कल्पित हैं इस विषयमें कोई आधार नहीं। इतना ही नहीं, श्रुतियोंसे कर्तृत्वादिकोंका सत्यत्व सिद्ध होता है, मैं ब्रह्म नहीं सर्वरूप नहीं, ब्रह्ममें इस प्रकारके भ्रमका कोई कारण नहीं। सर्वमभवत् सर्वभावका भ्रम निवृत्त हो चुका ऐसा कहना युक्त नहीं।

अद्वैतमतके अनुसार घटपटादि सबकुछ मिथ्या है। सत्यभूत ब्रह्मको मिथ्याभूत सर्वभाव अर्थात् मिथ्याभूत घटपटाद्यनेक पदार्थ स्वरूप नहीं आ सकता। इस प्रकार.अनेक कारणोंसे ''इदं'' पदसे जीवका अर्थकर वही जीव ब्रह्म था। इस ज्ञानसे उसने सर्वभाव प्राप्त किया ऐसा कहना युक्तियोंसे दूर होगा।

''यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्'' इत्यादि वाक्य जीवब्रह्ममें भेदका प्रतिपादन करते हैं। शंकराचार्यने इस विषयका स्वीकार किया है। इसलिये यह वाक्य भी जीवब्रह्म भेदका प्रतिपादन करता है। यह सिद्ध होता है। ''पुर: पुरूष आविशत्'' वाक्यमें ब्रह्मका प्रवेश नहीं कहा गया है। प्रवेशको मिथ्या कहा है शंकराचार्यने पर पुन: इस श्रुतिके आधारपर, ब्रह्मने ही जीवरूपसे प्रवेश किया, जीव ही ब्रह्म है, जीव ब्रह्मसे भिन्न है ऐसा कहनेवाला वाक्य मिथ्या भेदका बोध करता है ऐसा कहना उचित नहीं। इसलिये ''यो यो देवानां'' वाक्य जीव ब्रह्मके भेद करनेपर भी शंकराचार्यका पूर्वपक्षमें होनेपरभी, ''पुर पुरूष आविशत्'' वाक्यसे भेद बाधित होता है, ऐसा ग्रहीत होनेपर यो यो देवानां ''प्रत्य बुध्यत्'' वाक्य ज़ीव ब्रह्म भेद बोधक है। इस विषयमें कोई विवाद नहीं।

नित्य पदार्थोंमें भी प्रयोज्य प्रयोजकभाव होता है। नित्यभूत पूर्णताके लिये नित्य ज्ञान प्रयोजक होता है। इसलिये ज्ञानसे पूर्ण हुवा यह कहना युक्ति संगत ही है। कारणोंसे ''अहं ब्रह्मास्मीति'' वाक्य जीव ब्रह्म ऐक्य बोधक नहीं होगा।

इसी उपनिषत्में ''अथातसंप्रत्ति:'' इत्यादि वाक्योंमें, अहं ब्रह्म, त्वं ब्रह्म, ''अहं यज्ञ:'', ''त्वं यज्ञ:'', ''अहं लोक:'', ''त्वं लोक:'' वाक्यमें ''त्वं'', ''अहं'' पदोंसे बोध्य जीव, ब्रह्मपदसे ब्रह्ममें समानाधिकरण्य होनेपर (एक विभक्त्यंत पद) ऐक्यबोध होनेकी संभावना होनेपर भी ऐक्याबाधित होनेसे ''त्वं'', ''अहं'' पदोंका तुम, मैं इतना ही अर्थ न कहकर, यह अर्थ

मुख्यवृत्तिसे होनेपर भी, लक्षणावृत्तिसे अहं पदका = मत्कर्तृकं, मुझसे अनुष्ठान किया जानेवाला, त्वं = त्वत्कर्तृकं = तुमसे आचरणीय, ब्रह्म पद वेद ऐसा अर्थ न करके लक्षणावृत्तिसे, तुमसे वेदाध्ययन किया जाना चाहिये। (अबतक जिस वेदका अध्ययन मैंने किया है, इसके बाद तुमको करना पडेगा) अहं ब्रह्म = मैं वेदाध्ययन करता हूँ, त्वं यज्ञ: = त्वं लोक: वाक्योंका अर्थ इस प्रकार किया गया है। अभीतक मैंने जिस यज्ञका अनुष्ठान किया है; यज्ञ किया जानेवाला है, यज्ञानुष्ठानसे स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त कर चुका हूँ, इसके बाद तुम कहो। उसीसे स्वर्गादि लोककी प्राप्ति करो, ऐसा अर्थ शंकराचार्यने कहा है। इस वाक्यका उसी तरहका अर्थ है। उपनिषत्का इस प्रकार अर्थ करना प्राचीन पद्धति के विरूद्ध होनेपर भी अभेद बाधित होनेके कारण, ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यका अर्थ इस प्रकार भी होगा - मैं ब्रह्माधीन हूँ, ब्रह्मसे पैदा हुवा हूँ। ऐसा ही अर्थ युक्ति युक्त होगा। इतर प्रमाणोंके अविरूद्ध होगा। अत: अहं ब्रह्मास्मि वाक्य ऐक्य का बोध न करके भेदका ही निरूपण करता है। ऐसा कोर्टसे निवेदन करते हैं।

वा. ए. ३, प्र. ए. ६
''प्रज्ञानं ब्रह्म'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - गंगाधर शास्त्रीजी ! 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐ. २-१) यह श्रुति क्या कहती है ?

प्र. गं. - प्रज्ञारूपी जीव ही ब्रह्म है, जीव और ब्रह्मके ऐक्यका निरूपण करती है।

क्रॉस एक्जामिशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! क्या आपने ऐतरेयोपनिषत्के इस श्रुतिपर लिखे शांकरभाष्यको देखा है।

प्र. गं. - उस भाष्यभागको मैंने पढा है।

वा. व. - इस शांकरभाष्यके वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - चतुर्मुख (कार्यब्रह्म) इन्द्र, प्रजापति, समस्त देवता, पंचमहाभूत, समस्तवृक्ष, हाथी, घोडे ये सभी प्रज्ञानेत्र हैं - प्रज्ञानामक परमात्मासें ही अपने अपने कार्य करते हैं। (ब्रह्मादि समस्त कार्य परमात्मा ही करता है) प्रज्ञा नामक ब्रह्म ही इन समस्तोंका आश्रय है। समस्त कार्य कराता रहता है। प्रज्ञान ही परब्रह्म है।

वा. व. - इस वाक्यसे क्या कहा गया है ?

प्र. गं. - चतुर्मुखादि समस्त प्राणियोंका आश्रय परब्रह्म है। उसीसे समस्तोंके व्यापार होते रहते हैं। यह सिद्ध होता है।

वा. व. - आधार आधेय भावसे, नियम्य नियामकभावसे, आधारवस्तुओंका आधारवस्तुके साथ, नियम्यवस्तुऐं नियामक वस्तुके संबंध है, जिससे भेद सिद्ध होता है।

वा. वि. - यह विषय आपको किस तरह ज्ञात हुवा ?

१७९ - सिविल सूट (३)

प्र. गं. - शंकराचार्यने नियम्य नियामक भावसे, आधार आधेयभावसे भेदकी सिद्धि होती है, ऐसा (४-४-४) के ब्रह्मसूत्र भाष्यमें, इसके पूर्वोत्तर सूत्रभाष्यमें कहा है)

वा. व. - इन वाक्योंसे भेद सिद्ध होता है तो, अभेदके विषयमें इसको प्रमाण के रूपमें प्रस्तुत क्यों किया ?१*

प्र. गं. - उत्तर नहीं।.

वा. व. - भेदप्रतिपादक यह वाक्य आपके लिये साधक तो नहीं पर बाधक भी है ?

प्र. गं. - इस वाक्यसे उक्त भेद सत्य हो तो, उसका विरोध अद्वैतमतके लिये होगा। भेद मिथ्या होनेसे, इस वाक्यसे कोई विरोध नहीं होगा।

वा. व. - ''इदं रजतं'' ज्ञानसे प्रतीत होनेवाला रजत सत्य है, या मिथ्या है ?

प्र. गं. - प्रतीयमान रजत मिथ्या ही है।

वा. व. - मिथ्या क्यों है ?

प्र. गं. - ''नेदं रजतं'' ज्ञानसे रजत बाधित होनेसे इस रजतको मिथ्या कहना चाहिये।

वा. व. - पर, क्या आधार आधेयभाव, नियम्य नियामक भावसे ज्ञात होनेवाले भेदको मिथ्या कहनेके लिये कोई बाधक प्रमाण है ?

प्र. गं. - प्रज्ञानं = जीव, ब्रह्म ही है, जीव और ब्रह्ममें ऐक्य निरूपक ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' का उत्तर वाक्य ही बाधक है। नियम्य नियामक भावसे सिद्ध होनेवाला भेद मिथ्या सिद्ध होगा।

वा. व. - १) प्रज्ञानेत्रं २) प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं ३) प्रज्ञानेत्रो लोक: ४) प्रजा प्रतिष्ठा ५) प्रज्ञानं ब्रह्म - इन पांच वाक्यस्थ प्रज्ञा, प्रज्ञान, शब्दोंका अर्थ शंकराचार्यने क्या लिखा है ? प्रज्ञा शब्द, प्रज्ञान शब्द किसका बोध करते हैं ?

प्र. गं. - प्रज्ञा, प्रज्ञान शब्द ब्रह्मका बोधक हैं, ऐसा शंकराचार्यने कहा है।

वा. व. - लेकिन ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' वाक्यका क्या अर्थ हुवा ?

प्र. गं. - प्रज्ञानं = परमात्मा, ब्रह्म = पूर्ण है (नित्य शुद्धबुद्ध मुक्तरूप) अर्थ होता है।

वा. व. - 'न तु प्रत्यक् ब्रह्मणोरैक्यमनेन वाक्येनोच्यते' यह वाक्य किसका है ?

प्र. गं. - शंकराभाष्यके आनंदगिरी का व्याख्यान है।

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्य का बोधक नहीं।

वा. व. - 'प्रज्ञानं ब्रह्म' वाक्यसे जीवब्रह्मके ऐक्यका बोध नहीं होता यह अर्थ शंकराचार्यके भाष्यसे, आनंदगिरीकी व्याख्यासे सिद्ध होता है न ?

प्र. गं. - शंकराचार्यके भाष्यसे यह वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यका निरूपण करता है यह भी सिद्ध होता है।

वा. व. - 'प्रज्ञानं ब्रह्म' वाक्य शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार जीव ब्रह्मके ऐक्यका बोधक न हो

१* सर्व तदेशषत: प्रज्ञानेत्रं प्रजा प्रजाप्ति: प्रज्ञा तच्च ब्रह्मैव नीयते: अनेनेति नेत्रं प्रज्ञानेत्रं यस्य तत इदं प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने ब्रह्मणी उत्पत्ति स्थितिल्य कार्येषु प्रतिष्ठितं.......तस्मात् प्रज्ञानं ब्रह्म (शां. भा. ४१)

तो, जीव ब्रह्मैक्यके विषयमें उक्त वाक्यका उद्धरण क्यों किया और ''प्रज्ञानेत्रं'' ''प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं'' इत्यादि वाक्योंसे सिद्ध जीवब्रह्मभेदके लिये बाधक होता है ऐसा क्यों कहा ?

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

प्र. व. – इसका पूर्ववाक्य कौनसा है ?

प्र. गं. – 'एष ब्रह्मैव इंद्र एष प्रजापतिरेते सर्वेदेवा – इमानिच – पंचमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिंषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणि बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानिच जारजानिच स्वेदजानि चोद्भिजानि चाश्वागाव: पुरूष: हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणिजंगम च पतचित्र यच्चस्थावरं। सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा प्रतिष्ठा (ऐ ३.३)

प्र. व. – इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – एष: = प्रज्ञारूपी परमात्मा, चतुर्मुख ब्रह्म है, इन्द्र है, प्रजापति, ये सभी देवता, अग्न्यादि सभी देवता सभी प्रज्ञारूपी आत्मा है। पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेजोरूप, पंचमहाभूत, पक्षीगण, मनुष्य, स्वेदज, वृक्ष, घोडे, गाय, हाथी ये सभी प्रज्ञारूपी आत्मा है। ये सभी प्रज्ञानामक परमात्मासे अपने अपने कार्य करते रहते हैं। प्रज्ञानामक परमात्मामें प्रतिष्ठित है। समस्त जगतका आश्रय ब्रह्म है। प्रज्ञानामक आत्मा जिनके लिये आँखोंकी भाँति है, जो ज्ञान देता है, वही सबका आश्रय है, प्रलयकालमें सब नष्ट होता है उस समय यही रहता है।

प्र. व. – इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – हिरण्यगर्भादि सभी चेतन, आकाशादिसमस्त जड, परब्रह्मका रूप है यह सिद्ध होता है (जीवब्रह्मके ऐक्य सिद्ध होता है)

प्र. व. – कोर्टसे ! महाप्रभो ! प्रज्ञानं ब्रंह्म वाक्यसे अभेदसिद्ध न होनेपर भी, पूर्व वाक्यसे चतुर्मुखादि जीवोंके साथ परब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होता है, ऐसा गंगाधर शास्त्रीका कथन है, उसपर विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

कोर्ट – आचार्यजी ! एष ब्रह्म एष इन्द्र: इत्यादि वाक्योंका अर्थ शास्त्रीजीके कथनके अनुसार क्यों न करें ?

वा. वि. – शास्त्रीजीके कथन के अनुसार अर्थ करनेपर अनेक बाधायें उत्पन्न होती हैं, अत एव वह अर्थ स्वीकार्य नहीं होगा।

प्र. गं. – शास्त्रीजीके अनुसार अर्थ करनेसे अनेक बाधायें आती है ऐसे केवल कहनेसे क्या लाभ होगा ? उन बाधाओंको कहिये।

वा. वि. – अद्वैतमतके अनुसार ''एष'' पदसे बोधित प्रज्ञारूपी ब्रह्म शुद्ध है। चतुर्मुख, इन्द्र, प्रजापति ये देवता उपाधिविशिष्ट हैं। इसलिये ब्रह्मके साथ उनका ऐक्य संभवेगा नहीं। जडभूत पंचमहाभूतोंसे चेतन आत्मासे अभेद असंभव है।

प्र. व. – जडभूत पांचमहाभूत आत्मामें कल्पित है। ऐसा अर्थ अद्वैत व्याख्यानकारोंने किया है। आत्माके साथ पंचभूतोंका अभेद नहीं कहा है। अत: जडभूत आकाशादि आत्माके साथ अभेद न होनेपर भी कोई बाधक नहीं।

१८१ – सिविल सूट (३)

वा. वि. – इमानि पंचभूतानि इत्यादि वाक्योंमें ''एष: एष:'' पदोंकों अपनी इच्छाके अनुरूप सम्मिलत करना, उस पदके लिये आत्मामें कल्पित ऐसा अर्थ करना अयुक्त है।

''एते सर्वे देवा'' इमानि पंचभूतानि ''इमानि क्षुद्रमिश्राणि इत्यादि वाक्योंमें जैसे 'एते', 'इमानि' शब्द देवताओंके, भूतोंके प्रसिद्धिद्योतक विशेषण है, उसी प्रकार इस वाक्यमें ''एष: एष: एष:'' शब्द हैं। चतुर्मुख, इन्द्र, प्रजापति इनके प्रसिद्धिद्योतक शब्द हैं, ऐसा कहना योग्य होगा, हमारी उक्त अनुपत्तियोंको मनमें रखकर विद्यारण्यने भी 'एष ब्रह्म' 'एष इन्द्र:' एष शब्दको प्रसिद्धिद्योतक विशेषण कहा है। इसलिये एष: एष: पदसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण करके, वह आत्मा चतुर्मुख, इंद्र, प्रजापति है, ऐसा अर्थ न करें, एष ब्रह्म इत्यादि वाक्योंमें एतच्शब्दसे प्रज्ञानरूपी परमात्माके ग्रहण करनेपर, इसी प्रकार ''एते सर्वेदेवा:'', ''इमानि पंचभूतानि'', ''इमानि क्षुद्रमिश्राणि'' इत्यादि वाक्यगत एतच्चशब्दसे प्रज्ञारूपी आत्माका ही ग्रहण करना पडा, उसी तरह ''एते'' ''इमानि'' बहुवचनांत होनेसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण नहीं कर सकते। इन अनुपपत्तियोंको ध्यानमें रखकर शंकराचार्यने, एष ब्रह्म इत्यादि वाक्यस्थ एतच्छब्दसे प्रज्ञारूपी आत्माको ग्रहण करनेपर 'एते देवा' इमानि भूतानि, वाक्यमें रहे एतच्छब्द देवता, भूत इत्यादिकोंके प्रसिद्धिद्योतक विशेषण माना है। पर अपने मतके अभिमानसे (आग्रहसे) अन्य एष: एष: पदोंको जोडकर ''एते देवा: एष: इमानि भूतानि एष:'' इस प्रकारके वाक्यको समझकर एते – ये प्रसिद्ध देवता, एष: = प्रज्ञारूपी परमात्मा, ऐसा अर्थ किया है।

'एते सर्वे देवा', इमानि पंचभूतानि ''इमानि क्षुद्रामिश्राणि, इत्यादि वाक्योंमें जैसे ''एते'', ''इमानि'' शब्द देवताओंके, भूतोंके प्रसिद्धिद्योतक विशेषण है, उसी प्रकार इस वाक्यमें ''एष: एष: एष:'' शब्द हैं। चतुर्मुख, इन्द्र, प्रजापति इनके प्रसिद्धिद्योतक शब्द हैं, ऐसा कहना योग्य होगा, हमारी उक्त अनुपत्तियोंको मनमें रखकर, विद्यारण्यनेभी ''एष: ब्रह्म'' ''एष इन्द्र:'' एष शब्दको प्रसिद्धिद्योतक विशेषण कहा है। इसलिये एष: एष: पदसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण करके, वह आत्मा चतुर्मुख, इंद्र, प्रजापति है, ऐसा अर्थ न करें। एष ब्रह्म इत्यादि वाक्योंमें एतच्शब्दसे प्रज्ञानरूपी परमात्माके ग्रहण करनेपर, इसी प्रकार ''एते सर्वेदेवा:'', ''इमानि पंचभूतानि'', ''इमानि क्षुद्रमिश्राणि'' इत्यादि वाक्यगत एतच्चशब्दसे प्रज्ञारूपी आत्माका ही ग्रहण करना पडा। उसी तरह ''एते'', ''इमानि'' बहुवचनांत होनेसे प्रज्ञानरूपी आत्माका ग्रहण नहीं कर सकते। इन अनुपपत्तियोंको ध्यानमें रखकर शंकराचार्यने, एष ब्रह्म इत्यादि वाक्यस्थ एतच्छत्दसे प्रज्ञारूपी आत्माको ग्रहण करनेपर 'एते देवा' इमानि भूतानि, वाक्यमें रहे एतच्छब्द देवता, भूत इत्यादिकोंके प्रसिद्धिद्योतक विशेषण माना है। पर अपने मतके अभिमानसे (आग्रहसे) अन्य एष: एष: पदोंको जोडकर ''एते देवा: एष: इमानि भूतानि एष:'' इस प्रकारके वाक्यको समझकर एते = ये प्रसिद्ध देवता, एष: – प्रज्ञारूपी परमात्मा, ऐसा अर्थ किया है। इस तरह अर्थ होगा तो ''एष: ब्रह्मा'' ''एष: इन्द्र:'' वाक्यमें स्थित एतत् शब्दके लिये प्रज्ञारूपी परमात्मा यह अर्थ ग्रहण करना पडेगा। ''एते देवा: इमानि भूतानि वाक्यमें स्थित एतत् शब्दके लिये प्रज्ञारूपी परमात्मा यह अर्थ ग्रहण करना पडेगा। ''एते देवा: इमानि भूतानि वाक्यमें स्थित एतत् शब्दके प्रसिद्धि रूप अर्थ करें। उन वाक्योंमें

एष: एष: ऐसे स्वकीय पदोंको जोडना ये सभी अयुक्त है।

वा. वि. - 'एष: ब्रह्मा, एष: इन्द्र: इमानि पंचभूतानि यच्च स्थावरं तत्प्रज्ञानेत्रं' प्रसिद्ध चतुर्मुखादि समस्त देवता प्रज्ञानाम परमात्मासे ही प्रवर्तित हैं - ऐसा अर्थ है। शंकराचार्यने ऐसा ही अर्थ किया है, पर अपने मतके आग्रहसे ''सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं'' वाक्यमें ''सर्व'',''तत्'' पदोंका आवर्तन दोबार करके, बादमें ''एष:'' ऐसा स्वकीय पदको मिलाकर ये सबकुछ एष: = प्रज्ञारूपी आत्मा है, ऐसा अर्थ करके ''एतत्सर्वं'' पदको पुन: ग्रहण करके एतत्सर्वं प्रज्ञानेत्रं वाक्यमें यह सब कुछ प्रज्ञानामक परब्रह्मसे प्रवृत हैं।

सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रं = यह एक ही वाक्य है, बीचमें ''एष:'' पदका अध्याहार करके, पदके मुख्यार्थ का त्याग करके, 'उसमें अमुख्यार्थ'' उसमें कल्पित अर्थ करना, आवृत्तिसे दो वाक्योंको बनाना अत्यंत अयुक्त है।

वादीसे पूछताछ

प्र. व. - विष्णुदासाचार्यजी ! ''एष ब्रह्म..... प्रज्ञानं ब्रह्म, वाक्यका अर्थ आपकी दृष्टिसे क्या है ?

वा. वि. - एष: ब्रह्म प्रमाणोंसे सिद्ध चतुर्मुख ब्रह्मा, एष: इन्द्र: - यह इन्द्र प्रजापति, समस्त देवता, ये पांच महाभूत, अण्डज, जरायुज, स्वेदज, वृक्ष, पक्षी समस्त पदार्थ तत् प्रज्ञानेत्रं सभी प्रज्ञानामक परमात्मासे नियम्य है। इन सबोंको परमात्मा उनके कार्यमें प्रवृत्त करता है। प्रज्ञानामक परमात्मामें सभी आश्रित हैं। प्रज्ञानामक परमात्मा ही इनको प्रतिष्ठित करता है। प्रज्ञानामक परमात्मा ब्रह्म है, अर्थात् प्रज्ञानामक परमात्मा पूर्ण है । चतुर्मुखादि समस्त देवतागणका, अन्य प्राणियोंका, जडपदार्थोंका परमात्मा आश्रय है। आश्रय आश्रयिभावसे नियम्य नियामक भावसे, स्थाप्य स्थापक भावसे भेदका निरूपण करके, प्रज्ञानं वाक्यसे प्रज्ञान परमात्माके पूर्णत्व का प्रतिपादन करता है।

''सन्मूला: सौम्येमा: प्रजास्सदायतना: सत्प्रतिष्ठा'' इस वेदवाक्यमें जिस तरह समस्त प्रजा परमात्मासे पैदा होती है, परमात्मामें आश्रित हैं, परमात्मा सबोंका स्थापक है ऐसा कहा गया है, उसी तरह इस वाक्यमें भी समस्तोंका आश्रय परमात्मा है - ऐसा कहकर यह श्रुति भेदका निरूपण करती है।

प्रतिवादि वकीलका जिरह

प्र. व. - (कोर्टसे) धर्मराज प्रभु ! 'प्रज्ञानं ब्रह्म' श्रुति, प्रज्ञानं = जीव, ब्रह्म = परमात्मा है, जीवपरमात्माके ऐक्यका प्रतिपादन करती है। जीवपरमात्माके ऐक्यका निर्णय कोर्ट दे ऐसा हम प्रार्थना करते हैं।

१८३- सिविल सूट (३)

वादि वकीलोंकी दलील

वा. व. - महाप्रभु ! ''सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा प्रतिष्ठानं ब्रह्म'' वाक्यमें सर्वं तत् चतुर्मुखादि समस्त प्राणी, आकाशादि समस्त जडोंका प्रेरक परमात्मा है। प्रज्ञानामक परमात्मामें प्रतिष्ठित है। प्रज्ञानामक परमात्मामें आश्रित है। प्रज्ञानेत्रं = प्रज्ञानामक परमात्मासे ज्ञान प्राप्त करते हैं। छांदोग्य वाक्यकी भाँति, आधार आधेय भावसे, नियम्य नियामक भावसे जीव और जडोंमें भेदका प्रतिपादन करता है। जीव परमात्माके ऐक्यका प्रतिपादन नहीं करता। शंकराचार्यने इसी प्रकार अर्थ किया है। अत: इस वाक्यसे ऐक्य बोधित नहीं होता। इसलिये पूर्वपक्षियोंके विज्ञापन खारिज करके इस वाक्यको भेद प्रतिपादकके रुपमें स्वीकार करे और वैसे निर्णय दें यही प्रार्थना है।

प्रतिवादि वकीलकी जिरह

प्र. व. - कोर्टसे ! महाप्रभो ! प्रज्ञानं ब्रह्म वाक्यसे जीवब्रह्मका ऐक्य भले ही सिद्ध न हो पर 'एष ब्रह्म... तत्सर्वं प्रज्ञानेत्रं' रूप पूर्व वाक्य - एष ब्रह्म..... तत्सर्वं प्रज्ञानेत्रं, एष ब्रह्म यह प्रज्ञानामक परमात्मा ही चतुर्मुख ब्रह्म है, यही इन्द्र है, यही प्रजापति, रूद्र, समस्त देवता, ये पांच महाभूत, अण्डज, स्वेदज, गाय, हाथी, घोडे आदि समस्त प्रपंच प्रज्ञानामक परमात्मा है। समस्त चेतनाचेतन प्रपंचका अभेद माना गया है। इस तरह शंकराचार्यका व्याख्यान होनेके कारण, इस वाक्यसे अभेदकी सिद्धि होती है, यह हमारा विज्ञापन है।

वादि वकीलका पुन: आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभु ! वादिसे उक्त अनेक कारणोंसे जैसे नियम्य नियामक भावसे आधार आधेय भावसे, आश्रय आश्रित भावसे, व्याख्यात होनेके कारण, भेदका बोध ही होता है। अभेदका निरूपण नहीं होता, कोर्ट इसपर ध्यान देकर निर्णय करे।

वादि- ए. ४-२८, प्र. वा. ए. १८ य: पृथिव्यां तिष्ठन् एषत आत्मा अन्तर्याम्यमृतोऽ अद्दष्टेय द्रष्टाश्रुत: श्रोतामतो मन्ताविज्ञाता नान्यतोऽस्ति द्दष्टा नान्यतोऽस्ति श्रोता नान्यतोऽस्ति मन्ता नान्यतोस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्य मृतोऽतान्यदांत ततो होध्दालक: आरूणिरूपरराम, बृहदारण्यक वाक्यका अन्तर्यामि प्रकरणके वाक्य और स यश्चायं पुरूषे यश्चा सवादिव्ये स एक: (तै. ३-१२-४) वाक्यपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! ''य आत्मनि तिष्टन्'' आत्मनोऽन्तरो आत्मानं वेद यस्य आत्मा शरीरं आत्मान मंतरो यमयति एष त आत्मान्तर्याम्यमृत: (बृ. ३-७-२२) अद्दष्टो द्रष्टा...... नान्यतोऽस्ति द्रष्टा (बृ. ३-७-२३) अन्तर्यामी प्रकरणमें विद्यमान वाक्यं जीवब्रह्मके भेदका

निरूपण किस तरह करते हैं ?

वा. वि. - जो परमात्मा जीवमें रहकर, जीवसे भिन्न है। जिस परमात्माको जीव जानता है, जिस परमात्माको जीव शरीरकी भाँति है (शरीरकी तरह वश है) जो परमात्मा जीवका नियमन करता है, वही तुम्हारा अन्तर्यामी है, आत्मा ''यच्चाप्नोति'' भारत वाक्यके अनुसार जगज्जन्मादि कर्ता है, अमृत: - अविनाशी है। इस तरहका परमात्मा दूसरोंको द्दष्टिगोचर नहीं होता। परमात्मा सबकुछ देखता है। अत: परमात्माको देखना अशक्य है (रूपवान् घटादिकोंकी तरह दूसरोंको दिखायी नहीं देते इसलिये देखना अशक्य है) अन्य: परमात्मासे भिन्न जीव द्दष्टा न = परमात्माको नहीं देख सकता। अत: इस वाक्यसे जीव परमात्माका आधार आधेय भाव, द्दष्टत्व अद्दष्टत्व धर्मसे, नियम्य नियामक भावसेभी जीवपरमात्मा भेद ही ज्ञात होता है।

इसी तरह

१) यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानान्तरोयं (बृ. ३-७-२२)
अन्तर्यामि प्रकरणस्थ कण्व शाखा का वाक्य है। विज्ञान शब्द वाच्य जीवसे परमात्माका भेद कहा गया है।

२) य पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तर: (बृ. ३-७-३)
पृथिव्याद्यभिमानी देवतासे भिन्न हैं।

३) योप्सु तिष्ठन् अद्भयोऽंतर: (बृ. ३-७-४)
जलाभिमानी देवतासे भिन्न है।

४) योग्नौ तिष्ठन्नग्रेइन्तर: (बृ. ३-७-५)
अग्न्याद्यभिमानी देवतासे भिन्न

५) योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तर: (बृ. ३-७-६)
अन्तरिक्षाद्यभिमानी देवतासे

६) यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तर (बृ. ३-७-७)
वाय्वभिमानी देवतासे

७) यो दिवि तिष्ठन् दिवोन्तर (बृ.३-७-८)
स्वर्गाभिमानी देवतासे

८) यो आदित्ये तिष्ठन् आदित्यादन्तरतर: (बृ. ३-७-९)
आदित्यमण्डल देवतासे

९) यो दिक्षु तिष्ठन् दिग्भ्योन्तरो यं दिशो न विदु: (बृ. ३-७-१)
दिगभिमानी देवतासे

१०) यश्चंद्रतारके तिष्ठन् चंद्रतारकादन्तर: (बृ. ७-७-११)

११) य आकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तर: (बृ. ३-७-११)
. आकाशाभिमानीदेवतासे

१२) यस्तमसि तिष्ठन् तमसोदन्तर: (बृ. ३-७-१३)

तेजोभिमानी देवतासे

१३) यस्तेऽस्मि तिष्ठंते जशोऽन्तर: (बृ. ३-७-१४)

तेजोभिमानी देवतासे

१४) यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्योभूतेभ्यान्तर: (३-७-१५)

सर्वभूतोंसे

१५) य: प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तर: (बृ. ३-७-१६)

प्राणसे

१६) योवाचि तिष्ठन् वाचोन्तर: (बृ. ३-७-१८)

वागभिमानी देवतासे

१७) यश्चक्षुपि तिष्ठन् चक्षुषोऽन्तर (३-७-१८)

चक्षुरभिमानी देवतासे

१८) य: श्रोत्रे तिष्ठन् श्रोत्रादन्तर (बृ. ३-७-१९)

श्रोत्राभिमानी देवतासे

१९) यो मनसि तिष्ठन् मनसोऽन्तरे (३-७-२०)

मनोभिमानी देवतासे

२०) यस्त्वचि तिष्ठन् त्वचोन्तर (बृ. ३-७-२१)

त्वगभिमानी देवतासे

२१) यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरायं रेतो न वेद

यस्य रेतश्शंरीरं यो रेतोन्तरो यमपत्येष: ते आत्मान्तर्याम्यमृतोऽद्दष्टो द्रष्टा श्रुत: श्रोतमतो मन्ताविज्ञातो विज्ञाता नान्यतोऽस्ति द्रष्टा नान्यतोऽस्ति श्रोता नान्यतोऽस्ति मन्ता नान्यतोऽस्ति विज्ञातैष: त आत्माचर्याम्यमृतोऽतोऽ अन्यदार्तं ततो होध्दालक: आरूणिरूपरराम। (. ३-७-२३) वाक्यसे रेतोऽभिमानी देवतासे परमात्माका भेद, आधार आधेय भावसे, द्दष्टत्व धर्मसे, नियम्य नियमाक भावसे, ''अन्तर:'' पदसे भेदका ही बोध होता है।

वा. व. - 'य आत्मनि तिष्ठन्' आदि मंत्रोंका अर्थ शंकराचार्यने किस तरह लिखा है ?

वा. वि. - 'य आत्मनि तिष्ठन्' इत्यादि मंत्रोंका अर्थ शंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें, उपनिषद्भाष्यमें भी लिखा है, इन दोनोंमें किसके अनुसार अर्थ कहे ?

वा. व. - क्रमसे दोनों कहियेगा।

वा. व. - 'अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तध्दर्म व्यपदेशात् ब्र. सू. (१-२-१८)

'न च स्मार्तमध्दर्माभिलापात् (१-२-१९), शारीरश्श्रोभयेपि हि भेदेनैनमधीयते (१-२-२०) इस त्रिसूत्री अधिकरणमें 'य: पृथिव्यांतिष्ठन्' आदि अन्तर्यामि प्रकरणमें पृथिवी लेकर इक्कीस पदार्थोंमें अन्तर्यामी एक है। यह क्या पृथिव्याद्यभिमानी है, या जीव है अथवा परमात्मा है, इस प्रकार संशय आनेपर कुछ लोग कहते हैं कि अन्तर्यामी पृथिव्याद्यभिनी देवता है, कुछ लोगोंकी द्दष्टिमें वह एक योगी है अथवा योगसिद्ध जीव है, सांख्योक्त प्रधान होगा। अन्य कहते

हैं जीव ही अन्तर्यामी है, इस तरह पूर्वपक्ष करनेपर, पृथिव्याद्यन्तर्यामी, समस्त पृथिव्यादि देवता योगी नहीं। सांख्योक्त प्रकृति भी नहीं, कहकर ''शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते'' सूत्रसे सूत्रकारने ''य आत्मनि तिष्ठन्'' माध्यंदिनशाखा वाक्यसे, जीव अन्तर्यामी नहीं हो सकता, ऐसा कहा है। शंकराचार्यने इस सूत्र व्याख्यानमें कहा है।

''य आत्मनि तिष्ठन्'' इत्यादि अन्तर्यामी वाक्योंमें जीवपरमात्मामें पृथिव्यादि अभिमानी देवतामें परमात्मामें, भेद ही उक्त हैं।

२) 'उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्'(३-२-२७) के सूत्रभाष्यमें यस्सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयति इति नियंतृ नियन्तव्यत्वेन जीवप्राज्ञयो: भेदोव्यपदिश्यते'' इस तरह इस अन्तर्यामी प्रकरणस्थ ''य: सर्वाणि'' वाक्यसे भी जीवपरमात्माका भेद ज्ञात होता है।

३) ''भेदव्यपदेशाचान्य:'' (१-२-२१) सूत्रमें ''आदित्ये तिष्ठन्''वाक्यमें ''आदित्यादन्तर:'' यमादित्यो न वेद, परमात्माको स्पष्टरूपमें जीवको भिन्न कहा गया है। आदित्यादि शरीरोंके अभिमानी जीवोंसे भिन्न ईश्वरही अन्तर्यामी है, ऐसा कहा गया है।

४) बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यमें भी 'य: नारायणाख्य: पृथिवी देवतां यमयति नियमयति स्वव्यापारे अंतर: अभ्यन्तर: तिष्ठेत् एष = ते आत्माते तव च ममच सर्वभूतानां च इति उपलक्षणार्थ एतदन्तर्यामी य:स्त्वया पृष्ठोऽमृत: सर्वसंसार धर्मवर्जित:''

नारायण पृथिवीदेवताको, उसके व्यापारमें नियुक्त करता है। वह आत्मा ही (नारायण ही) मुझमें और तुझमें समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामी है, इस तरह नियम्य नियामक भावसे भी ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्'' आदि इक्कीस मंत्रोमें ब्रह्मादि समस्त जीवोसे परमात्माका भेद ही प्रतिपादित है।

वा. व. - सयश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये स एक:'' यह तैत्तिरियश्रुति जीव परमात्माके भेदको किस प्रकार कहती है ?

वा. वि. - पुरुषमें (जीवमें) जो परमात्मा है, सूर्यमें जो परमात्मा है, वह परमात्मा एक ही है। जीवान्तर्गत परमात्मामें सूर्यान्तर्गत परमात्मामें भेद नहीं, इस श्रुतिसे यह ज्ञात होता है कि परमात्मा आधेय है, आदित्य आधार है। परमात्मा आधेय है जीव आधार है, आधार आधेय भावसे आदित्यादि जीवोंसे परमात्माका भेद ही निरूपित है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''य आत्मनि तिष्ठन्'' इत्यादि वेदवाक्योंका अर्थ भेदपर ही है, ऐसा शंकराचार्यने कहा है। क्या आप वैदिक उसका स्वीकार करते हैं ?

प्र. गं. - माधवदासजी ! वेदोक्त जीवेश्वर भेदको मानते हैं या नहीं यह नया नहीं। वेदमें ही चतुर्मुखादि जीव नियम्य है। परमात्मा नियामक है। यह उक्त होनेसे, नियम्य चतुर्मुखादि देवता अन्य हैं। नियमाक परमात्मा भिन्न है, ऐसा भेद ही प्राप्त है। इस तरहकी शंका लेकर, उस शंकाके परिहार के लिये 'नान्यतोऽस्ति द्रष्टा' वाक्य प्रवृत्त है। अन्तर्यामी परमात्मासे भिन्न ''द्रष्टा'' देखनेवाला नहीं। इस तरह कहेजाने के कारण द्रष्टा जीव परमात्मासे भिन्न नहीं यह सिद्ध होता है। 'य आत्मनि तिष्ठन्' इत्यादि पूर्व वाक्योंसे नियम्य नियामक भावसे चतुर्मुखादि जीवोंका परमात्मासे भेद सिद्ध होनेपरभी वह भेद स्वीकार्य नहीं होगा। इस तरह शंकराचार्यने ''यं पृथिवी न

वेद'' इत्यादि वाक्योंसे उपनिषद्भाष्यमें कहा है, अत: भेद स्वीकार्य नहीं होगा।१*

वा. व. - ''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं'' इस न्यायको शंकराचार्यने किस विषयमें स्वीकारा है ?

प्र. गं. - ''नेति नेति'' (बृ. २-३-६) वाक्य परब्रह्मका निषेध करता है, ऐसा क्यों न कहें, ऐसी आपत्ति आनेपर प्रसक्त (पूर्वमें किसीसे किसी प्रकारसे ज्ञातका) ही निषेध करना चाहिये। ब्रह्म किसीभी प्रमाणसे ज्ञात नहीं। अत: निषेधके योग्य नहीं हो सकता। इस तरह कहनेके बाद ''ब्रह्मविदाप्नोतिपरं'' उपनिषद्भाष्यसे प्रसक्त होनेके कारण, क्यों उस ब्रह्मका निषेध नहीं कर सकते ? ऐसी शंका आनेपर, उपरोक्त न्यायका अनुसरण करते है। कीचडमें पैर रखकर, पानीसे धोनेकी अपेक्षा कीचडमें पैर न रखना ही बेहतर है। उसी तरह इतर प्रमाणोंसे अप्रसक्त ब्रह्मका कथन स्वयं वेद ही कहता और स्वयं वेद उसका निषेध करता है, यह कहना युक्त नहीं होगा। ब्रह्म का न कहना वेदोंके लिये युक्त है। इसलिये ''नेति नेति'' वाक्य परमात्माका निषेध नहीं करता। इस विषयमें उपरोक्त नीतिका अनुसरण किया है।

वा. व. - पृथिव्याद्यभिमानी देवता और परमात्मामें विद्यमान भेदका निषेध किस वाक्यसे होता है, शंकराचार्यने किस वाक्यको निषेधक मानते हैं ?

प्र. गं. - ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्'' इत्यादि वाक्योंसे नियम्य नियामक भावसे प्राप्त भेदका निषेध किया जाता है। ऐसा आचार्य कहते हैं।

वा. व. - पृथिव्याद्यभिमानी देवतामें परमात्मासे प्राप्त भेद दूसरे प्रमाणोंसे प्राप्त हुवा नहीं न ?

प्र. गं. - पृथिव्याद्यभिमानी देवता और परमात्मा, दोनों अदृश्य होनेके कारण, वे नहीं, उनका भेदभी प्रसक्त नहीं होता। वाक्यसे भेदका प्रसक्त होना चाहिये।

वा. व. - ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्'' इत्यादि वाक्योंसे पृथिव्याद्यभिमानी देवताओंमें और परमात्मामें भेदका निरूपण करके पुन: उसका निषेध करना। ''प्रक्षलानाद्धि पंकस्य दूरास्पर्शनं वरम्, कीचडमें पैर रखकर, बादमें उसको धोनेकी अपेक्षा, कीचडसे दूर रहना ही अच्छा है, पृथिव्याद्यभिमानी देवतामें और परमात्मामें भेदका न कहना ही अच्छा है। इसलिये ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टा'' वाक्य आदित्यादि जीवोंमें परमात्माके भेदको पूर्ववाक्यसे नियम्य नियामक भावसे प्राप्त भेदका निषेध करता है, ऐसा कहना किस तरह युक्ति संगत होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'कस्मात् पुन: कारणात्' २* इस भाष्यका अभिप्राय क्या है ?

प्र. गं. - पृथिव्याद्यभिमानी देवता महानुभव हैं, तो अपनेमें नियामक, अन्तर्यामी परमात्माको मनुष्यकी तरह जानते नहीं। ''य पृथिवी न वेद' 'य आपो न विदु:' इत्यादि वेद वाक्य कहते हैं ऐसा

१* यं पृथिवी न वेद, यं सर्वाणि भूतानि न विदुरितिचान्येनियन्तव्याविज्ञातारो नो'' नियन्ता अन्तर्यामीति प्राप्तं तदन्य शंका निवृत्यर्थमुच्यते ''नान्यतो'' इति

२* कस्मात्पुन: कारणात् पृथिव्यादि देवा महाभागा सन्त: मनुष्यादिवदात्मनि तिष्ठन्तं आत्मनो नियन्तारं अन्तर्यामिणं न विदुरित्यत: आह अदृष्टो न दृष्टो: इति।

कहना किस तरह युक्ति संगत होगा ? यह आक्षेप आनेपर, आक्षेपके परिहार के लिये ''एषोन्तरात्मा अन्तर्याम्यमृत: अद्दष्टो द्रष्टा अश्रुत श्रोता अयतो मन्ता विज्ञातो...... नान्यतोऽस्ति द्दष्टा नान्यतोस्ति श्रोता, यह वेद वाक्य प्रवृत्त है।

वा. व. - देवता अपने अन्तर्यामी को क्यों नहीं जानते ? इस आक्षेपके परिहार के लिये ''अद्दष्टो द्रष्टा'' ''नान्यतोऽस्ति द्दष्टा'' वाक्य प्रवृत्त है, तो आक्षेपका परिहार किस तरह किया गया ?

प्र. गं. - परमात्मा अद्दश्य है किसीको दिखायी नहीं देता। उसके विषयमें सुनभी नहीं सकते। देखनेवाला, सुननेवाला कोई नहीं ''अत: अन्य: द्दष्टा नास्ति'' कोई भी देख नहीं सकता, अत: अन्तर्यामी परमात्माको देखनेवाला कोई नहीं, यह इस वाक्यका तात्पर्य नहीं। जैसे धर्माधर्म (पुण्यपाप) आदि अतीन्द्रिय होनेसे, उनको देखनेवाला कोई नहीं। वैसे ही अन्तर्यामी परमात्माको देखना अशक्य है। महानुभव देवता भी उसको देख नहीं सकते। अन्तर्यामीको न देखने के कारण देवताओंमें कोई न्यूनता नहीं, इस रीतिसे आक्षेपका परिहार किया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात् तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित् स लोकवित् देववित्स: भूतवित्स आत्मवित्स: सर्व विदिति'' अन्तर्यामी प्रकरणके आरंभ वाक्यकाअर्थ शंकराचार्यने क्या लिखा है ?

प्र. गं. - कोई १* मनुष्य इस सूत्रको जानता हो, उसी तरह इस सूत्रांतर्गत होकर, सूत्रके नियामक अन्तर्यामी पूर्वोक्त रीतिसे जानता हो वही ब्रह्मवेत्ता है। वही ब्रह्मको जानता है। अन्तर्यामी से नियमित भूरादि लोकोंको भी जानता है। अग्न्यादि देवताओंका परिज्ञान कर लेता है। प्रमाणभूत समस्त वेद अवगत होते हैं। सूत्रसे धृत सूत्रान्तर्गत अन्तर्यामिसे नियम्य चतुर्मुखादि समस्त प्राणियोंका ज्ञान उसे होता है। कर्तृत्व, भोक्तृत्व विशिष्ट अन्तर्यामीसे नियम्य अपने आपको समझता है। परमात्माके वशमें रहे नियमित समस्त जगतका बोध करा लेता है। इस तरह शंकराचार्यने अर्थ किया है।'' यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात् तं च अंतर्यामिणंमिति स ब्रह्मवित्, स लोकवित्, स देववित् सवेदवित् स भूतवित्, आत्मवित्, स सर्वविदिति।''

वा. व. - ''यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात् तंच अंतर्यामिणंमिति स ब्रह्मवित्, स लोकवित्, स देववित् सवेदवित् स भूतवित्, आत्मवित्, स सर्वविदिति'' इत्यादि वेद वाक्यसे, उसके व्याख्यानभूत शंकरभाष्यसे, क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - चतुर्मुखादि समस्त देवता नियम्य हैं। समस्त जगत नियम्य है। परमात्मा नियामक है, कहनेके कारण नियम्य नियामक भावसे, चेतनाचेतन प्रपंचका ब्रह्मसे भेद सिद्ध होता है। जीव अन्तर्यामी परमात्माको जानता है। चतुर्मुखादि समस्त चेतनोंको समझता है। यह सिद्ध होता है।

१* य: कचिद्वै तत्सूत्र हे काप्य विद्याद्विंजानीयात्तं चांन्तर्यामिणं सूत्रान्तर्गतं तस्थेन सूत्रस्य नियन्तारं विद्याद्य: इत्येवमुक्तेन प्रकारेण, स ब्रह्मवित् परमात्मवित् स लोकांश्च भूरादिनंमतर्यामिणा नियम्यानां लोकान् वेत्ति, स देवांश्च अग्न्यादीन् लोकिनो जानाति, वेदांश्च सर्व प्रमाण भूतान्वेत्ति; भूतानि च ब्रह्मादीनि सूत्रेणध्रियमाणानि तदन्तर्गतेनान्तरयामिणा नियम्यानानि वेत्ति सर्वंच जगथाभूतं वेतीति स आत्मानं च कर्तृत्व भोक्तृत्वं विशिष्टं तेनैवावन्तर्यामिणा नियम्यमानं वेत्ति। सर्वंच जगत्तथाभूतं वेत्ति। (बृ. भा ३-७-२)

१८९ – सिविल सूट (३)

वा. व. – शास्त्रीजी 'य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति सब्राह्मण: (बृ. ३-८-१०) अक्षरप्रकरणमें स्थित इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – जो अक्षरनामक परमात्मा को जानकर मर जाता है, वही ब्राह्मण है।

वा. व. – इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – जीव अक्षरनामक परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करता है।

वा. व. – 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यो श्रोतव्यो मन्तव्य:' 'दृश्यतेत्वग्रया बुद्ध्या' तस्मिन् दृष्टे परावरे, मनसैवानु द्रष्टव्यं एष वा दृष्टा, दृष्टैव तं मुच्यते नापरेण, इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – जीव परमात्माके दर्शन करे, श्रवण करें दर्शन के भाग्य प्राप्त करे। उस परमात्माके दर्शनसे मोक्ष प्राप्त करे। यही इस मन्त्रका अभिप्राय है।

वा. व. – इस वाक्यसे जीव दृष्टा, श्रोता है यह सिद्ध होता है।

प्र. गं. – पूछना क्या है ? जीवका दृष्टत्व सिद्ध होता है। जीव परमात्माके दर्शन नहीं करेगा तो, उसको मोक्ष कैसे मिलेगा ?

वा. व. – शास्त्रीजी ! 'नान्यतोऽस्ति द्रष्टा' इस वाक्यका अर्थ शंकराचार्य क्या किया है ?

प्र. गं. – ''अतोऽस्मादन्तर्यामिणो नान्यतोस्ति द्रष्टा तथा नान्यतोऽस्ति श्रोता' इस तरहका अर्थ लिखा है।

वा. व. – इस व्याख्यानसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – अन्तर्यामि परमात्माके अतिरिक्त कोई दृष्टा, श्रोता नहीं। ऐसे उक्त होनेके कारण, परमात्मासे भिन्न जीव नहीं। जीव परमात्मा एक ही है। यह सिद्ध होता है।

वा. व. – शास्त्रीजी ! अन्तर्यामी प्रकरण के उपक्रममें 'यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यातं' इत्यादि वाक्य '' य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा' आत्मा वाऽरे दृष्टव्य:, दृश्यतेत्वग्रयाबुद्ध्या, एष वा द्रष्टा आदि पूर्ववाक्यमें उक्त अनेक प्रमाणोंसे जीव द्रष्टा, श्रोता, ज्ञाता के रूपमें प्रसिद्ध है। शंकराचार्यने भी इन वेदवाक्योंका व्याख्यान करते समय जीवको द्रष्टा, ज्ञाता, श्रोता के रूपमें स्वीकार किया है। इस स्थितिमें 'नान्यतोऽस्ति द्रष्टा' इस वाक्यका अर्थ परमात्माके सिवा और कोई द्रष्टा ही नहीं। किस तरह युक्ति संगत होगा ?

प्र. गं. – ''एष: वा द्रष्टा'' इत्यादि वाक्य, जीवके व्यावहारिक दृष्टत्वका कथन करता है। नान्यतोऽस्ति द्रष्टा' श्रुति पारमार्थिक दृष्टत्व का निषेध करती है। अत: इन वाक्योंमें कोई विरोध नहीं।

वा. व. – एष वा द्रष्टा इत्यादि वाक्योंमें जीवका व्यावहारिक दृष्टत्व कथन करनेवाला क्या कोई पद है ? नान्यतोऽस्ति द्रष्टा वाक्यमें क्या पारमार्थिक दृष्टत्व का निषेध करनेवाला पद है ?

प्र. गं. – नहीं।

कोर्ट – प्रमाण अपने अपने विषयोंको पारमार्थिक रूपमें ग्रहण करते हैं, व्यावहारिक के रूपमें ग्रहण नहीं करते। ऐसा अद्वैती ही कहते हैं। अत: प्रमाणोंसे सिद्ध होनेवाले दृष्टत्वादिकोंको व्यावहारिक न कहें। अगर दूसरा कोई समाधान होगा तो कहिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! 'नान्यतोऽस्ति द्दष्टा' वाक्यका अर्थ आप किस तरह करते है ?

वा. वि. - शास्त्रीजीके कथनके अनुसार ही, महानुभव पृथिव्याद्यभिमानी देवता, साधारण मानवोंकी तरह अपने अन्तरमें विद्यमान अन्तर्यामी को नहीं जानते, यह कैसे हो सकता है ? इस आशंका पर ''अद्दष्टो द्रष्टा, अश्रुत श्रोता वाक्य प्रवृत्त हुवा है। एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति द्दश्यते ''कथन के अनुसार परमात्मा अन्योंसे दिखाई नहीं देता, सुना नहीं जाता, अन्योंके द्दष्टिगोचर न होनेके कारण, अन्योंके श्रवणयोग्य न होनेसे अन्य: द्दष्टा = परमात्मासे भिन्न जीव अन्तर्यामी द्दष्टा, श्रोता नहीं होगा, धर्मादि (पुण्यपाप) अतींद्रिय होनेसे, धर्मादि द्रष्टा कोई नहीं, कहनेपर - जीवका निषेध नहीं होगा और अतींद्रिय धर्मादिकोंको न देखनेसे जीवमें कोई न्यूनता भी नहीं आयेगी। उसी तरह अन्योंके प्रयत्न करनेके बावजूद भी जब परमात्मा द्दष्टिगोचर नहीं होता, द्दष्टा जीवोंका अभाव सिद्ध नहीं होता। पृथिव्याद्यभिमानी देवता परमात्माको नहीं देखते, उनमें भी कोई न्यूनता नहीं होगी।

वादि ए. २८, प्र. वा. ए. ११८
'संयश्चायं पुरूषे' श्रुतिपर विचार

वा. वि. - शास्त्रीजी ! ''सयश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये स एक:'' वाक्य जीवेश्वर के ऐक्यकी सिद्धि किस तरह होती है ?

प्र. गं. - पुरूषमें जो परमात्मा है, सूर्यमें जो परमात्मा है, वह परमात्मा एक ही है। उसमें भेद नहीं। इस तरह उक्त होनेके कारण, परमात्मा जीवसे भिन्न नहीं।

वा. व. - ''य आदित्ये तिष्ठन् आदित्यादन्तर: (बृह) आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोन्तर'' (बृ.) इन वाक्योंसे कौनसा अर्थ सिद्ध होता है । ''अन्तर्याम्यधिदैवादिषुतध्दर्मव्यपदेशात्'', शारीरश्चोभयेपि हि भेदेनै नमधीयते'' सूत्रकारके निर्णयके विषयमें, शंकराचार्यने अपने भाष्यमें क्या कहा है ?

प्र. गं. - आदित्यादि देवतामें स्थित आदित्यादि देवताओंका नियमन करनेवाला परमात्मा आदित्यादि देवतासे भिन्न है, जीवमें रहकर जीवका नियमनकर्ता परमात्मा जीवसे भिन्न है। यह है सूत्रकारका निर्णय, शंकराचार्यने ऐसा ही लिखा है।

वा. व. - आदित्यांतर्गत परमात्मा आदित्यसे भिन्न है। जीवान्तर्गत परमात्मा जीवसे भिन्न है, यह सिद्ध होता है या नहीं ? या अभिन्न सिद्ध होता है ? (आदित्य परमात्मामें जीव परमात्मामें क्या ऐक्य सिद्ध होता है ?)

प्र. गं. - आदित्य, जीव इनसे परमात्माका भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - ''य आदित्ये तिष्ठन्'' आदि वाक्य की भाँति यश्चायं पुरूषे यश्चासवीदित्ये स एक: वाक्य आदित्यांन्तर्गत परमात्माको आदित्यसे, जीवान्तर्गत परमात्माको जीवसे भेद सिद्ध होता है,

तब आपने जीवपरमात्माके अभेदके विषयमें इस वाक्यका उदाहरण क्यों दिया ?

प्र. गं. - 'स यश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये' वाक्यसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध होनेपर भी ''स एक:''वाक्य परमात्माको एक मानता है, अत: जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है।

वा. व. - ''स एक:'' वाक्य जो परमात्मा पुरूषमें है वे अन्तर्यामीरूप एक ही हैं। परमात्मामें एकता है, जीवोंके साथ एकता नहीं। ''सयश्चायं पुरूषे'' पूर्व वाक्यस्थ जीवको परमात्मासे भिन्न मानकर ''स एक:'' वाक्यसे अभेदका निरूपण करता है, यह कहना किस तरह युक्त होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादि वकीलोकी जिरह

वा. व. - कोर्टसे ! महाप्रभु ! ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्' ''य आदित्ये तिष्ठन्'' ''य आत्मनि तिष्ठन्'' अन्तर्यामी प्रकरणमें विद्यमान ये इक्कीस वाक्य पृथिव्याद्यभिमानी देवताओंमें, जीवोंमें नियम्य नियामकभावसे परमात्माके भेदका बोध करते हैं। सूत्रकारने इन वाक्योंको भेदपर के रूपमें निर्णय किया है । शंकराचार्यने अपने व्याख्यानमें इन वाक्योंको भेदपर माना है । अत: जीव परमात्माके भेदविषयमें यह श्रुति प्रमाणभूत है। सयश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये यह तैत्तिरीय श्रुति आधार आधेयभावसे आदित्यादि जीवपरमात्मामें भेदका प्रतिपादन करती है। कोर्ट इस विषयपर गौर करे।

प्रतिवादि वकीलोंका ऑर्ग्युमेंट

प्र. व. - (To the court) My Lord ! 'य: पृथिव्यां तिष्ठन्' आदि वाक्य जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करते है । इन वाक्योंको भेदप्रतिपादकके रूपमें निर्णय करते हैं । सूत्रकार, भेदबोधक मानते हैं शंकराचार्य.... पर ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टा'' इस उत्तरवाक्यमें ही, परमात्मातिरिक्त कोई द्रष्टा नहीं, इस तरह कहनेके कारण, इस भेदको मिथ्या (व्यावहारिक) समझना चाहिये, पारमार्थिक सत्य न माने।

''सयश्चायं पुरूषे यश्चासावादित्ये'' वाक्यसे यद्यपि भेद कहा गया है। पर ''स एक'' वाक्य एक ही परमात्माको मानता है, अत: यह भेद मिथ्या ही है। इसलिये 'य आत्मनि तिष्ठन्' इत्यादि वाक्य, 'सयश्चायं पुरूषे' वाक्य जीव परमात्माके भेद विषयमें आधार नहीं हो सकते । अभेद विषयमें ही आधारभूत होते हैं। इस विषयको कोर्ट ध्यान दे यह हमारा विज्ञापन है।

वादि वकीलका ऑर्ग्युमेंट

वा. व. - कोर्टसे, धर्मराज प्रभु !

१) आदित्यादि जीवोंमें नियम्य नियामक भावसे इतर प्रमाणोंसे अप्राप्त परमात्मासे भेद है। वेद

स्वयं भेदका निरूपण करके ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टा'' वाक्यसे उसी भेदका निषेध करता है, उस नीतिके अनुसार कीचडमें पैर रख फिर उसको साफ करना, इससे यही अच्छा है कि कीचडमें पैर ही न रखे यह भेद को कहकर उसका निषेध करनेसे यही अच्छा होगा कि भेदका बयान ही न करे।

२) अन्तर्यामी प्रकरणके उपक्रममें ''तच्चान्तर्यामिणं (विद्यात्) सब्रह्मवित्'' इत्यादि अनेक वाक्योंसे जीवको ज्ञाता कहा है।

३) 'य: पृथिव्यां तिष्ठ न्' इत्याद्यनेक वाक्योंसे जीवको परमात्मासे भिन्न कहा है। वेदार्थ निर्णायक सूत्रोंमें सूत्रकारने इन वाक्योंको जीवपरमात्माके भेद प्रतिपादकके रूपमें निर्णय किया है।

४) ''एष वा द्रष्टा'' ''आत्मावारे द्रष्टव्य:'' आदि वाक्योंसे जीवका द्दष्टत्व कहा गया है।

५) ''य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा'' अन्तर्यामि प्रकरणके अनंतरमें स्थित अक्षर प्रकरणमें जीवको ज्ञाता कहा गया है।

६) महानुभव देवता भी अपने अन्तर्यामी परमात्माको क्यों नहीं जानते ? इस शंकाके उत्तरमें ''अद्दष्टो द्रष्टा अश्रुत श्रोता नान्यतोस्ति द्रष्टा नान्यतोऽस्ति श्रोता'' वाक्य प्रवृत्त हुवा है। अतीद्रिंय होनेसे धर्मादि (पुण्य पाप) देख नहीं सकते, पर उनका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। उनको न देखनेसे कोई न्यूनता नहीं आती। उसी तरह परमात्मा अद्दष्ट होनेसे प्रयत्न करनेपर न दिखाई देनेपर; उसको देखनेवाला कोई नहीं ऐसे नहीं कह सकते। जीव ही नहीं ऐसा व्यवहार नहीं करते, पृथिव्याद्यभिमानियोंके न देखनेसे उनमें कोई न्यूनता नहीं आती। परमातिरिक्त जीव ही नहीं ऐसा सिद्ध नही होता। वैसे कहनेसे जीवके द्दष्टत्व, श्रोतृत्व, विज्ञाततृका प्रतिपादन करनेवाले वेदवाक्योंका विरोध्र होगा। वेदोंका कथन व्यवहारिक है, हम पारमार्थिक द्दष्टत्वका निषेध करते हैं, यह कहना भी सही नहीं। अद्वैतियोंके कथनके अनुसार प्रमाण अपने अपने विषयोंको पारमार्थिक सत्यके रूपमें ही ग्रहण करते है, व्यावहारिकरूपमें ग्रहण नहीं करते। अत: पूर्व आचार्योंके सिद्धान्त विरूद्ध होनेसे परमात्माके अतिरिक्त द्दष्टा नहीं, इससे जीवका निषेध होता है ऐसे नहीं कह सकते। 'य आत्मनि तिष्ठन् आदि वेदवाक्य भेदका ही प्रतिपादन करते हैं। ''यश्चासावादित्ये'' मंत्रभी भेद प्रतिपादक हैं। कोर्ट इसपर ध्यान दे।

वा. ए. ५, प्र. ए. ९
''नान्यदतोऽस्ति द्दष्टा'' अक्षर प्रकरणस्थ श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मूहुर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा ऋतव: संवत्सरा इति विधृता तिष्ठन्ति एतस्य वा अक्षरस्य गार्गि प्राच्योऽन्या नद्य: स्यन्दन्ते श्वेतेभ्य: पर्वतेभ्य: प्रतीच्योऽन्या नद्य: स्यन्दन्ते श्वेतेभ्य: पर्वतेभ्य: प्रतीच्योऽन्या यां यां दिशमन्वे तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्या: प्रशसन्ति यजमानं देधा, दर्वी पितोऽन्वायत्ता:।

योवा एतदक्षरं गार्गीविदित्वाऽस्मालोकात् प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा

१९३ - सिविल सूट (३)

अस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मण: ।

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यद्रष्टं द्रष्टु श्रुतं श्रोत्रमतं मन्त्रु श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मंतृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञातृ एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्ग्यकाश ओतश्च प्रोतश्चेति (बृ. ३-८-११) इन वाक्योंसे जीव परमात्माका भेद कैसे कहा जाता है ?

वा. वि. - अक्षरनामक परमात्माकी आज्ञासे ही, सूर्यचन्द्र द्यावा पृथिवी, निमेष, मुहूर्त आदि समस्त पदार्थ धृत है । उस परमात्मा की आज्ञासे ही नदियाँ बहती है । सूर्य चन्द्रादि चेतनाचेतनात्मक विश्वका परमात्मा ही शासक है। उसीसे दण्डय, उसीसे जन्य, उसीसे नियम्य है, वही नियन्ता है, वही धारक है, चेतनाचेतनात्मक प्रपंचका परमात्माका भेद ही कहा गया है । ''एतदक्षरं गार्गि विदित्वा'' वाक्यसे, अक्षर नामक परमात्माका ज्ञेयत्व, जीवका ज्ञातृत्वज्ञात होता है। अत: ज्ञातृज्ञेय भावसे भेद ही सिद्ध होता है।

प्र. व. - शास्त्री महोदय ! आपने इन वाक्योंके उदाहरणको जीवपरमात्माके विषयमें कहा है। आपका कहना है कि इन वाक्योंसे जीवपरमात्मा का अभेद सिद्ध होता है, वह कैसे ?

प्र. गं. - ''नान्यदतोऽस्ति द्रष्ट्, नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ'' इस वाक्यसे यह बोध होता है कि, परमात्मासे भिन्न जीव नहीं ऐसा सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'एतस्य वा अक्षरस्य' वाक्य का अर्थ शंकराचार्यने क्या किया है ?

प्र. गं. - सूर्य चन्द्रादि समस्त जगत् परमात्मासे शास्य है, जन्य है, नियम्य है, धार्य है । परमात्मा शासक है। जनक है, नियामक है, धारक है ऐसा अर्थ शंकराचार्यने किया है।

वा. व. - १) जगद्व्यवस्था प्रशास्तृपूर्विका व्यवस्थात्वात् राज्यव्यवस्थावत्

२) ''विमतौ विशिष्ट ज्ञानवता निर्मितौ प्रकाशकत्वात् दीपवत्

३) ''विमता नियन्तृपूविका नियन्तृ प्रवृत्तित्वात् भृत्यादि प्रवृत्तिवत्

४) विमतौ प्रयत्नवता धृतौ अस्तवतंत्रत्वात् हस्तन्यस्त पाषाणवत्

इन अनुमानोंको किसने कहा है ?

प्र. गं. - उपरोक्त मन्त्रोंके व्याख्यान करते समय ये वेदोंसे, शंकराचार्यके भाष्यसे सूचित हैं, ऐसा आनंदगिरी कहते हैं।

वा. व. - इन अनुमानोंसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - सूर्यादि जगतका एक धारक, प्रशासक है, निर्मापक है, नियामक है। वही अक्षर नामक परमात्मा है यह प्रमाणित होता है।

वा. व. - शास्य शासक भावसे सूर्यादि जीवोंसे परमात्माका भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - ''एतस्य वा अक्षरस्य'' वाक्यसे भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - वेदोंसे सिद्ध भेदका स्वीकार करना चाहिये न ?

प्र. गं. - अगर वेदको भेद कथनमें तात्पर्य हो तो अवश्य स्वीकार करना चाहिये। इस वाक्यको भेद कथनमें तात्पर्य नहीं।

वा. व. - भेद कथनमें तात्पर्य न होता तो, यह श्रुति भेदका प्रतिपादन क्यों करती है ?

प्र. गं. - निषेध करनेके उद्देशसे अनुवाद करती है।

वा. व. - निषेध के योग्य क्या होता है ?

प्र. गं. - अन्य किसी प्रमाणसे प्रसक्त जो होता है। उसका निषेध हो सकता है।

वा. व. - परमात्मासे सूर्यादि देवता का भेद किस प्रमाणसे सिद्ध है ?

प्र. गं. - वेदातिरिक्त प्रमाणोंसे भेद की प्रसक्ति अशक्य है, अत: 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने'' रूप वेदसे ही भेद प्रसक्त है ऐसा कहना चाहिये।

वा. व. - ''एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' पूर्ववाक्यसे प्रसक्ति को दिखा करके ''नान्यदतोऽस्ति'' इस उत्तर वाक्यसे निषेध करना यह उसी ''प्रक्षालनाद्धि'' नीतिके अनुगुण होगा। इससे यही अच्छा रहेगा, प्रसक्ति को न दिखाके, निषेध करना, प्रसक्ति दिखाकर निषेध करना अयुक्त है।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - वह भेदनिषेधक वाक्य कौनसा है ? कहिये !

प्र. गं. - नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यतोऽस्ति श्रोतृ वाक्य अत: परमात्मासे भिन्न द्रष्टा जीव नहीं, इस प्रकार भेदका निषेध किया गया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! तद्वा एतदक्षरं गार्गि अद्दष्टृ, अश्रुतं श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ, इस वाक्यका शंकराचार्यने कौनसा अर्थ किया है ?

प्र. गं. - ''एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' १* वाक्यसे विश्वका एक शासक हो। वह शासक परमात्माके सिवा और कोई नहीं हो सकता, अत: परमात्माको शासकके रूपमें स्वीकार करना चाहिये। इस कथनके उपरान्त सांख्य कहते हैं - अग्निका दाहकत्व, प्रकाशत्व जैसे स्वाभाविक है। वैसे प्रकृतिका स्वाभाविकत्व स्वाभाविक है। अत: प्रकृति से भिन्न परमात्माका स्वीकार करना आवश्यक नहीं। इस सांख्योंके पूर्व पक्षके परिहारके लिये 'तद्वा एतदक्षरं गार्गि अद्दष्टृ....... नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ' वाक्य प्रवृत्त है। अक्षर लोगोंसे अद्दष्ट है, वह स्वयं देखता है। पृथिव्यादि आकाशान्त पदार्थ हो द्रष्ट नहीं होते। इसलिये जगत का शासक, द्रष्टृ, अक्षर परमात्मा ही, प्रकृति नहीं - इसको स्वीकार करना होगा।

वा. व. - इस वाक्यसे शंकराचार्यने किसके द्रष्टत्वका निषेध किया है ?

प्र. गं. - प्रधानादि अचेतनके द्रष्टत्वका निषेध किया है।

वा. व. - द्रष्टृ जीवका निषेध नहीं किया है न ?

१* प्रधानवादिन: शंकामनूद्य उत्तर वाक्येन निराकरोति अग्नेरित्यादिना ९बृ. आनं. (३-८-११) अग्नेर्दहन प्रकाशकेत्ववत् स्वाभाविकमस्य प्रशाक्तत्वमचेतनस्येमेत आहे तव्या एतदक्षरं ..... तदेवाक्षरं सर्व बुद्धिदारेण विज्ञानक्रियाकर्तृ। नाचेतनं प्रधान मान्यव्या (बृ. शा. भा ३-८-११) अन्यव्दा पूर्वोक्तमव्याकृतादि पृथिव्य़दितं (आनंदगिरी)

१९५- सिविल सूट (३)

प्र. गं. - जीवका निषेध नहीं किया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''योवा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वा, य एतदक्षर विदित्वाद वाक्य क्यों प्रवृत्त है ? इस वाक्यकी प्रवृत्तिका समर्थन शंकराचार्यने किस तरह किया है ?

प्र. गं. - जगद्व्यवस्था प्रशास्तृपूर्विका व्यवस्थातत्त्वात् राज्यव्यवस्थावत् आदि अनुमानोंसे प्रशासक अक्षर नामक परमात्मा के अस्तित्वका कथन करके, जिसके अज्ञानसे बन्ध, जिसके ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञानाज्ञान के लिये विषयीभूत एक पदार्थका होना आवश्यक है। वह विषय परमात्मा ही होगा। उस परमात्माकी सिद्धि के लिये यह वाक्य प्रवृत्त है। यह शंकराचार्यका समर्थन है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! परमात्मा द्रष्टृ जीवके ज्ञानका विषय होना चाहिये, तभी परमात्मा की सिद्धि होगी। जीव द्रष्टृ नहीं होगा तो अक्षर नामक परमात्मा सिद्धि नहीं होगी। अत: ''नान्यदतोस्ति द्रष्टृ'' वाक्यसे द्दष्टृ सिद्ध नहीं होगा तो, परमात्मा सिद्ध नहीं होगा।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवति'' (छां. ६-१-३) वाक्यका अर्थ शंकराचार्यने क्या किया है ?

प्र. गं. - ''येनादेशेन श्रुते अश्रुतमप्यन्यत् श्रुतं भवति अमतं मतं भवति'' परमात्माके विषयको श्रवण करनेसे, मनन करनेसे, जाननेसे, परमात्मासे भिन्न जगत् श्रुत होता है, ज्ञात होता है, मत होता है, यह शंकराचार्यका अर्थ है।

वा. व. - इस वेदवाक्यसे, शंकराचार्यके व्याख्यानसे भी जीव परमात्माके विषयका श्रवण करता है, मनन करता है, जानता है, जीवके श्रोतृत्व, मन्तृत्व, विज्ञतृत्वकी सिद्धि होती है या नहीं ?

प्र. गं. - जीव द्दष्टृ है, श्रोता है, मंता है, बोद्धा, विज्ञाता है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''एष हि द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, विज्ञानात्मा पुरूष: इस वाक्यसे क्या बोध होता है ? (षट् प्र. ४-९)

प्र. गं. - इस वाक्यसे यह ज्ञान होता है कि जीव द्रष्टा है, श्रोता है, मंता है, ज्ञाता है।

वा. व. - इससे जीवका द्रष्टत्व, श्रोतृत्व, मन्तृत्व, ज्ञातृत्व सिद्ध होते हैं न ?

प्र. गं. - जीवके द्दष्टत्वादि धर्म सिद्ध होते हैं।

वा. व. - आत्मावारे द्रष्टव्य: श्रोतव्य: मन्तव्य: निदिध्यासितव्य: (बृ. २-३-५) इस वाक्यसे कौनसा अर्थ सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - इस वाक्यसे जीवके द्रष्टत्व, श्रोतृत्व सिद्ध होते हैं।

वा. व. - इस वाक्यसे जीव द्रष्टा, श्रोता है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्णं (मु. ३-१-३) इस वाक्यसे क्या अर्थ निकलता हैं ?

कोर्ट - एक ही प्रकारके कितने प्रश्न पूछते हैं ? बस है, समाप्त कीजिये।

वा. व. - महाप्रभु ! पूर्वमें उक्त वाक्य और 'तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति' आदि हजारों वाक्य, सूत्र, गीता वाक्य, जीवको द्रष्टृ, श्रोता, मन्ता ज्ञाता कहते हैं। जीव द्दष्टृ नहीं। ''नान्यदतोऽस्ति''

वाक्यका अद्वैतियोंके अनुसार किया गया अर्थ सही नहीं, इसको सिद्ध करनेके लिये, अनेक वाक्योंका उदाहरण दिया गया तथा बहुतसे प्रश्न किये गये। कोर्टके हुकुमसे समाप्त करते हैं। आवश्यकता हो तो प्रश्न पूछनेका मौका हांसिल हो, यही निवेदन है।

कोर्ट - ठीक है! दूसरे विषयपर विचार चले।

वा. व. - शास्त्रीजी! 'आत्मावारे द्वष्टव्यः' आदि हजारों मन्त्र, जीवका द्वष्टत्व, श्रोतृत्व, मन्तृत्व, विज्ञातृत्व, परमात्माके द्वश्यत्व, श्राव्यत्व, मननीयत्व, विज्ञेयत्वके गुणोंको घोषणा करते हैं। पर शंकराचार्य कहते हैं....... एतदेवाक्षरं, दर्शन, क्रिया, कर्तृत्व.... नाचेतनं प्रधानं अन्य द्वा, अचेतन प्रधानको, पृथिव्यादिको दर्शन कर्तृत्व नहीं। अचेतन प्रधानका द्रष्ट्रत्वका निषेध करते हैं। पर शंकराचार्यने यही नहीं कहा कि जीव द्रष्टृ नहीं। अक्षर नामक परमात्मासे भिन्न प्रधान जड द्रष्टा नहीं। अतींद्रिय पदार्थ दर्शन के लिये अशक्य होनेसे, परमात्माको देखनेवाला और कोई नहीं, परमात्मातिरिक्त जीवका ही निषेध किया गया है। ऐसा कहना तर्कसंगत नहीं होगा।

प्र. गं. - आपसे उक्त हजारों मंत्र, हजारो श्रुतियाँ, जीवको व्यावहारिक द्वष्टत्वका बयान करते हैं। नान्यदतोऽस्ति वाक्य जीवके पारमार्थिक द्वष्टत्वका निषेध करते हैं। जीव ही न होनेसे विरोध भी नहीं होगा।

कोर्ट - वेदादि प्रमाणोंसे ज्ञात वस्तुवोंको व्यावहारिक ऐसा न समझें, उनको पारमार्थिक ही समझें। इस तरह अद्वैतियोंने कहा है। अतः वेदादिसे सिद्ध वस्तुवोंको व्यावहारिक नहीं कहें और कोई समाधान हो तो कहिये।

प्र. गं. - शंकराचार्यने कहा है - ''नान्यदतोस्ति द्रष्टृ'' परमात्मातिरिक्त जीव नहीं। अतः जीवपरमात्माके भेदका निषेध करता है, ब्रह्मसूत्रमें आचार्यने कहा है। जीवपरमात्माके अभंदके विषयमें इस वाक्यको प्रमाणतया प्रस्तुत किया है।

वा. व. - अन्य अर्थ की संभावना के रहते अनेक प्रमाणोंके विरूद्ध अर्थ स्वीकार करना युक्त नहीं होगा।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो! 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः'' तद्वा एतदक्षरं गार्गि अद्वष्टं द्रष्टृ..... नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोस्ति श्रोतृ एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्चेति, यह अक्षर प्रकरण है। सूर्यचन्द्र द्युलोक, पृथ्वीलोक निमेष मुहूर्त आदि चेतनाचेतनात्मक समस्त जगत् अक्षरनामक परमात्माके ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होगी। अक्षरसे भिन्न जडभूत प्रकृत्यादि जगतका शासक नहीं बन सकता, द्वष्टा नहीं होगा। अतः परमात्मा चेतनाचेतनात्मक प्रपंचसे पूर्णरूपसे भिन्न है। शंकराचार्यने अपने उपनिषद्भाष्यमें इसी प्रकारका अर्थ किया है। अतः इस वाक्यसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता है।

इस विषयकी ओर कोर्ट ध्यान दें।

१९७ - सिविल सूट (३)

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! यद्यपि 'एतस्य वा प्रशासने' इत्यादि पूर्ववाक्यमें सूर्य चन्द्रके साथ, शास्य शासक भावसे प्राप्त भेदका निषेध 'नान्यदतोऽस्ति' द्रष्टृ वाक्यसे किया गया है। परमात्मासे अन्य द्रष्टा ही नहीं। निषेध करनेके कारण पूर्ववाक्योक्त भेदका स्वीकार करना योग्य नहीं। ''नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ'' वाक्यसे उक्त अभेदका ही स्वीकार करना चाहिये। इस विषयका परामर्श कोर्ट गौरसे करें।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! ''नान्यदतोस्ति द्रष्टृ'' वाक्य प्रसक्त भेदका निषेध करता है यह कहना अनेकों कारणोंसे तर्कसंगत नहीं। कारण -

१) जिसका निषेध किया जाता है वह पूर्वमें प्राप्त हो। सूर्याचन्द्रादि भेदके निषेध के लिये वह पूर्वमें प्रसक्त हो सूर्य चन्द्रादि भेद प्रत्यक्षसे प्रसक्त नहीं होगा। वेद पूर्ववाक्यमें स्वयं सूर्यचन्द्रादिकोंके भेदका बयान कर, स्वयं ही उसका निषेध करता है ऐसा कहना, किचडमें सने पैरोंको धोनेकी अपेक्षा कीचडसे दूर रहना ही उचित है। भेदका कथन कर, उसका निषेध करनेकी अपेक्षा भेदको न कहना ही बुद्धिमानी है।

२) आत्मावारे द्रष्टव्य: श्रोतव्य: इत्यादि हजारों वाक्योंसे भेद सिद्ध होता है। जीवके द्रष्टत्व, श्रोतृत्व, प्रमाणित है। 'द्वासुपर्णा' आदि वाक्योंसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध है। अत: भेद निषेध्य नहीं बन सकता।

३) अचेतन प्रधानके शासकत्व के निवारण के लिये अक्षर प्रकरण की प्रवृत्ति है ऐसा शंकराचार्यभी मानते हैं। पृथिव्यादि द्रष्ट नहीं, प्रधानभी द्दष्टिगोचर नहीं। ''नान्यदतोऽस्ति'' वाक्य जीवका निषेध नहीं करता। भेद का भी निवारण नहीं करता, यह कहना ही युक्तिसंगत है।

वा. ए. ६   प्र. ए. १४
''यत्र हि द्वैतमिव भवति'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी! 'यत्र हि द्वैतमिव भवति' इस श्रुतिका उद्धरण आपने जो किया, वह किस लिये ? उस श्रुतिसे आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

प्र. गं. - जीव और ब्रह्ममें जो भेद दीखता है, उस भेदको मिथ्या सिद्ध करनेके लिये, मैंने उस श्रुतिका उद्धरण किया।

प्र. व. - इस वाक्यसे भेदका मिथ्यात्व किस तरह सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - ''यत्र हि द्वैतमिव भवति तदा इतरः इतरं पश्यति, जीघ्रति'' श्रुति, यत्र - जिस अविद्यावस्थामें, इव-मिथ्याभूत, द्वैतं -द्वैत प्रपंच है, उस अविद्यावस्थामें एक दूसरी वस्तुके गंधका आस्वादान करता है, इससे भेद सिद्ध होता है। ''इव'' पद प्रपंचके मिथ्यात्व ज्ञापक है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. गं. - यह, शंकरभगवपादका उपनिषद् भाष्य और वार्तिक है।

वा. व. - इस वाक्यका तात्पर्य कहिये। १*

प्र. गं. - द्रष्टान्त दार्ष्टान्ति बने चन्द्र और मुखमें पारमार्थिकत्व (सत्यत्व) दीखता है, इसलिये ''द्वैतमिव'' द्वैतके लिये द्वैतका द्वष्टान्त देनेसे द्वैतका पारमार्थिकत्व सत्यत्वकी सिद्धि होती है।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

कोर्ट - मि. शर्मा इसका विचार दूसरे इश्श्यूमें हो चुका है। अत: वह विचार आवश्यक नहीं।

वा. ए. ७
''यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''यत्रत्वस्यसर्वमात्मैवाभूत्'' श्रुतिसे जीवब्रह्म अभेद किस तरह सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - 'यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केनं कं पश्येत् तत्केन कं जिघ्रेत तत्केन कं रसयेत् तत्केन कम् अभिवदेत् तत्केन कं श्रुणुयात्तत्केन कं मन्वीस् तत्केनं कं स्पृशेत् तत्केन कं विजानीयात् येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् सएष नेति नेत्यात्मागृह्यो न गृह्यतेऽशीर्यो

१* ननु द्वैतेन उपमीयमानत्वात् द्वैतस्य पारमार्थिकत्वमिति (बृ. शां. भा. २-४-१४) द्वैतस्य द्वैतेनोपमीयत्वात् द्वष्टान्तस्य द्रष्टान्तिकस्य वस्तुत्वं स्यात् उपमानोपमेययोश्चंद्र मुखयोर्वस्तुत्वोपलंभात् इत्यर्थः ननु द्वैतमिवत्येदुपमानं कथं भवेत् द्वैतंवस्तु न चेदस्तित, (सुरेश्वराचार्य वार्तिक)

१९९ - सिविल सूट (३)

नहिशीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्जतेऽसितो नव्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय तावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञ्पवलक्यो विजहार (बृ. ४-५-१५) यह श्रुति भेदभिन्न प्रपंचका मिथ्यात्व का बोध करके जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करती है।

प्र. व. - इस श्रुतिका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - अविद्यावस्थामें ज्ञानीके लिये सबकुछ ब्रह्म ही होता है। (आत्मातिरिक्त कुछ भी नहीं रहता) उस समय किस घ्राणेन्द्रियसे किस गंधको सूंघेगा ? किस जिव्हासे किस रसको पहचानेगा ? किस वागींन्द्रियसे किस शब्दका उच्चारण करेगा ? श्रोत्रेद्रिंयसे किस शब्दको सुनेगा ? किस मनसे किस विषयपर सोचेगा ? त्वगीन्द्रियसे किसका स्पर्श जानेगा ? किससे क्या जानेगा ? किस परमात्मासे यह सबकुछ जानता है, उस परमात्माको कैसे जानेगा ? वह आत्मा नेति नेति = सर्वविलक्षण है। वह ग्रहण करने योग्य नहीं, नष्ट करनेयोग्य नहीं। नष्ट नहीं होता। वह विज्ञाता अपने आपको किस तरह जानेगा ? ज्ञानावस्थामें आत्मातिरिक्त पदार्थ नहीं होता। भेद भिन्न प्रपंचका मिथ्यात्वका प्रतिपादन करते ऐक्यका बोध करती है।

क्रॉस एक्झामिनेशन

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ? किससे रचित है ?

प्र. गं. - यह ग्रंथ शंकरभगवत्पादके भाष्यका व्याख्यान ब्रह्मविद्याभरण है। अद्वैतानंदने इसको लिखा है।

वा. व. - यह आपके लिये मान्य है न ?

प्र. गं. - परम मान्य है।

वा. व. - इस १* वाक्यका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - येनेदं सर्वंविजानाति, तं केन विजानीयात् = जिस परमात्मासे सबकुछ जानता है, उस ईश्वरको किस तरह समझेगा ? इस वाक्यमें ईश्वरको जीवसे भिन्न कहा है ? यह वाक्य जीवेश्वरमें अत्यंताभेद कहनेवाले मतका विरूद्ध है।

वा. व. - 'यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत - तत्केन कं विजानीयात् येनेदं विजानाति तं केन विजानीयात्, वाक्य जीव ब्रह्मके भेदका निरूपण करता है न ?

प्र. गं. - इस वाक्यसे जीवब्रह्मका भेद सिद्ध होता है लेकिन पूर्ववाक्यमें जीवब्रह्मका अभेद उक्त है, अत: किसी तरहसे ''येनं'' पदका ''य:'' ऐसा फर्क करके जो जीव जगतको देखता है, वह जीव अपने आपको किस तरह देखता है ? भेदपर अर्थ न हो ऐसा किसी तरह प्रयत्न करे। ऐसा

१* विज्ञातारमरे केन विजानीयात् इत्यत: पूर्ववाक्ये येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्, इति जीवात् भिन्नतया परमेश्वर: किमर्थं प्रतिपाद्यते येनेश्वरेण जीव: सर्वं विजानाति तं परमेश्वरं केन विजानीयादिति हि तदर्थ: तस्मदिदं वाक्यं अत्यंताभेदवादिनोऽननुगुणं इति। (ब्रह्मविद्याभारण १-१-२२)

ब्रह्मविद्याभरणकारने और अप्पय्य दीक्षितने कहा है।

वा. व. - अभेद कहनेवाला पूर्ववाक्य कौनसा है ?

प्र. गं. - अहं ब्रह्मास्मि वाक्य

वा. व. - इस वाक्यका विचार पहले हो चुका है। इस वाक्यसे ही अभेद प्रतिपाद्य नहीं तो ''स्वयमनुत्तीर्ण: क: परान् तारयिष्यति'' स्वयं पार न कर, डूबनेवाला दूसरोंको कैसे पार करेगा ? ये दोनों वाक्य अभेद प्रतिपादनमें समर्थ नहीं। इस विषयमें कैसे प्रमाण होंगे ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''स वा एष नेति नेति वाक्य किस प्रकरणंमें है ?

प्र. गं. - 'येनेदं सर्वं विजानाति' वाक्यमें यछ्छ्यब्दसे उक्त परमात्मा ''इति न इति न'' समस्त पदार्थोंसे विलक्षण है यह अर्थ होता है।

वा. व. - ''येन'' शब्दका ''स एष:'' शब्दका एकही अर्थ करना चाहिये न ?

प्र. गं. - सही है।

वा. व. - ''स:'' ''एष:'' शब्दोंसे किसका ग्रहण करना चाहिये ?

प्र. गं. - परब्रह्मका ग्रहण करना होगा।

वा. व. - ''येनं'' शब्दसे परमात्माका ही ग्रहण करना चाहिये। येन शब्दसे परमात्माका ग्रहण करनेपर ''येनेदं सर्वं विजानाति वाक्यका अर्थ क्या होगा ?

प्र. गं. - येन = जिस परमात्मासे इस समस्त जगतको जानता है उस परमात्माको किस तरह जानें ? ऐसा अर्थ होगा।

वा. व. - ''येन'' पदका ''य:'' प्रथमांत करके य: = जीव ऐसा अर्थ करनेमें समस्या पैदा होनेपर, जिस परमात्मासे ऐसा अर्थ करना पडेगा। ब्रह्मविद्याभरणकारने और अप्पय्या दीक्षितने जिस रीतिको बताया है, यह वाक्य जीव ब्रह्मके भेदका निरूपण करता है। अत: अभेदवादियोंके लिये प्रतिकूल है।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''येनं'' पदका विभक्तिमें अन्तर लाकर ''य:'' पदका ''जीव'' अर्थ लेकर जीव अपने आपको कैसे जानेगा ? ऐसा अर्थ करनेपर ''विज्ञातरमरे केन विजानीयात्'' वाक्य अर्थ इस तरह होगा विज्ञाता जीव कैसे जानेगा ? इस वाक्यमें पुनरुक्ति दोष आयेगा।

प्र. गं. - इन वाक्योंका व्याख्यान व्याख्येय भाव कहते हैं।

वा. व. - स्पष्ट वाक्योंका व्याख्यान व्याख्येय भाव किस तरह कह सकते हैं ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादिकी विचारणा

प्र. व. - आचार्यजी ! आप इन वाक्योंका अर्थ कैसे कहते हैं ?

वा. वि. - घ्राणेन्द्रियसे गंधका आघ्राण करना, परमात्माके दर्शन करना अपने आपको देखना,

आदि पदार्थोंमें भिन्नता रहेगी तो ही संभव है। ''यत्र तु अस्य सर्वमात्मैवाभूत'' अद्वैतियोंके अनुसार ज्ञानावस्थामें (मोक्षावस्थामें) आत्मातिरिक्त पदार्थ न होनेसे, घ्राणेंद्रियादिसे किसका आघ्राण करेगा ? किससे किसको देखेगा ? जिस परमात्मासे जीव समस्त पदार्थोंको जानता है, उस परमात्माको कैसे जानेगा ? अपने आपको कैसे जानेगा ? खुदका और परमात्माका ज्ञान गंधादि ज्ञान मोक्षमें भी आवश्यक है। ''जक्षन् क्रीडन् रममाण:'' इत्यादि श्रुतियोंसे ज्ञात होता है। गंधादि ज्ञानमें परमात्माके ज्ञानमें कारणीभूत आत्मातिरिक्त पदार्थको मानना चाहिये । जिससे जीवपरमात्माका भेद जगतका सत्यत्व परिज्ञात होता है।

प्र. व. - मोक्षावस्थामें गंधादिज्ञान आवश्यक नहीं। परमात्माके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं। अपना (खुदका) ज्ञानभी अनावश्यक है। इसलिये, गंधादि ज्ञानके लिये परमात्माके ज्ञानके लिये, अपने ज्ञानके लिये आत्मातिरिक्त दूसरे वस्तुकी आवश्यकता नहीं।

वा. वि. - हम वैदिक हैं, वेदोक्त पदार्थोंका स्वीकार करना चाहिये। ''जक्षन् क्रीडन् रममाण:'' कामन्नीकामरूपामनुसंचरन्'' ''स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेव अस्य पितरस्समुतिष्ठन्ते'' श्रुति कहती है मोक्षावस्थामें भक्षण क्रीडादिकोंकी सत्ताका वर्णन है। इसलिये आत्मातिरिक्त पदार्थोंका निषेध करना वैदिकोंके लिये युक्त नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''जक्षन् क्रीडन् रममाण:'' इत्यादि श्रुतियाँ मोक्षके भक्षणादिकोंका वर्णन करती है। इस विषयमें क्या प्रमाण है ? संसारावस्थामें आत्मातिरिक्त पदार्थको क्यों मानता नहीं ?

वा. वि. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह शंकरभगवत्पादका बृहदारण्यभाष्य है और यह सूत्रभाष्य है।

वा. व. - इन दोनों वाक्योंका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - इस १* जक्षन् क्रीडन् इत्यादि श्रुतिविरोधो इत्यादि ब्रहदारण्यभाष्य भाष्यसे विरोध होगा। अत एव जक्षणादि संकीर्तनमिति १-४-६ ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्यके साथ ''यद्यपि'' जक्षन् क्रीडन् इत्यादि श्रुतियाँ मोक्षमें क्रीडादिकोंका वर्णन करती है। पर उन वाक्योंका तात्पर्य यह है - मुक्तोंको दु:ख नहीं अथवा योगी, देवता संसारावस्थामें भक्षणादि करते हैं। भक्षणादि करनेवाले योगियोंमें देवतामें ऐक्य है । भक्षणादिकोंका अनुवाद श्रुति करती है । स्वयं मुक्तोंके लिये भक्षणादिकोंका कथन नहीं करती।

वा. व. - ज्ञानी मुक्तका स्वरूप है। योगियोंमें देवतामें विद्यमान भक्षणादिकोंको मुक्तोंको श्रुति कहती है, ऐसा कहेंगे तो स्थावरादि में दु:ख है। अद्वैतमतके अनुसार उनमें, मुक्तोंमें ऐक्य होनेके

१* जक्षन क्रीडन इत्यादि श्रुतिविरोधोऽसंवेद्यत्व इति चेन्न सर्वात्मकत्वे प्राप्प्रानुवादित्वात् मुक्तस्य सर्वात्मकभावे संति यत्र कुत्रचिद्योगिषु देवेषु जक्षणादि प्राप्तं तद्यथा प्राप्तमेवामयते तत्तस्यै सर्वात्मकत्वाभावात् इति सर्वात्मकभावमोक्षस्तुये।

२) ''अत एके जक्षणादि संकीर्तिनमपि दु:खभाव मात्राभिप्रायं स्तुत्यर्थ'' ''आत्मरति:'' इत्यादिवत् न हि मुख्यान्येव रतिक्रीडामिथुनानि आत्मनि शक्यन्ते वर्णयितुन् द्वितीयाविषयत्वातेषां (ब्र.सू. शां. ४-४-६)

योग्यादिषु यथाप्राप्त जक्षणादिवत्स्थावरादिषु यथा प्राप्त दु:खितमपीचेन्न नामरूप कृतकार्य करणोपाधि संपक जनित भ्रान्त्याध्यारोपितत्वात्। सुखित्वदुखितत्वादि विशेषस्येति परिहृतमेतत्सर्वम्।

कारण मुक्तोंको भी दु:ख है ऐसा क्यों न कहे ?

प्र. गं. – आचार्यजी ! आपने ही इस प्रकारकी नयी शंका की है, ऐसा मत समझें। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें इस प्रकारकी शंका लेकर समाधान किया है।

वा. वि. – वह समाधान क्या है ? कहिये।

प्र. गं. – योगियोंमें, देवताओंमें विद्यमान भक्षणादिकोंको उससे मिलनेवाले सुखको मुक्तोंमें कहेंगे तो, स्थावर वृक्षादि प्राणियोंमें रहे दु:खादिकोंको मुक्तोंको क्यों न कहे ? ऐसा शंका लेकर स्थावरादिकोंका दु:ख मिथ्या है, इसलिये नहीं कहा। ऐसे आचार्य समाधान प्रस्तुत करते हैं।

वा. व. – योगियोंमें विद्यमान भक्षणसुखादि मिथ्या होनेके कारण, मुक्तोंमें दु:खकी तरह कथन नहीं करना चाहिये।

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वा. वि. – शास्त्रीजी ! जक्षन् इत्यादि श्रुतियाँ स्पष्टरूपमें मुक्तोंके भक्षणादिका वर्णन करता हैं। उनका अमुख्यार्थ क्यों करें ?

प्र. गं. – शंकराचार्यने कहा है – भक्षणादि क्रियाके लिये दूसरीवस्तु आवश्यक है, मोक्षमें अन्य वस्तु नहीं रहेगी, अत: मुख्य भक्षणादिकोंका बयान न करें।

वा. वि. – मोक्षमें दूसरे पदार्थके अस्तित्वका कथन श्रुतियाँ सूत्र कहते हैं, दूसरे पदार्थका निषेध कैसा तर्कसंगत होगा ?

कोर्ट – आचार्यजी ! मोक्षमें द्वितीयवस्तुके अस्तित्वके विद्यमान श्रुतिसूत्रोंको कहिये।

वा. वि. – ''सर्वांश्च लोकान्नाप्नोति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति'' इत्याद्यनेक श्रुतियाँ, जगद्व्यापारवर्जं, अनावृति: शब्दात्, अनावृत्ति शब्दात् इत्यादि सूत्र मोक्षमें अनेक पदार्थोंकी सत्ता का वर्णन करते हैं, अद्वैतीभी ये श्रुतियाँ और सूत्र मोक्षमें रहें अनेक पदार्थोंकें अस्तित्वको मानते हैं ऐसा कहते हैं। मतके अभिमानसे कहते हैं कि मोक्ष दो प्रकारका है – एक सगुणमोक्ष दूसरा निर्गुणमोक्ष। मोक्षगत पदार्थोंके वर्णन करनेवाली श्रुतियाँ सगुणमोक्षपर हैं, यद्यपि निर्गुणब्रह्म विद्यासे निर्गुण मोक्ष होना चाहिये। सगुणमोक्ष न हो पर निर्गुण ब्रह्मविद्याकी प्रशंसाके लिये कहते हैं। अत: श्रुति और सूत्र मोक्षमें द्वितीय पदार्थकी सत्ताका वर्णन करते हैं। मोक्षमें द्वितीय पदार्थकी सत्ताका वर्णन करते हैं। इस विषयमें कोई विवाद नहीं।

कोर्ट – आचार्यजी ! शंकराचार्यके उत्तरको ''असंगत'' कैसे कहते हैं ?

वा. वि. – थोडेसे परिश्रमसे साध्य कार्यके लिये महाफल कहनेपर प्रशंसाके लिये कहा गया है। ऐसा कह सकते हैं। पराकाष्टा के परिश्रमसे पूर्ण होनेवाले कार्यके लिये अल्प मेहनतसे कार्यका फल कहनेपर, उस कार्यकी सराहना नहीं होगी। यह नीति सर्वसम्मत है। फिलहाल निर्गुणविद्या बडे कष्टसे प्राप्त होनेवाली है। उसके लिये अल्पपरिश्रमसे प्राप्त होनेवाले सगुणमोक्ष कहेंगे तो, निन्दा होगी प्रशंसा नहीं हो सकती। अत: शंकराचार्यका कहना अयुक्त है।

प्रतिवादि वकीलका ऑर्ग्युमेंट

प्र. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''यत्रत्वस्य'' श्रुतिका तात्पर्य मोक्षदशामें आत्मातिरिक्त कुछ भी नहीं रहता, यही श्रुति कहना चाहती है तो ''मोक्षे किमपि नास्ति'' कहनेसे उद्देश पूर्ण होता। इतने लंबे वाक्य और पश्येत् जिघ्रेत् विजानीयात् इत्यादि विधिलिङन्त प्रयोग व्यर्थ हो जाते हैं। और ब्रह्मविद्याभरणकार, अप्पदीक्षित आदि अद्वैती कहते हैं ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्'' वाक्य जिस परमात्मासे जीव जगतको समझता है उस परमात्माको किस तरह समझेगा ? इस तरह जीव परमात्माके भेद कहनेके कारण यह ऐक्य वादियोंके विरूद्ध हुवा। शंकराचार्यभी कहते है कि विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' वाक्य जीवके कर्तृत्वका बोध करता है। कर्तृत्व विशिष्ट जीवमें परब्रह्ममें ऐक्य नहीं होगा। भेद ही सिद्ध होता है।

प्रतिवादि वकीलका पुन:आर्ग्युमेंट

प्र. व. – महाप्रभो ! ब्रह्मविद्याभारणकार और अप्पय्य दीक्षित कहते हैं –''येनेदं'' वाक्यसे जीवेश्वर भेदका बोध होता है। ''येनं'' पदको बदलकर ''य:'' प्रथमांत कर ''य:'' पदसे परमात्माके बदले जीवका ग्रहण करना चाहिये। जिससे यह अर्थ होगा – जो जीव जगतको जानता है। वह मुझे किस तरह जानेगा ? इससे जीवेश्वरका भेद सिद्ध नहीं होगा। ''येनं'' का ''य'' में बदल करना क्लिष्टकर, योजनाभी क्लेशकारक होगा। ''येनेदं'' जीव अर्थ करनेपर ''विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' भी पुनरुक्त होगा। परिवर्तनके श्रमको, योजनाके क्लेशको पुनरुक्तिके दोषको सहन करना होगा। वह दोषकारी भी नहीं।

''विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' वाक्य येनेदं सर्वं विजानाति'' वाक्यका व्याख्यान होगा। जिससे पुनरूक्ति टल जायेगी।

मोक्षावस्थामें वर्णित जीवके कर्तृत्वको संसारावस्थामें रहे जीवके कर्तृत्व का अनुवाद कहे। क्योंकि जीव निर्विशेष ब्रह्म बनेगा तो जीवका कर्तृत्व नहीं होगा। इस तरह शंकराचार्यका कहना है। अत: भेदका कथन तर्कसंगत नहीं। कोर्ट इसपर ध्यान दे यही प्रार्थना है।

वादि वकीलका पुन: जिरह

वा. व. – महाप्रभो ! ''यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत'' वाक्यके पूर्वमें जीवब्रह्मके ऐक्य प्रतिपादक वाक्य ही नहीं। ऐक्य प्रसक्त नहीं। अत: ''येनेदं'' वाक्य जीवब्रह्मके भेदका कथन करेगा तो कोई आपत्ति नहीं होगी। ''येनं'' पदका ''य:'' में अन्तर लाकर क्लेशसे भेदपर अर्थ करनेसे क्लेश से छुटकारा मिलेगा। क्लेशसे भेदपर अर्थ करना युक्ति रहित होगा। ''येनेदं सर्वं विजानाति स एष नेति नेति'' (बृ. ४-५-१४) वाक्यमें येन पदसे बोध्यका परामर्श करना क्रमप्राप्त है। ''स एष: नेति

नेति'' में ''स एषः'' ब्रह्मका परामर्श करना पडेगा।

शंकराचार्यने ''स एषः'' पदसे ब्रह्मका ही ग्रहण किया है। ठीक उसी तरह ''येनेदं सर्वं विजानाति'' वाक्यस्थ ''येन का यः'' में अन्तर न करे, जिससे जीव ब्रह्मका भेद सिद्ध होता हो। पुनरुक्ति नहीं होगी। व्याख्यान व्याख्येय भावका कथन युक्तिसंगत नहीं होगा।

''विज्ञातारमरे'' पदसे मोक्षावस्थामें जीवका कर्तृत्व प्रतिभात है। कोई अनुपपत्ति भी नहीं होगी, यही नहीं ''जक्षन् क्रीडन रममाणः'' वाक्य मुक्त जीवके कर्तृत्वका ही निरूपण करता है। जीव क्रीडादि गुणोंके योग्य नहीं। क्योंकि वह जीव निर्विशेष ब्रह्म बन चुका है। संसारावस्थाके क्रीडादिगुणोंका अनुवाद है। ऐसा कहना प्रमाणविरूद्ध होगा। अतः मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञान, परमात्माका ज्ञान, पित्रादि ज्ञान, अनिवार्य है। ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तुकी आवश्यकता है। इस वाक्यसे जीवब्रह्मका भेद ही सिद्ध होता। मोक्षावस्थामें गंधादि ज्ञान, परमात्माका ज्ञान, पित्रादि ज्ञान, अनिवार्य है। ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तुकी आवश्यकता है। इस वाक्यसे जीवब्रह्मका भेद ही सिद्ध होता। मोक्षावस्था भी प्रमाण प्रमित होता है। कोर्ट इसपर गौर करें, यही हमारी प्रार्थना है।

येनेदं वाक्यगत ''येनं'' पदसे जीवके स्वीकार करनेपर ''विज्ञातामरे केन विजानीयात्'' वाक्यसे पुनरुक्ति होगी। मनभावन अर्थको कहकर, प्राप्त पुनरूक्तिको व्याख्यान व्याख्येयभाव कहना अयुक्त होगा।

''विज्ञातारं'' पदसे मोक्षावस्थामें जीवके कतृत्वका ज्ञान होता है। इस अर्थके लिये कोई बाधक भी नहीं, यही नहीं ''जक्षन् क्रीडन् रममाणः पर्येति कामान्नीकामरूप्य मनुसंचरन्'' अनेक वाक्य मोक्षावस्थामें विद्यमान जीवके कर्तृत्वका बोध करते हैं। शंकराचार्यादि अद्वैतियोंने कहा है – यह वाक्य मोक्षमें विद्यमान कर्तृत्वका ज्ञान कराता है। इतना कहकर अपने मतके अभिमानसे मुक्त ही क्रीडादिकोंको करता है यह अर्थ नहीं। इसका तात्पर्य इस प्रकार है – क्रीडादि सुखलाभ होता है, इस प्रकार किसी तरहसे समाधान किया है। किसी भी प्रकार हो मोक्षावस्तामें ''विज्ञातारं'' पदसे ज्ञायमान कर्तृत्व मोक्ष दशामें युक्त है। अतः यह श्रुति, मोक्षदशामें गंधादि ज्ञान, परमात्माका ज्ञान, पितरोंका ज्ञान की आवश्यकता का प्रतिपादन करता है, इसके लिये कारणीभूत ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तुकी अनिवार्यतासे जीव ब्रह्मका भेद सिद्ध होता है।

वा. ए. ८
''ततस्तुतं पश्यते'' श्रुतिपर विचार

वा.व. - आचार्यजी ! ततस्तुतं पश्यते निष्फलं ध्यायमानः (मुं. ३-१-८) इस श्रुतिके अर्थ बताईये। इस श्रुति जीवपरमात्मामें भेद कैसे बताते है ? कहो।

वा. वि. - ततः = ब्रह्मज्ञान योग्यता प्राप्त होनेपर निष्कलं = षोडश कलारहित परमात्माके ध्यायमानः = ध्यान करनेवाला तं = उस परमात्माको प्रत्यक्षमें, पश्यते = देखता है। यह वाक्य ध्यातृध्येय भावसे और दृष्ट दृष्टव्य भावसे जीवपरमात्मामें भेद बताता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! आपके शंकराचार्यजीने इस श्रुतिका क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. - धातृध्यातव्य भावसे द्रष्टुद्रष्टव्यभावसे भी जीवको परमात्मासे भिन्न कहा है। इस तरह

२०५- सिविल सूट (३)

शंकराचार्यने ३-२-२७के ब्रह्मसूत्रमें शांकरभाष्यमें अर्थ किया है। १*

''परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं'' (मुंड. ३-२-८)

वा. व. - आचार्यजी ! ''परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं'' इस श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद कैसे ज्ञात होता है ?

वा. वि. - विद्वान् = ज्ञानी जीव परात्, उत्तम ब्रह्मादि देवोंसे भीउत्तम, दिव्यं = जगत क्रीडादिगुणविशिष्ट, पुरूषं = परमात्माका भेद ज्ञात होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने इस मन्त्रका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - शंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्यके (३-२-२७) २* इस तरह अर्थ किया है - जीव परमात्मामें प्राप्त प्राप्तव्यभाव कहनेसे इस वाक्यसे भेद निरूपित है।

वा. ए. १०, प्र. ए. १०
''परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! ''परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'' मुं. (३-२-९) श्रुतिका अर्थ क्या है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

वा. वि. - ''परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं'' (३-२-८) पूर्ववाक्यमें ज्ञानी, चतुर्मुख ब्रह्मादि देवतासे उत्तमोंमें भी उत्तम क्रीडादिगुणविशिष्ट परमात्माको प्राप्त करता है। ऐसा उक्त होनेके कारण, श्रेयांसि बहुविघ्नानि, श्रेयसके लिये अनेक विपत्तियोंकी संभावना होती है, कभी कभी देवताओंसे भी विघ्न उपस्थित किये जा सकते है। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मको प्राप्त न कर अन्य गतिको प्राप्त न कर अन्य गतिको प्राप्त करता है, ऐसा शंका उपस्थित हो सकती है। इस शंकाके समाधान के लिये यह मन्त्र प्रसक्त है। ब्रह्म जाननेवाला, ब्रह्मज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति होनेके कारण ब्रह्मको प्राप्त करता ही है। ब्रह्मज्ञानीको, देवता भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते। प्राप्त प्रांप्तव्यभावसे इस मंत्रमें जीवब्रह्मके भेदका ही बोध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! उपनिषत् भाष्यमें ३* शंकराचार्यने इस मन्त्रका अर्थ क्या लिखा है ?

प्र.गं. - ''परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यं'', ज्ञानीको ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष कहा गया है, देवताओंके विघ्नोंसे, वह ज्ञान अन्यगतिको प्राप्त करता है। इस शंकाके उत्तरमें, श्रुति कहती है - ब्रह्म ज्ञानीको ब्रह्म प्राप्त होता ही है, देवता विघ्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इस तरह शंकाका समाधान किया

१* क्वचित् जीवप्राज्ञयोर्भेदो व्यपदिश्यते, ततस्तु तं पश्यते निष्फलं ध्यायमान: (मुं. ३-२-८) इति धातृध्यातव्यत्ने, द्रष्टृ द्रष्टव्येनच (ब्र. सू. शां. भा. ३२-२७)

२* क्वचित् जीव प्राज्ञयोर्भेदो व्यपदिश्यते। परातपरं पुरुषमुपैति दिव्यं (मुंडक ३-२-९) गन्तृ गंतव्यत्वेन (ब्र. सू. शां. भा. ३-२-२७)

''परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यं (मुं. ३-२-९) इति ब्रह्मणश्च मुक्तोपसृपत्वं प्रसिद्धं शास्त्रे (ब्र.सू.भा.१-३-२) इति ब्रह्मणश्च मुक्तोपसृमत्वं प्रसिद्धं शास्त्रे (ब्र. सू. भा. १-३-२)

३* ननु श्रेयस्युनेके विघ्ना प्रसिद्धा: अत: क्लेशानामन्यमत्वेन अन्येनवा देवादिना विघ्नितो ब्रह्माविदप्यन्यां गतिं मृतोगच्छति न ब्रह्मैव। ''न'' स नान्यांगतिं गच्छति देवैरपि तस्य ब्रह्मप्राप्ति प्रति विघ्नो न शक्तये कर्तु। (मुंडक ३-२-९)

गया है।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र.गं. - यह शंकरभगवत्पादके साक्षात शिष्य सुरेश्वराचार्यका तैत्तिरीय भाष्य वार्तिक है और उसपर आनंदगिरीका व्याख्यान है। इन वाक्योंमें क्या कहा गया है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'' जीव ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करनेके बाद ब्रह्मको प्राप्त करता है। ज्ञानी जीव ब्रह्म ही है तो ''भवति'' पदसे सूचित प्राप्ति युक्तियुक्त नहीं होगी। ''अत: ब्रह्मैव भवति'' वाक्य जीवब्रह्मके भेदका निरूपण करता है। ऐसी शंका आनेपर, शंकाके समाधानके लिये प्रवृत्त वाक्योंका यह तात्पर्य है। ''ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'' श्रुत्युक्त प्राप्ति ग्रामप्राप्ति की तरह मुख्य नहीं। ब्रह्मज्ञान से ब्रह्मविषयक अज्ञान निवृत्त होता है। ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति - ब्रह्मको जाननेसे ब्रह्मके अज्ञानकी निवृत्ति प्राप्त करता है। ऐसा कहना होगा। ब्रह्मको प्राप्त करता है, यह कहना औपचारिक है गौण है।

वा. व. - शास्त्रीजी - ''ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'' १* श्रुतिसे उक्त स्वरस अर्थ क्या है ? इसमें सुरेश्वराचार्यका अभिप्राय क्या है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्म भवति'' वाक्यसे ब्रह्मको प्राप्त करता है। प्राप्यवाचकभाव दीखता है। ऐसा सुरेश्वराचार्य कहते है।

वा. व. - ''ब्रह्म भवति'' वाक्यसे प्राप्य प्रापक भाव दिखाई देता है। अत: जीवब्रह्मका भेद दिखाई देता है।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. ए. ११
''परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेण'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! परंज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेणाभि निष्पद्यन्ते स उत्तम: पुरूष: तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: (छां. ८-१२-३) श्रुतिका अर्थ क्या है ? इससे किस तरह भेद प्रमाणित होता है ?

वा. वि. - जो जीव परंज्योति = परमात्माको प्राप्त करके अपने स्वरूपसे अभिव्यक्त होता है। वही उत्तम जीव है। तत्र = उस परमात्मामें घूमता, खाता, स्त्रियोंके साथ रममाण होकर आनंदसे रहता है। जीवपरमात्मामें अधिकरण अधिकर्तृव्यत्वभावसे भेद ही उक्त है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यका अर्थ शंकराचार्यने किस तरह किया है ?

प्र. गं. - 'स तत्र पर्येति' (छां. ८-१२-३) इत्यादि करणाधिकर्तव्य निर्देशात् ज्योतिरूपसंपद्य

१* ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवतीति श्रवणादन्यो, जीवो ज्ञानद्वाणा ब्रह्म प्राप्नोतित्य भ्युपगत्माक्षेप्राप्ते भेदपक्षे सिद्धांतमाह नान्यस्थेतित्यादि (तैत्तरीय वार्तिका २-८-५४)

(छां. ८-१२-३) इति च कर्मकर्तु निर्देशात् भेदेनैवावस्थानमिति, जीवपरमात्मा का भेद ही प्रतिपादित है। इस तरह (४-४-४के सूत्रभाष्यमें अर्थ किया है)

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह ब्रह्मविद्याभरण ग्रंथ है, शंकराचार्यके सूत्रभाष्यकी टीका है।

वा. व. - 'एवं स तत्र पर्येतीत्यादि भेद निर्देशस्य फलोपदेश गततया साधनीभूत ज्ञान नोपदेशगताभे दनि निर्देश: औरपचारिको यथा कथंचित् नेय इति (ब्र. शां. भा. ४-४-४) इस वाक्यका तात्पर्य क्या है ?

प्र. गं. - कुछ वाक्य जीवपरमात्माके अभेदका प्रतिपादन करते हैं। स तत्र पर्येति वाक्य जीवपरमात्माके भेदका कथन करता है। किस अर्थका ग्रहण करना चाहिये। इसपर विचार करेंगे तो, ''स तत्र पर्येति'' वाक्य फल कहनेवाला वाक्य है, जो मुख्य है। फलवाक्योक्त भेदको मद्देनजर रखकर साधनभूत, ज्ञानका निरूपण करनेवाले वाक्योंका गौणार्थ कहना चाहिये।

वा. व. -शास्त्रीजी ! ब्रह्मविद्याभरणकारको 'स तत्र पर्येति' वाक्य जीवपरमात्माके भेद कथनमें तात्पर्य है अथवा अभेद कथनमें तात्पर्य है ?

प्र. गं. - ''स तत्र पर्येति'' वाक्यसे भेद ही प्रतिपाद्य है। यही ब्रह्मविद्याभरणकारका तात्पर्य है।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! शंकरभाष्यग्रंथ, ब्रह्मविद्याभरणग्रंथ पूर्वपक्ष ग्रंथ है या सिद्धान्त ग्रंथ है ?

प्र. गं. - पूर्वपक्ष ग्रंथ ही है।

प्र. व. - ये पूर्वपक्ष हैं तो सिद्धान्त ग्रंथमें क्या कहा गया है ?

प्र. गं. - यद्यपि ''स तत्र पर्येति'' वाक्य जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करता है, तथापि ''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य जीवपरमात्मामें अभेद का कथन करता है। इसलिये भेदप्रतिपादक ''स तत्र पर्येति'' वाक्यका अर्थ किसी तरह करना होगा। १*

वा. व. - शास्त्रीजी ! तत्त्वमस्यादि वाक्य जीवपरमात्मामें ऐक्यका कथन करते हैं या नहीं इसपर विचार हो चुका है। प्रकृत्तमें स तत्र पर्येति भेद प्रतिपादन है या नहीं।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. ए. १२
''सोऽन्वेष्टव्यो: स विजिज्ञासितव्य:'' पर विचार

वा. व. - ''सोऽन्वेषष्टव्यो स विजिज्ञासितव्य:'' इस श्रुतिका अर्थ क्या है ? इससे जीवपरमात्माका भेद किस तरह सिद्ध होता है ?

वा. वि. - स = वह परमात्मा, अन्वेष्टव्य: = शास्त्रोंसे, आचार्यके उपदेशसे ज्ञात होता है। विजिज्ञासितव्य: = जिज्ञासाके विचारके लिये योग्य है, अन्वेष्टव्यभावसे जिज्ञास्य जिज्ञासक भावसे भी, इस वाक्यसे भेद सिद्ध होता है।

१* भेदनिर्देशस्तु अभेदयुपचर्यते (ब्र. शा. भा. ४-४-४) तत्त्वमस्यादि वाक्यमपि नान्यथा व्याख्यातु मुचितं अपितु क्वाचित्को मुक्तौ भेदनिर्देश: (स तत्र पर्यति रूप:) एवं यथा कथंचित् व्याख्येय: (ब्रह्माविद्याभरण)

वा. व. - शास्त्रीजी ! २-१-२२ के ब्रह्मसूत्रभाष्यमें १* इस वाक्यका अर्थ क्या लिखा है ?

प्र. गं. - कर्तृकर्मादिभावसे जीवपरमात्मामें भेदका प्रतिपादन करता है यह वाक्य।

वा. ए. १३
'आत्मावारे द्रष्टव्यः' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! आत्मावारे द्रष्टव्यो श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः (बृ. २-४-५) श्रुतिका अर्थ क्या है ? इससे भेदकी सिद्धि किस तरह होती है ?

वा. वि. - परमात्मा जीवोंसे दिखाई देता है, सुनाया जाता है, ध्येय है। इस वाक्यमें उक्त द्रष्टृ द्रष्टव्यभावसे, श्रोतृश्रोतव्यभावसे, मन्तृमन्तव्यभावसे भी ध्यातृध्येयभावसे भी जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! २-१-२२ के ब्रह्मसूत्र भाष्यमें २* आत्मावा रे वाक्यसे क्या सिद्ध होता है, शंकराचार्यने क्या कहा है ?

प्र. गं. - कर्तृकर्मादिभावसे जीवपरमात्मा भेद ज्ञात होता है।

वा. ए. १४
''ब्रह्मविदाप्नोति परं'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यमहोदय ! ब्रह्मविदाप्नोति परं (तै. २) श्रुतिका अर्थ क्या है ?

वा. वि. - ब्रह्मज्ञानी परब्रह्मको प्राप्त करता है, इस प्रकार जीवपरमात्माके भेदका अवबोधन करता है।

वा. व. - शास्त्रीजी, इस वाक्यमें उक्त प्राप्तृ प्राप्यभावसे ज्ञातृज्ञेयभावसे भेद सिद्ध होता है न?

प्र. गं. - इस वाक्यसे जीवब्रह्मका भेद सिद्ध होता है।

वा. ए. १५
''एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - ''एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति'' वाक्यका अर्थ क्या है ?३* इससे जीवपरमात्माका भेद किस तरह सिद्ध होता है ?

१* सोन्वेष्टव्यः सविजिज्ञासितव्यः (छां. ८-७-१) इत्येवं जातीयकः कर्तृकर्मादि भेदनिर्देशो जीवादधिकं ब्रह्म दर्शयति (ब्र. सू. भा. २-१-२२)

२* आत्मावारे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यसितव्यः (बृ. २-४-५) इत्येवं जातीयकः कर्तृकर्मादि भेदनिर्देशो जीवादधिकं ब्रह्म दर्शयति (ब्र. सू. भा. २-१-२२)

३* एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति य आत्मानि तिष्टभान्तात्मानमंतरो यमयति इति च एवं जातीयको भेदनिर्देशो नासति भेदे युज्यते (ब्र. सृ. भा २-३-४३)

२०९ - सिविल सूट (३)

वा. वि. -जीव परमात्माके ज्ञानसे मननशील होता है। ज्ञातृज्ञेयभावसे भेद प्रमाणित होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! एतमेव......भवति इस वाक्यके अर्थसे क्या सिद्ध होता है, शंकराचार्यने क्या कहा है ?

प्र. गं. - इस वाक्यसे जीव परमात्माभेद सिद्ध होता है ऐसा शंकराचार्यने कहा है।

वा. व. १६
''अयं शरीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ:'' (बृ. ४-३-५)

वा. व. - आचार्यजी ! अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ: (बृ. ४-३-३५) श्रुति जीवपरमात्माके भेदका निरूपण किस तरह करता है ?

वा. वि. - शारीर: = जीव उत्क्रमणके समय प्राज्ञेनात्मना, प्राज्ञनामक परमात्मा अपने ऊपर बिठाकर लें जाता है । उत्क्रमणके समय परमात्माके कर्तृत्वका, जीवके कर्मका वर्णनकर, जीवपरमात्मामें भेदको सिद्ध करती है यह श्रुति -

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''अधिकंतु भेदनिर्देशात्'' (ब्रह्म सू. २-१-२२) १* सूत्रके व्याख्यानमें, ''सुषुप्त्युत्क्रान्त्यो र्भेदेन'' (ब्र.सू.१-३-४२) सूत्रव्याख्यानमें क्या कहा है ? २*

प्र. गं. - ''अयं शरीरं:'' श्रुति उत्क्रान्तिके समय जीवसे परमात्मा भिन्न है, ऐसा यह श्रुति कहती है। दोनों सूत्रोंके भाष्यमें शंकराचार्यने कहा है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यके व्याख्यानके अनुसार अयं शारीर श्रुतिसे जीवब्रह्मभेद सिद्ध होता है न?

प्र. गं. - श्रुतिसे भेद सिद्ध होता है पर वह भेद पारमार्थिक नहीं, सत्य नहीं। ऐक्य प्रतिपादक श्रुतियोंके विरोधके कारण इस भेदको व्यावहारिक सत्य मानना पडेगा। ऐसा शंकराचार्यने कहा है।

वा. व. - वेदादि प्रमाणोंसे सिद्ध भेदको व्यावहारिक सत्य नहीं कहना चाहिये। इस तरह आपने ही बौद्धोंका खण्डन करके, पुन: आप ही व्यावहारिक सत्यकी दावेदारी करते हैं। यह तर्क संगत नहीं।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

१* तदा उत्कान्तावपि 'अयं शरीर आत्मा प्राज्ञेनान्वारूढ: उत्सर्जन् याति' इति जीवाद्भेदेन परमेश्वरं व्यपदिशति तस्यात् सुषुप्त्युक्रतत्योभेदेन व्यपदेशात्

२* शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वरूढ: इत्येवं जातीयका कर्तृकर्मादि भेदनिर्देश: जीवादधिकं (अन्यत्) ब्रह्म दर्शयति।

वा. ए. १७
''सोश्नुते सर्वान् कामान्''

वा. व. - आचार्यजी ! सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता (तै) श्रुतिका अर्थ कहिये।

वा.वि. - सः = ब्रह्मज्ञानी सर्वान् कम्मान् = अपेक्षित समस्त भोगोंका अनुभव, ब्रह्मणा सह = ब्रह्मके साथ करता है। इससे परमात्माका और जीवका भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ? देखिये !

प्र. गं. - शंकरभगवत्पादके साक्षात् शिष्य सुरेश्वराचार्यका वार्तिक है १* और आनंदगिरीका टीकाग्रंथ है। २*

वा. व. - यह ग्रंथ आपके लिये मान्य है न ?

प्र. गं. - परम मान्य है।

वा. व. - इन वाक्योंका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - ''सहब्रह्मणा विपश्चिता'' वाक्यगत ''सह'' पदका अर्थ है। मिलकर यह मुख्यार्थ है। इस मुख्यार्थके ग्रहण करनेपर जीव ब्रह्मके साथ भोगका अनुभव करता है। यह अर्थ होगा, जीवब्रह्म भेद सिद्ध होगा। पर यह तत्त्वमसि वाक्यके विरूद्ध होनेके कारण ''सह'' शब्दके मुख्यार्थ का त्याग करके, निपातानां अनेकार्थत्वात्'' निपातोंके अनेक अर्थ होनेसे ''सह'' पदके लिये एकही समय ऐसा अर्थ करना होगा।

वा. व. - ''सह ब्रह्मणा विपश्चिता'' वाक्यस्थ ''सह'' का मिलकर इस अर्थको लेनेसे जीवब्रह्मका भेद सिद्ध होता है न ?

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है, पर ऐक्य प्रतिपादक ''तत्त्वमसि'' वाक्यका विरोध होता है। इसीलिये सह शब्दके मुख्यार्थका त्याग करके अमुख्यार्थका स्वीकार किया है।

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्यके अर्थ करते समय ''तत्'' और ''त्वं'' पदके लिये ऐक्यार्थ कहनेके उद्देशसे विफल होकर, अमुख्यार्थ का ग्रहण करके अर्थ किया गया है। इस अमुख्यार्थमें किस अमुख्यार्थ ग्रहण करना चाहिये, इसीमें दिग्भ्रम होकर रहे हैं आप। इसलिये यह श्रुति दूसरी श्रुतिके बाधक किस तरह बनेगी ? इस श्रुतिमें बाधक बननेकी योग्यता नहीं। अत: ''सह'' शब्दके मुख्यार्थ का ही स्वीकार करना चाहिये। इस श्रुतिके भेद सिद्ध होनेपर बाधक क्या है ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

१* प्रतीचीन स्यात्तब्रह्म भेदार्थ चेत्सहार्थता (तै.सु.वार्तिक १-११७)

२* सह शब्दस्य यथा श्रुतार्थत्वं किं नस्या दित्याशंकस्याहं = प्रतीचेति सह शब्दस्य मुख्यार्थत्वे सत्यात्म ब्रह्मणोर्भेदात्भेदार्थता सह शब्दस्यस्यात् (तै. आनंदगिरी टीका १-११७)

२११ - सिविल सूट (३)

वा. ए. २७

''सतासोम्य तदासंपन्नो भवति'' पर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! सतासौम्य तदा संपन्नभवति (छां. ६-१-८) श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद किस तरह सिद्ध होगा ?

वा.वि. - जीव तत्र - सुषुप्तिकालमें सता-सन्नामक परमात्मासे संपन्न होता है, परमात्मासे युक्त होता है। प्राप्यप्रापक भाव उक्त होनेके कारण जीव परमात्माका भेद सिद्ध होगा। जीव प्राप्तृ है परमात्मा प्राप्य है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - शंकरभागवत्पादका सूत्रभाष्य है।

वा. व. - इस वाक्यको १* पढकर, अर्थ कहिये।

प्र. गं. - सता सोम्य यह छांदोग्य श्रुति सुषुप्तिके समय जीव परमात्माको प्राप्त करता है। प्राप्त प्राप्यभावसे जीवको परमात्मासे भिन्न प्रमाणित किया है।

वा. व. - इस श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है। यही शंकराचार्यकी राय है न ?

प्र. गं. - यह श्रुति यद्यपि जीवपरमात्माके भेदका बोध करती है। अभेदका भी निरूपण करती है।

वा. व. - इस विचारको व्यक्त करनेवाले शंकराचार्यके वाक्यको कहकर, उसके अर्थको स्पष्ट कीजिये।

प्र. गं. - तदा तस्मिन् काले यदा सच्छब्दवाच्यया प्रकृतया देवतया संपन्नो भवति संगत: एकीभूतो भवति (छां. ६-८-१)इससे जीवपरमात्माका अभेद ज्ञात होता है ऐसा शंकराचार्य कहते हैं।

वा. व. - एक ही वाक्य विरूद्ध भूत भेदाभेदका निरूपण करता है क्या ऐसा हो सकता है ?

प्र. गं. - भेद मिथ्या है (व्यावहारिक है) अभेद पारमार्थिक है अत: विरोध नहीं होगा। इसलिये यह कथन संभवता है।

कोर्ट - प्रमाणोंसे ज्ञेय विषयोंको व्यावहारिक न कहें, यों आपने ही बौद्धोंका खण्डन करके, पुन: वेदोंसे प्रतिपाद्य भेदको व्यावहारिक कहना सही नहीं, दूसरा कोई उत्तर हो तो कहिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ततस्तु तं पश्यते निष्फलं ध्यायमान: (मुं. ३-१-८) श्रुति, ज्ञातृज्ञेय भावसे जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करती है। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें इस वाक्यको भेदपर माना है।

१*भेदनिर्देशात् सता सोम्य तदा संपन्नो भवति (छां. ६-८-१) इत्येवं जातीयक: कर्तृकर्मादि भेदनिर्देशो जीवादधिकं ब्रह्म दर्शयन्ति (सूत्र २-१-२२)

वा. ए. - इसी तरह विद्वान्.........परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं (मुं. ३-२-८) श्रुति, ज्ञातृज्ञेय भावसे, प्राप्तृ प्राप्तव्यभावसे परात् = उत्तम चतुर्मुखसे भी उत्तमत्व कहे जानेके कारण जीवपरमात्मा के भेदकी घोषणा करती है। शंकराचार्यने इस श्रुतिको भेद प्रतिपादक माना है।

वा. ए. - (१०) 'परमंब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मुंडक ३-२-९) वाक्य, ज्ञातृज्ञेय भावसे, ''ब्रह्मभवति'' प्राप्य प्रापक भावसे जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करता है। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें कहा है - ब्रह्मज्ञानी जीव ब्रह्मको प्राप्त करता ही है। ब्रह्मप्राप्तिरूप फलमें विघ्न करनेमें कोई समर्थ नहीं। प्राप्त प्राप्तव्य भावके कारण भेद कहा जाता है।

वा. ए. - (११) परंज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तम पुरूष: स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: (छां.) यह श्रुति कहती है - जीव परमात्माको प्राप्त करके प्रकृतिबन्धनसे मुक्त होकर, अपने स्वरूपसे अभिव्यक्त होता है। मोक्षमें क्रीडा, भक्षण, संचारको करता पूर्णसुखमें रहता है, शंकराचार्यने अपने सूत्रभाष्यमें और सूत्रभाष्यके व्याख्यान कर्ता ब्रह्मविद्याभरणकारने भी मोक्षावस्थामें भेद प्रतिपादन करनेवाली यहश्रुति है, ऐसे मानते हैं।

वा. ए. - (१२) ''सोन्वेष्टव्य: स विजिज्ञासितव्य:'' श्रुति, जिज्ञास्य जिज्ञासकभाव द्रष्टृ द्रष्टृव्यभावसे,भेदका ही बोध करता है। शंकराचार्यने इसे भेदबोधक ही माना है।

वा. ए. - (१३) ''आत्मावारे द्दष्टव्यो श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:'' श्रुतिसे भी द्रष्टृद्रष्टृव्यभावसे, श्रोतृ श्रोतव्यभावसे, मन्तृमन्तव्यभावसे ध्यातृ धातव्यंभावसे भेद ही ज्ञात होता है।

वा. ए. - (१४) ''ब्रह्मविदाप्नोति परं'' वाक्यमें ज्ञातृज्ञेय भावसे प्राप्तृ प्राप्तव्यभावसे भेद बोधित है। शंकराचार्यने इसी अर्थका स्वीकार किया है।

वा. ए. - (१५) ''एतमेव विदित्वामुनिर्भवति'' श्रुतिसे भी ज्ञांतृज्ञेय भावसे भेद ही प्रमाणित होता है। शंकराचार्यने भी इसको माना है।

वा. ए. - (१६) ''अयं शारीर: प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ'' इस श्रुतिमें आरोहण क्रिया कर्तृत्व और कर्मसे भेदका ही प्रतिपादन है।

वा. ए. - (१७) ''सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता'' इस श्रुतिमें यह कहा गया है। ब्रह्मज्ञानी अपने इष्ट समस्त भोगोंका अनुभव परब्रह्मके साथ ही करता है। परमात्माके साथ सहभोग उक्त होनेके कारण जीवब्रह्मका भेद स्पष्ट होता है। सुरेश्वराचार्यने अपने वार्तिक में कहा है। इस वाक्यसे भेद स्पष्टरूपमें ज्ञात होता है।

वा. ए. - (१८) ''सता सोम्य तदा संपन्नो भवति'' (छां. ६-८-१) वाक्य प्राप्तृ प्राप्तव्यभावसे भेदका ही निरूपण करता है, इस अर्थसे शंकराचार्य सहमत है।

अत: ८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,२७ इन वाक्योंसे भेदकी सिद्धि होती है। इस विषयपर गौर करें यही कोर्टसे प्रार्थना है।

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! वादिके उक्त एक्जिबिट आधार आधेयभावसे, ध्यातृध्येयभावसे जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करते है, ऐसा कहा गया। शंकराचार्य की सम्मति भी कही गयी है।

पर ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टा'' ''नान्यदतोऽस्ति'' ''अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्योंसे जीवब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होनेके कारण, श्रुतिसे सिद्ध भेदको ''मिथ्या व्यावहारिक भेद कहना होगा। पारमार्थिक भेदके विषयमें उक्त श्रुतियाँ प्रमाण नहीं हो सकती। कोर्टसे हम विज्ञापन कर रहे हैं। इस भेदको व्यावहारिक भेदके रूपमें कोर्ट निर्णय दे ऐसी हमारीं प्रार्थना है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) ''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' ''नान्यतोऽस्तिद्रष्टा'' ''नान्यतोऽस्ति द्रष्टृ'' वाक्य अखण्डार्थ बोधक होनेके कारण ''चित्'' मात्र ज्ञानका उत्पन्न करते हैं। इस तरह प्रतिवादियोंके स्वीकार करनेके कारण इन वाक्योंसे अभेदका बोध नहीं होता। वाक्योंको सखण्डार्थ बोधक माननेपर भी, अभेदका प्रतिपादक नहीं हो सकते। इस विषयमें पहले भी विज्ञापन करचुके हैं। ''स्वगोचरे प्रवर्तमानानि तत्त्वमिदमित्येव प्रवर्तन्ते न पुन:सांव्यावहारिकं न: प्रामाण्यमिति'' भामतीकारादि, अद्वैतियोंने व्यावहारिक प्रमाणोंका बयान करनेवाले बौद्धोंका खण्डन किया है। प्रमाण, प्रामाणिक वस्तुओंका ही विषयके रूपमें ग्रहण करते हैं। इसके विरूद्ध श्रुतियोंके लिये व्यावहारिक विषयीकरणत्व कहना अत्यंत अयुक्त है।अत: श्रुतियोंसे सिद्ध भेदको व्यावहारिक भेद न कहकर पारमार्थिक भेद ही कहना चाहिये। कोर्ट इसपर सूक्ष्मतासे विचार करे।

वा. ए. १९, २६
जुष्टं यदा, द्वासुपर्णा श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी! द्वासुपर्णा स युजा सखाया समानंवृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्य: पिप्पलं स्वद्वत्ति अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति (मुंड. ३-१) इस श्रुतिको किस विषयमें प्रमाणतया उदाहृत किया ?

वा.वि. - जीव परमात्माके भेदके विषयमें प्रमाणके रूपमें इस श्रुतिको उदाहृत किया है।

वा. व. - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ? इस श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद किस तरह सिद्ध होता है ?

वा.वि. - सुपर्णा - सुपर्णौ = पक्षीके जैसे, सयुजा-सयुजौ = निरन्तर साथ रहनेवाले, सखाया-सखायौ = मित्र बने भिन्न दो, देहरूपी वृक्षमें आश्रित हैं। उन दोनोंमें अन्य: = एक (जीव) पिप्पलं कर्मजन्य सुखदु:खरूप फलका अनुभव करता है। खाते वक्त उसे स्वादिष्ट समझकर खाता है, अन्य: - जीवसे भिन्न ईश्वर अनश्नन् कर्मफलका अनुभव न करते अभिचाकशीति = प्रकाशमान रहता है।

इस श्रुतिमें द्वौ = भिन्न अथवा दो उक्त होनेके कारण सयुजौ = निरन्तर मिलकर रहनेवाले

कहनेके कारण कर्मफल भोक्तृत्व, कर्मफल भोक्तृत्वभावरूप विरूद्ध धर्मोंका निरूपण करनेके कारण जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता है।

वा.वि. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने इस मन्त्रका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - इस मंत्रका व्याख्यान अनेको जगहोंपर किया गया है। उनमें किसका अर्थ कहे ?

वा. व. - क्रमके अनुसार सभी अर्थोंको कहिये।

प्र. गं. - यह मन्त्र मुंडक (अथर्वण) उपनिषत् में है। १* सर्वदा मिलकर रहनेवाले दो शरीरमें आश्रित है। दोनोंमें एक जीव कर्मफलका अनुभव करता है, दूसरा जो ईश्वर है। कर्मफल का अनुभव नहीं करता। भोज्य कर्मफलका, भोक्तृजीवका प्रेरक ईश्वर है। इस प्रकार उपनिषद्भाष्यमें अर्थ किया है। २*

कर्मफलका अनुभव करता है ऐसा कहनेके कारण, कर्मफलका अनुभव करनेवाला जीव ही है। फलका अनुभव न करनेवाला परमात्मा ही है। इस तरह ''द्वासुपर्णा'' मन्त्रसे जीवपरमात्मा दोनों प्रतिपाद्य हैं। इस तरह शंकराचार्यने (१-११,१२ के) ब्रह्मसूत्र भाष्यमें लिखा है। ३* (१-३-७ के ब्रह्मसूत्रमें) और उसके भाष्यमें द्वासुपर्णा मन्त्रमें कर्मफल भक्षण करनेवाला, कर्मफल का भक्षण न करनेवाला, ऐसे कहे जानेके कारण, यह श्रुति जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करता है।

वा. व. - शास्त्रीजी इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - शंकराचार्यके व्याख्यानके अनुसार इस श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - इस ग्रंथको देखिये।

प्र. गं. - यह हमारे विद्यारण्य का ऋग्वेदभाष्य है।

वा. व. - इस वाक्यका ४* अर्थ कहिये।

प्र. गं. - जीव कर्मफलका अनुभव करता है। परमात्मा आप्तकाम है, इसलिये कर्मफलका अनुभव नहीं करता। यह मन्त्र, अवास्तवभेदका आश्रय लेकर ''तयोरन्य:'' भेदकाही प्रतिपादन करता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! भेद अवास्तव हो या वास्तव हो, इसका आगे कहेंगे। विद्यारण्यके व्याख्यान के अनुसार यह वाक्य जीवपरमात्मा के भेदका बोध करता है न ?

प्र. गं. - भेद ही बताता है।

१* द्वौ....सयुजौ सहैव सर्वदायुक्तौ....वृक्षं शरीरं परिष्वक्तवन्तौ......तयो: परिष्वक्तयोरन्य: एक: क्षेत्रज्ञ: (जीव:).... कर्मफलं निष्पन्नं.... फलं.... अतिभक्षयति.... अनश्नन्नन्य: इतर; ईश्वरो......... नाश्नाति प्रेरयिता ह्यसौ उभयोभोज्यभोक्तृ: (मुं. भा. ३-१)

२* (द्वासुपर्णा सायुजा सखाया (मुंडक ३-१-१) एवमादिष्वपि.........तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्ति इति अदनलिंगात् विज्ञानात्मा भवति। अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति इत्यनशन चेतनाभ्यां परमात्मा।

३* ताभ्यांच स्थित्यदनाभ्यां ईश्वर क्षेत्रज्ञौ (ईश्वर जीवौ) तत्र गृह्यते इति (ब्र. सू.शां.भाष्य १-३-७)

४* लौकिक बुध्या भेदमश्युपेत्योच्यते। तयोरन्य: जीवात्मा पिप्पलं कर्मफलं स्वादु स्वादुभूतं अत्ति भुक्ते यस्य यदपार्जितं तत्तस्य स्वादुभवति अन्य: परमात्मा अनश्नन् आप्तकामत्वेन अभुजा: तस्मादवास्तव भेदमुपजीव्य तयोरम्य इत्युक्तं इति। (ऋ. २-३-१७-२०) विद्यारण्य भाष्य।

२१५ - सिविल सूट (३)

क्रॉस एक्जामिनेशन्

प्र. व. - शास्त्रीजी ! आपने कहा कि शंकरभगवत्पादने कहा है ''द्वासुपर्णा'' श्रुति जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करता है। शंकराचार्यने १-२-१२के सूत्रभाष्यमें अन्य तरहसे व्याख्यान किया है, क्या उसको आपने देखा नहीं ?

प्र. गं. - देखा है।

प्र. व. - उस व्याख्यानका बयान आपने क्यों नहीं किया ? उसे भीकहिये।

प्र. गं. - पैंगि रहस्य ब्राह्मण १* ''द्वासुपर्णा'' इस उपनिषत्को ग्रहण करके, इस वाक्यमें कर्म फल भक्षण करना-ऐसा जो कहा गया है वह अन्तःकरण का है (बुद्धिका) कर्मफल का भक्षण न करनेके बावजूद भी जो प्रकाशमान है वह जीव है। इस प्रकार व्याख्यान किया गया है। शंकराचार्यके अनुसार 'द्वासुपर्णा' श्रुतिमें जीव परमात्माका उल्लेख नहीं।

प्र. व. - पैंगि रहस्यके अनुसार ''द्वासुपर्णा'' मन्त्र जीवपरमात्मा भेदका कथन नहीं करता है न ?

प्र. गं. - ''द्वासुपर्णा'' वाक्य जीवपरमात्माके भेदका कथन करता है यह संभवता नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! द्वासुपर्णा वाक्य अन्त और जीवका प्रतिपादन करता है। जीवपरमात्माका, उनके भेदका प्रतिपादन नहीं करता। इस तरह पैंगिरहस्य ब्राह्मण कहता है तो आप कैसे कह सकते हैं कि द्वासुपर्णा जीव परमात्माके भेदका निरूपण करता है।

वा. व. - ''द्वासुपर्णा'' श्रुतिसे जीवपरमात्माका प्रतिपादन दीखता है। शंकराचार्यने ऐसा ही अर्थ किया है। अतः हमने कहा कि यह श्रुति जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करती है।

प्र. गं. - इस मंत्रमें अन्तःकरण और जीवका प्रतिपादन है ऐसा शंकराचार्यने अर्थ किया है। इस तरहके अर्थ करनेमें पैंगिरहस्य ब्राह्मण (वेद) भी अनुकूल है। अतः शंकराचार्यके इस व्याख्यानको सही मानना पडेगा।

वा.वि. - इस व्याख्यानकी प्रामाणिकताके विषयमें शंकराचार्यका तात्पर्य नहीं। पैंगिरहस्य ब्राह्मण 'द्वासुपर्णा' अन्तःकरण और जीवका बोध करता है ऐसा नहीं कहता। यह भी नहीं कहता कि मन्त्रका यही निरूपण है। अतः द्वासुपर्णा श्रुति जीवपरमात्माके भेदका ही प्रतिपादन करती है।

प्र. व. - आचार्यजी ! शंकराचार्यका इस व्याख्यानमें तात्पर्य नहीं, ऐसा आपने किस तरह जान लिया ?

वा.वि. - ब्रह्मसूत्रके १,२,१२के ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें शंकराचार्यने कहा है - अपर आह - दूसरे क़हते हैं ऐसा कहनेके कारण ये शंकराचार्यके विचार नहीं यह स्पष्ट होता है।

प्र. व. - ''द्वासुपर्णा'' मंत्र अन्तःकरण और जीवका प्रतिपादन करता है ऐसा पैंगिरहस्य

१* तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्वं, अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति ज्ञं....तावेतौ सत्व क्षेत्रज्ञाविति....तदेत सत्स्यं येन स्वप्नं पश्यति, अथ योऽयं शारीरः उपद्रष्टा सत्त्वक्षेत्रस्ता वेतौ सत्वक्षेत्र ज्ञाविति, न हवा एवंविदि रजः अध्वसंते इत्यादि (पैंगिरहस्य ब्राह्मण)

ब्राह्मणमें क्यों नहीं कहा ? उस ब्राह्मणमें उस प्रकार न कहनेमें क्या आपत्ति है ?

वा. व. – ''तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्वं कर्मफलका अनुभव कहनेवाला सत्व कहलाता है। अन्त:करण जड है, अत: कर्मफलभक्षण युक्तिसंगत नहीं होता । रमणीय चरणा: रमणीयां योनिमापद्यन्ते (छां.) नाकस्य पृष्ठे सुकृते तेना-भुक्त्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशंति. इस तरहके अनेक वेदादि प्रमाणोंसे जीवका ही कर्मफल भोक्तृत्व प्रमाणित होता है। अत: ''सत्व''का अर्थ जीव ही करना होगा। सत्व शब्द सत्व प्रकृतिजैर्मुक्तं (गी. १५-४०) आदि स्थानोंमें जीवका ही वाचक है। ''सत्व'' प्राणिजात ऐसा व्याख्यान शंकराचार्यनेभी किया है।

''अनश्नन्योभिचाकशीतीतिज्ञ:'' वाक्यसे कर्मफलका भक्षण न करनेवाला ज्ञ: कहलाता है। पूर्व प्रमाणोंके अनुसार जीव कर्मफल का अनुभव करता है। अत: ''ज्ञ'' पद जीवका ग्रहण करना चाहिये । ब्राह्मणमें कर्मफल भोक्ता जीवका उल्लेख है । अत: सत्त्व शब्दसे अन्त:करण कालेना युक्तिसंगत नहीं। कर्मफलका बोध न करनेवाले 'ज्ञ:' पदसे जीवका स्वीकार नहीं होगा। इसलिये पैगिब्राह्मणमें कर्मफल भोग करनेवाले जीवका, फलभोग न करनेवाला परमात्माका ही प्रतिपादन है। अत: जीवेश्वरके वर्णनसे जीवेश्वरभेद सिद्ध होता है।

प्र. व. – आचार्यजी ! 'तदेतत्सत्वं येन स्वप्नं पश्यति ।' वाक्यमें ''येन'' तृतीया विभक्तिसे स्वप्नदर्शनके लिये कारणीभूत (साधनीभूत) सत्वं कहा गया है। जीव स्वप्नदर्शन का कर्ता है, सत्त्वपदसे जीवका ग्रहण किस तरह किया जा सकता है ?

वा. वि. – ''पिप्पलं स्वाद्वत्ति इति सत्त्वं, कर्मफल भोक्तृत्व जडभूत अन्त:करणका नहीं हो सकता। अत: विभक्तिके विपरमाणसे ''जीव'' अर्थ किया गया है।

प्र. व. – आचार्यजी ! अथ योऽयं शारीर उपद्दष्टा स क्षेत्रज्ञ:'' शारीरतत्त्व, क्षेत्रज्ञत्व, उपद्रष्टत्व, जीवमें संभवते हैं। परमात्मामें संभव नहीं। अत: 'ज्ञ:' पदसे परमात्माका स्वीकार नहीं कर सकते।

वा. वि. – मि. एच. एच. शर्मा कर्मफल भोक्तृत्व जीवमें युक्त नहीं। परमात्मामें युक्त है। ऐसा पहले कहा गया है। योऽस्यात्मन: कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते'' स्मृति, उपद्रष्टानुभवन्ताच भर्ता भोक्ता महेश्वर: । परमात्मेति चाप्युक्त: देहेस्मिन् पुरूष: पर: (गी. १३-२२) आदि प्रमाणोंसे परमात्मामें शरीरवृत्तित्व, उपद्रष्टत्व, क्षेत्रज्ञत्व आदि गुण कहे गये है। क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही है। परमात्माके ग्रहणमें कोई बाधक नहीं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! यह वाक्य किस ग्रंथका है ?

प्र. गं. – यह शंकराचार्य का सूत्र भाष्य है।

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – 'द्वासुपर्णा' मंत्रमें ''तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वति'' वाक्यसे कर्मफलभोक्तृत्व कहा गया है। जीव ही प्रतिपाद्य है ''अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति, वाक्यसे परमात्मा प्रतिपाद्य है. ''द्वासुपर्णा'' मन्त्रके उत्तर मंत्रमें समानेवृक्षे मंत्रमें ''अन्यं ईशं'' पश्यति वाक्यसे जीवपरमात्मा द्दष्ट द्दष्टव्यभावसे प्रतिपाद्य है। इस विषयमें जुष्टं यदा पश्यति मन्त्रकी सम्मति भी है।

वा. व. – शास्त्रीजी ! ''जुष्टायदा पश्यत्यन्यमीशं'' ''मन्त्रस्द्य पश्यति पद द्रष्टृद्दष्टव्यभाव,

२१७- सिविल सूट (३)

''ईशं'' पदसे नियम्यनियामकभाव, ''जुष्टं'' पदसे सेवासेवकभाव ''अन्य'' पदसे सूचित हैं कि नहीं ?

प्र. गं. - जीवपरमात्माका भेद उक्त है। १*

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''द्वासुपर्णा'' ''जुष्टंयदापश्यह्यन्यमीशं'' वाक्योक्त भेद सत्य है या मिथ्या है ?

प्र. गं. - ''द्वासुपर्णा'' ''अन्यमीशं'' वाक्योंसे उक्त भेद मिथ्या ही है (व्यावहारिक है)

कोर्ट - शास्त्रीजी ! पुन: पुन: वेदोक्त विषयोंको मिथ्या कहना अच्छा नहीं । अन्य कोई समाधान हो तो बताईये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) धर्मराज प्रभु ! ''द्वासुपर्णा'' श्रुति द्वापदसे ही जीवपरमात्मामें द्वित्वसंख्या कहती है। ''सयुजा'' पदसे निरन्तर मिलकर रहनेवाले, कर्मफलभोक्तृत्व, कर्मफल भोक्तृत्वभाव जैसे विरूद्ध धर्मोंसे, अन्य: अन्य: पदोंसे जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करता है और 'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं' श्रुति द्रष्ट द्रष्टव्यभावसे, सेव्य सेवक भावसे, नियम्य नियामकभावसे भी अन्य पदसे जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करती है। शंकराचार्यने भी ''द्वासुपर्णा'' ''जुष्टं यदा पश्यति'' श्रुतियोंका इसी प्रकार किया है, अत: जीव परमात्मासे भिन्न है। यह सिद्ध होता है। इस पर कोर्ट ध्यान दे यह प्रार्थना है।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महानुभव न्यायमूर्ति ! ''द्वासुपर्णा'' ''जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं'' श्रुतियाँ यद्यपि जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करती है । तथापि तत्त्वमस्यादि वाक्य जीवपरमात्मामें ऐक्यबोधक होनेके कारण, इन श्रुतियोंमें उक्त भेदको मिथ्या कहना पडेगा । इसी कारणसे यहाँ उक्त भेद परमार्थिकसत्य नहीं हो सकता।

और ''तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वति'' ''अनश्नन्न्योभिचाकशीति'' ''ज्ञ:'' पैंगिरहस्य ब्राह्मण, द्वासुपर्णा श्रुति अन्त:करण और जीवका प्रतिपादन करती है ऐसा कहा गया है। 'द्वासुपर्णा' श्रुति जीवपरमात्माके भेदका बोध नहीं करती। भेदके विषयमें ''द्वासुपर्णा'' श्रुति प्रमाण नहीं हो सकती। इस विषयपर कोर्ट गौर करे।

१* अनंतरेच मन्त्रे तावेव (जीवपरमात्मानवेव) द्रष्ट द्रष्टव्यभावेन विशिनष्टि समानेवृक्षे पुरूषो निमग्नो अनीशया शोचतिमुह्यमान: जुष्ट यदा पश्यत्यन्यामीशमस्य महिमानं वीतशोक: (ब्र. सू. शां. भा.)

वादि वकीलकी जिरह (आर्ग्युमेंट)

वा. व. - महाप्रभु ! 'द्वासुपर्णा' 'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं' श्रुतियाँ जीव परमात्माके भेदका प्रतिपादन करती है। विरूद्ध धर्मोंके कारण यह भेद है, युक्ति भी उपन्यस्त है। शंकराचार्यने भी कहा है कि इस श्रुतिमें भेद ही उक्त है। तत्त्वमस्यादि वाक्योंके ऐक्यप्रतिपादके कारण यह भेद मिथ्या नहीं हो सकता। श्रुतिस्थ पदोंके स्वारस्यसे, शंकराचार्यके व्याख्यानसे, श्रुति जीवेश्वरभेदके विषयमें प्रमाण होती है। पैंगिरहस्यभी जीवपरमात्माके भेदके विषयमें सबूत है। जीव अन्त:करणके विषयका बयान पैंगिरहस्य नहीं करता। सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्त गीतामें जीवार्थमें ही प्रयुक्त है। पैंगिरहस्य 'सत्व' शब्दको जीवके विषयमें प्रयोग किया है। ''योऽस्यात्मन: कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते'' उपद्रष्टानुमंताच भर्ता भोक्ता महेश्वर, परमात्मेति चाप्युक्त: देहेस्मिन् पुरूष: पर;'' (१८-१२ गीता) इस प्रमाणसे और अन्य प्रमाणोंसे पैंगिरहस्य ब्राह्मणमें 'ज्ञ:' पदवाच्य के विषयमें शारीरत्व, उपद्रष्टत्व, क्षेत्रज्ञत्व परमात्मामें ही उक्त है। कर्मफलभोक्षण कर्तृत्वाभावादि धर्म परमात्मामें युक्त है। जीवमें योग्य नहीं होते। अत: 'ज्ञ:' पदवाच्य परमात्माही है। पैंगिरहस्य ब्राह्मण कहता है कि ''द्वासुपर्णा'' श्रुति भेदपर है।

इस मंत्रके बादमें स्थित समानेवृक्षे पुरूषो, अनीशया शोचति मुह्यमान: जुष्टं यदापश्चत्यन्यमीशंमस्य महिमानं वीतशोक: ''द्वासुपर्णा'' श्रुत्युक्त भेदका प्रतिपादनक करता है। इस जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होनेके कारण यह पारमार्थिक भेद ही। न्यायमूर्ति इसकी सूक्ष्मताया ध्यान दे।

वादि ए. २०
पृथगात्मानं ''प्रेरितासंमत्या'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेना मृततत्वमेति ॥ (श्वे १-६) इस श्रुतिका अर्थ क्या है ? इस श्रुतिसे क्या सिद्ध होता है ?

वा. वि. - आत्मानं - आत्माको (परमात्माको) अपनेसे भिन्न समझकर उससे जुष्टं - उस परमात्माके प्रीतिपात्र बनकर तत: - बादमें तेन - उसके प्रसादसे अमृतत्त्वमेति = मोक्ष प्राप्त करता है। इस मन्त्रसे प्रेरित जीव और प्रेरक परमात्मामें भेद उक्त हुवा, इतना नहीं भेदज्ञानको मोक्ष साधनत्व बताया गया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''पृथगात्मानं'' वाक्यसे प्रेर्य जीवमें प्रेरक परमात्मासे भेद उक्त है या नहीं ? उस भेदज्ञानको मोक्षसाधन कहा गया है या नहीं ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

१* ननु पृथगात्मानं प्रेरितारंच मत्वा जुष्टस्ततस्ते इति भेदज्ञानस्य मोक्ष हेतुत्व श्रवणात् कथंन स प्रपंचता पुरूषार्थ: इति चेन्न मते: पूर्वं ममापि प्रेरकपृथकत्व द्रष्टे: (अद्वैतसिद्धि भेदोध्दार:)

२१९ - सिविल सूट (३)

प्र. व. - शास्त्रीजी ! इस ग्रंथको देखिये और पहचानिये ?

प्र. गं. - इस वाक्यका तात्पर्य क्या है ?

प्र. व. - ''पृथगात्मानं प्रेरितारं'' वाक्यस्थ १* पृथक् पदसे प्रेर्य प्रेरकभावसे, भेदको सिद्ध करके, भेदज्ञानको मोक्षसाधकत्व कहा है। क्या जीवेश्वरका भेद सत्य है ? इस शंकाके उपस्थित होनेपर पृथक् पदसे प्रेर्य प्रेर्यकभाव प्रतीत होता है, भिन्न आत्माको समझकर जीव मुक्त होता है, ऐसा भी आभास होता है पर परमात्मामें प्रेरकत्व, जीवमें प्रेर्यत्व सिद्ध नहीं होता। क्योंकि भ्रमकालमें प्रेरक प्रेर्य भाव प्रतीत होते हैं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''पृथक्'' पद स्पष्टरूपमें जीवपरमात्माके भेदकी घोषणा करता है। पर भ्रमकालमें प्रतीत होनेवाला प्रेर्य प्रेरकभाव, भ्रमकालका भेद यह अर्थ किस तरह युक्ति युक्त होगा।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! अद्वैतसिद्धिके इस १* वाक्यका तात्पर्य क्या है ?

प्र. गं. - निर्गुण ब्रह्मज्ञान मोक्षसाधन है । सर्वमत्वादिगुणयुक्त ब्रह्मज्ञान जैसे परंपरासे मोक्षसाधन होता है वैसे ही भेदज्ञान प्रेरकत्वज्ञान परंपरासे मोक्ष साधन होता है। ''पृथगात्मानं'' वाक्यसे जीवपरमात्माका भेद ज्ञान मोक्षसाधक है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - आप सहमत है कि भेदज्ञान मोक्षका साधन है ? भेदज्ञान परंपरासे मोक्ष साधन है'' इस अर्थको बतानेवाला कौनसा पद इस वाक्यमें है ? अद्वैतमतके अनुसार मिथ्याभूत भेदज्ञान परंपरासे मोक्ष साधक किस तरह बन सकता है ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादि वकीलकी दलील

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ''पृथगात्मानं प्रेरितारंचमत्वा'' वाक्यसे स्पष्टरूपमें, जीवजडात्मक प्रपंचसे अत्यंत भिन्न परमात्माको प्रेरक समझकर मोक्ष प्राप्त करता है ऐसा कहा गया है। इससे जीवपरमात्माका भेद सत्य है यह सिद्ध होता है कोर्ट इसपर ध्यान दे।

प्रतिवादि वकीलकी जिरह

प्र. व. - महाप्रभो ! ''पृथगात्मानं प्रेरितारं'' श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद प्रतीत होता है। पर वह भेद, प्रेरकत्व भ्रमकालीन है। अत: जीवपरमात्माका भेद सिद्ध नहीं होगा और जीवसे भिन्न, प्रेरक परमात्माको जानकर, ऐसा अर्थ करनेपर भी जैसे सर्वज्ञत्वादिगुण विशिष्ट परमात्माका ज्ञान परंपरासे मोक्षसाधन बनता है। वैसेही प्रेर्यप्रेरक ज्ञानभी परंपरासे मोक्षकारण होगा। अत: इस वाक्यसे जीवपरमात्माका भेदज्ञान सिद्ध नहीं होता। अत: इस वाक्यसे सिद्ध होनेवालाभेद, भेदका मोक्षसाधकत्व सत्य ही है। इसपर कोर्ट विचार करे। ऐसी प्रार्थना हम करते है।

२* सगुण ब्रह्मज्ञानवत् प्रेरकत्वेन ब्रह्मज्ञानस्यापि परंपरया उपकारकत्वात् (अद्वैतसिद्धि)

वा. ए. २१

वा. व. - भीष्मास्माद्वात:पवते भीषोदेति सूर्य: भीष्मास्मादग्निश्चेंद्रश्च मृत्युर्धावति पंचम: (तै. ठ. २-८) श्रुतिका आशय क्या है ?

वा.व. - परमात्माके भयसे वायु शुद्ध करता है, सूर्य उदित होता है । अग्नि, इन्द्र, यम, परमात्माके भयसे अपने अपने कार्यमें लगे रहते हैं । प्रशास्य प्रशासकभावसे इन्द्रादि देवताओंमें परमात्माभेद सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने इन वाक्योंका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - वातादय: इस वाक्यसे १* वायु, इन्द्र आदि देवता स्वयं देवता (समर्थ) होनेपरभी, श्रमसाध्य शुद्धि कार्यमें पवन आदि तत्पर होते हैं। वैसे नियमसे प्रवृत्त होते हैं सभी देवता। नियमेन प्रवृत्ति उसी समय होगी, जब भिन्न नियामक हो। परमात्माही नियामक उसीके भयसे विश्वके समस्त कार्य चलते रहते हैं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्योक्त प्रशास्य प्रशासक भावके कारण जीवपरमात्मामें भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - प्रशास्य प्रशासकभावसे भेद सिद्ध होता है पर

वा. व. - ''पर'' क्या है ? भेदकी सिद्धि होती है या नही ?

प्र. गं. - पर यह भेद पारमार्थिक नहीं (सत्य नहीं)

वा. व. - भेदका सत्यत्व या असत्यत्वका निश्चय अदालत करेगी । आपको कहनेकी आवश्यकता नहीं। भेदबोधक है या नहीं यह श्रुति ?

प्र. गं. - श्रुति भेदबोधक है।

वा. ए. २२
''अजाह्येक'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लां बव्ही: प्रजा: सृजमना: सरूपा: अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्य:॥ (श्वेताश्वतर ४-५) श्रुतिका उद्धरण आपने किस लिये किया ?

वा. वि. - जीवब्रह्मके भेदके विषयमें यह श्रुति आधार है इसलिये उदाहरण के रूपमें दिया है।

वा. व. - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ? इस श्रुतिसे भेदकी सिद्धि किस तरह होगी ?

वा. वि. - अज = उत्पत्तिरहित एकजीव सत्वरजोस्तमाकात्मक अनेक प्रजाको जन्म देनेवाली

१* वातादयो हि महार्श: स्वयमीश्वरा संत पवनादिकार्येष्वायासबहुलेषु नियता: प्रवर्तन्ते तद्युक्तं प्रशास्तरि सति, यस्मात् नियमेन तेषां प्रवर्तनं, तस्मादस्ति भयकारणं तेषां प्रशास्तृब्रह्म यतस्ते भृत्या इव राज्ञोऽस्मात् ब्रह्मणो भयेन प्रवर्तन्तातच्च भयकारणं ब्रह्म (तै.शां.भा. २-८)

प्रकृतिका भोग करता रहता है। दूसरा मुक्तभोगयुक्त जीव प्रकृतिका त्याग करता है। इस तरह जीवोंमें भेदका समर्थन करके जीवविलक्षण परमात्मा के भेदका बोध करती है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यके विषयमें शंकराचार्यने सूत्रभाष्यमें क्या कहा है ?

प्र. गं. - १-४-१०के ब्रह्मसूत्र भाष्यमें १* दूसरोंको (द्वैतियोंको) इष्ट क्षेत्रज्ञके भेदका निरूपण करती है यह श्रुति, ऐसा शंकराचार्यका कथन है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यमें भेदका प्रतिपादन है, अतः वेदोक्त अनुष्ठान करनेवालोंको इस भेदका स्वीकार करना होगा।

प्र. गं. - यद्यपि इस वाक्यमें भेदका निरूपण किया गया है पर अभेद प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंके विरूद्ध होनेसे प्रतिपादित भेदको मिथ्या समझना होगा। यह शंकराचार्यका प्रतिपादन है वे कहते हैं - 'नहीयं क्षेत्रज्ञभेदः' २* अतः यह भेद स्वीकार्य नहीं होगा।

वा. व. - शंकराचार्यका कहना कुछभी हो। यह कहिये कि इस श्रुतिसे जीव जीवका निरूपित है या नहीं ?

प्र. गं. - भेद निरूपित है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट
वादि एक्जिबिट - २१

वा. ए. २१- 'भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीष्मास्मादग्निश्चेंद्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (तै. २-३) श्रुति प्रशास्तृ प्रशास्यभावसे जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करती है। ऐसा शंकराचार्यका मानना है।

वा. ए. २२ -वादि वकीलकी री आग्युमेंट

अजामेंका लोहित कृष्णशुक्लां बव्ही प्रजाः सृजमानाः सरूपाः अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगमजोन्यः'' श्रुति, जीवोंमें परस्परभेदका बोधक है। अनन्तजीव एकही परमात्मासे भिन्न है, इस रहस्यका निरूपण करती है। शंकराचार्यनेभी यह स्वीकार किया है कि इस श्रुतिमें जीवोंका परस्पर भेद कहा गया है।

१* नचेमाशंकितव्यं एकः क्षेत्रज्ञोऽनुशेतेऽन्यो जहातीत्यतः क्षेत्रज्ञभेद पारमार्थिकः परेषामिष्टः (ब्रह्म सू. भा. १-४-४०)

२* नहीयं क्षेत्रज्ञ भेद प्रतिपादयिषा किन्तु बन्धमोक्षस्य व्यवस्था प्रतिपादयिषात्वेषा। प्रसिद्धंतु भेदमनूद्य बन्धमोक्षव्यवस्था प्रतिपाद्यते। भेदस्तु उपाधिनिमित्तो मिथ्याज्ञान कल्पितो न पारमार्थिकः एको देवस्सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा किन्तु बन्धमोक्षव्यवस्था इत्यादि श्रुतिभ्यः (ब्र. सू. भा. १-४-१०)

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! वादि एक्जिबीट (२१-२२) जीवपरमात्मामें प्रशास्य प्रशास्तृभावसे बहुत्व, एकधर्मिसे भेद उक्त है। ऐसा जो वादिका कहना है, वैसे ही हमारे आचार्यने स्वीकार कर लिया है। लेकिन, तत्त्वमस्यादि वाक्योंका विरोध होनेके कारण इन श्रुतियोंसे ज्ञात भेदको मिथ्या समझना चाहिये। (व्यावहारिक) पारमार्थिक नहीं। इसको अदालत ध्यानसे रिकॉर्ड कर ले।

वा. ए. २२
''प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त:'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - आचार्यजी ! तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरमेवायं पुरूष: प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तर (बृ. ४-३-२१) श्रुतिसे जीवपरमात्माका भेद किस तरह सिद्ध होता है।

वा: व. - कामुक पुरूष प्रियतमा स्त्रिसे जब आलिंगनसे बद्ध होता है, तब बाह्य और आन्तरिक पदार्थोंको जैसे नहीं जानता वैसे ही निंद्रावस्थामें रहा पुरूष सुषुप्तिके समय परमात्मासे आलिंगनबद्ध होकर बाह्य पदार्थोंको आन्तरिक पदार्थोंको नहीं जानता। इससे जीवपरमात्माके संबंधका वर्णनकर भेदका ही निरूपण करती है श्रुति।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने १-३-४२के सूत्रभाष्यमें इस श्रुतिका क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. - ''प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त:'' श्रुति सुषुप्तिमें जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करती है। ऐसा शंकराचार्यने अर्थ किया है। १*

वा. व. - इस वाक्यसे जीव परमात्माका भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''प्राज्ञेनात्मनासंपरिष्वक्त:'' वाक्यका शंकराचार्यने अपने उपनिषद्भाष्यमें क्या अर्थ किया है, क्या आप जानते है ?

प्र. गं. - जानते हैं। जैसे २* 'प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त:'' स्त्रीके आलिंगनमें बद्ध (एकीभूत होकर) बाह्य और आन्तरिक पदार्थोंको समझता नहीं, उसी तरह सुषुप्तिमें प्राज्ञ परमात्मामें आबद्ध जीव बाह्य और आन्तरिक पदार्थों नहीं जानता। यह शंकराचार्यका कथन है।

१* सुषुप्तौ उत्क्रान्तौ च शरीरात् भेदेन परमेश्वरस्य व्यपदेशात् सुषुप्तौतावत् अयं पुरूष: प्राज्ञेनात्मका संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं (बृ. ४-३-२१) इति शारीराद्भेदेन परमेश्वरं व्यपदिशति। (ब्र.सू.भा. १-३-४२)

२* श्रुण्वत्र अज्ञान हेतुं। एकत्वमेव अज्ञानहेतु: तत्कथमिति उच्यते द्दष्टान्तेन हि प्रत्यक्षीभवति विवक्षितोऽर्थ: इत्याह्तत् तत्र यथा लोके प्रियया इष्टया स्त्रिया संपरिष्वक्त: सम्यक् परिष्वक्त कामयन्त्या कामुक:सन् न बाह्यं आत्मन: किंचन किंचिदपि वेद मत्तोन्यऽन्यत् वास्त्वीति, न चान्तरं, अयमहमस्मि सुखी दु:खिचेति वेद एकत्वं यथा संपरिष्क्तयो:) (बृ. भा. ४-३-२१)

२२३ – सिविल सूट (३)

प्र. व. – इस वाक्यसे जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है या अभेद सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – इस वाक्यसे अभेद सिद्ध होता है।

वा. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो ! इस श्रुतिका अर्थ जैसे शंकराचार्यने लिखा है, उसका विचार करना भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। विचार तो असहायतासे करना पडता है। विचार करनेके लिये कोर्ट अनुमति दे, यह प्रार्थना है।

कोर्ट – जब कोर्टमें प्रस्तुत होता है तो विचार करना ही होगा। इसलिये आप विचार कर सकते हैं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! कामुकपुरूष रतिकालमें कामिनीस्त्रीसे संबंद्ध होता है या उसके साथ एक होता है (ऐक्य हो जाता है)

प्र. गं. – रतिकालमें स्त्रीके साथ पुरूषका ऐक्य नहीं हो सकता। स्त्रीसे भिन्न ही रहता है।

वा. व. – 'स्त्रीके साथ एकत्व हो जाता है' इस तरह शंकराचार्यने क्यों कहा ?

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! 'स्त्रीके साथ एकत्व होता है' यह असंभव है, वैसे ही प्राज्ञनामक परमात्माके साथ एकत्वकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आपके मतके अनुसार अन्त:करणावच्छिन्न चैतन्य जीव शुद्ध ब्रह्मके साथ किसतरह एक हो सकता है ? सुषुप्तिकालमें ऐक्य निष्पन्न होगा तो, ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रवणमननध्यानकी क्या आवश्यकता है ? सुषुप्तिकालमें जीव एक होगा तो, परमात्मासे भिन्न होकर बाहर किस तरह आयेगा ? एकत्व होनेपर भी भिन्न होकर बाहर आयेगा तो, अपरोक्षज्ञानसे उपपन्न ऐक्यसे भी बाहर आना होगा। इसका उत्तर दीजिये।

प्र. गं. – मिथ्यावादविचार चिंतनमहो, कुर्वन्त्यद्दष्टात्मका: भ्रान्ता एव न पारगा द्दढधियस्तूष्णीं शिलावत् स्थिता: शंकराचार्यके कथनके अनुसार, हम ज्ञानी है। आपके साथ मिथ्या विचार नहीं करेंगे।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो : ''यथा प्रियया स्त्रिया'' वाक्यमें कामुक पुरूष रतिकालमें स्त्रीसे एक होता है, उसी तरह सुषुप्तिके समय जीव परमात्मासे एक होता है। इस तरह शंकराचार्यने उपनिषद्भाष्यमें व्याख्यान किया है। पर (१-३-४२) के ब्रह्मसूत्रभाष्यमें जीवब्रह्मका भेद कहा गया है, ऐसा भी व्याख्यान किया है। पर अभेद प्रतिपादक तत्त्वमस्यादि वाक्योके विरूद्ध होनेसे, वह भेद व्यावहारिक माना जाता है, अत: इस श्रुतिसे अभेदही सिद्ध होता है ऐसा आपसे हमारा विज्ञापन है।

वादिवकीलका पुन: आर्ग्युमेंट

वा. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो ! तत्त्वमस्यादि वाक्य मुख्यवृत्तिसे, लक्षणावृत्तिसे भी अखण्डार्थ

प्रतिपादक माननेपर भी, किसीभी तरह ऐक्यकी सिद्धि नहीं होगी। इसे हम पूर्वमें कह चुके हैं। बौद्धोंके व्यावहारिक भेदका खण्डन करनेवाले प्रतिवादि व्यावहारिक भेदका खण्डन करनेवाले प्रतिवादि व्यावहारिक भेदका कथन करना युक्तिसंगत नहीं होगा। कोर्टने भी आज्ञा दी है कि वैसे न कहे। रतिकालमें पुरूष स्त्रीके साथ एक होता है, यह कहना अनुभव विरूद्ध है और हास्यास्पद भी. है। इसलिये इस वाक्यसे ऐक्य सिद्ध नहीं होगा। हम कोर्टसे विज्ञापन करते है।

वा. ए. २४
''नित्यो नित्यानां'' श्रुतिपर विचार

वा. व. – आचार्यजी ! ''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान्'' (श्वे. ६-१-१२), (कठ २-५-१३) एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा य: करोति, तभास्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां (कठ २-५-१२) वाक्योंका उद्धरण किस विषयमें किया है ?

वा. वि. – जीवब्रह्मके भेदविषयमें उद्धरण दिये गये हैं।

वा. व. – इसका तात्पर्य क्या है ? इससे भेद किस तरह सिद्ध होता है ?

वा. व. – नित्य पदार्थोंको नित्यत्व, चतुर्मुखादि चेतनोंको चेतनत्व (ज्ञान), देनेवाला, परमात्मा एकही अनंत लोगोंको अपेक्षित पदार्थोंका उत्पादन करता है। इत्यादि उक्त होनेके कारण जीवब्रह्मका भेद सिद्ध होता है। एकोवशी........तमासस्थंयेनु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्'' मन्त्र 'य आत्मनि तिष्ठन्'' मन्त्रमें उक्त तरहसे जीवनियामक सर्व जगतके स्वामी परमात्माको जो देखते हैं, उनको शाश्वत सुख प्राप्त होता है। अन्य लोग, जो परमात्माको स्वामी नहीं मानते, अन्तर्यामि नहीं जानते। इसके विपरीत, मैं ही ब्रह्म हूँ, ब्रह्म निर्गुण है, ऐसा समझते हैं। उनको सुख नहीं मिलता न सुखं – दु:खही होता है। यह इस मन्त्रका अर्थ है। ज्ञातृज्ञेयभावसे जीव ब्रह्मके भेदका ही प्रतिपादन करता है।

''क्रॉस एक्जामिनेशन्''

प्र. व. – आचार्यजी ! ''नित्योनित्यानां'' पदोंका अर्थ, नित्य पदार्थोंको नित्यत्वप्रदान करनेवाला, चेतनोंको चैतन्य देनेवाला, ब्रह्मादि देवताओंको भी चैतन्य देनेवाला ऐसा अर्थ किस आधारपर किया ?

वा. व. – ''चक्षु:चक्षुषश्च'' वाक्यमें स्थित चक्षुष: चक्षुत्वप्रद आँखोंको दर्शनशक्ति देनेवाला अर्थ ऐसा शंकराचार्यने ही अर्थ किया है। वैसे ही चेतन: चेतन: चैतन्यप्रद ऐसा अर्थ हमने किया है।

प्र. व. – ''इतरेषां' पदका अर्थ मैं ब्रह्म हूँ, ब्रह्म निर्गुण है ऐसा समझनेवाले ऐसा अर्थ किस तरह किया ? इस अर्थका आधार क्या है ?

२२५- सिविल सूट (३)

वा.वि. - परमात्मा वशी = सर्वस्वामि है सर्वभूतान्तरात्मा है। सर्वभूतोंका नियामक है। पुरूषोंसे अपेक्षित पदार्थोंकी सृष्टि करता है। वह हमारे अन्तर्यामी है ऐसे समझनेवाले लोगोंको सुख होगा। इतना कहकर 'इतरेषा' कहा गया है। उपरोक्त कथनके विरूद्ध जो समझते हैं, वे ही लोग होंगे जो ब्रह्मको निर्गुण मानते हैं, अपनेको ही ब्रह्म मानते हैं यही अर्थ होगा।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - कोर्टसे महाप्रभो ! ''एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा'' ''नित्यो नित्याना'' वाक्य ज्ञातृज्ञेयभावसे जीवपरमात्माके भेदका निरूपण करते हैं। कोर्ट इसपर गौर करे।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! तत्त्वमस्यादि वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करते हैं। इन वाक्योंसे भेदका बोधन किया जाता है। अत: विरोध होगा इसलिये इस भेदको मिथ्या (व्यावहारिक) समझे। यह वाक्य पारमार्थिक भेदके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता।

वादि वकीलका री आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! तत्त्वमस्यादि वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन नहीं करते। कोई बाधा भी नहीं। अत: वेदोंसे सिद्ध भेदको मिथ्या न कहे। पुन: प्रतिवादियोंका पारमार्थिक भेद नहीं करना योग्य नहीं।

वा. ए. २५
ज्ञा. ज्ञा. श्रुतिपर विचार

वा. व. - ''ज्ञा ज्ञा द्वावजाविनाशिनौ'' इस श्रुतिका अर्थ क्या है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

वा. वि. - ज्ञ: - सर्वज्ञ परमात्मा अज्ञ: - अज्ञ जीव ये दोनों अजौ स्वरूपत: उत्पत्ति रहित हैं। ईशानीशौ (परमात्मा ईश है, स्वामी है) सर्वज्ञ है। जीव अनीश है स्वामी नहीं अल्पज्ञ है। अतएव द्वौ = दोनों भिन्न हैं। जीव परमात्मामें स्वामित्वास्वामित्व होनेसे, सर्वज्ञत्वाल्पज्ञत्वभावसे, और ''द्वौ'' पदसे भेद सूचित होता है।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''द्वौ'' पदका अर्थ दो ऐसा, आपने भिन्न ऐसा अर्थ किस तरह निकाला ?

वा. वि. - 'द्विशब्दो द्वित्व संख्याया भेदेचापि प्रयुज्यते'' 'द्वि' शब्दका 'भेद' ऐसा अर्थ कहे जानेके कारण भिन्न ऐसा अर्थ कहा गया है।

प्र. व. - ''द्वौ'' शब्दका ''दो'' यह अर्थ है, जो प्रसिद्ध है। इस प्रसिद्द अर्थको छोडकर ''भिन्न'' ऐसा अर्थ ग्रहण करनेमें क्या आधार है ?

वा. वि. - ज्ञा, ज्ञौ द्विवचनसे ही 'दो' (द्वित्वसंख्यायुक्त) यह अर्थ सिद्ध होता है। द्वित्व संख्या भेदव्याप्त होनेसे (भेदके विना संभवता नहीं, अत: इस पदसे भेद सिद्ध होता है। ''ईशानीशौ''

पदोंसे भी ईशत्व, अनीशत्वरूप विरूद्ध धर्म उक्त होनेके कारणसे भी भेद सिद्ध होता है।
प्र. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यसे भेद सिद्ध होता है कि नहीं ?
प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है पर वह वास्तवभेद नहीं अविद्या कल्पित भेद है, व्यावहारिक है।
कोर्ट - ''व्यावहारिक सत्य'' पर पहले चर्चा हो चुकी है। पुन:व्यावहारिक न कहे, अन्य कोई समाधान हो तो कहिये।
प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्रतिवादि वकीलका जिरह

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ईशत्वानीशत्व सर्वज्ञाल्पज्ञत्व कल्पि होनेके कारण उनसे पारमार्थिक भेद सिद्ध नहीं होगा। अत: इस वाक्यसे व्यावहारिक भेद ही सिद्ध होता है। पारमार्थिक भेद सिद्ध नहीं होता।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - कोर्टसे। श्रुतियोंसे सिद्ध सर्वज्ञत्व, असर्वज्ञत्व, ईशत्व, अनीशत्व कल्पित हैं। इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। अत: ये विरूद्ध धर्म सत्य ही है। इन धर्मोंसे ''द्वौ'' पदसे भिन्न ऐसा अर्थ ग्रहण न करके द्वित्व संख्यायुक्त ऐसा अर्थ करनेपरभी द्वित्वसंख्या भेदव्याप्त होनेके कारण भेदकी सिद्धि होती है। भेद श्रुतिसे सिद्ध है.। कोई बाधक भी नहीं। अत: इसे पारमार्थिक भेदही समझना चाहिये। यह वाक्य जीवपरमात्माके भेदके विषयमें प्रमार ही है।

वा. ए. २९ प्र. ए. १७
''अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्यौ सौ अन्योऽहमास्मिति न सवेद'' (बृ. १-४-१०) वाक्यका तात्पर्य क्या है ? इससे क्या सिद्ध होगा ?
प्र. गं. - मैं भिन्न हूँ, यह देवता मुझसे भिन्न है। यों अन्यदेवता की उपासना करता है वह अज्ञानी है। इस तरह भेदोपासककी निंदा कर भेदका भी निषेध किया गया है। इससे जीवपरमात्माका भेदभी निषिद्ध है। अत: ऐक्यकी सिद्धि होती है। वादी वकीलका क्रॉस एक्जामिनेशन्।
वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्य अपने उपनिषद्भाष्यमें इस मन्त्रका क्या अर्थ लिखा है ?
प्र. गं. - १* ''अथ य: कश्चित्'' आदिवाक्योंका इस प्रकार अर्थ लिखा है। ब्रह्मज्ञानरहित मनुष्य आत्मासे (परमात्मासे) भिन्न इन्द्रादिदेवताओंकी उपासना करते हैं। इन्द्रादि देवता हमारे

१* अथ य: कश्चिद ब्रह्म विदन्यामात्मनो व्यतिरिक्तां यां यांकचित्देवतां उपास्ते स्तुति नमस्कार बल्युपहारप्रणिधान ध्याननादिनोपास्ते तस्या गुणभावभंगम्यास्ते। अन्यो सावानात्मा मत: पृथगन्योहमस्मधिकृतोमया अस्मै ऋणिवत् प्रतिकर्तव्यं इत्येवं प्रत्ययस्सन् उपास्ते न स इत्थं प्रत्ययो वेद विज्ञानातीत्वं (बृ. १-४-१०)

लिये रयीस लोगोंकी तरह हमारे शासक है। मैं उनसे भिन्न हूँ, ऋण लेनेवाला जैसे ऋणकोंका आदर सत्कार कर उपकार करता है, वैसे इन्द्रादि देवताकी पूजा करते हैं।स्तुति करते हैं। नमस्कार करते हैं, भोग लगाते हैं वे भोग सभी अज्ञानी हैं।

वा. व. - १* IV-१२ गीताश्लोकका अर्थ शंकराचार्यने क्या किया है ?

प्र. गं. - 'यदितेश्वरस्य' आदि वाक्योंसे, ईश्वर श्रीकृष्णसे अर्जुन कहते है - 'हे कृष्ण तुममें रागादि दोष नहीं। समस्त प्राणियोंपर समानरूपमें अनुग्रह करना चाहते हो, फल देनेकी शक्ति है। मोक्षकी इच्छासे लोग तुम्हारी पूजा क्यों नहीं करते ? कृष्ण कहते है उसका कारण यह है सुनो - शीघ्रमें फल पानेकी इच्छा रखनेवाले मानव ''अत योन्यां देवतामुपास्ते'' ''अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद'' श्रुतिमें उक्त प्रकारसे परमात्मासे भिन्न इन्द्रादि देवताओंके उद्देशसे यज्ञयागादि करते हैं, उनको शीघ्रही फल मिलता है। अत: मेरी पूजा नहीं करते।

वा. व. - इस गीतावाक्यसे, उपनिषद्भाष्ये भी इस वाक्यका अर्थ क्या हुआ ?

प्र. गं. - ब्रह्मज्ञान रहित लोग, परमात्मासे भिन्न इन्द्रादि देवता आराधना थोडेसे फलके लिये करते हैं। उनको अल्पफलकी प्राप्ति होती है। इस तरह कर्म करनेवाले लोगोंकी निन्दा की गयी है। ब्रह्मज्ञान की प्रशंसा करके उसीको प्राप्त करनेका विधान किया गया है।

वा. व. - ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के आदेशसे ज्ञातृज्ञेयभाव, जीवब्रह्म का भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. - कितनी बार पूछते हैं। ''चोद्यं वा परिहारो वा क्रियन्तां द्वैतभाषया अद्वैत नास्ति चोदना'' इस तरह प्राचीन आचार्योंने कहा है। बोलनेसे द्वैत सिद्ध होता है। पर ''वेणुसंघर्षज वह्निवत्'' बांबूके परस्पर संघर्षसे उत्पन्न होनेवाली आग अपने नाशका कारण बनती दूसरोंके नाशका कारण बनती है। यही हमारी मतकी प्रक्रिया है। भेद, ज्ञातृज्ञेयभाव सबकुछ बाध्य है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह भेद मिथ्या है, या नहीं बादमें विचार करेंगे। ब्रह्मज्ञान की प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये ऐसा कहनेके कारण भेद सिद्ध तो होता है।

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है पर वह भेद मिथ्या ही है।

वा. व. - ''अन्यां'' ''देवतां'' पदों अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - परमात्मासे भिन्न इन्द्रादि देवता ऐसा अर्थ है।

वा. व. - इस वाक्यसे किससे किसका भेद कहा गया है ?

प्र. गं. - परमात्मासे इन्द्रादि देवताका भेद कहा गया है।

वा. व. - तो इस वाक्यसे परमात्मा और इंद्रादि देवताका भेद सिद्ध हुवा।

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - भेदकी सिद्धि होते हुये इस वाक्यका उद्धरण अभेदके विषयमें क्यों किया ?

१* यदि तवेश्वरस्य रागादि दोषाभावात् सर्वप्राणिप्वनुजिघृक्षायां तुल्यायां सर्वफल प्रदान समर्थेच त्वयिसति वासुदेव: सर्वामिति ज्ञाननैव मुमुक्षव: सन्त: कस्मात्वामेव सर्वे न प्रतिपद्यन्त इति श्रुणु तत्र कारणं ''कक्षिन्त:'' इति काक्षन्तो अभिप्सन्तो कर्मणां सिद्धिं फलनिष्पत्तिं प्रार्थन्तो यजन्त: इहस्मिन्ल्लोके देवता इन्द्रग्न्याद्या:'' ''अथ: योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्यो सावन्योहमसीति न सवेद यदा पशुरेवस देवानां इति श्रुते: (गी.भा. ४-१२)

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''अन्यां देवतामुपास्ते न सवेद'' अन्य देवताओंकी उपासना करनेवालोंकी निन्दा की गयी है या नहीं ? किस प्रकारसे उपासना करनेवालेकी निन्दा की गयी है ?

प्र. गं. - ''अन्योसौ अन्योहमस्मि'' वह देवता अन्य है, मैं अन्य हूँ - इस प्रकारकी उपासना करनेवालोंकी निंदा की गयी है।

प्र. व. - इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - इन्द्रादि देवता भिन्न हैं, मैं अन्य हूँ, भेदज्ञानी निंदित है। भेदज्ञानी अज्ञानी हैं। अत: भेद सिद्ध न होकर अभेद सिद्ध होता है।

वा. व. -शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - शंकरभगवत्पादके ब्रह्मसूत्रभाष्यकी टीका भामती है।

वा. व. - यह ग्रंथ आपके लिये मान्य है या नहीं।

प्र. गं. - हमारे लिये परम मान्य है।

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ कहिये। १*

प्र. गं. - अनन्यत्व पदसे अभेदका बयान नहीं करते पर भेदका निषेध करते हैं। अभेदके आधारपर जो आपके दोष कहे जाते हैं, उन दोषोंके साझेदार हम नहीं। इतना ही अभेदका निषेध करनेवाले नैयायिक हमारी मदद करते हैं।

वा. व. - भेदके निषेध किये जानेपर अभेदकी सिद्धि नहीं होगी न ?

प्र. गं. - अभेद सिद्ध नहीं होगा ?

वा. व. - भेदके निषिद्ध होनेपर जैसे अभेद सिद्ध नहीं होगा भेदका निषेध करते हैं यों कहते है आप - ''योऽन्यां'' वाक्यसे अभेद किस तरह होगा ?

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वा. व. - इन्द्रादि देवता विशिष्ट है या शुद्ध हैं ?

प्र. गं. - इन्द्रादि देवता विशिष्ट ही हैं।

वा. व. - जीव विशिष्ट है या शुद्ध ?

प्र. गं. - जीव विशिष्ट ही है।

वा. व. - विशिष्ट इंद्रादि देवताओंमें और विशिष्ट जीवमें ऐक्य है या भेद है ?

प्र. गं. - विशिष्ट देवताओंमें और विशिष्ट जीवोंमें भेद ही है। ऐक्य नहीं।

वा. व. - विशिष्ट इन्द्रादि देवताओंमें विशिष्ट जीवोंसे भेद होगा तो, उस भेदको जाननेवाले अज्ञानी कैसे होंगे ?

प्र. गं. - विशिष्ट देवताओंमें विशिष्ट जीवोंसे जो भेद है वह व्यावहारिक भेद है, पारमार्थिक भेद नहीं। अत: विशिष्टोंमें जो पारमार्थिक भेदको समझते हैं। वे ही अज्ञानी समझे जाते हैं। इस तरह

१* न खलु अनन्य त्वमित्यभेदं ब्रूम: किन्तु भेदं व्यासे श्वाम:। शतश्च नामदोश्रय दोन प्रसंग: किन्तु अभेद व्यासेदम्दिवै शेषिकादिभि: अस्मासु सहायमेव आचरितं भवति (भा. २-१-१४)

२२९ - सिविल सूट (३)

पारमार्थिक भेदका निषेध किया गया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'अन्योसावन्योहमस्मि' वाक्यमें देवता मुझसे पारमार्थिकरूपमें भिन्न है, मुझसे देवताएं पारमार्थिकरूपसे भिन्न हैं, मैं देवताओंसे पारमार्थिकरूपसे भिन्न हूँ, इस तरह ज्ञापन करनेवाला कोई शब्द है ? ''पारमार्थिक भेदवान्नसौ'' ''पारमार्थिक भेदवानहं'' या ऐसे शब्द है ?

प्र. गं. - '' पारमार्थिक'' ऐसा कहनेवाला कोई शब्द नहीं।

वा. व. - ''पारमार्थिक'' शब्द न रहनेपर पारमार्थिक भिन्न अर्थ कैसे कहते हैं ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! घरको घर, बी.ए. उत्तीर्ण को बी. ए. उत्तीर्ण समझे या नहीं ?

प्र. गं. - इसमे क्या शक है ? घर को घर और बी. ए. उत्तीर्णको बी. ए. उत्तीर्ण समझना ही चाहिये।

वा. व. - अन्य पदार्थको अन्य समझे या नहीं ? या अनन्य समझें ?

प्र. गं. - अन्य पदार्थको अन्य ही समझे। अनन्य न जानना।

वा. व. - अन्य देवताओंको अन्य समझनेवाले ज्ञानी ही है ? या अनन्य समझनेवाले ज्ञानी है ?

प्र. गं. - अन्यरूपमें विद्यमान देवताओंको अन्य समझनेवाले ही ज्ञानी है।

वा. व. - अन्यां देवतामुपास्ते अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशु: वाक्यका अर्थ क्या कहा ?

प्र. गं. - अन्य देवताओंको अन्य जाननेवाले अज्ञ कहे गये।

वा. व. - शास्त्रीजी ! अन्य पदार्थोंको अन्य समझनेवाले ज्ञानी है। इस तरह पूर्वमें आपने कहा। याद कीजिये अब कहते हैं। अन्य देवताओंको अन्य समझनेवाले अज्ञ हैं। आपके अर्थमें श्रुतिविरोध है न ?

प्र. गं. - ''अथ योन्यां'' इस वाक्य इस तरह करते हैं। व्यावहारिक रूपमें भिन्न देवताओंको पारमार्थिक रूपमें भिन्न है। ऐसा जो समझते हैं , उपासना करते हैं। इस अर्थसे परस्पर विरोध नहीं होगा। अथवा अनवस्था व्याहति, आदि दोष पदार्थोंकी सत्ताका नाश करते हैं। किसीभी पदार्थकी सत्ताको स्वीकार न करनेवाले अद्वैतियोंके मित्र होंगे। अत: हमारे वचनोंमें जो विरोध आता है वह अच्छा ही है।

वा. व. - कोर्टसे महाप्रभो ! जो वेदोंमें नहीं, अपनेसे ही निषिद्ध को व्यावहारिक समझते हैं। बार बार इसीका उल्लेख किया जाता है। अनवस्थादि दोषोंको मित्र समझते हैं। इस प्रकारका कथन युक्त है या अयुक्त है। इसपर कोर्टही विचार करें।

कोर्ट - शास्त्रीजी ! आपने पहले कहा है - व्यावहारिक - अर्थात् न होना, प्रमाण व्यावहारिक पदार्थोंका प्रतिपाद नहीं करते। पुन: आप ही ''व्यावहारिक'' शब्दका उपयोग करते हैं। यह संगत नहीं। कोई अन्य समाधान होगा तो कहिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! इस श्रुतिका अर्थ आप किस तरह करते हैं ?

वा. वि. - ''अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्यो सावन्यहमस्मीति न स वेद अन्य: - अन्य: जीव:, अन्यां देवतां = अपनेसे भिन्न परमात्माको अपनेसे भिन्न नहीं समझता, मैं ही परमात्मा हूँ, इस तरह उपासना करता है वह अज्ञानी है। यह हमारा अर्थ है।

प्र. व. - कहीं दूरमें रहे पदको इसमें अन्वय करनेसे क्या दूरान्वय दोष नहीं आयेगा ?

वा. वि. - येन यस्याभिसंबंधो दूरस्थस्यापि तेन सह (भामती ३-२-२२) न्यायसे, पूर्वमें उक्त अन्वयबाधित होनेसे, यह दूरान्वय अबाधित होनेके कारण, दूरान्वय दोष नहीं।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युंमेट

प्र. व. - महाप्रभो 'अथ योन्यां देवतामुपास्ते अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद'' (बृ. १-४-१०) श्रुति, देवता अन्य है, मैं अन्य हूँ, इस तरह देवता की उपासना करनेवाले भेदको जाननेवालोंकी निन्दा की गयी हैं। ज्ञात होता है कि भेदका निषेध किया गया है। जिसके कारण अभेदकी सिद्धि होती है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! इस मंत्रके उपनिषद्भाष्यमें, गीताके चौथे अध्यायके श्लोकके व्याख्यानमें निम्नलिखित अर्थ लिखा गया है - ब्रह्मज्ञानको प्राप्त न करके क्षुद्रफलोंकी प्राप्तिके लिये, शीघ्रतासे फल प्राप्त करने इन्द्रादि देवताकी आराधना करते हैं। वे समझते हैं कि इन्द्रादि देवता ऋण देनेवाले रयीसकी तरह हैं। उनकी आवभगत करना, उनको प्रसन्न रखना हमारा काम है। इसी विचारसे वे इन्द्रादि देवताकी पूजाकरते हैं। शंकराचार्य कहते हैं, इस वाक्यमें जीवपरमात्माके भेदकी निंदा नहीं की है। ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करना चाहिये, ऐसा ही कहा गया है। क्षुद्रफलोंकी इच्छा रखनेवालोंकी निंदा की गयी है। अत: इस वाक्योक्त ज्ञातृज्ञेयभावसे भेद सिद्ध है। शंकराचार्यके भाष्यकी परवाह न करेंगे तो भी ''अन्यां देवतां'' पदोंसे ही स्पष्टरूपमें परमात्मा और देवताका भेद सिद्ध होता है।

''अन्योऽसायन्योहमस्मीति'' वाक्यमें भिन्नरूपसे उपासना करनेवालोंकी निंदा की है, भेदका निषेध किया गया है। अत: अभेद सिद्ध होता है, ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं क्योंकि -

१) भामतीमें कहा गया है केवल भेदके निषेधमात्रसे अभेदकी सिद्धि नहीं होती। इस न्यायसे ''अन्योसौ'' वाक्यमें भेदका निषेध किये जानेपर अभेदकी सिद्धि नहीं होती।

२) अद्वैतमतके अनुसार इन्द्रादि देवता विशिष्ट है, जीव विशिष्ट है, विशिष्टोंमें भेद ही संभवता है। घरको घर समझना, बि.ए. उत्तीर्ण समझना अज्ञान का लक्षण नहीं। अपनेसे भिन्न इन्द्रादि देवताको समझनेवाले अज्ञानी हैं। यह कहना अत्यंत अयुक्त है। यही नहीं, भेदज्ञानी अज्ञानी हैं तो भेदका निषेध करना संगत नहीं।

३) ''अन्यां देवतां'' भिन्न देवताकी उपासना भिन्न समझकर करनेवांले अज्ञानी हैं, ऐसा कहनेसे

स्वव्याहति (स्वविरोध आयेगा) इसी कारण इस श्रुतिमें भेदकी निंदा की गयी है, यह कहना युक्तिसंगत नहीं होगा। कोर्ट इसपर ध्यान दें।

प्रतिवादि वकीलका पुन: आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! पुन: पुन: क्या कहना है। भेद कहनेवाले सभी वाक्य व्यावहारिक भेदका ही निरूपण करते हैं। पारमार्थिक भेदका निषेध करते हैं। ''ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैनापर:'' अद्वैतमें किसीकाभी मेल नहीं होता। मेल नहीं होना दुर्घटत्व है, यह हमारे लिये भूषण है। अनवस्थादि दोष हमारे दोस्त ही है, इस विषयपर कोर्ट ध्यान दे।

वा. ए. ३० प्र. ए. ॥
''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' (४-४-६ बृ.) इस वाक्यका उद्धरण किस लिये किया ?

प्र. गं. - जीवब्रह्मकी एकताको प्रमाणित करनेके लिये उद्धरण किया है।

प्र. व. - इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ब्रह्मैव सन् - ब्रह्म ही है, परब्रह्मको प्राप्त करता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - इस वाक्यगत किस भावसे ऐक्य सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्माप्येति'' वाक्यसे ऐक्य सिद्ध होता है।

वा. व. - ''ब्रह्माप्येति'' वाक्यका अर्थ ब्रह्मको प्राप्त करता है। इतना ही अर्थ होता है। आपने ऐसा ही अर्थ शंकराचार्यने भी अपने ब्रह्मसूत्र (३-२-२७) भाष्यमें कहा है - क्वचिज्जीव प्राज्ञयोर्भेदो: व्यपदिश्यते परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यं इति गन्तृगन्तव्यत्वेन, प्राप्तृ प्राप्तव्यभावसे भेद सिद्ध होता है।

प्र. गं. - ''अप्येति'' पदका मुख्यार्थ ग्रहण करनेपर प्राप्तृ प्राप्तव्यभावसे भेद सिद्ध होता है। पर शंकराचार्यने मुख्यार्थका ग्रहण न करके १* ''मैं तत्त्वत: संसारी हूँ'' इस विपरीत ज्ञानसे, जो देह परंपरा प्राप्त होगी, उसकी निवृत्ति होगी। ''अप्येति'' शब्दका इस प्रकार अमुख्यार्थ लिखा है। अर्थात् ''अप्येति'' प्राप्तृप्राप्यभावका निर्देश नहीं करता। अत: जीवब्रह्मका भेद सिद्ध नहीं होता।

१* देहान्तर प्रतिसंधानाभावमात्रेणैवतु ब्रह्माप्येति इत्युच्यते। तस्माद् ब्रह्माप्येतीत्युच्यते। तस्मात् ब्रह्माप्येतीत्युपचार मेतत् विपरीत गृहवध्देह संतति विच्छेदमात्रं विज्ञानफलमपेक्ष्य (ब्र. सू. भा. ४-४-६)

वा. व. - ''अप्येति'' पदके मुख्यार्थके त्यागका क्या कारण है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्माप्येति'' पदका अर्थ, ब्रह्मको प्राप्त करता है, यों अर्थ करनेपर जीवब्रह्मका भेद सिद्ध होता है, अतः मुख्यार्थको छोड गया है।

वा. व. - भेदसिद्ध होनेसे बाधक क्या है ?

प्र. गं. - अन्य श्रुतियोंका विरोध ही बाधक हैं।

वा. वं. - ''ब्रह्माप्येति'' ब्रह्मको प्राप्त करता है, इस अर्थको छोडकर ब्रह्मज्ञानसे देहपरंपरा समाप्त होती है। अमुख्य दूसरे अर्थसे जीवब्रह्मैक्य सिद्धि नहीं होगी, इस समस्याका उत्तर किन प्रमाणोंसे देंगे ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - ''ब्रह्मैवसन्'' वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - जीव ब्रह्मरूपी ही है, जीवँ ब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होगा।

वा. व. - ''ब्रह्मैवसन्'' वाक्यस्थ ''ब्रह्म'' शब्दका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ''अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति बृहन्ति बृह्यंति'' इत्यादि श्रुतिके अनुसार बृहत्त्व (पूर्णत्व) रूप धर्मविशिष्ट चेतन ऐसा अर्थ होता है।

वा. व. - जीव बृहत्वादि (पूर्णत्वादि) धर्म विशिष्ट होता है या नहीं ?

प्र. गं. - पूर्णत्वविशिष्ट नहीं होगा।

वा. व. - पूर्णत्वविशिष्ट नहीं होगा तो ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मैव सन् बृहत्वादि धर्मविशिष्ट चैतन्य रहकर ऐसा अर्थ होगा।

प्र. गं. - जीव, ब्रह्म शब्दके मुख्यार्थ भूत पूर्णत्व विशिष्ट चेतन होनेपर भी ''ब्रह्म''शब्दका लक्षणावृत्तिसे बृहत्वादि धर्मविशिष्ट चेतन'' इस अर्थका त्याग करके ''शुद्धचेतन'' ऐसा अर्थ ग्रहणकरते हैं। जीव ब्रह्मज्ञानी 'ब्रह्मैव सन् चेतन' होकर ही देहसंतति नाशयुक्त होता है। ऐसा अर्थ होगा।

प्र. व. - ''ब्रह्मैव सन्'' चेतन ही होकर रहता है ऐसा अर्थ उक्त होनेसे, ''जीव चेतन है'' यह अर्थ सिद्ध होनेपर भी जीवब्रह्मका ऐक्य सिद्ध नहीं होगा।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वा. व. - शास्त्रीजी ! अथ मर्त्योऽमृतो भवतीत्यत्र ब्रह्म समुश्नते (बृ. ४-४-७) यह मन्त्र किस मन्त्रके आगे है ? इस मन्त्रकी प्रवृत्ति किस लिये है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति'' वाक्यके अनंतर पूर्वाक्त वाक्य है। ब्रह्मैवसन् वाक्यके अर्थको द्दढ करनेके लिये प्रवृत्त है।

वा. व. - आपने कैसे जान लिया ?

प्र. गं. - ''तदप्येष श्लोको भवति'' तत् = तत्र ''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' वाक्यके कथनीय अर्थके विषयमें उत्तर श्लोक प्रमाण है। ऐसा वेदमें ही कहा गया है। इस तरह ''स्यैव द्दढीकरणाय मन्त्र उदाह्रियते'' श्लोक शब्दवाच्यः यह शंकरभाष्यसे ज्ञात होता है।

२३३ - सिविल सूट (३)

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - कामोंके नष्ट हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। ब्रह्म - ब्रह्मको समश्नुते - प्राप्त करता है।

वा. व. - इस प्रकार अर्थ किसने किया है ?

प्र. गं. - ब्रह्मणश्च मुक्तोपसृप्यत्वं प्रसिद्धं शास्त्रे..........। अत्र ब्रह्म समश्नुते इत्येवमादौ (ब्र.सू.भा. १-३-२) वाक्यमें ब्रह्म मुक्तोंसे प्राप्त प्राप्यभावसे जीवपरमात्माका भेद ही सिद्ध होता है न ?

प्र. गं. - भेद ही सिद्ध होता है।

वा. व. - 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' वाक्यसे उक्त अर्थके विषयमें वेदसे उध्दृत प्रमाणके अनुसार ''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' वाक्य भेद निरूपक है ऐसा ही कहना होगा।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

प्र. व. - शास्त्रीजी ! उपनिषद्भाष्यमें शंकराचार्यने क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. - ''ब्रह्म'' ब्रह्मभावको मोक्षको समश्नुते - प्रतिपद्यते - ब्रह्मत्व प्राप्त करता है, ब्रह्म होता है।

वा. व. - इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ? शंकराचार्यके विचार क्या हैं ?

प्र. गं. - जीव ब्रह्म बनता है। जीवब्रह्ममें अभेद है। इस तरह शंकराचार्यका कहना है।

वा. व. - ''ब्रह्म समश्नुते'' वाक्यका क्या अर्थ है ?

प्र. गं. - ब्रह्मको प्राप्त करता है।

वा. व. - ''ब्रह्म'' पदका ब्रह्मत्व अर्थ होता है या नहीं ?

प्र. गं. - ''ब्रह्मत्व'' यह अर्थ नहीं होता।

वा. व. - ''ब्रह्म'' पदका ब्रह्मत्व अर्थ नहीं होगा तो, शंकराचार्यका अर्थ अयुक्त होगा।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

प्र. व. - आचार्यजी ! ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति वाक्यका अर्थ आपके मतसे क्या है ?

वा. वि. - ''ब्रह्म'' शब्दका जीव अर्थ है। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मैव सन् जीव होते हुये (जीवभाव का त्याग न कर) ब्रह्मको प्राप्त करता है। इस वाक्यसे व्यक्त होनेवाले प्राप्यप्रापक भावसे भेद सिद्ध होता है।

प्र. गं. - भेदज्ञापक है।

वादि वकीलकी दलीलें

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'' वाक्यका तात्पर्य इस प्रकार है - संसारावस्थामें ब्रह्म ही रहता है। ब्रह्म आप्येति - मैं ब्रह्म नहीं, मैं संसारी हूँ, ज्ञानसे जो देहपरंपरा उत्पन्न होती है, वही देहपरंपरा नष्ट होती है। इस प्रकार अर्थ शंकर भगवत्पादने किया है। प्राप्तृप्राप्य भावको उल्लेख नहीं किया है। संसारावस्थामें रहकर जीवके ब्रह्मभावका निरूपण किया

है। अत: यह श्रुति जीवब्रह्मके अभेदके विषय प्रमाण है। इसपर अदालत ध्यान दे यही हमारा विज्ञापन है।

वादि वकीलका री-आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! ब्रह्म अप्येति ब्रह्मको प्राप्त करता है। स्पष्टरूपमें प्राप्य प्रापक भावसे भेद ज्ञात होता है। आप्येति = विपरीत ज्ञानसे उत्पन्न देहसंतान विनाश ऐसा जो अर्थ किया गया है, वह आश्चर्यकारक है। किस कोशके आधारपर यह अर्थ किया गया है। कोर्ट उनसे पूछे, हमने लोकमें ऐसा अर्थ नहीं देखा है।

''संसारावस्थामें ब्रह्म बनकर ही रहता है'' ऐसा जो प्रतिवादिका अर्थ है, वह अत्यंत अयुक्त है। क्योंकि - अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति बृहंयतिचेति श्रुतिसे ब्रह्म पदका अर्थ पूर्णत्वादि गुणयुक्त अर्थ होता है। संसारमें ब्रह्म बनकर ही रहता है। ऐसा अर्थ युक्तियुक्त नहीं होगा। लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मपदका चित् अर्थ करके चेतन ही बनकर रहता है, चेतन रहनेके कारण ही उसकी देहसंतति नष्ट होती है। इस तरहके अर्थसे जीवेश्वरका ऐक्य सिद्ध नहीं होगा। पूर्वमें ब्रह्मको न जाननेके कारण लक्षणावृत्तिमें चित् ब्रह्मपद बोध्य नहीं होगा। अत: प्रतिवादिका अर्थ अयुक्त है।

ब्रह्मैव सन् - जीवभावको न छोडकर परमात्माको प्राप्त करता है। प्राप्यप्रापकभावसे जीवेश्वरका भेद ही सिद्ध होता है।

प्र. ए. ७
''अयमात्मा ब्रह्म'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! अयमात्मा ब्रह्म श्रुतिका अर्थ क्या है ? इस श्रुतिसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - अयमात्मा - यह जीव परमात्मा है। जिससे जीव परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'द्युभ्वाद्ययतनं स्व शब्दात्' शंकराचार्यने इस सूत्रका व्याख्यान किस तरह किया है ?

प्र. गं. - ''यस्मिन् द्यौपृथिवी अन्तरिक्षं ओतं मनः सहप्राणैश्च सर्वैः तमेवेकं जानथ आत्मानमन्यो वाचो विमुंच थ अमृतस्यैवेष सेतुः'' शंकराचार्यका व्याख्यान इस प्रकार है - द्युलोक, भूलोक आदि आश्रय एक ही है। इस द्युभ्याद्ययतन प्रधान है, या वायु, अथवा जीव, या चतुर्मुख इस प्रकार संशय उत्पन्न होनेपर ''आत्मानं'' शब्द उपयुक्त हुवा है। द्युभ्वाद्यायतन परमात्मा ही है। जीव, वायु, चतुर्मुख ब्रह्म, प्रकृति इनमें कोईभी द्युभ्वाद्ययतन नहीं। आत्म शब्दका अर्थ परमात्मा ही

होगा तो यह सूत्र समन्वित होता है। अन्यथा नहीं।

वा. व. – इस उपरोक्त अनुच्छेदसे आत्मा शब्द किसका बोधक हुवा ?

प्र. गं. – आत्म शब्द परमात्माका बोधक हुवा।

वा. व. – ''अयमात्मा'' वाक्यगत आत्म शब्द भी परमात्मावाचक होनेके कारण, इस आत्मशब्दसे जीवका ग्रहण करके जीव ही परमात्मा है, ऐसा अर्थ क्यों कहा आपने ?

प्र. गं. – यद्यपि आत्म शब्द परमात्माबोधक है, अयमात्मा वाक्यमें ''अयं'' शब्द होनेके कारण, यह 'अयं' शब्द प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका ही निर्देशक होता है। जीव प्रत्यक्ष सिद्ध है। ''अयमात्मा'' वाक्यस्थ आत्माका प्रत्यक्ष सिद्ध जीव ही वाच्य होगा। जिससे जीवपरमात्माका अभेद सिद्ध होता है।

वा. व. – इस ग्रंथको देखिये। यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. – यह ग्रंथ, शंकराचार्यका सूत्रभाष्य है।

वा. व. – इस भाष्यमें 'अप्येति प्रत्यक्षादि सन्निधापितस्य धर्मिण: इदमानिर्देश:'' वाक्य क्यों प्रवृत्त हुवा है ?

प्र. गं. – 'जन्माद्यस्ययत:' सूत्रस्थ 'अस्य' पद प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका बोधक है। अतीद्रिंय स्वर्गादिरूप जगतका ग्रहण 'इद' पदसे कैसे किया जा सकता है ? इस तरहकी शंकाके उत्पन्न होनेपर, शंकराचार्य कहते हैं। 'अस्य' शब्द, प्रत्यक्षसे , अनुमानसे हो शब्दोंसे हों, बुद्धिमें विषयभूत वस्तुका ही ज्ञापक होता है। अत: अस्य पदसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध स्वर्गादि समस्त जगतका निर्देशक होता है।

वा. व. – तो आपके विचार क्या है ? अयं पद प्रमाणसिद्ध वस्तुका बोधक है या प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका ज्ञापक है ?

प्र. गं. – प्रमाणसिद्ध वस्तुका ही निरूपक है, यही भाष्यका अभिप्राय है।

वा. व. – ब्रह्म प्रमाण सिद्ध है या नहीं ?

प्र. गं. – प्रमाणसिद्ध है।

वा. व. – 'अयमात्मा' वाक्यगत 'अयं' पदसे प्रमाणसिद्ध परमात्माका ग्रहणकर सकेंगे न ?

प्र. गं. – ग्रहण कर सकते हैं।

वा. व. – ''आत्मा'' पद मुख्यरूपसे ब्रह्म बोधक है। अयं पद – प्रमाणसिद्ध परमात्मा निरूपक है, ब्रह्म पूर्ण है, इस प्रकारके अर्थमें क्या बाधक है ?

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''अयमात्मा ब्रह्म'' यह मांडूक्य वाक्य है, अयं प्रत्यक्ष सिद्ध जीव, आत्मा = परमात्मा है, इस तरह उक्त होनेके कारण, इस वाक्यसे जीव परमात्माका अभेद सिद्ध

होता है । 'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्' सूत्रोक्त प्रकारके अनुसार आत्मा शब्द मुख्यरूपसे परमात्मावाचक होनेपर, आत्म शब्द विशेषण युक्त होनेके कारण 'अयं' शब्द प्रत्यक्षसिद्ध परमात्माका बोध करेगा। ब्रह्मतो प्रत्यक्षसिद्ध नही। जीव प्रत्यक्षसिद्ध है। अत: प्रत्यक्षसिद्ध जीवका ही ग्रहण आत्मशब्दसे करना होगा, अयमात्मा ब्रह्मपद प्रत्यक्षसिद्ध जीवको परमात्माके रूपमें निरूपण करते हैं। जिससे जीवेश्वरका अभेद सिद्ध होता है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - धर्मराज प्रभो ! १-३-१ के ब्रह्मसूत्र व्याख्यानमें शंकराचार्यने ही लिखा है कि आत्म शब्द मुख्यत: परमात्मा वाचक है, अयं शब्द प्रमाणसिद्ध वस्तुओंका बोध करता है न केवल प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तुका । इस तरह 'जन्माद्यस्ययत:' सूत्र व्याख्यानमें शंकराचार्यने वार्तिककारने आदि अद्वैतियोंने स्वीकार किया है।

आत्मशब्दसे जीवके ग्रहण करनेमें कोई नियामक नहीं । इसलिये 'अयमात्मा=प्रमाणसिद्ध परमात्मा, ब्रह्म = पूर्ण है। इसी प्रकार अर्थ करना चाहिये। जीवपरमात्मा ऐक्य न कहे। यह वाक्य अखण्डार्थ बोधक होनेसे, अभेद विषय नहीं होगा। ''चित्'' मात्र निरूपित होगा। आत्मा, ब्रह्म शब्दोंसे बोध्यमान विशिष्ट चैतन्योंका ऐक्य अद्वैतियोंसे स्वीकार्य नहीं होता। तत्त्वमसि वाक्यकी तरह लक्षणावृत्तिसे 'चित्' का बोध नहीं होगा। इस प्रकारके दोष होनेसे 'अयमात्मा ब्रह्म' वाक्यसे जीवपरमात्माका ऐक्य बोध्य नहीं होगा। कोर्ट इसपर ध्यान दे।

प्र. ए. १२

प्र. व. - शास्त्रीजी। ''यदा ह्येवैष: एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरूते अथ तस्य भयं भवति'' (तै. २-१) श्रुतिका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - जिस समय मनुष्य एतस्मिन् - इस परमात्मामें अन्तरं = भेदको देखता है, उस समय उसको भय उत्पन्न होता है। भय उत्पन्न होता कहनेसे जीव ब्रह्म ऐक्यसिद्ध नहीं होता।

प्र. व. - इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - परमात्मामें तनिक भेद माननेपर भी भय पैदा होता है। भयके कहनेके कारण भेदज्ञानी तत्त्वज्ञानी नहीं होगा।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'एतस्मिन्नुदरमन्तर कुरूते' इसका पूर्ववाक्य क्या है ?

प्र. गं. - 'एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरूक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो

भवति'' वाक्य है।

वा. व. - शंकराचार्यने इस श्रुतिका व्याख्यान क्या किया है ?

प्र. गं. - जो मनुष्य अद्दश्ये = द्दश्यवस्तुसे भिन्न अनिरूक्ते - निर्वचनयोग्य पदार्थोंसे भिन्न अनिलयने - आश्रय भिन्न ब्रह्ममें, प्रतिष्ठां = ज्ञानलक्षण स्थितिको प्राप्त करता है। अर्थात ब्रह्मको जानता है, वह उस समय अभय ब्रह्मको प्राप्त करता है।

वा. व. - इस श्रुतिमें ब्रह्मका कौनसा भेद कहा गया है ?

प्र. गं. - द्दश्य वस्तुओंसे भिन्न, निर्वचनयोग्य पदार्थोंसे भिन्न, आश्रय और भेद, ज्ञातृज्ञेयभाव प्राप्त प्राप्तव्यभावसे जीवपरमात्माका भेद सिद्ध होता है। ऐक्य सिद्ध नहीं होता।

वा. व. - ''सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' (तै) वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - सत्यं, ज्ञानं, अनंतं पदोका अर्थ लक्षणावृत्तिसे चित् अर्थ होता है।

वा. व. - ''चित्'' अर्थ ही कहना है तो तीनोंमें से सत्यं, ज्ञानं, अनंत पदही पर्याप्त है। तीन पदों का प्रयोजन क्या है ?

प्र. गं. - 'सत्यं' पद से चित्त् बोध पैदा होनेपर भी असत्यसे भेद ज्ञानं पदसे अज्ञान का भेद, अनंतं पदसे परिच्छिन्न का भेद सिद्ध होता है। अत: इन तीनों पदोंकी आवश्यकता है।

वा. व. - सत्यं ज्ञानं अनंतं पदोंसे कौनसा भेद सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - असत्यभेद, अज्ञान भेद, परिच्छिन्न भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - न सत्तन्नासदुच्यते (गी. १३-१२) वाक्यका शकंराचार्यने क्या अर्थ किया है ?

प्र.गं. - सत्त्वप्रकारक बुद्धि का विषय नहीं। (सत्त्वबुद्धिका विषय अन्य है) 'असत्य' रूपं बुद्धिका विषय नहीं, यह अर्थ किया गया है।

वा. व. - इससे ब्रह्ममें कौनसा भेद सिद्ध होता है ?

प्र.गं. - ''असत्''रूप बुद्धि विषयभूत वस्तुसे भेद, ''सत्'' बुद्धि विषयभूत वस्तुसे भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - ''अन्यत्र धर्मात्, अन्यत्राधर्मात् अन्यत्रास्मात कृताकृतात् अन्यत्र भूताध्य भव्याच्य यत्तत्तपश्यसि तद्वद'' इस काठक वाक्यका शंकराचार्यने क्या अर्थ किया है ?

प्र.गं. - धर्मसे भिन्न, अधर्मसे भिन्न, भूतपदार्थोंसे भिन्न, भविष्यमें होनेवाले पदार्थोंसे भिन्न, इस प्रकार जिसको जानते हो, उसके विषयमें कहो।

वा. व. - इस मन्त्रसे कौनसे भेद सिद्ध होते हैं ?

प्र.गं. - कारण पदार्थोंसे, कार्यपदार्थोंसे, भूतपदार्थोंसे भेद, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंसे भेद, ज्ञातृज्ञेय भावसे जीवसे भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

कोर्ट - मिस्टर दास कितनी बार पूछते हैं ? क्या कोर्टके लिये दूसरा काम नहीं ? आगे बढिये। इस विषयकी समाप्ति कीजिये।

वा. व. - महाप्रभो ! प्रतिवादि कहते हैं कि परमात्मामें कोई भेद नहीं। परमात्मामें भेदको

माननेवाले प्रतिवादियोंके प्रमाणोंको ही उद्धृत करता हूँ। आप मना करेंगे तो समाप्त करूँगा।

कोर्ट - यह विचार काफी हो चुका है। अन्य विषयपर विचार कीजिये।

वा. व. - जैसे आपकी इच्छा

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस वाक्यके पूर्वमें और उत्तरमें विद्यमान अनेकों वाक्योंसे भेदका बयान किया गया है। इसके विरूद्ध ''एतस्मनुदरमंतर कुरूते'' यह वाक्य परमात्मामें समस्त भेदोंका निषेध करता है, यह कहना युक्त संगत कैसा होगा ?

प्र. व. - उत्तर नहीं।

वादि की विचारणा

प्र. गं. - आचार्यजी ! आप इस श्रुतिका अर्थ क्या करते हैं ?

वा. वि. - ब्रह्ममें स्वगतगुण क्रियासे प्राप्त भेदका निषेध करता है यह मंत्र।

प्र. गं. - विष्णुदासाचार्यजी ! ओहो.. इस मंत्रमें स्वगतभेदका निषेध है, यह नया अर्थ आपकी बुद्धिमें किस तरह आया ?

वा.वि. - शास्त्राध्ययन करनेवालोंके लिये यह अर्थ नूतन होनेपर भी, निरन्तर द्वैताद्वैत शास्त्रोंके विचार करनेवालोंके लिये यह अर्थ नही। नया नहीं ''वृक्षस्य स्वगतो भेद: पत्रपुष्प फलादिभि:'' वृक्षमें पत्र पुष्प फलादिसे जो भेद है वह स्वगतभेद है। उसी तरह ब्रह्ममें भी स्वगत गुणोंका भेद होगा, इस तरहकी शंका हो सकती है। एकमेवाद्वितीयं वाक्यस्थ ''एकं'' पदसे इस स्वगत भेदका निषेध किया गया है। यह अद्वैतियोंका ही कथन है। इसलिये यह नया विचार नहीं।

प्रतिवादि वकीलकी दलील

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''एतस्मिन्नुदरंमन्तंरं कुरूते'' ''अथ तस्य भयं भवति'' वाक्यमें परमात्मामें जो तनिक भी भेदकी कल्पना करता है, उसको भय प्राप्त होगा। भेदज्ञानी की निन्दा करके भेदका भी निषेध किया गया है। अत: जीवब्रह्मका अभेद इस श्रुतिसे सिद्ध होता है। कोर्ट इस विषयका सूक्ष्म निरीक्षण करे यही हमारी प्रार्थना है।

वादिवकील की जिरह

वा. व. - महाप्रभो ! ''एतस्मिन्नुदरं'' वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्य और अन्य वाक्य परमात्मामें अनेक प्रकारके भेदका बयान देते हैं। इन वाक्योंसे अनेकों प्रकारके भेद कहे जाते हैं। इसे शंकराचार्यने भी स्वीकार किया है। भेदका निषेध नहीं किया जा सकता। ''एकमेवाद्वितीयम्'' वाक्यस्थ ''एव'' पदका स्वगत भेद रहित अर्थ किया गया है। उसी तरह ''एतस्मिन्नुदरमन्तर

कुरूते'' में स्वगत भेद निषेध किया गया। इससे जीवपरमात्माका भेदही सिद्ध होता है। कोर्ट इसपर गौर करे यही प्रार्थना है।

प्र. ए. १३
''द्वितीयाद्वै भयं भवति'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''द्वितीयाद्वै भयं भवति'' (बृ. १-४-२) श्रुति जीवब्रह्मके अभेदका निरूपण किस तरह कहती है ?

प्र. गं. - दूसरे पदार्थसे भय पैदा होता है, ब्रह्मातिरिक्त दूसरा पदार्थ ही न होनेसे, जीव ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - ''व्याघ्रात् भवति, संर्पाद्भयंभवति'' वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - बाघसे, सापसे भय पैदा होता है।

वा. व. - इस वाक्यसे बाघ नहीं, साप नहीं ऐसा (ऐसा) क्या अर्थ सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - व्याघ्र और सर्प प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे इनका निषेध नहीं कर सकते।

वा. व. - ''द्वितीयाद्वै भयं भवति'' वाक्य ''व्याघ्रात् भयं भवति'' वाक्यमें समानता है न ?

प्र. गं. - समान वाक्य है।

वा. व. - व्याघ्राद्वैभयं भवति वाक्यसे व्याघ्र सर्प नहीं है, ऐसे सिद्ध होनेपर ''द्वितीयाद्वै भय भवति'' वाक्यसे द्वितीय वस्तुका अभाव किस तरह होगा ?

प्र. गं. - ''द्वितीयाद्वैभवति'' वाक्यसे द्वितीय वस्तुके अभावकी सिद्धि न होनेपर ''यन्मदन्यन्नास्ति'' ''कस्मात्द्वीभेमी'' (बृ. १-४-४) के पूर्ववाक्यमें मदन्यत् - मुझसे भिन्न वस्तु नहीं, मैं किससे कहुँ ? इस उक्त होनेके कारण द्वितीय वस्तुके अभावकी सिद्धि होगी। साथ जीवब्रह्मके ऐक्य की सिद्धि भी होगी।

वा. व. - शास्त्रीजी ! उपरोक्त वाक्यपर लिखे शंकरभाष्यको क्या आपने देखा है ?

प्र. गं. - देख चुके हैं यह भाष्य। १* यद्यस्मात् - आदि वाक्य

वा. व. - इस वाक्यका क्या अर्थ है ?

प्र. गं. - 'प्रतिद्वंदीभूत' मेरे विरोधी दूसरी वस्तु ही नहीं, मेरे विनाश के लिये कारणीभूत वस्तु न होनेके कारण मुझे किसका भय होगा ?

वा. व. - इस वाक्यसे क्या सिद्ध होगा ? द्वितीय वस्तु ही भयका कारण है ? अथवा विरोधीभूत

१* यद्यस्मात् मदन्यभास्ति, यद्यस्मान्मत्तोऽन्यदात्मव्यतिरेकेण वस्त्वन्तरं प्रतिद्वंद्वीभूतं नास्ति नास्तिनात्म विनाश हेत्वभावे कस्मान्तु बिभेमीति (बृ.भा. १-४-२)

द्वितीय वस्तु ही भयका कारण है ?

प्र. गं. - विरोधीभूत द्वितीय वस्तु ही भयका कारण यह सिद्ध होता है।

वा. व. - विरोधी द्वितीय वस्तु ही भयका कारण होगी तो आपके कथनके अनुसार विरोधी द्वितीय वस्तुका निषेध कर सकते हैं। पर द्वितीय वस्तुके अभावको किस तरह सिद्ध करेंगे ?

प्र. व. - आचार्यजी ! शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार द्वितीय वस्तुका अभाव सिद्ध न होनेपर भी, ऐक्य श्रुतिसिद्ध है या नहीं। इसपर विचार करते वक्त ''यन्मदन्यनास्ति'' वाक्यसे मुझसे भिन्न वस्तुही नहीं, चतुर्मुखके विषयमें कहा गया है। इस तरह द्वितीय वस्तुका अभाव सिद्ध होगा।

वा. व. - मि. शर्मा ! आप आधुनिक है, लोकव्यवहारमें बनवे हैं। बाल्यसें ही अंग्रेजी अध्ययन करने के कारण, शंकराचार्यके वाक्यमें आपका विश्वास कम हो चुका है। अत: आप ऐसे कह सकते हैं। आपके पक्षके गंगाधर शास्त्री ऐसे कहेंगे तो हम उत्तर देंगे।

प्र. गं. - अद्वैतमतके अनुसार हम अखण्ड चिदानंद स्वरूप हैं। 'न शिष्यो न गुरू:' उक्ति के अनुसार हमारे कोई गुरू नहीं, शिष्य नहीं। अत: शंकराचार्य की बात रहने दो। ''यन्मदन्यन्नास्ति'' वाक्यसे द्वितीय वस्तुका अभाव सिद्ध होता है, या नहीं ?

वा. व. - द्वितीय वस्तु ही भयजनक है, द्वितीय वस्तुके अभावमें श्रुतिका तात्पर्य होता तो यह श्रुति ''स वै न रेमे तस्मादेकार्की न रमते स द्वितीयमैच्छत्'' उत्तर वाक्यमें कहा गया है कि - चतुर्मुख ब्रह्म (दूसरी वस्तु न होनेके कारण, अकेला होनेसे) सुखी नहीं हो सका। अकेले होनेपर सुख नहीं मिलता। अत: लोकमें अकेला कोई नहीं रहता। अपने सुखके लिये चतुर्मुख ब्रह्माने दूसरेकी इच्छा की ऐसा क्यों कहते हैं ? अत: विरोधी दूसरी वस्तु ही भयका कारण है ऐसा कहना होगा।

प्र. गं. - आचार्यजी ! पियक्कड सुखके लिये शराबकी इच्छा करते हैं, और पीते है। इस उदाहरणसे क्या हम शराबको सुख कारण मान सकते हैं ? इसी प्रकार अविवेकी ब्रह्माने सुखके लिये द्वितीय वस्तुकी अपेक्षा की, चतुर्मुख १* की चाहमात्रसे क्या दूसरी वस्तु सुखसाधक बन सकती है ? द्वितीय वस्तु भयका कारण बनती सुखका कारण नहीं। इसी हेतुसे ''यन्मदन्यभास्ति'' ''द्वितीयाद्वैयं भवति'' वाक्य द्वितीय वस्तुके अभावका निरूपण करते हैं।

वा. वि. - धर्मराज प्रभु ! ज्ञानमप्रतिधं यस्य, वैराग्यं च जगत्पते: ऐश्वर्यं चैव धर्मस्य सहसिद्धं चतुष्टयं (बृ.शां.भा. १-४-२) स्मृतिमें स्वभावसिद्ध ज्ञान, ऐश्वर्य, धर्म, वैराग्य इन गुणोंसे ब्रह्मा युक्त है। इसलिये उस ब्रह्माको पियक्कड का द्दष्टान्त देकर अविवेकी कहनेवाले अविवेकी हैं। अथवा चतुर्मुख ब्रह्म अविवेकी है। इसका निर्णय अदालत ही करे।

कोर्ट - इस क्रिमिनल केस का विचार बादमें करेंगे, सिविल केस पहले चलकर पूर्ण हो जाये।

वा. वि. - वैसे ही हो।

वा.वि. - शास्त्रीजी ! 'यन्मदन्यन्यास्ति कस्माद्बीभेमि विचार किसका है ?

प्र. गं. - यह विचार चतुर्मुख ब्रह्माका है।

१* अस्या: श्रृते: अविवेकी पुरूषपरत्वात (अद्वैतसिद्धि)

वा. वि. - आपके विचारसे इस वाक्यसे क्या सिद्ध हुवा है।

प्र. गं. - चतुमुर्ख कहता है - मुझे छोडकर दूसरी वस्तुकी नहीं, मैं क्यों डरूँ ? इन विचारोंसे दूसरी वस्तुका अभाव सिद्ध होता है।

वा. वि. - शास्त्रीजी ! चतुर्मुख विवेकी है या अविवेकी ? विवेकी है तो ''स वै नैव रेमे...स द्वितीयमैच्छात्, वाक्य अविवेकीका वाक्य होगा। द्वितीय वस्तुका सुख कारणत्व सिद्ध होकर, भय कारणत्व नष्ट होगा।

अविवेकी होगा तो यदन्यन्नास्ति अविवेकीका विचार बनेगा, द्वितीय वस्तुका भयकारण नष्ट होगा। इस तरह उभयत: पाशारज्जु: दोनों ओर विपत्ति प्राप्त है। द्वितीय वस्तुका भयकारणत्व किस तरह सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! यदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति द्वितीयाद्वै भयं भवति (बृ. १-४-२) वाक्यमें कहा गया है - मुझसे अन्य वस्तु होती तो भय पैदा हो सकता है। दूसरा पदार्थ ही नहीं, मुझे भय किसका ? इस प्रकार द्वितीय वस्तुके अभावका ही प्रतिपादन करती है श्रुति। इसपर कोर्टका ध्यान रहे।

वादि वकीलकी दलील

वा. व. - (कोर्टसे) धर्मप्रभो ! विरोधीभूत दूसरे पदार्थसे भय पैदा होता है। सामान्यत: दूसरे पदार्थसे भय पैदा नहीं होता। अगर दूसरा पदार्थ ही भयकारण बनता तो चतुर्मुख ब्रह्म अपने सुखके लिये दूसरेकी कामना नहीं करते। अत: दूसरा पदार्थ ही भयकारण नहीं, पर विरोधी दूसरा पदार्थ भयकारण होगा। शंकराचार्यने भी कहा है - प्रतिद्वंदी (विरोधी) दूसरी वस्तु ही भयजनक होती है। चचतुर्मुखने विचार किया है कि विरोधी दूसरी वस्तु ही नहीं। इस प्रकार ब्रह्माने विचार किया। ''द्वितीयाद्वै भयं भवति'' वाक्यका यही अर्थ है। ''द्वितीयाद्वैभयं भवति'' वाक्य, द्वितीय वस्तुका निषेध नहीं करता। द्वितीय वस्तुको भयजनक माननेपर भी साँप भयजनक है, सिंह भयजनक है कहनेपर साँप ही नहीं, सिंह भी नहीं, ऐसा सिद्ध नहीं होता। वैसे ही द्वितीय वस्तु भयजनक कहनेमात्रसे द्वितीयं वस्तुका अभाव सिद्ध नहीं होता।

चतुर्मुख अविवेकी था, अत एव सुख के लिये दूसरे पदार्थ की कामना करता रहा। वास्तवमें द्वितीय वस्तुको भयजनक कहना ही अत्यंत अयुक्त है। वास्तवमें द्वितीय वस्तुको भयजनक कहना ही अत्यंत अयुक्त है। क्योंकि ''ज्ञानमप्रतिधं यस्य'' स्मृतिसे ब्रह्माका ज्ञान स्वभाव सिद्ध है। वैराग्य ऐश्वर्ययुक्त कहा गया है। इस तरह के ब्रह्माको अविवेकी कहना, या कहनेवालोंका विवेक लोक

विलक्षण रहा होगा। इस तथ्यको कोर्टमें बताना अनावश्यक है। अकेले रहनेमें सुख नहीं, दूसरे की इच्छा की, इससे यह सिद्ध होता है कि दूसरी वस्तु भयकारण नहीं। दूसरी वस्तुका अभाव सिद्ध नहीं होता। अत: द्वितीय वस्तुका भयकारणत्व, द्वितीय वस्तुका निषेध युक्त नहीं। इसपर कोर्ट ध्यान दे।

प्र. ए. १५
''योसावसौ पुरूष:'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि' (ईश १६) वाक्यका अर्थ क्या है ? इससे अभेद किस तरह सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - य: - जो, असौ पुरूष: - सूर्यमंडलमें रहा पुरूष है, स: - आदित्य मण्डलस्थ वह पुरूष, अहमस्मि = मैं ही हूँ. आदित्य मण्डलस्थ परमात्मा ही मैं हूँ (जीव हूँ) इससे पुरूष – परमात्मा ही जीव है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - 'भेदव्यपदेशचान्य:'' (ब्र. सू. १-१-२२) सूत्रभाष्यमें शंकराचार्यने क्या लिखा है ?

प्र. गं. - ''य: आदित्ये तिष्ठन् आदित्यादत्तरोयं'' (बृ. ३-७-९) इस वाक्यसे आदित्यके अन्तर्यामि परमात्मासे भेद कहे जानेके कारण 'य एषोऽन्तरादित्ये'' (छा.) आदित्यके अन्तर्यामि परमात्मा है, आदित्य उससे भिन्न है, ऐसा कहना चाहिये।

वा. व. - 'य आदित्ये तिष्ठन्' श्रुति आदित्यसे परमात्माके भेदका प्रतिपादन करती है। इस तथ्यको और किन्होंने माना है।

प्र. गं. - सूत्रकार वेदव्यासने और शंकरभगवत्पादने माना है।

वा. व. - आपके लिये दोनों आप्त है न ? (यथार्थ बोलनेवाले)

प्र. गं. - शिवशिव ! क्या इस तरह प्रश्न कर सकते हैं ? कोर्ट इस तरह प्रश्न न पूछे, हमें सुनना भी नहीं चाहिये। शान्ति: शान्ति: शान्ति: वे हमारे लिये परमाप्त है ''

वा. व. - सूत्रकारने भेदव्यपदेशाच्च सूत्रमें जो कुछ कहा, उसके (सूत्रमें) भाष्यमें जो शंकराचार्यने कहा है, उसका स्वीकार करना चाहिये न ?

प्र. गं. - हम भेदका स्वीकार करते हैं।

वा. व. - शंकराचार्यकी द्रष्टिसे ''य आत्मनि तिष्ठन्'' इस बृहदारण्यके मन्त्रका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - जीवमें और परमात्मामें भेद उक्त है, ऐसा शंकराचार्यका कहना है।

वा. व. - ''यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्'' बृहदारण्यकके (३-७-१५) वाक्यमें क्या कहा गया है ?

प्र. गं. - '' य: प्राणे तिष्ठन्'' वाक्यमें क्या कहा गया है ?

कोर्ट - कितने वाक्योंको पूछेंगे ? बस कीजिये।

वा. व. - शास्त्रीजी ! महाप्रभो ! भेदप्रतिपादक वाक्य बहुतसे है, आपकी आज्ञासे मैं समाप्त करता हूँ।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि'' वाक्यमें आदित्यान्र्गत परमात्मा 'मैं''

कहनेसे ही आदित्य और परमात्मामें भेद सिद्ध होता है न ?

प्र. गं. – भेद सिद्ध होता है।

वा. व. – 'य आत्मनि तिष्ठन्' वाक्यमें जीव परमात्माका भेद कहा गया है।

प्र. गं. – भेद कहा गया है।

वा. व. – रूपं.....तत्तो पश्यामि पूर्व वाक्यमें द्रष्ट्र द्रष्टव्यभावसे जीव परमात्माका भेद बोधित है न ?

प्र. गं. – भेद बोधित है।

वा. व. – यहाँ भेद उक्त है तो ''योसावसौ पुरूष: सोहमस्मि'' वाक्यमें आदित्यान्तर्गत परमात्मा और जीवमें अभेद प्रतिपादित है, यह कहना क्या युक्ति संगत होगा ?

प्र. गं. – 'य आत्मनि तिष्ठन्' य आदित्ये तिष्ठन् इत्यादि वाक्योंमें जो भेद उक्त है, वह व्यावहारिक है, पारमार्थिक भेद नहीं, अत: विरोध नहीं।

कोर्ट – पुन: पुन: व्यावहारिक, पारमार्थिक मत कहिये। दूसरा कोई समाधान होगा तो कह सकते हैं।

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वा. व. – शास्त्रीजी ! आदित्यान्तर्गत परमात्मा शुद्ध है या विशिष्ट है ?

प्र. गं. – विशिष्ट है।

वा. व. – अद्वैतमतमें विशिष्ट का विशिष्टके साथ क्या ऐक्य होगा ?

प्र. गं. – विशिष्ट और विशिष्ट ऐक्य संभवता नहीं।

वा. व. – आदित्यान्तर्गत विशिष्ट परमात्मामें और अहं पदसे बोध्य अन्त:करण विशिष्ट जीवमें ऐक्य होगा या नहीं।

प्र. गं. – अन्तर्यामि विशिष्ट परमात्मामें और विशिष्ट जीवसे ऐक्य संभवता नहीं।

वा. व. – ''योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि'' वाक्यमें विशिष्ट परमात्मामें और विशिष्ट जीवमें ऐक्य है ऐसा क्यों कहा ?

प्र. गं. – विशिष्टोंमें ऐक्य न होनेपर भी लक्षणावृत्तिसे बोध्य अन्तर्यामि शुद्ध चित्त्में और जीवचित्में ऐक्य होगा।

वा. व. – लक्षणावृत्तिसे शुद्ध चित्त बोध्य ही नहीं होगा। लक्षणावृत्तिसे शुद्ध चित्त्का बोध होनेपर भी, चित्त् है, इसका निरूपण करना आवश्यक नहीं। इस तरह कहनेसे ज्ञात ज्ञापकत्वरूप दोष होगा। इसके लिये, अनुकूल प्रमाण भी नहीं। इतना नहीं अन्य प्रमाणोंके अनुकूल अर्थ भी कहा जा सकता है। तत्त्वमस्यादि वाक्यके अवसरपर जो दोष कहे गये हैं। वे सभी दोष यहाँ आयेंगे।

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वादिसे पूछताछ

प्र. व. - आचार्यजी ! आप इस वाक्यका अर्थ किस तरह करते हैं ?

वा.वि. - ''योसावसौ पुरूषस्सोहमस्मि'' १* अहं - मैं, य: = जो आदित्यांतर्गत आदित्य नियामक है, जिसे परमात्मा कहते हैं मैं उसके वशमें हूँ (जैसे सूर्यादि परमात्माके वशमें हैं, वैसे ही मैं परमात्माके आधीन हूँ)

प्र. गं. - आचार्यजी ! स: = परमात्मा यही अर्थ है, आपने परमात्माके अधीन ऐसा अर्थ किस आधारपर किया ?

वा.वि. - ''एतस्यैव सर्वे रूपमभवन्'' बृ. (१-५-२१) श्रुतिका २-४-१७-१९ ब्रह्मसूत्र का अर्थ पूर्वपक्षमें किस तरह किया है ?

प्र. गं. - 'एतस्यैव सर्वेरूपमभवन्' श्रुतिमें इन्द्रियोंका प्राणरूपत्व कहा गया है। (प्राणके साथ अभेद कहा है) इतर सभी प्राण (इन्द्रियाँ) मुख्यप्राण के स्वरूप है (मुख्यप्राणसे अभिन्न हैं) इस प्रकार पूर्वपक्षकी रचना करके, इन्द्रियोंसे मुख्य प्राण भिन्न है ऐसा बहुतसी श्रुतियाँ कहती हैं। प्राणमें और इन्द्रियोंमें विरूद्ध धर्म हैं इसलिये ''एतस्यैव सर्वे रूपमभवन्'' इन्द्रियोंका और प्राणका अभेद उक्त है यह प्रतीत होता है। पर अभेद बाधित है। समस्त इन्द्रियाँ प्राणाधीन हैं (प्राणके वशमें हैं) ऐसा अर्थ कहना पडेगा।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्य और अनेकोंने, इन्द्रियोंका और मुख्य प्राणका भेद प्रतिपादक श्रुतिके लिये मुख्य प्राणाधीन ऐसा अर्थ किस तरह किया ?

प्र. गं. - यद्यपि श्रुतिमें इन्द्रियोंमें और मुख्यप्राणमें अभेद उक्त है यह प्रतीत होता है। पर भेदप्रतिपादक अनेक श्रुतियोंसे विरोध होता है। पूर्वापर विरोधभी होता है। इन्द्रियोंमें और प्राणमें विरूद्ध धर्म हैं। अत: अभेद संभवता नहीं। इसीलिये प्राणाधीनत्व कहा है।

वा. व. - ''कामोऽस्मि'' इस गीता वाक्यकाअर्थ, शंकराचार्यने छांदोग्य भाष्यमें क्या किया है ?

प्र. गं. - ''कामोऽस्मि''का अर्थ कामस्वामी किया गया है।

वा. व. - ''कामोऽस्मि'' - कामरूप हूँ अर्थ होता है, कामस्वामी यह अर्थ क्यो किया गया है ?

प्र. गं. - काम परतंत्र हैं, जन्य है, ईश्वर स्वतंत्र है, अजन्य है। इस तरह परस्पर विरूद्ध होनेके कारण, ऐक्य नहीं हो सकता। इसलिये कामोऽस्मि पदोंसे कृष्ण और काममें अभेद दीखनेपर भी

१* प्राणस्यैव वृत्तय: एकादशेद्रियाणि न तत्त्वान्तराणीति प्राप्तं (पूर्वपक्ष) एवं प्राप्त उच्यते (सिद्धान्त:) मुख्यात्प्राणात् तत्त्वान्तराणीद्रियाणि, तत्र भेदेन व्यपदोत् मृत्युप्राप्त प्राप्यत्व लक्षण विरूद्ध धर्मसंसर्ग श्रुते, अर्थ क्रिया भेदाच्च - यापि प्राणरूपतां इन्द्रियाणामभि दद्याति श्रुति: तत्रापि पौरापर्यालोचनायां भेद एव प्रतीयते इत्युक्तं भाष्यकृता। तस्मात् बहुश्रुति विरोधात्, पूर्वापर विरोधाच्च प्राणरूपताभिधानमिन्द्रिरां प्राणायत्ततया भाक्तं गमपितव्यम्। (ब्रह्मसूत्रभाष्य २-४-१७) भामती

यदुक्तं त एतस्यैव सर्व रूपमभवन् (बृ. १-५-२१) इति श्रुते प्राण एव इन्द्रियाणीति तदयुक्तं। तत्रापि पौर्वापर्यालोचनात् भेद एव प्रतीते: - तस्मातदविरोधेन वागादिषु परिस्पंदलाभस्य प्राणायतत्त्वं तद्रूपभवन् वागादिनामिति मन्तव्यम् न तादाम्य्यम्। (ब्र सू. शां. भा. २-४-१९)

कामस्वामी ऐसा ही अर्थ किया गया है।

वा.व. - ''असन्नेव स भवति'' वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - असत्सम ऐसा अर्थ किया है।

वा. व. - इन पदोंका मुख्यार्थ क्या है ? अन्य अर्थ क्यों किया ?

प्र. गं. - असत् होता है यह मुख्यार्थ है, पर यह अर्थ बाधित है। अत: असत्सम ऐसा अर्थ किया है।

वा. व. - मैं आदित्यान्तगर्त परमात्मा ही हूँ, यह अर्थ बाधित है या अबाधित हैं ?

प्र. गं. - ''आदित्यान्तर्गत परमात्मा ही मैं हूँ'' अर्थ बाधित है।

वा. व. - इन्द्रियाँ मुख्यप्राणके अधीन बन गयीं, अर्थ बाधित है। इन्द्रियाँ मुख्यप्राणके अधीन बन गयीं अर्थ होगा। कामोऽस्मि भरतर्षभ 'कामरूप हूँ' अर्थ बाधित है। कामस्वामी अर्थ किया। असत् शब्दका असत् सम अर्थ किया। शंकराचार्य और भामतीकार आदिने जिस तरह अर्थ किया है। उसी तरह मैं परमात्मा हूँ अर्थ बाधित होनेसे, मैं परमात्मा का अधीन हूँ अर्थ करना चाहिये ना ?

प्र. गं. - उस तरह अर्थ कर सकते हैं।

वा. व. - पर अभेद सिद्ध नहीं होगा।

प्र. गं. - अभेद सिद्ध नहीं होगा।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''योसावसौ पुरूष सोऽहमस्मि'' ईशावास्य का वाक्य कहता है - आदित्यान्तर्गत परमात्मा ही जीव है। अत: इस वाक्यसे जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है। कोर्ट इसका निरीक्षण करे।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! ''भेदव्यपदेशाच्च'' सूत्र व्याख्यानमें ''य: आदित्ये तिष्ठन्'' वाक्य आदित्यमें स्थित आदित्यसे और उसके अन्तर्गत परमात्मामें भेदका प्रतिपादन करता है। सूत्रकारके आशयको शंकराचार्यने अपने भाष्यमें स्पष्ट किया है। तथाच आदित्यांर्गत परमात्मासे आदित्यके भेदकी भाँति जीवका भेद भी उक्त है।

''अहं'' पदार्थ विशिष्ट है। ''स'' पदका अर्थभी विशिष्ट है। ''अहं पदसे बोध्य जीवपरमात्मामें ऐक्य की घटना नहीं हो सकती। लक्षणावृत्तिसे अहं पद बोध्य, 'चित्'का 'स:' पदसे बोध्य चित्त् के साथ ऐक्यकी संभावना करनेपर ''तत्त्वमसि'' वाक्यके विचार करते वक्त जो दोष कहे गये हैं उन समस्त दोषोंकी प्राप्ति इस वाक्यपर हो सकती है।

गीताके ''कामोऽस्मि'' भरतर्षभ काम और कृष्णमें अभेद प्रतीत होनेपर भी, बाधित होनेके

कारण ''कामस्वामी''ऐसा अर्थ शंकराचार्यने किया है।

''एतस्यैव सर्वेरूपमभवन्'' श्रुतिमें इन्द्रियोंका और प्राणका ऐक्य प्रतीत होनेपर भी शंकराचार्य कहते हैं – भेद प्रतिपादक अनेक श्रुतियोंका विरोध होगा, पूर्वापर विरोध, दोनोंमें विरूद्ध धर्म होनेके कारण, इन्द्रियोंका प्राणका अभेद नहीं होगा।

अभेद कथनकी तरह प्रतीयमान ''असन्नेव स भवति'' ''अहं ब्रह्म, त्वं ब्रह्म'' इत्यादि स्थानोंपर अभेद बाधित होनेसे भेदपर ही अर्थ किया है शंकराचार्यने।

इसलिये 'अहं स: अस्मि' वाक्यका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये, जैसे अन्य श्रुतियोंका विरोध न हो वह अर्थ इस प्रकार रहेगा। ''मैं उस परमात्मा के वशमें हूँ'' भेद प्रतिपादक श्रुतियोंके अनुकूल अर्थ होगा।

'अत: योसावसोऽस्मि'' वाक्य अभेदके विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

इसपर कोर्ट गौर करे यह हमारा विज्ञापन है।

प्र. ए. १६
''यस्मिन् सर्वाणि'' श्रुतिपर विचार

प्र. व. – शास्त्रीजी ! ''यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत विजानत:'' तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत;३३ (इशा.७) मन्त्रका क्या अर्थ है ?

प्र. गं. – यस्मिन् = जिस समय, सर्वाणि भूतानि = चतुर्मुख ब्रह्मादि समस्त प्राणि, विजानत: = परमार्थको जाननेवालेको, आत्मैवाभूत = आत्मा ही बनता है। उस समय एकत्वमनुपश्यत: = एकत्व ज्ञानिको शोक क्यों होगा ? मोह कहाँ ? अविद्यानाशसे अविद्या कल्पित शोक, मोह नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्रसे स्पष्ट होता है कि सर्व प्राणि ब्रह्म बन जाता है। जीव ब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होता है।

प्र. व. – इसके पहले जो मन्त्र है उसको कहिये ?

प्र. गं. – ''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते'' (ईश ६)

प्र. व. – इस मन्त्रका अर्थ क्या है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – जिस समय सन्यासी समस्त प्राणियोंको, आत्मैन्येवानुपश्यति = आत्मासे अतिरिक्त नहीं देखता, सर्वभूतोंमें मैं ही आत्म हूँ ऐसा जो देखता है। इस तरह का ज्ञान होनेके कारण न विजगुप्सते तिरस्कार नहीं करता, अपनेसे कनिष्ट आत्मा होगा तो दया करेगा, सबकुछ वही है, कृपाका कोई कारण नहीं। इससे जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. – शास्त्रीजी ! 'यस्सर्वेषुभूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तर: य सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं य: सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयति ह्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत:

२४७ - सिविल सूट (३)

इत्याधिभूतं अथ अध्यात्मम्, यह वाक्य किस ग्रंथमें है ?

प्र. गं. - यह वाक्य बृहदारण्यकोपनिषतके तीसरे अध्यायके सातवे ब्राह्मणके पंद्रहवे मन्त्रमें हैं।

प्र. गं. - इस वाक्यसे भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - ''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति'' मन्त्रके पद पद का अर्थ कहिये।

प्र. गं. - य: - जो मुमुक्षु समस्त भूतोंको आत्मामें ही देखता है।

वा. व. - इस वाक्यमें भूतोंका और परमात्माका आधार आधेयभाव प्रमाणित होता है या नहीं ?

प्र. गं. - प्रमाणित होता है।

वा. व. - आत्मनि एव पश्यति पदोंका अर्थ आत्मामें ही देखता है, इस अर्थसे भेद सिद्धि होती है। आत्मानि एव पश्यति = आत्मासे भिन्न नहीं देखता यह अर्थ पूर्वमें क्यों कहा ?

प्र. गं. - शंकर भगवत्पादने इस उपनिषद्भाष्यमें ''आत्मन्येवानुपश्यति आत्मव्यतिरिक्तानि न पश्यतीत्यर्थ'' व्याख्यान लिखा है। इसलिये मैंने वही अर्थ कहा।

वा. व. - इसका अर्थ क्या है ? सूत्रकार भगवान् वेदव्यासने भाष्यकार शंकराचार्यने इस मन्त्रसे किस तत्त्वकी सिद्धिको बताया है ?

प्र. गं. - अन्तर्यामी परमात्मा समस्त भूतोंमें रहकर उनका नियमन करता है। जिससे आधार आधेयभाव, नियम्यनियामकभाव उक्त है। जिसके कारण भेद सिद्ध होता है, यह भाव सूत्रकारका और भाष्यकार शंकराचार्यका है।

वा. व. - ''य आत्मनि तिष्ठन्, य: प्राणेतिष्ठन् इत्यादि २० मन्त्रोंका अर्थ किस तरह किया गया है ?

प्र. गं. - आदित्य, प्राण आदि समस्त चेतनाचेतनात्मक प्रपंचमें रहकर, उनका नियंत्रण करता है। इस तरह चेतनाचेतन प्रपंचको परमात्मासे भिन्न माना है।

वा. व. - सहोवाच... प्रोतश्चेतश्च (७)... एतस्मिन् खलु अक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च (बृ. ३-७-९) मंत्रका अर्थ क्या है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - भूतपूर्व विश्व, भविष्यकालीन समस्त विश्व आकाशमें आश्रित है, ऐसा कहा गया है। समस्त जगतका आधारभूत आकाश किसके आश्रयमें ? ऐसा प्रश्न किये जानेपर, उत्तर देते हैं, सूर्य चंद्रके आधारभूत अक्षरनामक परमात्मामें आश्रित है। समस्त विश्व आकाशके साथ परमात्मामें आश्रित है। इससे आधार आधेयभाव सिद्ध होता है।

वा. व. - आधार आधेय भावसे भेदकी सिद्धि होती है या अभेद की ?

प्र. गं. - आधार आधेय भावसे भेद सिद्ध होता है पर

वा. व. - पर क्या ?

प्र. गं. - भेद पारमार्थिक नहीं, व्यावहारिक है।

वा. व. - व्यावहारिक पारमार्थिक विचार वैसे ही रहे भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

वा. व. - ''आत्मन्येव पश्यति'' आत्म भिन्न नहीं देखता। आत्मा रूपसे ही देखता है ऐसा अर्थ होता है न ?

प्र. गं. - 'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मेत्येवानुपश्यति' इस प्रकार मंत्र होगा तो समस्त प्राणियोंको आत्मा के रूपमें ही देखता है, आत्मातिरिक्त नहीं देखता, यह अर्थ होगा। ''आत्मानि एव पश्यति'' आत्मामें ही देखता है (आत्माश्रित के रूपमें ही देखता है) आत्मासे भिन्न आधारमें नहीं देखता अर्थ होगा। यह अर्थ हमें प्रतीत होता है। महानुभाव शंकराचार्यने किस तरह अर्थ किया है ? इसके कारणको कोर्ट ही निर्णय करेगा।

वा. व. - 'सर्वभूतेषु चात्मानं'' मन्त्रास्थित पदोंका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - सर्वभूतोंमें परमात्माको देखता है।

वा. व. - इस अर्थसे, आधार आधेय भावसे समस्त प्राणियोंमें परमात्माका भेद दीखता है न ?

प्र. गं. - भेद दीखता है।

वा. व. - ''सर्वभूतेषु चात्मानं'' वाक्यमें समस्त प्राणियोंमें परमात्मामें आधार आधेयभावसे भेद प्रतीत होनेपर भी, सर्वप्राणि अपनेको आत्मा समझते हैं ऐसा अर्थ क्यों कहा ?

प्र. गं. - शंकराचार्यके अर्थके अनुसार हमने अर्थ कहा है।

वा. व. - शंकराचार्यका यह अर्थ युक्त है या अयुक्त है ?

प्र. गं. - शंकरभगवत्पादके अर्थको अयुक्त कहनेकी सामर्थ्य हममें नहीं, कोर्ट इस अर्थ पर निर्णय करें।

वा. व. - यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत विजानतः । तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः - इस सातवे मंत्र का अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - जिसमें परमार्थ ज्ञानी के लिये समस्त प्राणि आत्मैवाभूत आत्म स्वरूप है। तत्र - उस आत्मामें एकात्मानुपश्यतः एकत्वको देखनेवाले मनुष्यको शोक कहा ? मोह कहाँ ?

वा. व. - ''आत्मैवाभूत'' क्रियापद के लिये कर्ता कौनसा है ?

प्र. गं. - सर्वभूत ही कर्ता है।

वा. व. - ''अभूत'' क्रियापद एकवचनांत है। सर्वाणि भूतानि बहुवचनांत है, इनमें मेल किस तरह होगा ?

प्र. गं. - आपकी यह शंका नयी नहीं। दशश्लोकी ग्रंथके सातवे श्लोकमें व्याख्यानभूत सिद्धान्तबिन्दु ग्रंथमें, हमारे लोगोंने इसपर आक्षेप किया है।

वा. व. - यह आक्षेप हमारा है या हमारे १* पूर्वमें अद्वैतियोंने किया है इस विचारको रहने दीजिये। क्रिया कर्तृभावका मेलन किस तरह होता है, इसका उत्तर दीजिये।

प्र. गं. - विचार करके समाधान कहेंगे। इस समय हमारी बुद्धिमें कोई, समाधान नहीं।

वा. व. - अद्वैतमतके अनुसार समस्त परमात्माका स्वरूप है, ज्ञानोत्तर कालमें समस्त परमात्मा का स्वरूप बनता है यह कैसे ?

प्र. गं. - ''आत्मैवाभूत'' वाक्यका अर्थ मुख्यवृत्तिसे आत्मस्वरूप हुवा है, यह अर्थ होनेपर भी, वह अर्थ बाधित है, अतः अमुख्यवृत्तिसे ''आत्मैवाभूत'' वाक्यके अज्ञाननिवृत्तिसे युक्त ऐसा अर्थ

१* यदि त्वात्मै विशेषोऽय स्विक्रीयते अत एव यस्मिन्..... विज्ञानत इत्यत्र भूतादित्येक वचनान्तमिति आलोच्यत्ते।

किया गया है।

वा. व. – यह अर्थ श्रुतिका मुख्यार्थ है या गौणार्थ है ?

प्र. गं. – यह मुख्यार्थ नहीं।

वा. व. – मुख्यार्थ नहीं तो गौणार्थके लिये क्या आधार है ? मुख्यार्थ या गौणार्थ को क्यों न करें ?

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वा. व. – सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत – समस्त प्राणि आत्मा ही हैं। इतना पर्याप्त था। ''यस्मिन्'' पद व्यर्थ होगा। यस्मिन् जिस आत्मामें, आत्मा ही बने हैं, अर्थ असंगत होगा।

प्र. गं. – ''यस्मिन्'' पदका अर्थ आत्मामें नहीं, जिस समय ऐसा अर्थ करते हैं।

वा. व. – ''यस्मिन्'' पदका आत्मामें ऐसा जो पहले कहा गया क्या वह अयुक्त है ? तो वह अर्थ क्यों किया ?

प्र. गं. – हमने शंकराचार्यके अर्थको कहा।

वा. व. – शंकराचार्यका अर्थ युक्त है या अयुक्त है ?

प्र. गं. – इस विषयमें हम कुछ नहीं कह सकते।

वा. व. – अद्वैतमतमें काल मिथ्या है। (अज्ञान कल्पित) या सत्य है ?

प्र. गं. – काल अज्ञान कल्पित ही है मिथ्या है।

वा. व. – ज्ञानोदय के पश्चात् काल होगा कि नहीं ?

प्र. गं. – काल नहीं रहेगा।

वा. व. – कल नहीं रहेगा तो, किस समय आत्मा होता है, ऐसा अर्थ क्यों किया गया ?

प्र. गं. – अद्वैतनिष्ठ कुछ भी न कहें। प्रश्न न करे उत्तर नहीं देते। बोलना, उत्तर देना, प्रश्न करना ये क्रियायें सभी द्वैतावस्थामें ही (अज्ञानावस्थामें) अज्ञानी अद्वैती द्वैतके अस्तित्वके भ्रमसे व्यवहार करते हैं। वास्तवमें ब्रह्मनिष्ठ अद्वैती उत्तर, प्रत्युत्तरादि कोई व्यवहार नहीं करते। वैसे करना युक्त भी नहीं होगा।

वा. व. –अद्वैती प्रतिवादियोंसे प्रश्न करके, खण्डन किया है। उनके प्रश्नोंके उत्तर देकर अपने मतकी स्थापना करते हैं। ग्रंथ लिखते है, पढाते हैं। ऐसा आप ही कहते हैं, ये सभी ज्ञानी है या अज्ञानी ?

प्र. गं. – इन प्रश्नोंके लिये मौका ही नहीं ? ज्ञानावस्थामें कुछ भी नहीं ''मिथ्यावादविचारचिन्तनमहो कुर्ववहद्दष्टात्मका: भ्रान्तां एव न पारशा: द्दढधिय: तूष्णीं शिलावत् स्थिता: (प्रौढानुभूति १३) यह शंकराचार्यका कहना है। वाद प्रतिवाद भावसे विचार करनेवाले, ग्रंथ लिखनेवाले पाठ पढानेवाले अज्ञानी ही है। (भ्रान्त ही हैं)

वा. व. – शास्त्रीजी ! क्रोध मत करें, मतके तत्त्वोंकी छानबीन करते है, वादविवाद करनेवाले, ग्रंथ लिखनेवाले, पाठ पढानेवाले सभी भ्रान्त होंगे तो, ग्रंथ लिखकर वाद करके मत स्थापन करनेवाले आपके शंकराचार्य अज्ञानी हैं या भ्रान्त है ?

प्र. गं. – हम इस प्रश्नका उत्तर नहीं देंगे। वादविवाद करनेवाले, अज्ञानी है, भ्रान्त है, इतना ही हम कहते हैं।

वा. व. – काल मिथ्या है तो किस कालमें ऐसा कहना क्या युक्तिसंगत होगा ?

प्र. गं. – कुछ भी युक्त नहीं। हमारे मतमें सबकुछ दुर्घट है। पुन: पुन: प्रश्न न कीजिये, हमारा मत माया कल्पित है। अत एव दुर्घटत्व भूषण ही है।

वादि की विचारणा

प्र. व. – आचार्यजी ! ईशावास्य के छटे मन्त्रका अर्थ आप क्या कहते हैं ?

वा. वि. – 'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते॥ (इ. शा. ६) जो (उपासक) चतुर्मुखादि समस्त जीव आत्मनि आत्मामें आश्रित हैं ऐसा समझता है, वह परमात्मा ''य: सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्'' इत्यादि श्रुतिमें उक्त प्रकारसे सर्व भूतोंमें परमात्माको नियामकके रूपमें ज्ञान प्राप्त करके, अपनी रक्षाकी चिन्ता नहीं करता। ''यो लोकत्रयमविश्य बिभर्त्यव्यय: ईश्वर:'' गीतामें कथितरूपमें, परमात्मा द्वेषियोंमें, मित्रोंमें भक्तोंमें नियामक है, वही रक्षण करेगा। इस प्रकारका ज्ञान उपासकमें होनेके कारण, वह अपने रक्षणकी इच्छा नहीं करता।

प्र. व. – इससे क्या सिद्ध होता है ?

वा. वि. – आधार आधेयभावसे, ज्ञातृज्ञेयभावसे, जीव परमात्मामें भेद सिद्ध होता है।

प्र. व. – आचार्यजी ! सातवे मन्त्रका अर्थ क्या है ?

वा.वि. – यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानत: तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत: (ईशा. ७)। यह मन्त्र पूर्वोक्त मन्त्रके अर्थका बयान करके, अन्य फलका भी निर्देश करता है। यस्मिन् – जिस परमात्मामें समस्त भूत हैं, उन भूतोंमें परमात्मा भी है, इस तरह जो समझता है और यदेकमव्यक्तमनंतरूपं श्रुतिमें अनंतरूपोंमें एकत्वका प्रतिपादन किया गया है ? समस्त प्राणियोंमें परमात्मा है। वह परमात्मा भेदरहित है, स्थानभेदसे परमात्मामें कोई भेद नहीं, इस प्रकार परमात्मामें जो उपासक परमात्माके एकत्वको समझ लेता है, उसके लिये न शौक है न मोह है, मुक्त हो जाता है। इस मन्त्रमें भी आधार आधेयभाव, ज्ञातृज्ञेयभावसे जीव परमात्मामें भेद सिद्ध होता है।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. – धर्मराज प्रभो ! यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते (ईशा. ६) जो, समस्त भूतोंको आत्माके रूपमें देखता है, समस्त प्राणी आत्माही बन जाते हैं, ऐसा समझता है, सर्वभूतोंके स्वयं को आत्मा समझता है, उसके अतिरिक्त कोई पदार्थ न होनेके कारण, वह किसीपर दया नहीं कर सकता। समस्त प्राणी परमात्मा ही है। इससे जीव परमात्माका ऐक्य प्रमाणित होता है।

'यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत विजानत: तत्र को मोह क: शोक: एकत्वमनुपश्यत: (ईशा ७) ज्ञानी समझता है कि समस्त भूत परमात्मामें आत्मा ही हो चुके हैं। इस प्रकारके एकत्वको जाननेवालेको शोक, मोह नहीं होते। शोक, मोह अज्ञानके कार्य है। अज्ञानके नाश होनेपर शोक, मोह नहीं होंगे। इस मन्त्रसे ऐक्य सिद्ध होता है। कोर्ट इस वाक्यके विचारपर ध्यान दे।

२५१ - सिविल सूट (३)

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! ''यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्, सर्वेभ्यो भूतेभ्य: अन्तर:'' ''य आत्मनि तिष्ठन्'' ''एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च'' ये श्रुतियाँ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि (गीता) इत्यादि अनेक प्रमाण कहते हैं कि परमात्मा सर्वभूतोंमें नियामकके रूपमें रहता हैं। समस्त भूत परमात्मामें आश्रित हैं। आधार आधेयभावसे, ज्ञातृज्ञेयभावसे जीवेश्वर भेद सिद्ध होता है। शंकराचार्यने इसका स्वीकार किया है। इसी प्रकार ''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति, सर्वभूतेषुचात्मानं'' यह मन्त्रभी जो उपासक समस्त भूतोंको परमात्माके आश्रित समझता है, वह अपने रक्षणकी इच्छा नहीं करता। आधार आधेयभावसे ज्ञातृज्ञेयभावसे भेद सिद्ध होता है।

समस्त भूत आत्मा ही बन चूके हैं। यह ''समस्त भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति'' वाक्यका अर्थ नहीं होगा। ''आत्मानि'' यह सप्तम्यन्त पद होनेके कारण, ''आत्मामें'' ऐसा ही अर्थ होगा। प्रथमान्त होता तो, आत्माके रूपमें देखता है, यह अर्थ हो सकता था। समस्त भूतोंमें आत्माको देखता है यह अर्थ युक्त है। समस्त भूतोंको आत्माके रूपमें देखता है, यह संगत नहीं। ''अभूत'' यह एकवचनांत है, सर्वाणि भूतानि बहुवचनांत है। अत एव ''अभूत'' इस एकवचनांत पदके लिये सर्वभूतानि कर्ता नहीं हो सकता।

अद्वैतमतके अनुसार सर्वभूत निरन्तर परमात्माका स्वरूप ही है। ज्ञानिके लिये सर्वभूत परमात्माके स्वरूप बन गये हैं, यह अर्थ उपपन्न नहीं होता।

''भूतानि चात्मैवाभूत'' वाक्यके लिये भूत आत्मस्वरूप नहीं। भूत अज्ञानभ्रमसे निवृत्त हो चुके, यह अर्थ भी युक्त नहीं।

अद्वैतमतमें भ्रम और अज्ञान उत्पन्न नहीं होते, इसीलिये अज्ञानभ्रम निवृत्त हो गये यह कहना तर्कसंगत नहीं।

सर्वभूत आत्मा होनेसे (आत्मातिरिक्त) न होनेसे इतना कहना पर्याप्त था। यस्मिन्, आत्मनि, पद व्यर्थ होगें। सर्वभूत परमात्मामें परमात्मा बन गये कहना भी असंगत होता है।

अदालत- विचार कीजिये।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! तत्त्वमस्यादि महावाक्य किस तरह अद्वैततत्त्वके बोधक होंगे ?

प्र. सा. - प्रसिद्ध विषयके बारेमें हम क्या कहें ? याजुषीय शुक रहस्योपनिषत् में, उपरोक्त वाक्योंसे जीवब्रह्मका ऐक्य सिद्ध होता है। इस तरह स्पष्टरूपमें कहा गया है।

प्र. व. - वे वाक्य कौनसे हैं ? उन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - ''अथ महावाक्यानि चत्वारि यथा १) ओं प्रज्ञानं ब्रह्म २) ओं अहं ब्रह्मास्मि ३) ओं तत्त्वमसि ४) ओं अयमात्मा ब्रह्म तत्त्वमसित्यभेद वाचकमिदं ये जयन्ति ते शिव सायुज्य भुक्तिभाजो भवन्ति...... वाच्यं लक्ष्यमिति द्विधाऽर्थसरणी वाच्यस्य 'त्वं' पदे वाच्यं भौतिक इन्द्रियादिरपि यल्लक्ष्यं त्वमर्थश्च स: वाच्यं तत्पदमीशताकृतमति लक्ष्यं तु सच्चितत्सुखानंद ब्रह्म

तदर्थ एषचतयोरैक्यंत्वसीदं पदं (शुक रहस्य) तत् पदका लक्षणार्थ, त्वं पदका लक्ष्यार्थका स्वीकार करके त्वं, तत् पदोंके लिये 'ऐक्य' अर्थ करके ''असि'' पदसे निरूपण करता है। इसी प्रकार येनेक्षते श्रुणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च स्वादु अस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञान मुदीरितं चतुर्मुखेन्द्र देवेषु मानश्वगवादिषु चैतन्यमेकां ब्रह्मत: प्रज्ञानं मय्यपि......बुद्धे: साक्षितया स्थित्वा स्फुर नहमितीर्य ते परात्मात्र ब्रह्म शब्दे न वर्णित: अस्मीत्यैक्य परामर्शे स्तेन ब्रह्म भवाम्यहं स्वप्रकाशापरोक्षत्व त्वमयम इत्याक्षिप्तो मतं। अहंकारादि देहांन्तरं प्रत्यगात्मासि इति गीयते ब्रह्म शब्दे न तत्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपमिदं इत्यादि वाक्योंसे प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि वाक्य जीव ब्रह्मके ऐक्यका बोध कराते हैं। इस तरह स्पष्टरूपमें शुकरहस्य कहता है। इस स्थितिमें तत्त्वमस्यादि वाक्य जीव ब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करते हैं, इसमें क्या वाद होगा।

अथ है नं पैगिल: पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं महावाक्य विवरणमनुब्रूहि इति। सहोवाच याज्ञवल्क्य: तत्त्वमसि त्वं तदसि त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मीत्यनुसंधानं कुर्यात्। तत्रापरोक्ष्य: शबल: सर्वज्ञत्वादि लक्षणो मायोपाधि: सच्चिदानंद लक्षणो जगद्योनि: तत्पद वाच्यो भवति त्वपदलक्ष्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म। इस तरह पैंगिल वाक्य है। तत्त्वमस्यादि वाक्य जीवब्रह्मके ऐक्यका बोध कराते हैं।

यह उपनिषत्, अध्यात्मरामायण: तत्त्वमस्यादि वाक्य, जीवब्रह्मके ऐक्यका प्रतिपादन करते हैं। ऐसा स्पष्ट निरूपण करते हैं।

वा. व. – (कोर्टसे) महाप्रभो ! इन प्रमाणोंको अदालतमें केस दाखल करते समय नहीं किया है, अत: इनपर विचार न करें।

प्र. व. – प्रभो ! कुछ दाखलोंको पहले प्रस्तुत न करनेपर भी, सरकारी रेकार्डको किसी भी समय प्रस्तुत किया जा सकता है, यह वैदिक सरकारका रेकार्ड है। अत: प्रस्तुत करने की अनुमति देनेकी कृपा करें।

वा. व. – महाप्रभो ! इस तरह स्पष्टरूपमें ऐक्य प्रतिपादन करनेवाले रेकॉर्ड प्राचीन रेकॉर्डमें (वेद वाक्योंमें नहीं) ये वेदवाक्य होते तो, गौडपादाचार्य, शंकराचार्य आदिमें कोई कहीं न कहीं उद्धरण करते। अबतक किसी भी अद्वैतिमें इसका उद्धरण नहीं किया है। अर्वाचीन समयमें किसीने इसकी कल्पना की है। कोर्ट इसपर विचार न करे। यह हमारी प्रार्थना है।

कोर्ट – मि. शर्मा ! गौडपादाचार्य, शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने क्या शुक रहस्यको कहीं कहीं उद्धरण किया है। ये वाक्य और किसी ग्रंथमें हैं ?

प्र. व. – हम अपने शास्त्रीजीसे पूछकर कहेंगे।

प्र. व. – शास्त्रीजी ! अबतक उदाहृत उपनिषद् वाक्योंका उद्धरण और किसीने अपने ग्रंथमें किया है क्या ?

प्र. सा. – अब तक किसीभी ग्रंथमें उद्धरण नहीं किया है।

प्र. व. – महाप्रभो ! शुकरहस्यके उपनिषद् वाक्योंका उद्धरण किसी ग्रंथमें, किसीने नहीं किया है। आधुनिक लोगोंसे यह कल्पित है, यह विचारके योग्य नहीं।

दूसरा भाग

सूत्र विचार

वा. व. - आचार्यजी ! जीवब्रह्मके भेदका प्रतिपादन करनेवाले ब्रह्मसूत्र कौनसे है ?

वा. वि. - १* सूत्रकारने जीवब्रह्म के ऐक्यका निरूपण किसी भी सूत्रमें नहीं किया है। सर्वत्र भेदही उक्त है। जीवब्रह्मके ऐक्य का कथन सूत्रकारको पसंद नहीं था। इस तरहकी शंका आनेपर अथवा २* सूत्रोंमें ऐक्य उक्त ही नहीं इस तरहका भ्रम पैदा होनेपर ३* ''प्रतिपाद्यं तु'' वाक्यसे शास्त्रका तात्पर्य विषयीभूत जीव ब्रह्मका ऐक्य ''शास्त्रद्दष्टया तूपदेशो वामदेववत्'' (ब्रह्मसूत्र १-१-३०) आदिसूत्र ऐक्यका प्रतिपादन करते हैं, यों शंकराचार्यने कहा है । शंकराचार्यके वाक्यमें ''इत्यादिना'' पद है, आदि पदसे ''आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च'' ब्र. सू. ४-१-३ सूत्रका ग्रहण करना चाहिये। इस तरह ४* आनंदगिरी और ५* रत्नप्रभाकारने कहा है, शंकराचार्यने आदि पदका प्रयोग किया है। जिससे चौथे अध्यायके ''आत्मेति'' सूत्रके वादमें स्थित एक, दो सूत्र ले सकते हैं । इस प्रकार अद्वैतियोंने ही ५६४ सूत्रोंमें ३-४ सूत्रोंको छोडकर अन्य सूत्रोंमें भेद प्रतिपादनका स्वीकार किया है, उन चार सूत्रोंपर हम आगे विचार करेंगे। शिष्ट ५६० सूत्र भेद प्रतिपादक ही हैं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! आचार्यके कहे गये वाक्य, भाष्य, आनन्दगिरी रत्नप्रभा के वाक्य ही हैं न ?

प्र. गं. - ये वाक्य, यह भाष्य, आनंदगिरी रत्नप्रभा के वाक्य ही है।

वा. व. - इन वाक्योंका अर्थ आचार्यने जैसे कहा है वैसे ही है, अथवा दूसरा अर्थ है ?

प्र. गं. - वही अर्थ है, फिर भी रत्नप्रभा, आनंदगिरी वाक्यगत आदि पदसे, थोडेसे अन्य सूत्रोंका भी ग्रहण कर सकते हैं।

वा. व. - इस आदि पदसे ''आत्मेति'' (ब्र. सू. ४-१-३) उत्तर सूत्रोंका ही ग्रहण करना होगा। पूर्व सूत्रोंको ग्रहण करें ?

वा. वि. - जीवब्रह्मके ऐक्य प्रतिपादक सूत्र कितने है, इस भाष्यसे सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - ''शास्त्रद्दष्टया'' ''आत्मेतितूपगच्छन्ति'' दो सूत्र ऐक्य प्रतिपादक हैं, यह स्पष्टरूपसे सिद्ध होता है। बाकी सूत्रोंकी संख्या कितनी है, इस विचारको विचार करते वक्त कहेंगे।

वा. व. - आचार्यजी ! बचे सूत्रोंपर विचार करते हैं। ये तीन चार सूत्र जीवब्रह्मके ऐक्यका बोध कराते हैं, शंकराचार्य के इस कथनको आप मानचुके हैं।

प्र. वा. - नारायण ! नारायण ! हमने माना नहीं, न माननेपर मान चुके हैं, ऐसा कहना अन्याय है।

१* 'ननु जीव ब्रह्मणोरेकत्वं न क्वापि सूत्रकारो मुखतो वदति किंतु सर्वत्र भेदमेव अतो नैक्यमिष्टं। तत्राह - प्रतिपाद्यं विति (ब्र. सू. आनंदगीरि १-३-१९)

२* सूत्रेष्वभेदो नोक्त इति भ्रान्तिं निरस्यति प्रतिपाद्यत्विति (रत्नप्रभा१-३-१९)

३* प्रतिपाद्यं तु शास्त्रार्थमात्मैकत्वेमेव दर्शयति - शास्त्रद्दष्टया तूपदेशो वामदेववत् (ब्र. सू. १-१-३०) इत्यादिना

४* आदिपदमात्मेति तूपगच्छन्ति इत्यादिना (शां. सू. भा. १-३-१९)

५* आत्मेति तूपगच्छन्तीत्यादि सूत्राप्यदिपदार्थ (रत्नप्रभा १-३-१९)

प्र. व. – आप ही शंकराचार्यके वाक्यका उद्धरण करके, तीनचार सूत्रोंके अतिरिक्त समस्त सूत्र भेद का निरूपण करते हैं। ऐसे कहनेसे, तीनचार सूत्रोंमें ही अभेद प्रतिपादन है ऐसा मान गये हैं। यह सिद्ध होता है।

प्र. वा. – शंकराचार्य आदि अद्वैति तीनचार सूत्रोंमें अद्वैतको स्वीकार कर चुके हैं, अन्य सूत्रोंमें, भेद बोधकत्व को माना है। यही कहा है। हम स्वीकार कर चुके हैं ऐसा नहीं कहा।

प्र. व. – इस विचारको रहने दीजिये। तीनचार सूत्रोंमें अद्वैतका प्रतिपादन है न ? वह किस तरह ?

वा. व. – वे सूत्र भी भेदका प्रतिपादन करते हैं। ऐसे कहनेवाले हमसे किस तरह अभेदका प्रतिपादन करते हैं, क्या इस तरह पूछ है ? प्रतिवादियोंसे यह पूछना चाहिये।

प्र. ए.– I

''शास्त्र द्दष्टया'' सूत्रपर विचार

प्र. व. – शास्त्रीजी ! ''शास्त्रद्दष्टयातूपदेशो वामदेववत्'' (ब्र. सू. १–१–३०) सूत्रका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – ''शास्त्रद्दष्टयातूपदेशो वामदेववत्'' सूत्रका अर्थ वामदेववत् – जिस तरह वामदेव कहते है - मैं मनु हूँ, सूर्य हूँ, कक्षीवान हूँ, सर्व तादाम्य द्दष्टिसे अथवा ब्रह्माभेद की द्दष्टिसे अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहम्, कक्षीवान् (ऋग्वेद्) कहते हैं, उसी तरह शास्त्रद्दष्टया ''मैं परमात्मा हूँ'' इस शास्त्रके अनुसार, 'मामेव विजानीहि' प्राण शब्दसे बोध्य परमात्मा जो है, वही मैं हूँ ऐसा समझो। यह इन्द्रका उपदेश है। जिससे इन्द्ररूपी जीव परमात्माका एकत्व सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्झामीनेशन

वा. व. – शास्त्रीजी ! 'शास्त्रद्दष्टया' पदका क्या अर्थ कहा ?

प्र. गं. – 'मैं ही ब्रह्म हूँ' शास्त्र द्दष्टिसे, ऐसा अर्थ कहा।

वा. व. – ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' ऐसा कहनेवाला शास्त्र कौनसा है ?

प्र. गं. – ''अहं ब्रह्मास्मि'' शास्त्र

वा. व. – ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य आपके मतके अनुसार ''चित्''रूप अखण्डार्थ बोधक है। मैं ही ब्रह्म हूँ। इस ज्ञानको पैदा नहीं कर सकता।

प्र. गं. – ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्यके दो तात्पर्य हैं। एक मुख्य तात्पर्य दूसरा अमुख्य तात्पर्य। मुख्य तात्पर्य से ''चित्'' ऐसा बोध होता है। अमुख्य वृत्तिसे ''मैं ब्रह्म हूँ'' बोध उत्पन्न होता है।

वा. व. – ''ऐक्य'' कथनके विषयमें मुख्यतात्पर्य नहीं न ?

प्र. गं. – ऐक्यके विषयमें मुख्य तात्पर्य नहीं।

वा. व. – अमुख्य तात्पर्यसे ''अहं परबोध्य विशिष्ट जीवका, ब्रह्मपदसे बोध्य विशिष्ट परमात्माका ऐक्य बोध किस तरह कर सकता है ?

कोर्ट – मि दास ! ''अहं ब्रह्मास्मि'' का विचार करते समय, इन विचारोंपर चर्चा हो चुकी है, पुन: उनपर विचार मत कीजिये ।

वा. व. – महाप्रभो ! पुन: पुन: ''तत्त्वमसि'' ''अहंब्रह्मास्मि'' आदि वाक्योंको प्रतिवादि दुहराते हैं, उनसे ऐक्य सिद्धि का प्रलाप करते हैं। उनको उत्तर दिये बगैर नहीं रह सकते । कोर्ट मना करता है, पर ''तत्त्वमसि'' ''अहंब्रह्मास्मि'' वाक्योके विचारोंको नोट करना चाहिये । इन विचारोंको दुहरानेका मनाह प्रतिवादियोंसे करना चाहिये ।

कोर्ट – शास्त्रीजी ! बार बार तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि वाक्योंका उदाहरण मत दीजिये । दूसरा कोई विचार होगा – प्रस्तुत किजीये ।

प्र. गं. – उत्तर नहीं ।

वा. व. – शास्त्रीजी ! शंकराचार्यने ''मृदब्रवीत्'' इत्यादि वाक्योंका अर्थ किस तरह किया है ?

प्र. गं. – मृत् – मृदभिमानि देवता, मृदन्तर्यामि देवता अब्रवीत् – बोला । आप: – जलाभिमानि देवता बोला ऐसा अर्थ किया है ।

वा. व. – ''मृद'' ''जल'' आदि पदोंका तदन्तर्यामि अर्थ मुख्य है न ?

प्र. गं. – मुख्य ही है ।

वा. व. – ''य आत्मनि तिष्ठन्'' ''यो वायौ तिष्ठन्'' ''य: सर्वेषु भूतेषु'' इत्यादि वाक्योंका अर्थ, अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'' सूत्रकार भगवान् वेदव्यासने जैसे अर्थ किया है, उसका उल्लेख शंकराचार्यने किया है ।

प्र. गं. – वायु, सूर्य, अग्नि, इन्द्र आदि समस्त प्राणियोंमें परमात्मा अन्तर्यामि है । पर उन जीवोंसे भिन्न है । अन्तर्यामि रूपसे समस्त जीवोंका नियमन करता है । ऐसा शंकराचार्यने लिखा है ।

वा. व. – ''प्राणस्तथानुगमात्'' सूत्र भाष्यमें क्या कहा है ?

प्र. गं. – प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा वाक्यमें, उनके ज्ञापक लिंग होनेके कारण ''प्राण'' शब्दसे वायु, इन्द्र, जीव, ब्रह्म कौन वाच्य होगा । इस तरहके संशय आनेपर इन्द्र ही प्राण शब्दवाच्य है, यह पूर्वपक्ष उपस्थित हुवा । तब शंकराचार्यने सिद्धान्त लिखा है । प्राणशब्द बोध्य परमात्मा ही है । इन्द्रादि प्राण शब्द वाच्य नहीं ।

वा. व. – इससे इन्द्रादिमें और प्राण शब्द परमात्मामें भेद सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. गं. – प्राणशब्द बोध्य इन्द्र नहीं, परमात्मा ही प्राणशब्द वाच्य है, इससे स्पष्टरूपमें भेद सिद्ध होता है ।

वा. व. – ''मामेव विजानीहि'' यह वाक्य किसका है ?

प्र. गं. – यह इन्द्रका वाक्य है ।

वा. व. – इसका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – प्राणशब्द बोध्य जो परमात्मा है, वह मैं हूँ । मुझे ही परमात्मा समझो ।

वा. व. - ''प्राणस्तथानुगमात्'' सूत्रमें प्राण इन्द्र नहीं। परमात्मा ही प्राण है इन्द्र और परमात्मामें भेद कहा गया है।

वा. व. - ''मामेव विजानीहि'' मैं ही परमात्मा हूँ यह अर्थ संभवता है या नहीं ?

प्र. गं. - मैं ही परमात्मा हूँ यह अर्थ युक्त नहीं होगा।

वा. व. - ''मां'' पदके लिये ''मदन्तर्यामि'' अर्थ मुख्य है या अमुख्य है ?

प्र. गं. - मुख्य अर्थ ही है।

वा. व. - ''मामेव विजानी हि'' वाक्यका अर्थ ऐसा होगा । प्राणशब्द बोध्य परमात्मा मेरे अन्तर्यामी है यह समझो। यह अमुख्यार्थ होगा कि नहीं ?

प्र. गं. - मुख्यार्थ होगा।

वा. व. - 'य आत्मनि तिष्ठन्' यो वायौ तिष्ठन्, य: सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्। वाक्योंमें परमात्माको सर्वान्तर्यामी कहा गया है। अन्तर्यामी द्वष्टि ही शास्त्र द्वष्टि होगा (शास्त्रानुसार द्वष्टि)

प्र. गं. - मदन्तर्यामी द्वष्टि शास्त्र द्वष्टि ही होगा।

वा. व. - ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' यह द्वष्टि शास्त्र द्वष्टि नहीं होगी। मेरे अन्तर्यामी परमात्मा है, यह द्वष्टि ही शास्त्र द्वष्टि होगी। इन्द्र प्राण (परमात्मामें) में भेद बोधक ''प्राणस्तथानुगमात्'' सूत्रके अनुकूल होगा। ''शास्त्र द्वष्टया, मामेव विजानीहि'' प्राणको मेरे अन्तर्यामि समझो। इस तरह का अर्थ क्यों न करें।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

कोर्ट - आचार्यजी ! शास्त्रद्वष्टया पदका अन्तर्यामि द्वष्टया अर्थ कहा गया। पर वह सूत्र गत समस्तपदोंके लिये अर्थसे अन्वित होना चाहिये न ?

वा. वि. - सभी पदोंसे अर्थयुक्त होना चाहिये।

कोर्ट - Mr. शर्मा ! वामदेववत् पदसे किस तरह अन्वित होगा, पूछिये।

प्र. व. - आचार्यजी ! जैसे वामदेव सर्वात्मद्वष्टिसे हो १* ब्रह्माभेद द्वष्टिसे हो 'अहंमनुरभवं अहं सूर्यश्च', मैं मनु हूँ, मैं ही सूर्य हूँ कहता है। वैसे ही इन्द्रने अभेद द्वष्टिसे कहा है, वामदेववत पद कहता है। इस पदका अर्थ, आपसे उक्त पदके अर्थका विरूद्ध होगा।

वा. वि. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''वामदेववत्'' द्वष्टान्तसे सूचित अहंमनुरभवं अहं सूर्यश्च,

---

१* ओं गर्भेनु सन्नवेषांमवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा बुर आयसी रर क्षन्नधश्योनो जवसा निददीयम्॥ (ऋ. ६-१६-१)

गर्भेनु गर्भएवसन् विद्यमानोहं वामदेव: एषामिन्द्रादीनां देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि जनिमानि जन्मानि अन्ववेदं आनुपूर्वेणा ज्ञासिषं परमात्मान: सकाशात् सर्वे देवा जाता इत्यवेदिषम् न घास मामप जोषं जराभाभीमासत्वक्षसा वीर्येण।

ईर्मा: पुरंधि रजहादरातीरूत वार्ता अतरत्शोशुवान्'' सगर्भ: मां वामदेवं जोषं पर्याप्तं न घनैव अपजभार अपजहार गर्भेपि वसतो मे मो हो माऽभूदित्यर्थ;। अहंतु ई इदं गर्भस्थं अहं तु ई इदं गर्भस्थ दु:खंत्वक्षसा तोक्ष्णेन वीर्येण ज्ञानसामर्थ्येन अभ्यासं अभ्यभवनं ईमान् सर्वस्य प्रेरक: पुरंधि: पुरां धारक: परमात्मा आराति गर्भसांस्थितान् शत्रून जहात् अत्यजत् जघान उतापि च शूशुवान: वर्धमान: परिपूर्ण: परमात्मा वातान् गर्भक्लेशकरान् वायून् अतारित्।

मन्त्रके उत्तर वाक्योंकी समीक्षा करनेपर, यह ज्ञात होगा कि वामदेव ऋषिको ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' यह ज्ञान नहीं था। अभेदज्ञान था यह कहना युक्त नहीं होगा। यही इसके विरूद्ध वामदेवमें भेदज्ञान ही था यह सिद्ध होता है। धीमि गतिसे विचार हो, यह हमारी प्रार्थना है।

कोर्ट - मि. शर्मा - धीमिगतिसे, पर विशद रूपमें विचार चले।

प्र. व. - आचार्यजी ! वामदेव ऋषिको अभेदज्ञान नहीं था, और अभेदज्ञान था ऐसा कहना भी तर्क संगत नहीं। वामदेव ऋषिको भेद ज्ञान ही था। ऐसा जो आप कहते हैं, किस आधार पर ?

वा. वि. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह विद्यारण्यका ऋग्वेद भाष्य है।

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है, वामदेव को भेदका ज्ञान था। यह भी प्रमाणित होता है पर ....

वा. वि. - ''पर'' क्या है ?

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है, पर वह भेद व्यावहारिक है। वामदेव का भेदज्ञानका भ्रम था।

वा. वि. - शास्त्रीजी ! वामदेव ऋषिको ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' इस प्रकारका ऐक्य साक्षात्कार था या नहीं ? अगर ऐक्य साक्षात्कार था तो, देवता परमात्मासे जन्मे, मैं आर्यको भूमि दे चुका, आदि भेदज्ञानके कार्य किस तरह संपन्न हो सकते हैं ? ऐक्य साक्षात्कार नहीं हो तो ''अहं मनुरभवं सूर्यश्च''इस तरहका सार्वात्म्यज्ञान किस प्रकार होगा ?

प्र. गं. - शंकरभगवत्पादको ऐक्य साक्षात्कार था, फिर भी ग्रंथनिर्माणादि भेदज्ञान कार्य करते रहे, वैसे ही ऐक्यसाक्षात्कार होते हुवे भी वामदेव भेदज्ञानकार्य करते रहे इसमें क्या बाधक हैं ?

वा. वि. - शास्त्रीजी ! विवाद विषयमें अपने अपने आचार्योंका विषय न कहें। क्योंकि एकमतके आचार्यमें दूसरे मतके अनुयायियोंका विश्वास नहीं रह सकता।

आपके शंकराचार्यको ऐक्य साक्षात्कार था या नहीं ? ऐक्य साक्षात्कारके रहते, आपके मतके अनुसार अज्ञानकार्य ग्रंथनिर्माण, पढाना आदि कार्य संभवेंगे नहीं। ऐक्य साक्षात्कार न हो तो वे अज्ञानी और भ्रान्त होंगे। अज्ञान और भ्रान्ति किस तरह, कैसे होगी ? आदि आक्षेप होगा। अत: शंकराचार्यका उदाहरण मत दीजिये, अन्य कोई समाधान होगा तो कहिये।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वा. व. - शास्त्रीजी ! जीव मुख्य प्राण लिंगादिति चेन्नोपासा त्रैविद्यादाश्रित त्रहिदतद्योगात्'' सूत्रमें शंकराचार्यने क्या पूर्वपक्ष किया, उत्तर क्या दिया है ?

प्र. गं. - ''प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा'' आदि वाक्योंमें, जीवलिंग, मुख्यप्राणलिंग, परमात्माके लिंग (सूचक शब्द) हैं। इस वाक्यमें जीव, मुख्यप्रमाण, परमात्मा तीनों प्रतिपाद्य हैं, यह पूर्वपक्ष है। प्राणशब्द बोध्य परमात्मा ही है, जीव नहीं मुख्यप्राण नहीं। इस तरहका सिद्धान्त कर चुके हैं।

वा. व. - इससे जीव परमात्मा का भेद सिद्ध होता है या नहीं।

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है।

वा. व. - ''प्राणस्तथानुगमात्'' पहले सूत्रमें भी ''जीवमुख्यप्राणलिंगात्'' अन्तिम सूत्रमें भी जीवपरमात्मामें भेद ही है। ऐसा सिद्धान्त करके मध्यसूत्रमें अनेक प्रमाणोंके विरूद्ध इन्द्र और

परमात्माका ऐक्य कहना युक्तिसंगत किस तरह होगा ?
प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वादिसे पूछताछ

प्र. व. - आचार्यजी ! ''शास्त्रद्दष्टया'' इस सूत्रका अर्थ आप किस तरह करते हैं ?
वा. वि. - ''प्राणस्तथानुगमात्'' सूत्रमें संशय इस प्रकार है । क्या प्राणशब्द वाच्य इन्द्र है या परमात्मा है ? इन्द्र ही प्राण शब्द वाच्य है । यह पूर्वपक्ष प्राण शब्दवाच्य परमात्मा ही है, इन्द्र नहीं। इस प्रकार सिद्धान्त किया गया है । इस पर अधिक शंका की गयी है, अगर इन्द्र और परमात्मा भिन्न हैं। भिन्न हैं तो मैं ही प्राण हूँ ऐसा इन्द्रने क्यों कहा ? ऐसा आक्षेप करनेपर परमात्मा अन्य है, मैं अन्य हूँ, भेदका ज्ञानसे संपन्न वाम देवऋषिने कहा मन्वन्तर्यामी, सूर्यान्तर्यामी, मेरे अन्तर्यामी एक ही परमात्मा है । 'य आत्मनि तिष्ठन्'' शास्त्रजन्य अन्तर्यामी द्दष्टिसे कहा है अथवा शास्तीति शास्त्रं शास्त्रस्य, शासकस्य अन्तर्यामिण: द्रष्टया अभेद प्रतिभाव होने जैसे उपदेश किया है वामदेवऋषिने अर्थात् ''मैं प्राण हूँ'' का अर्थ मेरे अन्तर्यामी प्राण है यह उपदेश किया गया है ।
प्र. व. - 'मैं प्राण हूँ' यह अर्थ स्पष्टरूपमें मुख्यवृत्तिसे अभेद प्रतीत होता है, आप इस तरह गौणार्थ का आधार क्यों लेते हैं ?
वा. वि. - अद्वैतमतके अनुसार, विशिष्ट इन्द्रके साथ विशिष्ट प्राण शब्द बोध्य परमात्माका ऐक्य होगा नहीं । विशिष्ट वामदेवके साथ, विशिष्ट सूर्यादिकोंकी एकता संभव नहीं । अत: लक्षणावृत्तिसे ''शुद्धचित्'' अर्थ का ग्रहण करके ऐक्यका कथन करना पडेगा । जिससे बहुतसे दोष आते हैं । जो दोष तत्त्वमसि वाक्यार्थ के समय कहे गये हैं । अभेद संभव नहीं । समस्त शब्द अन्तर्यामि वस्तुके बोधक हैं। प्राण, इन्द्र का अर्थ है प्राणान्तर्यामी, इन्द्रान्तर्यामी
प्र. व. - (क्रॉस नहीं)

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! 'शास्त्रद्दष्टयातूपदेशो वामदेववत्', वेदार्थनिर्णायक सूत्र, वामदेव ऋषिने जिस तरह शास्त्र द्दष्टिसे, मैं ब्रह्म, सूर्य, मनु हूँ। अहं मनुरभवं सूर्यश्च कहा है । शास्त्रानुसारि द्दष्टिसे 'मामेव विजानी ही' मैं ही प्राण शब्द बोध्य परमात्मा हूँ, यही उपदेश है । इन्द्रादि जीवोंका ब्रह्मका ऐक्य संपन्न होगा । कोर्ट इस पर ध्यान दे ।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो - (वामदेव ऋषिको अपने ब्रह्मत्व का ज्ञान नहीं था) अहं मनुरभवं

सूर्यश्च वाक्यके आगे ऋग्वेद के वाक्योंमें वामदेवका कथन इस प्रकार है – जब मैं गर्भमें था, उस समय देवता परमात्मासे उत्पन्न हुये, इस विषयको मैं जान चुका। सर्वप्रेरक परमात्माने गर्भस्थ मेरे शत्रुओंका संहार किया। परमात्मा जो परिपूर्ण है, उसीने गर्भस्थ क्लेशदायक वायुसे मुझे पार किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वामदेवको भेदज्ञान था। इससे यह प्रमाणित होता है कि वामदेवको ब्रह्मैक्य का ज्ञान नहीं था। अगर वामदेवको ऐक्य ज्ञान होता तो 'अहं भूमिमददामार्याय' – मैंने आर्यको भूमि दे दी। इस तरहके भेदज्ञानके कार्य किस तरह होंगे ? शंकराचार्यको ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान (अभेद साक्षात्कार) रहनेपर भी जैसे शास्त्र निर्माण, वाद, उपदेश, अमरूक राजामें प्रवेश, कार्य जैसे होते हैं। यह कथन उभय वादियोंको सम्मत नहीं। (शंकराचार्यको ज्ञानी नहीं मानते वादि लोग इसलिये यह कथन युक्ति युक्त नहीं।)

और अद्वैतमतके अनुसार विशिष्ट मन्वादिकोंमें विशिष्ट वामदेव का ऐक्यतर्कसे परे है। लक्षणावृत्तिसे मन्वादिपदोंसे शुद्ध चित् ग्रहण करके चित् चित्में ऐक्य संभव है, इस तरह कहनेसे तत्त्वमसि के विचार करते वक्त जो दोष कहे गये है। वे सभी दोष आते है। इसलिये ''वामदेववत्'' द्दष्टान्त वाक्यके लिये ऐक्य द्दष्टिसे मैं मनु हूँ, सूर्य हूँ ऐसा वामदेवने कहा, इन्द्रने ऐक्य द्दष्टिसे कहा 'मैं प्राण हूँ'' ऐसा अर्थ कहना अयुक्त है।

''प्राणस्तथानुगमात्'' प्रधान सूत्रमें प्राणशब्दवाच्य परमात्मा ही है, इन्द्र नहीं। स्पष्टरूपमें भेद कहे जानेके कारण ''जीवमुख्यप्राणलिंगात्'' उपसंहार सूत्रमें भेद उक्त होनेसे, मध्यस्थ ''शास्त्रद्दष्टया'' सूत्रका अर्थ उपक्रम सूत्रके अनुसार और उपसंहार सूत्रके अनुसार करना चाहिये। विरूद्ध अर्थ न कहे।

''मैं हूँ ब्रह्म'' इस प्रकार प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र (वेद उपनिषद) नहीं। ''शास्त्रद्दष्टया'' पदका शास्त्रके अनुसार ''अहं ब्रह्मास्मि'' – मैं ही ब्रह्म हूँ यह अर्थ अयुक्त है। ''य: पृथिव्यां तिष्ठन्, य आत्मनि तिष्ठन्, यस्सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् इत्यादि वेद वाक्य, शारीरश्चोभयेपि हि भेदेनैवमेनमधीयते भेदव्ययदेशाच्यान्य: इत्यादि सूत्र कहते हैं कि परमात्मा इन्द्र, वायु आदि समस्त चेतनोंमें अन्तर्यामि है। शंकराचार्य इस मतके पक्षधर है। इसलिये शास्त्रद्दष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् परमात्मा समस्त देवताओंका अन्तर्यामि है, प्रेरक है। अन्तर्यामि द्दष्टिसे इस सूत्रका अर्थ करना होगा।

प्रति. ए. २
''आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च'' सूत्रका विचार

प्र. व. – शास्त्रीजी ! 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च'' (ब्र. सू. ४-१-३) सूत्र अभेदका प्रतिपादन किस तरह करता है।

प्र. गं. – परमात्माको आत्मैत्येव – मैं जीव हूँ इस प्रकार समझते हैं। तत्त्वमस्यादि श्रुतियाँ परमात्माको ही जीवके रूपमें उपदेश करते हैं। इसीसे अभेद सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''उपगच्छन्ति'' ''ग्राह्यन्ति'' पदोंसे बोध्य ज्ञानरूप क्रियाका कर्ता कौन है ? कर्म कौन है ?

प्र. गं. - परमात्मा कर्म है, जीव कर्ता है।

वा. व. - ज्ञानकर्म और कर्तामें भेद है या नहीं ?

प्र. गं. - ज्ञेय में (ज्ञानकर्ममें) कर्तामें (ज्ञानकर्तामें) भेद है।

वा. व. - इस सूत्रमें जीव परमात्मामें ज्ञातृज्ञेय भावके कहनेसे भेद सिद्ध होता है कि नहीं ?

प्र. गं. - जीव परमात्मामें भेद सिद्ध होता है। परमात्मा कहता है कि वही आत्मा है। इस उक्तिसे अभेदमी सिद्ध होता है।

वा. व. - आत्मेति - आत्माके रूपमें जानते हैं। आत्माको आत्माके रूपमें उपदेश करते हैं। यही अर्थ होता है। ''जीव'' अर्थ किस तरह करते हैं ?

प्र. गं. - ''परमेश्वर:'' पदके अध्याहार करनेसे, परमेश्वर परमात्मा ही ''आत्मा'' मैं ही ऐसा समझता है। इस अर्थसे ऐक्य सिद्ध होता है।

वा. व. - ५६४ सूत्रोंमें ५६० सूत्र भेद प्रतिपादक हैं। ''आत्मेति तूपगच्छन्ति'' सूत्रभी ज्ञातृज्ञेय भावसे भेदका बोधन करता है। अध्याहार करना ही है तो, अन्य प्रमाणोंके अविरूद्ध ''परमेश्वर दास:'' पदका अध्याहार करके, 'मैं परमात्मा का दास हूँ' - यह समझता है। यह अर्थ अबाधित होगा। इस सूत्रमें अभेद निरूपक पदके न रहनेपरभी अद्वैतपर अर्थ करना अध्याहार करना किस तरह युक्त होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्'' १-३-१ ब्रह्मसूत्रका अर्थ शंकराचार्यने क्या लिखा है ?

प्र. गं. - ''यस्मिन् द्यौ: पृथिवी चान्तरिक्षं ओतं........ तमेवैकं जानथ आत्मानं'' श्रुतिमें द्यु,भू आदिकोंका आश्रय परमात्मा ही है, क्योंकि जीव, वायु, प्रधान आदिमें आत्म शब्द समन्वित नहीं होता।

वा. व. - इससे यह ज्ञात होता है कि आत्म शब्द परमात्मा वाचक ही है, अन्य किसी देवता वाचक नहीं।

प्र. गं. - आत्म शब्द परमात्मा वाचक ही है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''परमेश्वर'' शब्दका अध्याहार करके भी यह अर्थ निकलता है। परमेश्वर: आत्मा - ही जगत्कर्ता है। परमात्मा ही जीव है यह सिद्ध नहीं होता।

प्र. गं. - आत्म शब्द मुख्यरूपसे परमात्मा वाचक होनेपरभी अमुख्यरूपसे जीव बोधक है, जिससे परमात्मा ही जीव है यह सिद्ध होता है।

वा. व. - आत्म शब्द के मुख्यार्थ का त्याग करके अन्य अनेक श्रुतियोंके, गीतावाक्योंके, सूत्रोंके, आत्मेति सूत्रके विरूद्ध अर्थ कहना क्या युक्ति संगत होगा और अभेद की सिद्धि के लिये परमेश्वर शब्दका अध्याहार योग्य होगा। ५६४ सूत्रोंमें से इस दुर्बल सूत्रको अभेदके विषयमें प्रमाणित करना क्या युक्ति संगत होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वादिसे पूछताछ

प्र. व. - आचार्यजी ! इस सूत्रका अर्थ आप किस तरह करते हैं ?

वा. वि. - ५६० सूत्रोंके अनुसार, ज्ञातृज्ञेयभावसे भेदबोधक (आत्मेति सूत्रके) तरह भेदप्रतिपादक अनेक श्रुतियोंके अविरूद्ध, ''आत्म'' पदका आवर्तन करके आत्मा अर्थात् परमात्मा यह अर्थ होगा । ''यच्चाप्नोति यदादते यच्चात्ति विषयानिह यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेतिभण्यते'' प्रमाणमें आत्माका लक्षण उक्त है। जगत्कर्ता, जगत्स्वामी इस तरह परमात्माको ज्ञानी समझते है, और उसी प्रकार उपदेश करते हैं, इस प्रकारका अर्थ कहते है।

वादी वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - कोर्टसे - महाप्रभो ! समस्त सूत्र जीवब्रह्मके भेदका प्रतिपादन करते है। किसीभी सूत्रमें ऐक्यका प्रतिपादन नहीं। इस तरंह आक्षेपका उत्तर देते हुये शंकराचार्य आदि अद्वैति कहते हैं - ''शास्त्रद्दष्टया'' ''आत्मेतितूपगच्छन्ति'' आदि तीन चार सूत्रोंमें जीवंब्रह्मका अभेद उक्त है। ये तीनचार सूत्रभी अभेदका निरूपण नहीं करते । समस्त ब्रह्मसूत्र जीवब्रह्मके भेदका ही प्रतिपादन करते कोर्ट इसपर गौर करें।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. गं. - कोर्टसे - महाप्रभो ! ५६० सूत्र भेदका ही प्रतिपादन करते हैं, अभेदका प्रतिपादन नहीं करते। ऐसा अद्वैति कहते हैं, यह माधवदास का कथन युक्त है। पर ''आत्मेति'' तीनचार सूत्रभी अभेदका निरूपण नहीं - यह जो माधवदासका कहना है, युक्त नहीं। ''आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च'' सूत्र जीव अपनेको ही परमात्मा समझता है, पर जीवको ही परमात्माके स्वरूपके रूपमें उपदेश करते हैं। इस सूत्रमें जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है यह सिद्ध होता है। यह सूत्र जीवपरमात्माके अभेदके विषयमें आधार है। कोर्ट इस विषयको ध्यानमें रखे।

वादि वकीलका री-आर्ग्युमेंट

वा. व. - महाप्रभो ! ''आत्मा इति उपगच्छन्ति'' आत्माके रूपमें समझते है। ''आत्मा इति ग्राह्यन्ति'' आत्माके रूपमें उपदेश देते है। इस प्रकार ज्ञानरूप क्रियामें कर्तृकर्मभाव उक्त है। जीवपरमात्मामें कर्तृकर्म भाव कहे जानेके कारण भेदकी सिद्धि होती है। ५६० सूत्रोंसे भेदका प्रतिपादन किया गया है। अनेक श्रुतियाँ भेदका प्रतिपादन करती है। इस सूत्रमें अभेद प्रतिपादक पद नहीं। अभेदके निरूपणके लिये अन्य श्रुतियोंका आधार नही। ''परमेश्वर'' पदका अध्याहार करके, परमेश्वरको जीव मानते है, यह कहना अत्यंत अयुक्त है। ''द्युभ्वाद्यायतन स्व शब्दात्''

सूत्रमें सूत्रकार भगवान वेदव्यासने ''आत्म'' शब्दको परमात्माको बोधक माना है। इसके बावजूद यह भी कहा गया है कि ''आत्म'' शब्दको परमात्माको बोधक माना है। इसके बावजूद यह भी कहा गया है कि ''आत्म'' शब्द जीवका बोधक नहीं, ऐसा निर्णय किया है।शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने इस निर्णयका स्वीकार किया है। ''परमेश्वर'' इस पदका अध्याहार करनेपर भी परमेश्वरसे ''जगत्कर्ता'' आदि मुख्यवृत्तिसे ही व्यक्त अर्थका ग्रहण करना होगा, अमुख्यवृत्तिसे जीवको परमात्मा न समझे। ''आत्म'' शब्दका आवर्तन करके आत्मा-परमात्मा जगत्कर्ता है। इस प्रकार अर्थ करना चाहिये। 'आत्मा' शब्दको अमुख्यार्थके रूपमें ग्रहण करनेपर भी, आत्मा जीव परमात्माका दास है। ऐसा ही उपदेश करते है। सूत्र, उपनिषद के अविरूद्ध अर्थको कहे। इसपर कोर्ट ध्यान दे।

प्र. ए. सूत्र ३
अविभागेन द्दष्टत्वात् (ब्र. सू. ४-४-४)

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''अविभागेन द्दष्टत्वात्'' सूत्र का अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते.... .स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: स्त्रीभिर्वा यानैर्वा (छां. ८-१२-३) श्रुति कहती है - जीव परमात्माके पास जाकर - अपने नैज स्वरूपमें अभिव्यक्त होता है। इस श्रुतिमें कर्तृकर्मभाव उक्त है। और ''स तत्र पर्येति'' अधिकरण, अधिकर्तव्य भाव कहे जानेसे भी भेद प्रतिपाद्य है। अत: मोक्षमें जीव परमात्मासे भिन्न ही रहता है। इस तरह पूर्वपक्ष प्राप्त होनेपर, मुक्तजीव परमात्मासे भिन्न नहीं रहता। अविभक्त रहता है। ''तत्त्वमसि'' अहं ब्रह्मास्मि वाक्य जीवसे अविभक्त परमात्माका ही प्रतिपादन करते है। 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यसे भी जीवपरमात्माका अभेद ही प्रतिपादित है।

''यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एवं मुने: विजानत: आत्मा भवति गौतम'' आदि वाक्यभी परमात्माको मुक्त जीवसे अभिन्न के रूपमें निरूपण करते हैं। जीवपरमात्माके विषयमें नदी-समुद्रका द्दष्टान्त भी दिया गया है। जिससे ऐक्य की सिद्धि होती है। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि मुक्त जीव परमात्मासे अभिन्न है। जीवपरमात्माके ऐक्यके विषयमें यह सूत्र प्रमाण है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''घटपटौ संयुक्तौ'', घटपटौ विभक्तौ इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - घटपट संयोगविशिष्ट हैं। घटपट विभागसे युक्त है।

वा. व. - ''संयुक्त घटपटौ भिन्नौ वा अभिन्नौ वा'' संयुक्त घटपट भिन्न है या अभिन्न हैं ?

प्र. गं. - संयुक्त घटपट अविभक्त हैं, विभक्त नहीं।

वा. व. - संयुक्त घटपट अविभक्त होनेसे अभिन्न होना चाहिये न ?

२६३- सिविल सूट (३)

प्र. गं. - माधवदासजी ! विभागका अर्थ है मिलकर न रहना । अविभागका अर्थ है एक होकर रहना । इस तरह विभाग शब्दका अर्थ अन्य हैं। अभिन्न शब्दार्थ दूसरा है। अविभक्त होनेसे अभिन्न नहीं होते ।

वा. व. - ''अविभागो वचनात्'' (ब्र. सू. ४-२-१६) सूत्रमें विद्यमान अविभाग पदका अर्थ क्या अभेद है ?

प्र. गं. - ''अविभागो वचनात्'' सूत्रस्थ अविभाग पदका अभेद अर्थ नहीं विभागके लिये अयोग्य ऐसा अर्थ है।

वा. व. - ''अविभागेन द्दष्टत्वात्'' सूत्रगत अविभागपदका क्या अर्थ है ?

प्र. गं. - ''अविभागो वचनात्'' सूत्रस्थ अविभाग पदका जो अर्थ है वही अर्थ है । इसमें क्या विचार है ?

वा. व. - ''अविभागे न द्दष्टत्वात्'' सूत्रका अर्थ कहिये ।

प्र. गं. - मुक्त जीव अविभागेन - परमात्मासे विभक्त न होकर रहता है। परमात्मासे मिलकर ही रहता है। संयुक्त ही रहता है।

वा. व. - इस सूत्रसे ''द्वासुपर्णा सयुजा'' श्रुतिमें उक्त प्रकारसे जीव परमात्मासे सर्वदा मिलकर ही रहता है। ऐसा सिद्ध होता है या ऐक्य सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - 'अविभागेन द्दष्टत्वात्' सूत्रघटक अविभाग पदसे जीव परमात्मासे विभाग रहित है यह सिद्ध होता है। शंकराचार्यने भी कहा है - अविभक्त एव परेणात्मना मुक्तोऽवतिष्ठते, अविभागेनैव परमात्मानं दर्शयति अविभागमेव दर्शयति । अविभागको कहा है । पर कर्तृकर्म निर्देशाद्भेदेनैववास्थानं'' पूर्वपक्षमें भेद निर्देशस्तु अभेदे उपचर्यते सिद्धान्तके अन्त्यभागमें भी भेद अभेद शब्दोंका उपयोग करके, इस सूत्रसे अभेदकी सिद्धी होती है, ऐसा शंकराचार्यका कहना है।

वा. व. - वादग्रस्त विषयोंमें अपने मतप्रवर्तक आचार्यका नाम लेना योग्य नहीं। ''अविभागेन'' शब्दसे ''द्वासुपर्णा सयुजा'' श्रुतिमें उक्त तरहसे मोक्षमें जीव परमात्मा मिलकर रहते हैं या अभेदसे रहते हैं क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - 'परमात्मासे मिले बिना न रहनेवाला' यह अर्थ है अविभाग शब्दका । अर्थात् हमेशा परमात्मासे मिलकर ही रहता है। यही सिद्ध होता है। अभेद सिद्ध नहीं होता।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''अविभागेन'' सूत्र अभेदका बोधक नहीं होता तो भी ''तत्त्वमसि'' ''अहंब्रह्मास्मि'' ''यथोदकंशुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एवं मुनेर्विजानत: आत्मा भवति गौतम (कठ २-४-५) इन वाक्योंसे क्या जीवपरमात्माका ऐक्य सिद्ध नहीं होता ? इसका समाधान क्या है ?

वा. वि. - शर्माजी ! ''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्योंका विचार पहले ही हो चुका है। निर्णय हो चुका है कि इन वाक्योंसे जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध नहीं होता। ''यथोदकं'' वाक्यभी अभेदबोधक नहीं, भेदनिरूपक है।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''यथोदकं''वाक्यका अर्थ क्या है ? वह वाक्य भेदबोधक किस तरह

बनता है ? अभेदका प्रतिपादन क्यों नहीं करता ?

वा. वि. - निर्मल, शुद्ध पानीमें मिलाया हुवा पानी पहले स्थित जलकी तरह ही होता है। बादमें मिला गया पानी पहले विद्यमान पानीकी तरह होता, पहले विद्यमान पानी के साथ एक नहीं होता। उसी तरह ज्ञानी परमात्माके जैसे बनता है, परमात्मा नहीं बनता। इस तरह भेदका प्रतिपादन करके अभेदका खण्डन करता है। अभेद निरूपणमें श्रुतिका तात्पर्य रहता तो ''तदेव भवति'' कहना चाहिये था। ''ताद्दगेव'' कहना योग्य नहीं।

प्र. व. - आचार्यजी ! ''ताद्दगेव भवति'' वाक्यका अर्थ आपके कहनेके अनुसार होता है, ऐसा अर्थ होनेपर पानीमें पानी मिलानेसे एक ही होता है। अत: ''ताद्दगेव'' पदका वही अर्थ होगा। पूर्वमें रहे पानीसे मिलाया गया पानी एक होता है, उसी तरह जीव ताद्दगेव भवति वाक्यांश का अर्थ जीव परमात्मा हो होता है। यही अर्थ कहना चाहिये।

वा. व. - शास्त्रीजी आपका गाँव कौनसा है ?

प्र. व. - हमारा गाँव श्रीरंगपट्टण है।

वा. व. - आपके गाँवमें कौनसी नदी बहती है ?

प्र. व. - कावेरी नदी बहती है।

वा. व. - क्या आपके गाँव में कुवाँ है ?

प्र. व. - कुवाँ है।

वा. व. - आप बावडी का पानी पीते है या नदी का पानी ?

प्र. गं. - क्या आपने हमें मूर्ख समझा है ? ''तृषितो जान्हवी तीरे कूपं खनति दुर्मति:'' कावेरीमें बहनेवाले पवित्र और मधुर पानीको छोडकर , कुवेके पानीको या रखे हुवे पानीको क्यों पीयेंगे ?

वा. व. - कुँवेके पानीमें, रास्तेमें बहनेवाले पानीमें और कावेरी के पानीमें क्या भेद है ?

प्र. गं. - माधवदास इस तरह प्रश्न न करें। गधा, घोडा, कुत्ता, गाय क्या एक हो सकेंगे ? कावेरीका पानी और रास्तेका पानी एक कैसे होगें ?

वा. व. - क्या अन्य पदार्थ दूसरे पदार्थसे एक हो सकता है ?

प्र. गं. - '' न हि अन्य: अन्यतां याति'' आचार्यकी उक्ति है। एक पदार्थ दूसरा पदार्थ नहीं बन सकता। भिन्न पदार्थ सदा भिन्न ही रहते हैं। एक नहीं बनता।

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह हमारे भाष्यव्याख्यान भामती ग्रंथ है और अप्पय्यं दीक्षित का कल्पतरू परिमळ है।

वा .व. - इन वाक्योंका १* अर्थ क्या है कहिये ?

१* नो जातु घट: पटो भवति। ननूक्तं यथा नदी समुद्रो भवतिं का पुनर्नद्यभिमता आयुष्मत: ? किं पाथ: परमाणव: उततेषां संस्थान भेद: आहोस्वित् तदारब्धोऽवयवी। तत्र संस्थान भेदस्यवा अवयविनो वा समुद्रनिवेशे विनाशात् कस्य समुद्रेणैकता। नदी पाथ: परमाणूनां तु समुद्रपाथपरमाणुभ्य: पूर्वावस्थितेभ्यो: भेद एव नाभेद: एवं समुद्रादपि तेषां भेद एव। (ब्र. सू. भामती १-१-२२)

तथा च नद्यवयव सन्निवेशेष रूपेण अवयवविरूपेण वा समुद्राभेद प्राप्याभावेपि समुद्रप्राप्त नद्यवयिना शात् तदपि नामरूप प्रहाणमास्तिएतादवदंशे श्रुतौ नदीसमुद्र द्दष्टान्ते। (कल्पतरू परिमळ १-४-२२)

२६५ - सिविल सूट (३)

प्र. गं. - नदी समुद्रके साथ एक नहीं होगी। नदी और समुद्रमें भेद है। नदी और समुद्रमें ऐक्य न होनेपरभी, नॅदियाँ जब समंदरमें प्रवेश करती हैं, नदीरूपका अवयवि नष्ट हो जाता है, नदीका नामरूप भी मिट जाता है। इसी प्रकार जीव परमात्माको प्राप्त करता है।

वा. व. - इन ग्रंथस्थ वाक्योंका अर्थ क्या होगा ? क्या समुद्रमें ऐक्य संपन्न होता है ? या ऐक्य संपन्न नहीं होता ?

प्र. गं. - नदी समुद्रमें ऐक्य नहीं होता यही तात्पर्य है।

वा. व. - चार लिटर पानीसे भरे बर्तनमें और दो लिटर पानी डालनेसे, चार लिटर + दो लिटर एक ही होते है ? या भिन्न रहते है ?

प्र. गं. - पूर्वमे रहा पानी बढ जाता है, यह जल अलग ही होगा। पूर्वमें स्थित पानी अलग ही रहेगा। एक नहीं होते।

वा. व. - ''यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति'' वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - शुद्ध जलमें शुद्ध पानी डालनेपर पूर्वमें विद्यमान पानीकी तरह ही होता है।

वा. व. - पानीमें डाला हुवा पानी पूर्वमें विद्यमान पानी की तरह होता, पूर्वमें विद्यमान पानीके साथ एक नहीं होता, इस दृष्टान्तसे यह ज्ञात होता है कि जीव परमात्मा की तरह होता है परमात्मा ही कभी नहीं होता।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्रतिवादि वकीलकी जिरह

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! 'परंज्योतिरूप संपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते - स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: स्त्रीभिवायानैर्वा (छा.८-१२-८) श्रुति कहती है - जीव परमात्माको प्राप्त करके, अपने स्वरूपसे अभिव्यक्त होता है। कर्तृकर्मभाव उक्त होनेसे, और ''स तत्र पर्येति'' अधिकरणाधिकर्तव्य भाव भावको कहनेके कारण मोक्षमें जीव परमात्मासे भिन्न ही रहता है। इस तरह पूर्वपक्ष प्राप्त होनेपर, ''अविभागेन दृष्टत्वात्'' सूत्रसे मुक्त्यवस्थामें जीव परमात्मासे अभिन्न रहता है, अहं ब्रह्मास्मि यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं, श्रुति जीवपरमात्माके ऐक्यका प्रतिपादन करती है।

नदी समुद्रके दृष्टान्तसे भी जीवपरमात्माका ऐक्य कहा गया है। कोर्ट इसपर विचार करे।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! अविभागेन दृष्टत्वात् ''सूत्रमें अभेदबोधक पद नहीं, अत: इस सूत्रसे अभेदका बोध नहीं होता। जैसे ''अविभागो वचनात्'' सूत्र घटक ''अविभाग पद कहता है कि विभाग नहीं कहता है वैसे ही इस सूत्रमें अविभाग पद परमात्मासे जीवका विभाग नहीं। अर्थात्

जीव निरन्तर परमात्माके साथ रहता है। अविभांग पद ऐक्य बोधक नहीं होता। घटपट भिन्न होनेपर भी अविभक्त कहलाते हैं। अत: विभाग भेद बोधक नहीं होता।

''तत्त्वमसि'' ''अहं ब्रह्मास्मि'' वाक्य ऐक्यबोधक नहीं, यह पूर्वमें ही निर्णीत हो चुका है। ''यथोदकं शुद्धमासिक्तं ताद्दगेव भवति'' वाक्य पानी मिलाया हुवा पानी वैसे होता है। अर्थात बर्तनमें रहे पानीकी भाँति हो जाता है। पूर्वस्थित उदकसे एक नहीं होता। इसी तरह जीव परमात्माकी तरह होगा, परमात्मा ही नहीं बनता। इससे जीवपरमात्मा का भेद का ही बोध हो, न ऐक्य का। बारिशके दिनोंमें रास्तेमें बहनेवाला पानी नदीमें मिल जानेसे नदीका पानी बढ जाता है। नदीका पानी रास्तेका पानी एक नहीं होता। नदियोंका पानी भी समंदरमें मिल जानेपर समंदरके पानीके साथ एक नहीं होता। 'न हि भिन्नं अभिन्नतां याति' उक्तिके अनुसार ऐक्य नहीं होता। जीव परमात्माको प्राप्त करता है, पर एक नहीं होता। इसलिये नदी समुद्रका द्दष्टान्त ऐक्यबोधक नहीं हो सकता इस विषयपर कोर्ट गौर करे।

वादिकी पूछताछ

प्र. व.- आजार्यजी ! जीवब्रह्मके भेद के विषयमें प्रमाणभूत सूत्रोंका बयान कीजिये।

वा. वि. - हम क्या कहें ? अद्वैतियोंने ही कहा है कि - दो, तीन सूत्रोंके अतिरिक्त सभी सूत्र भेद बोधक हैं, दो तीन सूत्र भेदका कथन नहीं करते। अद्वैतका बोध कराते हैं।

कोर्ट - आचार्यजी ! अद्वैती चाहे कहे या न कहें, अगर आप जानते हैं, तो भेदप्रतिपादक सूत्रोंका बयान कीजिये, न जानते हैं तो तो कहिये - हम जानते नहीं।

वा. व. - आचार्यजी ! कोर्टकी आज्ञाके अनुसार भेद प्रतिपादक सूत्रोंको कहिये।

वा. वि. - कोर्टके आदेशके अनुसार कहेंगे। समस्त सूत्र भेद प्रतिपादक ही हैं। प्रथम सूत्रसे अन्तिमसूत्रतक सभी सूत्र भेद बोधक ही हैं। इसका प्रतिपादन करते हैं ध्यानसे सुनने की कृपा करें।

''ओं अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' सूत्र शमदमादि की प्राप्ति होनेके बाद, मोक्षरूप फल होनेसे, ब्रह्मज्ञान के लिये साधनीभूत वेदान्त निर्णायक जिज्ञासाको प्राप्त करनेके लिये (ज्ञान प्राप्ति के लिये, वैचारिक सामर्थ्य के लिये) ज्ञातृज्ञेय भावसे ब्रह्म पूर्णत्व प्रतिपादक होनेके कारण, पूर्णत्वाल्पत्व भेदक धर्म होनेके कारण भेद प्रतिपादक होगा।

''ओं जन्माद्यस्य यत:'' सूत्र ब्रह्मही समस्त जगत जन्मादि कारण है, जगज्जन्मादि कारणत्वरहित जीवसे भेदका कथन करता है।

''ओं शास्त्रयोनित्वात्'' जगत्कर्तृत्वका प्रतिपादन करके शास्त्र प्रमाणोंसे सिद्ध करता हुवा, परमात्माके सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्वका बोध करता है। सर्वज्ञत्वरहित जीवसे भेदका बोध करता है।

''ओं तत्तुसमन्वयात्'' सूत्र जगत्कारणप्रतिपादक वाक्योंका समन्वय परमात्मामें करता है और जगत्कारण रहित जीव और प्रधानसे ब्रह्मको भिन्न सिद्ध करता है।

''ईक्षतेनाशब्दम्'' सूत्रसे परमात्माका जगत्कारणत्व सिद्ध होता है। इतना ही नहीं ब्रह्म का परम

मुख्यवृत्तिसे वाच्यत्व सिद्ध होता है । जिससे जीवब्रह्म भेद स्पष्ट होता है । ''ओं आनंदमयोम्यासात्'' ''ओं अन्तस्तध्दर्मोपदेशात्'' ''ओं भेदव्यपदेशात्'' ''ओं भेदव्यपदेशाच्चान्य:'' ''अनुपपत्तेस्तु न शारीर:'' ''ओं शारीरश्चोभयेपि हि भेदेनेनमधीयते'' ''अधिकं तु भेदर्निदेशात्'' आदि सूत्र जीवपरमात्माके भेदका ही युक्तियोंसे, प्रमाणोंसे बोध कराते हैं। शंकराचार्यने यह स्वीकार किया है, ऊपरके समस्त सूत्रोंसे भेद ही प्रतिपादित है।

वा. व. - क्या और भी भेद प्रतिपादक सूत्र हैं ? तो कहिये।

कोर्ट - इस समय पर्याप्त है। विचार आगे चले।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इन सूत्रोंसे जीवब्रह्म भेद प्रतिपादित हुवा है या नहीं ?

प्र. गं. - इन सूत्रोंसे भेदका प्रतिपादन हुवा है। पर वह भेद मिथ्या है।

वा. व. - वेदार्थ निर्णायक सूत्रोंमें उक्त भेद किसी बाधक के बगैर मिथ्या होंगे तो, वेदार्थोंका निर्णय किस तरह होगा ?

प्र. गं. - तत्त्वमस्यादि वाक्य ही बाधक होंगे, इसलिये यह भेद मिथ्या होगा।

कोर्ट - इन वाक्योंका विचार पहले हो चुका है और कोई उत्तर हो तो कहिये।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ५६४ सूत्रोंमें तीन-चार सूत्रोंको छोडकर, शेष ५६० सूत्र जीवब्रह्मके भेदका प्रतिपादन करते हैं। अद्वैतियोंने ही मान लिया है। उक्त तीन-चार सूत्रभी ऐक्यबोधक नहीं होंगे, पूर्वमें ही कहा गया है। ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' ''जन्माद्यस्य यत:'' ''शास्त्रयानित्वात्'' ''भेदव्यपदेशात्'' ''भेदव्यपदेशाचान्य:'' इत्यादि सूत्रोंमें भेदही प्रतिपादित है। यह जीवब्रह्मके विषयमें प्रमाण होगा। यह कोर्टसे विज्ञापन हैं।

प्रतिवादि वकीलका ऑर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! कितने भी वेद, कितने सूत्र भले भेदका प्रतिपादन करें, वह भेद, अभेदप्रतिपादक तत्त्वमस्यादि वाक्योंके विरूद्ध होंगे, जिससे वह भेद मिथ्या होगा। (मोक्षप्राप्ति तक अज्ञानमें रहना व्यावहारिक है। ''यत्रत्तु सर्वमात्मैवाभूत'' श्रुतिमें उक्त प्रकारसे मोक्षमें कोई भेद नहीं होगा। इसपर कोर्ट ध्यान दे।

वादि वकीलका री-आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! तत्त्वमस्यादि ४-६ वाक्योंको छोडकर अन्य सभी वेदवाक्य,

तीनचार सूत्रोंके अतिरिक्त समस्त सूत्र, २-३ गीताके वाक्योंको छोडकर पूरी गीता भेदबोधक ही है। शंकराचार्यने भी गीतावाक्योंको भेदप्रतिपादक के रूपमें स्वीकार किया है। उपनिषद वाक्योंका, गीतावाक्योंका, सूत्रोंका अर्थ भेदानुगुण करना ही युक्ति संगत होगा। इसलिये समस्तवेद, पूरी गीता सूत्र भेद प्रतिपादक ही हैं, इसे स्वीकार करना पडेगा। कोर्ट इसपर ध्यान दे।

भेद व्यावहारिक है, मोक्षदशामें कोई भेद नहीं रहता ऐसा प्रतिवादियोंका कहना है, वह अत्यंत अयुक्त है।

सूत्रकारने वेदार्थ निर्णय के लिये सूत्रोंकी रचना की, वेद, जीवब्रह्मके भेदका प्रतिपादन करते हैं, इस प्रकार निर्णय करके, उपसंहारमें ''अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्तिशब्दात्'' इस अन्तिम सूत्रसे ''सर्वान् कामानाप्त्वा अमृतस्समभवत्, श्रुतिको प्रमाणित करके कहा है। जीव मोक्षको प्राप्त करके, वैकुंठादि नाना स्थानोंमें भोगका अनुभव करते आनंदपूर्ण रहता है, पुन: संसारमें नहीं आयेगा। इस भाँति मोक्षकी अवस्थामें भेद ही कहा गया है। शंकराचार्यने इस सूत्रका ऐसा ही अर्थ किया है। सर्ववेदार्थनिर्णायक सभी सूत्र जक्षन्, क्रीडन्, रममाण: इत्यादि वेद भेदका प्रतिपादन करते हैं, इसपर कोर्ट दत्तचित्त रहे यही प्रार्थना है।

गीतापर समालोचना
PART III

प्र. ए. गीता १
''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'' वाक्यका विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि'' (गीता १३-१२) इस गीताके श्लोकका अर्थ क्या है ? इस श्लोकसे क्या सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - अर्जुन ! मुझे (कृष्णको) क्षेत्रज्ञं = जीव समझो। इस अर्थसे जीवपरमात्मा का ऐक्य सिद्ध होता है।

प्र. व. - ''क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि'' इस श्लोकका उपरोक्त अर्थ किसने किया है ?

प्र. गं. - हमारे गुरू शंकराचार्यने किया है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. - शास्त्रीजी ! ''ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्ष्यामि ! यज्ञात्वामृतमश्नुते ! अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'' (गीता १३-१२) श्लोकके अर्थ को कहिये।

प्र. गं. - जिसके ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त करते हैं, उस ज्ञेय क्षेत्रज्ञ का विषय कहता हूँ। इस तरहकी प्रतिज्ञा करके, उस क्षेत्रज्ञको परब्रह्म कहा है।

वा. व. - इस अर्थको किसने किया है ?

प्र. गं. - ''क्षेत्रज्ञो वक्षमाण: यस्य'' ''सप्रभावस्य क्षेत्रज्ञस्य परज्ञानात् अमतृं भवति'' ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामित्यादिना सविशेषणं स्वयमेव वक्ष्यति भगवान्'' वाक्यसे ''महिमाविशिष्ट'' इस तरहके क्षेत्रज्ञका वर्णन भगवानने ही किया है। ''ज्ञेयं यतत्त्प्रवक्ष्यामि'' श्लोकसे यह शंकराचार्यका कहना है।

वा. व. - ''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'' श्लोकगत क्षेत्रज्ञ पदका क्या अर्थ सिद्ध हुवा ?

प्र. गं. - ''क्षेत्रज्ञं'' पदका अर्थ परब्रह्म सिद्ध हुवा।

वा. व. - ''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'' इस श्लोकसे किस अर्थकी सिद्धि होती है ?

प्र. गं. - मां = मुझे (श्रीकृष्णको) क्षेत्रज्ञं जान लो।

वा. व. - दसवे अध्यायमें रहे श्लोकोंका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - भगवान् - तुम ही (श्रीकृष्णही) परब्रह्म हो, तेजोरूप हो, उत्तम और पवित्र हो १*। इस प्रकार ऋषि, देवता, नारद, असित और देवल कहते हैं। 'मैं ही परब्रह्म हूँ' ऐसा तुम भी कहते हो। समस्तको मैं सत्य समझता हूँ।

वा. व. - इससे क्या सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - श्रीकृष्ण (स्वयंको) ब्रह्मके रूपमें कहते है, यह सिद्ध होता है।

वा. व. - इस तरहकी स्थितिमें ''क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि'' मुझे (कृष्णको) क्षेत्रज्ञं जीव समझो। इस प्रकारका अर्थ किस तरह सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'' इस श्लोकका पूर्वश्लोक कौनसा है ? उस श्लोकका आशय क्या है ?

प्र. गं. - ''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद्योवेत्ति तं प्राहु: क्षेत्रज्ञ इति तद्विद: ॥'' यह श्लोक है।

अर्जुन ! करचरणाद्यवयोंसे युक्त साडेतीन गजवाला जो दीखता है, वही क्षेत्र कहलता है। इस क्षेत्रको (शरीरको) जो जानता है, उसीको क्षेत्रज्ञ कहते हैं क्षेत्रज्ञलोग।

प्र. व. - इस अर्थको किसने किया है ?

प्र. गं. - हमारे शंकराचार्यने इस प्रकारका अर्थ किया है।

प्र. व. - इस श्लोकसे किस तरहके क्षेत्रज्ञका ज्ञान होता है ?

प्र. गं. - इस शरीरको जाननेवाला ही क्षेत्रज्ञ होगा। वह क्षेत्रज्ञ जीव ही होगा।

प्र. व. - पूर्व श्लोकके अनुसार ''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'' इस श्लोकका क्या अर्थ सिद्ध हुवा ?

प्र. गं. - मां = मुझे (श्रीकृष्णको) क्षेत्रज्ञं = जीव समझो, अर्थात् जीव और श्रीकृष्णका अभेद

१* परंब्रह्म परंधाम। पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं, आदिदेवमजं विभुं। आहुस्त्वाम ऋषयस्सर्वे।
देवर्षिनारद तथा असितो देवलोव्यास। स्वयंचैव ब्रवीषिमें सर्वमेतद्वतं मन्ये यन्मां वदसिकेशव।

सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि'' इस श्लोकके उत्तर भागमें रहे श्लोक कहकर उनके अर्थको भी कहिये।

प्र. गं. - ''क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।
तत्क्षेत्रं यच्चयादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासे न मे श्रृणु॥ (गीता १३-३)

मुझे (श्रीकृष्णको) सर्वक्षेत्रेषु - समस्त क्षेंत्रोंमें क्षेत्रज्ञ समझो। क्षेत्र, क्षेत्रज्ञका ज्ञान, मुझे सम्मत है। क्षेत्र, क्षेत्रज्ञका ज्ञान मुझे सम्मत है। अत: (१३-३) श्लोकमें उक्त क्षेत्र कौनसा है ?कैसा है ? वह क्षेत्र किसका विकार है ? यत: किससे यह क्षेत्र पैदा हुवा, वह क्षेत्रज्ञ कौन है ? उस क्षेत्रको, क्षेत्रज्ञको दोनोंको कहूँगा। सुनो, कहकर महाभूतान्यहंकारो इत्यादि पांच छ श्लोकोंसे विकारयुक्त महाभूतादि तत्त्व क्षेत्र है, उसके बाद ''अमानित्वं'' आदि ८,९,१०,११ श्लोंकोसे क्षेत्रज्ञ परमात्माके ज्ञानके लिये साधनीभूत अमानित्वं (अभिमानराहित्य) का कथन करके ज्ञेयं यत्तत्तप्रवक्ष्यामि यज्ञात्वामृतमश्नुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न सन्नासदुच्यते (गीता १३-१२) श्लोकोंसे क्षेत्रज्ञको परब्रह्म ही कहकर उसके गुणोंका निरूपण आगे किया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस गीता श्लोकसे ''इदं शरीरं'' ''कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' श्लोकोक्त क्षेत्र पदका अर्थ कहा गया।

प्र. गं. - ''क्षेत्रका अर्थ विकारसहित महाभूतादि समस्ततत्वं'' इस तरह जीव समझता है।

प्र. गं. - अल्पज्ञजीव समस्त तत्त्वोंको किस तरह जान सकता है ? नहीं जान सकता।

वा. व. - 'एतद्योवेत्ति तं प्राहु: क्षेत्रज्ञ इति तद्विद:'' इस श्लोकोक्त शरीर विकार सहित महाभूतादितत्त्व। इस तरहके शरीरको जाननेवाला ही क्षेत्रज्ञ कहलायेगा। क्षेत्रज्ञ जीव नहीं हो सकता।

प्र. गं. - उस तरहके क्षेत्रको जाननेवाला जीव नहीं होगा।

वा. व. - शास्त्रीजी ! जीव अपने शरीरके अंदर और बाहर के सबकुछ क्या जानता है ?

प्र. गं. - इस तरह पूछनेपर मैं क्या कह सकता हूँ ? यह सबोंके लिये अनुभव का विषय है। अगर जीव अपने शरीरके आन्तरिक जानता तो वैद्यके पास क्यों जाता ? रोगी क्यों बनता ? इससे यह स्पष्ट होता है कि बीमार होनेपर वह वैद्यके पास जाता है, वह शरीरकी समस्याओंको नहीं जानता।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' इस श्लोकगत क्षेत्रपद अर्थ विकार सहित समस्त तत्त्व होता है, श्रीकृष्णने उत्तर श्लोकमें कहा है, उन समस्त तत्त्वोंका ज्ञान जीव को नहीं। क्षेत्रपदसे 'हाथ पैर आदिसे युक्त'' शरीर ऐसा अर्थ करनेपर भी, उस शरीरका ज्ञान भी जीवको नहीं। इस तरहकी परिस्थितिमें विकार सहित महतत्त्वोंको, शरीरको जाननेवाला कौन होगा ?

प्र. गं. - सर्वज्ञ ब्रह्म ही क्षेत्रज्ञ होगा।

२७१ - सिविल सूट (३)

वा. व. - ''एतद्योवेत्ति तं प्राहु: क्षेत्रज्ञ इति तद्विद:'' इस श्लोकमें उक्त क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही होगा, जीव नहीं। ''अनादिमत्परं ब्रह्म'' श्लोकमें भी उस क्षेत्रज्ञको ही परब्रह्म कहा गया है। इसलिये 'क्षेत्रज्ञंचापि मा विद्धि'' श्लोकका अर्थ क्या होगा ?

प्र. गं. - मां - मुझे (श्रीकृष्णको) क्षेत्रज्ञं - परमात्मा, परब्रह्मसमझो यही अर्थ सिद्ध होगा ?

वा. व. - शरीररूप क्षेत्रको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ जीव किस तरह होगा ? जीव ही क्षेत्रज्ञ है, मुझे वही जीव समझो, अर्थ अपने क्यों कहा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो !

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यंभिधीयते।
एतद्योवेत्ति तं प्राहु: क्षेत्रज्ञ इति तद्विद:
क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत (गीता १३, १-२)

गीताश्लोकमें करचरणादि युक्त शरीर ही क्षेत्र है। इस शरीरको जाननेवाला जीव ही क्षेत्र है। इस जीवको ही मुझे समझो। श्रीकृष्ण कहते है मुझे ही जीव समझो, श्रीकृष्ण और जीवमें ऐक्य उक्त होनेके कारण, यह जीवब्रह्मके ऐक्यके विषयमें प्रमाण होता है। इसको ध्यानमें रखना होगा। कोर्टसे यह विज्ञापन है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' श्लोकमें उक्त क्षेत्रका वर्णन ''तत्क्षेत्रं यच्च याद्दक्च मद्विकारि....तत्समासेन मे श्रुणुं'' ऐसा कहा गया है। प्रथम श्लोक क्षेत्र और दूसरे क्षेत्रमें उक्त क्षेत्र एक नहीं होता ? तो दूसरे श्लोकमें कहा जानेवाला दूसराक्षेत्र कौनसा होगा ?

महाभूतान्यहंकार: बुद्धिरव्यक्तमेवच
इन्द्रियाणि दशैकं च पंचेंद्रियगोचरा:
इच्छाद्वेष: सुखं दु:खं संघातश्चेतनाधृति:
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदहृतम् (गी. १३-५-६)

इन श्लोकोंमें, पंचमहाभूतादि समस्त प्रपंच क्षेत्र कहा गया है। करचरणादि अवयवोंसे युक्त दिखाई देनेवाला यह देह क्षेत्र नहीं। इस तरहके पंच महाभूतादि समस्त जगद्रूप क्षेत्रको जीव नहीं जान सकता। अपने देहको न जाननेवाला रोगसे पीडित होकर डाक्टर के पास दौड जानेवाला यह अल्पजीव इस प्रपंचको किस तरह जान सकता है ?

यही नहीं, 'ज्ञेयं यत्तत्तप्रवक्ष्यामी यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते' वाक्यसे श्रीकृष्णने कहा है -ज्ञेय क्षेत्रज्ञका बयान करूँगा, इस तरह प्रतिज्ञा करके अनादिमत्परं ब्रह्म (गी. १३-१२) क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही है। यह श्रीकृष्णका कथन ही है। इस श्लोकका व्याख्यान करते वक्त - शंकराचार्यने भी लिखा है - क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही है। शंकराचार्यके व्याख्यानसे भी यह ज्ञात होता है कि क्षेत्रको जाननेवाला परमात्मा ही है। अत: क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि इस श्लोकका व्याख्यान यह हुवा - क्षेत्रज्ञ परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसा समझो।

यही अर्थ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्........ आहुस्त्वंऋषय: सर्वे देवर्षी नारदस्तथा आसितो देवलोव्यास: स्वयंच ब्रवीषी मे। सर्वमेतद्दतंमन्ये यन्मां वदसि केशव (गीता अ. १० श्लोक १२-१३) श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है, इस तरह नारद, ऋषि कहते है। अर्जुन कहते है श्रीकृष्णसे तुम भी कहते हो। मुझे विश्वास है कि यह सबकुछ सच है।

'श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है' ऐसा अर्थ करना युक्त है, क्षेत्र परमात्मा ही है जीव नहीं।

अद्वैतमतके अनुसार श्रीकृष्ण सगुण है; झूठ है, मायासे दीखता है, विशिष्ट है। अत: जीवके साथ ऐक्य नहीं हो सकता। इस विषयपर अदालत गौर करे; यह प्रार्थना है।

प्र. ए. गीता - २
''ममैवांशो जीवलोके'' वाक्यपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! जीव ही ब्रह्म है इस विषयमें आधारभूत वाक्य कहिये।

प्र. गं. - ''मामैवांशो जीवलोके जीवभूतस्सदातन:'' (गीता १५-७) इस श्लोकमें श्रीकृष्णने कहा है - 'जीव मेरा अंश है' जिससे जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह शंकर भगवत्पादका सूत्रभाष्य है और उसका व्याख्यान भामती ग्रंथ है।

वा. व. - १* इस वाक्यका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - परमात्मा निरंश है। (अखण्ड होनेके कारण अंश रहित है) जीव परमात्मा का मुख्यांश नहीं होगा। अंश इव अंश: अंश की तरह है। अंश जैसे अंशीके अधीन है, वैसे जीव परमात्मा का अधीन है।

वा. व. - अंशकी तरह कहनेसे क्या जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध होगा ?

प्र. गं. - अंश इव - अंशकी तरह कहनेसे जीव परमात्माका ऐक्य सिद्ध नहीं होगा।

१* जीव ईश्वरस्यांशो भवितुमर्हति यथाग्रे: विष्फुलिंग: अंश इव अंशते, नहि निरवयस्यास्य मुख्योऽश: संभवति। कस्मात् पुन:निरवयवत्वात्स एव न भवति। नाना व्यपदेशात् सोन्वेष्टव्य: स विजिज्ञासितव्य: (छां. ८-७-१) एतमेव विदित्वा मुनिर्भवतिं य आत्मनि तिष्ठन्तान्तरो यमयति (ब्र. सू. शां. भा. २-३-४३)

२७३ - सिविल सूट (३)

वा. व. - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह शंकरभगवत्पादका गीता भाष्य है।

वा. व. - इस वाक्यका अर्थ १* कहिये।

प्र. गं. - सूत्रभाष्यमें जैसे कहा गया है। वैसे ही जीव परमात्माका अंश सा है, अंश ही नहीं।

वादिसे पूछताछ

प्र. गं. - आचार्यजी ! ''मामैवांशो'' वाक्यका आपने क्या अर्थ किया है ?

वा. वि. - इस प्रकारका प्रयोग है।

प्र. व. - लोकमें प्रयोग हो तो कहियेगा।

वा. वि. - ''नागायुतबलो भीम:''भीम दस हजार हाथीके बलसे युक्त था ऐसा अर्थ किया गया है। दस हजार हाथियोंका बल अलग है। भीमका बल दूसरा है। हाथियोंका बल दस हजार हाथियोंमें होगा। भीमका बल भीममें ही रहेगा। दस हजार हाथियोंका बल ही -

ब्रह्मांश इव तत्तन्त्रतया नत्वंश इति तात्पर्याथ: (भा. ननु निरवयवस्य परमात्मा: कुतोऽवयव एकदेशोऽश: इति। सावयवत्वेच विनाश प्रसंगोऽवयि विभागात् नैषदोषोऽविद्याकृतोपाधि परिच्छिन्न एकदेशोंऽश इव (गी. भा. १५-७) भीममें नहीं आयेगा। अत: भीमका बल दस हजार हाथियोंके बलके समान है। इसी तरह अर्थ करते हैं। इस कालके लोगभी एक यन्त्रको देखकर, यह यन्त्र (Ten Horse Power) दस घोडोंके बलसे युक्त कहते हैं। घोडोंका बल यन्त्रमें नहीं आयेगा, इसलिये यही समझते हैं कि दस घोडोंमें जो बल होता है, वह बल इस यन्त्रमें हैं। उसी तरह जीव परमात्माका अंश है। एक भाग है ऐसा नहीं, जीव परमात्माके समान नहीं। वह अत्यल्प ही है, चैत्रके पास दस हजार रूपये हैं, देवदत्त के पास एक लाख रूपये हैं। देवदत्त के दस रूपये ही चैत्रके पास है यह अर्थ नहीं होगा। उसी तरह जीव परमात्माका अंश है। इसका अर्थ यह होता है, परमात्माके अंशके समान अत्यल्प है। जीव परमात्माका भाग है यह अर्थ नहीं होगा। अत: इस वाक्यसे जीवपरमात्माका ऐक्य सिद्ध नहीं होगा।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: (गी. १५-७) श्लोकमें जीवको श्रीकृष्णका अंश कहा है। अत: जीव ही परमात्मा है। इस विषयमें गीताका श्लोक प्रमाण है। कोर्ट इसपर विचार करे।

१* ननु निरवयस्य परमात्मान: कुतोऽवयव एकदेशोंऽश इति। सावयवत्वे च विनाश प्रसंगोऽवयी व विभागात् नैषदोष्यो विद्याकृतो पाधि परिच्छिन्न एकदेशोंऽश इवे (गी. भा. XV-7)

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! अद्वैतमतके अनुसार परमात्मा अखंड है, निरवयव है, निरंश है, इसलिये जीवको परमात्माका अंश है ऐसा कहना योग्य नहीं। अत: जीव परमात्माके अंशके सद्दश है। जिस तरह अंश अंशीके अधीन रहते हैं, वैसे जीव परमात्माके वशमें है। इस प्रकारके अर्थको अद्वैतियोंने ही ब्रह्मसूत्र भाष्यमें उपरोक्त अर्थ कहा है। नागायुत समोभीम: भीमका बल दस हजार हाथियोंके बलके जैसे ऐसा अर्थ किया गया है। भीमका बल दस हजार हाथियोंके समान है यही अर्थ होगा। यन्त्र शक्तिको Ten Horse Power कहेनेकी तरह है। श्रीमान देवदत्तके पास लाख रूपये है, चैत्रके पास १० हजार रूपये हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि देवदत्तके १० हजार रूपये ही चैत्रके पास है। जीव परमात्माका अंश सद्दश है।

कोर्टसे प्रार्थना है कि इसपर सूक्ष्मतासे विचार करें।

प्रतिवादि वि. गीता ३
''बहूनां जन्मनामन्ते'' वाक्यपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! ''बहूंना जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ:। (गीता ७-१९) गीताश्लोकका अर्थ क्या है ? इस श्लोकसे किस तत्त्वकी सिद्धि होती है ?

प्र. गं. - अनेको जन्मोंमें साधन करनेके बाद, परिपक्वज्ञानी

वासुदेव - वासुदेव सर्वमिति (वासुदेव सर्वात्मक है) इस ज्ञानको प्राप्त करता है। सर्वात्मक वासुदेवका अनुभव होता है। वासुदेवके सर्वात्मकत्व का साक्षात्कार होता है। इस तरह वासुदेव के साथ जीव जडात्मक प्रपंचक अभेद सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''नम: पुरस्तादथपृष्टस्तते। नमोस्तुते सर्वत: एव सर्वे। अनंतवीर्यामित विक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व:। (गीता ११-४०)

प्र. गं. - पूर्व दिशामें रहे तुम्हें नमस्कार। पीछे स्थित तुमको नमस्कार। ओ सर्व समस्त दिशाओंमें रहे तुमको नमस्कार। तुम सबमें व्याप्त हो, अत: ''सर्व'' शब्दसे वाच्य हो। परमात्मा सर्वत्र है। पूर्वमें, पश्चिममें, दक्षिणमें, उत्तरमें आगे पीछे सर्वत्र व्याप्त होनेसे सर्वत्र विद्यमान परमात्माको नमस्कार।

वा. व. - सर्व शब्दका क्या अर्थ हुवा ?

प्र. गं. - तुम सर्वत्र व्याप्त होनेसे सर्व हो, कहनेके कारण सर्वव्याप्त ऐसा अर्थ हुवा।

वा. व. - इस ग्रंथमें सर्व पदका क्या अर्थ किया गया है ?

२७५ - सिविल सूट (३)

प्र. गं. - 'सर्वाप्ति साधन' अर्थ किया गया है।

वा. व. - वासुदेव सर्वमिति श्लोकगत सर्वपदका सर्वव्याप्त अथवा सर्वाप्ति साधन ऐसा अर्थ किया जा सकता है न ?

प्र. गं. - सर्वं = सर्वाप्ति साधन ऐसा अर्थ कर सकते हैं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. गं. - यह शंकर भगवत्पादका छांदोग्यभाष्य है और भाष्यकी टीका आनंदगिरी है।

वा. व. - इन वाक्योंका तात्पर्य क्या है ? १*

प्र. गं. - सर्वकाम: सर्वरस: (छां. ३-१४-४) इस मन्त्रके ''सर्वकाम'' पदका ''सर्वे कामा: यस्य'' बहुव्रीहि समास करके, कामसे परमात्माका भेद कहना चाहिये अथवा सर्वश्चासौकामश्च सर्वकाम: कर्मधारय समासकर सर्वकामोंसे परमात्माका अभेद कहना चाहिये, इस तरहके संशय आनेपर ''भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ'' (गीता ७-१-१) गीताश्लोक, परमात्माका कामरूपत्वका बयान करता है। इसके अनुसार ''सर्वश्चासौकामश्च'' कर्म धारय समास करके कामोंसे परमात्माका अभेद कहना चाहिये, इस प्रकार पूर्वपक्षके उत्तरमें शंकराचार्य कहते हैं - काम परतंत्र है, जन्य है। अत: काम परमात्माका स्वरूप हो तो, परमात्माका पारतन्त्र्यको जन्यत्व स्वीकार करना पडेगा। ''सर्वेकामा: यस्य'' बहुव्रीहि समास करके परमात्माका और कामका भेद कहना चाहिये। ऐक्य न कहे। काम और परमात्माके अभेद प्रतिपादक की भाँति प्रतीत होनेवाले वाक्यके लिये ''कामोऽस्मि'' इस गीतावाक्यके लिये, काम ईश्वरके
वशमें है, ईश्वराधीन है, ऐसा अर्थ कहे। परमात्माको कामस्वरूप न कहे।

वा. व. - शास्त्रीजी ! शंकराचार्यकी उक्ति के अनुसार, कामको परमात्माका स्वरूप कहेंगे तो, परमात्माका स्वातंत्र्य और अनादित्व नहीं रहेंगे न ? इसी तरह ''वासुदेवस्सर्वमिति'' श्लोकके लिये, वासुदेव ही समस्त पदार्थोंका स्वरूप है इस तरह कहनेकी नौबत आयी। कुत्ते, गधे आदि जीव, मूत्र पुरीषादिजडस्वरूप परमात्मा ही होगा तो क्या परमात्मामें बहुतसे दोष नहीं आयेंगे ?

प्र. गं. - दोष आयेंगे।

वा.व. - जिस अर्थ करनेसे दोषोंकी आपत्ति नहीं होगी वैसे ही अर्थ ''वासुदेवस्सर्वमिति'' श्लोकका अर्थ करना चाहिये या नहीं ?

प्र. गं. - इसमें पूछनेकी क्या बात है ? शंकरभगवत्पादने जिस प्रकार ''कामोऽस्मि'' श्लोकका

१* सर्वकाम:। सर्वेकामा: दोषरहिता अस्येति सर्वकाम:। धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि इति स्मृते:। ननुकामोऽस्मिती वचनात् इहबहुवीहि न संभवति सर्वकाम इति न कामस्य कर्तव्यात्वात् तच्छब्दादित्वाततपदार्थ प्रसंगाच्च देवस्य। तस्माद्यथेह सर्वकाम इति बहुव्रीहिस्तथा कामोऽस्मिती स्मृत्यर्थोपि वाच्य:। (छां. शां. भा. ३-४१-२)

उदाहृता स्मृतिमाश्रित्य उक्तमाक्षिपति नन्विति कामसामानाधिकरण्ये बाधकोपलंभात् बहुव्रीहिरेवेति परिहरति न कामस्येति। तस्य कार्यत्वात्तदैक्ये ब्रह्मणोऽनादित्वं बाध्यते चेतन शेषत्वाच्य कामस्य तदैक्ये ब्रह्मण: स्वातन्त्र्य हीयते। तथाच कर्मधारया संभवात् बहुव्रीहिरेवेत्यर्थ:। कथं तर्हि कामोऽस्मिति तादात्म्यस्मृतिरित्याशंक्याह यस्मादिति। कामेश्वरयो: सामानाधिकरण्यासंभवात् प्रकृत श्रुतौ बहुव्रीहि यथेष्ठस्तथास्मृतावपि ब्रह्म पारतन्त्र्यमात्रं कामस्यविवक्षितम्। श्रुत्यनुसारेण स्मृतेर्नेतव्यात्वात् इत्यर्थ: (आनंदगिरी)

अर्थ किया है। उसी तरहसे वासुदेव: सर्व: वासुदेव सर्वस्वामि है, सर्वनियामक है, ऐसा अर्थ करना चाहिये।

वा. व. - नियम्य नियामक भावसे भेदका ज्ञान होगा या अभेदका ?

प्र. गं. - भेदका ज्ञान होगा।

वा. व. - वासुदेव सर्वनियामक होगा तो, नियम्य नियामक भावसे भेदही सिद्ध होगा न ?

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता, पर -

वा. व. - बार बार ''पर'' क्यों कहते हैं ?

प्र. गं. - नियम्य नियामक भाव सत्य हो तो, उससे भेद की सिद्धि होगी। नियम्यनियामक भाव असत्य होनेसे, उससे सिद्ध होनेवाला भेदभी असत्य होगा।

प्र. गं. - नियम्य नियामक भाव व्यावहारिक सत्य है, परमार्थ सत्य नहीं।

वा. व. - गीताको प्रमाण मानते हैं न ?

प्र. गं. - गीता प्रमाण है, इसमें क्या शक है ?

वा. व. - सत्यभूत पदार्थके विषयमें ज्ञान पैदा करनेवाला ही प्रमाण कहलाता है। अत: गीतोक्त नियम्य नियामक भाव सत्य होना चाहिये। आपने नियम्य नियामक भावको झूठ क्यों कहा ?

प्र. गं. - नियम्यनियामक भाव व्यावहारिक सत्य है, पारमार्थिक सत्य नहीं। इस व्यावहारिक सत्य बन नियम्यनियामक भावसे व्यावहारिक भेद सिद्ध होता है। पारमार्थिक भेद सिद्ध नहीं होता।

कोर्ट - शास्त्रीजी ! व्यावहारिक सत्यका खण्डन अबतक आपने ही किया है, फिर व्यावहारिक सत्य क्यों कहते हैं ? दूसरा कोई समाधान होगा तो प्रस्तुत कीजिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) मायलार्ड ! 'वासुदेवस्सर्वमिति' वासुदेव ही सर्वरूप है (जीव जडात्मक प्रपंचरूप है) इस तरह जाननेवाला दुर्लभ है ऐसा कहा गया है। इसी कारणसे वासुदेव परमात्माके साथ जीव जडात्मक प्रपंचका अभेद सिद्ध होता है। इस विषयपर कोर्ट ध्यान दे यह प्रार्थना है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ''सर्वकाम: सर्वरस:'' इस छांदोग्यश्रुति के व्याख्यानमें शंकराचार्यने अपने व्याख्यानमें लिखा है। ''कामोऽस्मि'' पदका कामस्वामी (कामका स्वामी) अत: ''वासुदेव सर्वमिति'' श्लोकस्थ सर्वपदका सर्वस्वामी यही अर्थ करना होगा। प्रतिवादिके विचारके दौरान यह कहा गया है। सर्व शब्दसे सर्वस्वामी, सर्व नियामक, सर्वाप्तसाधन अर्थ ही योग्य है। अथवा गीतामें उक्त अर्थके अनुसार ''सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्व:'' अर्थात् समस्त पदार्थोंमें

व्याप्त होनेके कारण सर्व शब्दसे वाच्य है। अत: सर्वरूप ऐसा अर्थ न करें। अत एव यह वाक्य ज्ञातृज्ञेय भावसे, नियम्य नियामक भावसे भेदका प्रतिपादक है, अभेदप्रतिपादक नहीं। इस कथनको नोट करें यह प्रार्थना है।

प्र. ए. गीता ४
''विद्याविनयसंपन्ने'' वाक्यपर विचार

प्र. व. - शास्त्रीजी ! जीवेश्वरमें अभेदको कहनेवाला कोई गीताका वाक्य होगा तो कहिये।

प्र. गं. - है। विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनिचैवश्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन: (गी. ५-८)

इस गीतावाक्यमें कहा गया है - विद्याविनयसे संपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और कुत्तेका मांस खानेवाले को पण्डित समान रूपमें देखते हैं। सबोंमे ऐक्य कहकर जीवब्रह्ममें भी ऐक्यका बोध करता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस श्लोकमें अभेद बोधक पद कौनसा है ?

प्र. गं. - ''समदर्शिन:'' पद

वा. व. - इस पदका विग्रह करके अर्थ कहिये।

प्र. गं. - ''समं पश्यन्ति'' इति समदर्शिन: समानरूपमें देखनेवाले यह अर्थ है।

वा. व. - ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिचैव श्वपाके पदोंका अर्थ क्या है ? शास्त्रीजी ! पूर्ण श्लोकका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - ब्राह्मणादिमें साम्य देखनेवाले पण्डित है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! इस श्लोकमें आधार आधेयभाव, ज्ञातृ ज्ञेयभाव उक्त होनेसे भेद ही सिद्ध होता है, अभेदबोधक का मौका ही नहीं।

प्र. गं. - इस गीता श्लोकमें उक्त आधाराधेय भाव, ज्ञातृज्ञेय भाव परमार्थसत्यके रूपमें कहा होता तो जीवपरमात्मामें भेद की सिद्धि हो सकती थी। मिथ्याभूत आधाराधेयभाव, ज्ञातृज्ञेयभावसे भेद सिद्ध नहीं होगा।

वा. व. - गीता ग्रंथके प्रमाण मानते हैं।

प्र. गं. - गीताग्रंथ प्रमाण ही है इसमें क्या संशय है।

वा. व. - प्रमाणभूत गीतामें कहा हुवा ज्ञातृज्ञेयभाव असत्य होगा तो गीता भी अप्रमाण होगी।

प्र. गं. - हमारे मतमें ''न शास्ता न शास्त्रं न वेदा न यज्ञा: वेदा अवेदा'' इस तरह कहा गया है, ब्रह्मातिरिक्त समस्त मिथ्या ही है। ब्रह्मातिरिक्त आधाराधेय भाव, ज्ञातृज्ञेयभाव, गीता, ये सभी

मिथ्या है। इन सबोंके मिथ्या होनेसे गीताका प्रामाण्य कहाँ होगा ? गीताभी अप्रमाण ही है।
वा. व. - गीता अप्रमाण है तो, अभेद के विषयमें, उसको प्रमाणके रूपमें क्यों उद्धरण किया ?
प्र. गं. - 'तूष्णीं शिलावत् स्थिता:' पत्थर की भाँति हम मौनमूक बनकर रहते, इस तरह यह शंकराचार्यके वाक्यका अनुसरण होगा।

वादिसे पूछताछ

प्र. व. - आचार्यजी ! आप इस श्लोकका अर्थ किस तरह करते हैं ?
वा. वि. - विद्यादि गुणोंसे युक्त ब्राह्मणमें, गोमें, हाथीमें, कुत्तोमें, चण्डालमें ब्रह्म समान है। इस तरह देखनेवाले ही पण्डित हैं।
प्र. व. - आचार्यजी ! ओहो ! आपका पण्डित्य विलक्षण है। ''समदर्शिन:'' इस पदका अर्थ - परमात्माको समानरूपमें देखना, यह अर्थ किस कोशसे लाया गया है। क्या आपने इस अर्थकी कल्पना की है, अथवा प्राचीन लोगोंने इस तरह अर्थ किया है ?
वा. वि. - शर्माजी ! यह हमारी कल्पना नहीं। भगवान् कृष्णने जो गीताके उपदेशक है, ऐसा अर्थ किया है। समदर्शिन: वाक्यस्थ ''सम'' पदका अर्थ, हमसे उक्त अर्थ ही है। ''इहैव नैर्जित:स्सर्ग'' इस उत्तर श्लोकमें ही यह व्याख्यान है।
प्र. व. - आचार्यजी ! ''इहैव तैर्जितस्सर्ग: एषां साम्ये स्थितं मन:' निर्दोषं ही समंब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि तेस्थिता: (गीता ५-१९) इस श्लोकके तात्पर्यको कहिये।
वा. वि. - जिनका मन साम्यमें है, ब्राह्मणादिमें समानवस्तुको देखते हैं, इसी जन्ममें अपने जन्मपर विजय प्राप्त करते हैं। (पुन: इस संसारमें नहीं आते, मोक्षे प्राप्त करते हैं। पर ''तमेवं विद्वानमृत इह भवति'' यह श्रुति कहती है - ब्रह्म ज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्त करते है। आपके कथनके अनुसार समवस्तुके ज्ञानसे मोक्ष कैसे प्राप्त करते हैं। इस शंकाके उत्तरमें ''निर्दोषं हि समं ब्रह्म'' वाक्य प्रवृत्त हुवा है। इसका अर्थ यह है। निर्दोषं = दोषरहित ब्रह्म ही समशब्दवाच्य है। दोषरहित ब्रह्मको सम कहते हैं। सम शब्द पर्यायवाचक ब्रह्म शब्द है। इसीलिये समज्ञानी ब्रह्मणि स्थिता - ब्रह्मज्ञानी ही होते हैं, अतएव समज्ञानियोंको मोक्ष की प्राप्ति होती है। समज्ञानियोंको मोक्ष मिलता, अथवा ब्रह्मज्ञानियोंको मोक्ष मिलता है, इन दोनों वाक्योंका एक ही अर्थ है। इसलिये श्रुति विरोध नहीं होता।
प्र. व. - इन श्लोकोंसे क्या सिद्ध होता है ?
वा. वि. - आधाराधेयभावसे, ज्ञातृज्ञेयभावसे परमात्मासे भेद सिद्ध होता है।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! ''विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिचैवश्वपाके च

पण्डितास्समदर्शिन:'' श्लोकमें निर्दोष ब्रह्मही समशब्द वाच्य है, ऐसा कहा गया है। सम शब्दका उपयोग करनेवालोंने उत्तर श्लोकमें उस पदका व्याख्यान किया है। अवश्यमेव इस अर्थका स्वीकार करना चाहिये। निर्दोष ब्रह्म ही सम है, यही स्वीकार्य है।

निम्नलिखित कारणोंसे इस अर्थको मानना पडेगा। ''ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:'' इस गीता श्लोकका यह तात्पर्य है - ब्राह्मणादिमें सम शब्द बोध्य, निर्दोष परब्रह्मको जो देखते हैं वे पण्डित होते हैं। इस तरह जीवपरमात्मामें, आधाराधेय भावसे ज्ञातृज्ञेय भावसे भेद ही ज्ञात होता है। इस श्लोकमें अभेद ज्ञापक पद ही नहीं। अत: यह श्लोक अभेद के विषयमें प्रमाण नहीं। इस विषयपर अदालत विचार करें।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - महाप्रभो ! इस गीता श्लोकसे यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण, गाय, हाथी आदि आधार है, परमात्मा आधेय है, जीव ज्ञाता है, परमात्मा ज्ञेय है पर ये संबंध सत्य होनेपर ही भेद सिद्ध होता है। किन्तु ज्ञातृज्ञेय भाव मिथ्या होनेसे, सच्चे भेदकी सिद्धि नहीं होगी। गीतासे अभेद प्रमाणित न होनेपरभी अभेद स्वप्रकाश ब्रह्मस्वरूप होनेसे, ब्रह्म की तरह स्वत: सिद्ध है। इसलिये अभेदके विषयमें प्रमाण अनावश्यक हैं। इस विषयपर अदालत गौर करे।

वादि वकीलकी दलील

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! एच. एच. शर्माने अबतक जिस विषयका बयान किया उससे भी नूतन विषयको प्रस्तुत किया है। इसके विरोधमें कहनेकी अनुमति दें।

कोर्ट - शर्मासे कथित नये विषयका मात्र उत्तर दें अधिक न कहें।

वा. व. - महाप्रभो ! वैसे ही हो। ज्ञातृज्ञेयभाव आदि प्रपंच मिथ्या नहीं सत्य है, इस तरह पूर्वमें निर्णीत हो चुका है। आधाराधेय भावरूप प्रपंचको मिथ्या कहना अच्छा नहीं। युक्तिसंगत भी नहीं। अत: सत्यभूत ज्ञातृज्ञेय भावसे सत्य भेदसिद्ध होता है। ''ऐक्य स्वप्रकाश ब्रह्म स्वरूप होनेसे स्वत: सिद्ध होता है। यह कहना भी तर्करहित है, असंगत है। क्योंकि अद्वैतमतमें स्वप्रकाश अर्थ है। इतरावेद्य (दूसरोंको) ज्ञात होनेके अयोग्य है। वैसे ही ऐक्यको ब्रह्मस्वरूप कहनेसे अन्योंसे अवेद्य ही होगा। अज्ञेय ब्रह्मको समझानेके लिये प्रयत्न करके मौनमूकस्थितिमें रहें।

''तूष्णीं बभूव चित्रं वटतरोर्मूले शिष्या वृद्धा: गुरूर्युवा उपदेशे गुरो मौनं शिष्या प्रच्छिन्न संशया:'' - यों प्राचीन अद्वैतशिखामणी मौन रहे। उसी तरह हमारे प्रतिवादि शास्त्रीजी, अद्वैत अज्ञेय ब्रह्मस्वरूपभूत ऐक्यको सिद्ध करनेका प्रयत्न न करके चुप्पी साधे होते, हमें परिश्रम नहीं करना पडेगा। कोर्टका काम भी कम हो जाता। ऐक्यको इतरावेद्य कहकर (प्रमाणोंसे नहीं जाता) कहकर, ऐक्य की सिद्धि प्रमाणोंसे की जा सकती है कहना विरूद्धोक्ति होगी, यह कथन ही ''वचस्येकं मनस्येकं'' का द्दष्टान्त बनेगा। इसपर अदालत ध्यान दे।

वादिकी पूछताछ

वा. व. - आचार्यजी ! जीवेश्वर के भेदविषयमें प्रमाणभूत गीता के श्लोकोंकों कहिये।

वा. वि. - गीताके सातसौ (७००) श्लोक साक्षात् या परंपरासे भेदबोधक ही हैं, कितने कहें ?

वा. व. - उदाहरणके लिये ५-६ श्लोंकोंको कहिये।

वा. वि. - ईश्वरस्सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयत् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गी. १८-१६)

इस श्लोकमें कहा गया है कि ईश्वर: - जगतके नियमन करनेके स्वभावयुक्त नारायण मायया - अपनी इच्छासे अथवा - माया, वयुनं, ज्ञानं, निघुंदमें उक्त रीतिसे ज्ञानसे यन्त्रारूढ - संसारचक्रमें भ्रमण करनेवाले समस्त प्राणियोंसे, कर्म कराते हुवे, समस्त प्राणियोंके हृदयप्रदेशमें है। जीवपरमात्मामें नियम्यनियामक भावसे यह श्लोक भेदबोधक है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''स्मृतेश्च'' इस १-२-६ ब्रह्मसूत्रका अर्थ शंकराचार्यने क्या लिखा है ?

प्र. गं. - 'स्मृतेश्च' शारीरपरमात्मनोर्भेदं दर्शयति'' ईश्वर: स्सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया (१८-१६) इत्यादि (ब्र.सू.भा. १-२-६) सूत्रके आधारपर यह वाक्य ईश्वर, सर्वभूतानां स्मृति जीवपरमात्माके भेदका प्रतिपादन करते है।

वा. व. - ''इत्याद्या: इस पदस्थित'' आदि पदसे किन वाक्योंका उदाहरण दिया है ?

प्र. गं. - 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत' आदि श्लोंकोका उदाहरण दिया है।

वा. व. - 'ईश्वर: सर्वभूतानां' 'तमेव शरणं गच्छं' आदि गीताश्लोक जीव परमात्माके भेद प्रतिपादन करते हैं। यह किसका कथन हुवा ?

प्र. व. - शंकराचार्य, सूत्रकार भगवान् वेदव्यास का कथन हुवा।

वा. व. - श्रीकृष्णको, वेदव्यासको, शंकराचार्यको सम्मत जीवब्रह्मके भेदपर उनपर विश्वास करनेवाले लोग विश्वास करें न ?

प्र. गं. - श्रीकृष्ण हो, वेदव्यास हो या शंकराचार्य हो, इनको पारमार्थिक भेद कहनेमें तात्पर्य नहीं। ये सभी व्यावहारिक भेदका ही प्रतिपादन करते हैं।

कोर्ट - शास्त्रीजी ! प्रमाण आपने विषयोंको पारमार्थिक के रूपमें बोध कराते हैं। व्यावहारिक रूपमें ज्ञान नहीं कराते। इस तरह बौद्धोंसे आप ही कह चुके हैं। फिर प्रमाण सिद्ध भेदको व्यावहारिक भेद कहना विरूद्धोक्ति है। इसका निर्णय भी हो गया है। दूसरा कोई समाधान होगा तो कहिये।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - आचार्यजी ! जीव ब्रह्मके भेद प्रतिपादन करनेवाले अन्य श्लोकोंको कहकर उन श्लोकोंका तात्पर्य कहिये।

वा. वि. -

द्वविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवच।
क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १५/१६ ॥
उत्तम: पुरूषस्तवन्य: परमात्मेत्युदाहृत:।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१५/१७॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहम क्षरादपिचोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः ॥१५-१८॥
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १५-१९॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्धवा बुद्धिमान्स्यातृतकृत्यश्च भारत ॥ १५-२०॥

इस श्लोकमें 'क्षरभूत और अक्षरभूत' इस प्रकार दो पुरूषोंका कथन है। चतुर्मुख ब्रह्मादि समस्त जीवक्षर हैं। (देहका नाश जिनका होता है) वे क्षर हैं। अक्षर - देहनाशरहित महालक्ष्मी अक्षरपुरूष कहलाती है। क्षराक्षर पुरूषोंसे जो अत्यंत भिन्न है, वही परमात्मा है। वही उत्तम पुरूष है। इस तरह श्रुतिस्मृतियोंमें कहा गया है। समस्त पदार्थोंमें रहकर, उन पदार्थोंका धारण करता है, उनका रक्षण करता है। वही ईश्वर - वह विलक्षण शक्तियुक्त नारायण है। यह प्रलयकालमें लोकका नाश करता है, पर स्वयं नष्ट नहीं होता। क्षरपुरूषों से भी श्रेष्ठ होनेसे अक्षरपुरूषसे उत्तम होनेसे पुराण, स्मृतियोंमें, वेदोंमें पुरूषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है। क्षराक्षर पुरूषोंसे उत्तम ही पुरूषोत्तम है। जिसे भी नसीब नहीं होता छाछ वह अगर क्षीरसागर भट्ट कहा जाये, वह संकेत व्यर्थ होगा। परमात्माका पुरूषोत्तमत्व मिथ्या नहीं। पुरूषोसे उत्तम है, अतः सबकुछ जानता है। समस्त पदार्थोंको सत्य मानता है, सत्य समझता है। क्योंकि वह सर्वज्ञ है। जैसे बि. ए. उत्तीर्ण संपत्ति कमाया हुवा, उस उपाधिसे फल प्राप्त कर चुका हो, वह बि. ए. पास व्यक्ति कहलाता है। जो समस्त वेदाध्ययन कर चुका हो, वेदप्रतिपाद्य परमात्मासे भिन्न समस्तोंको जानता है, अगर परमात्माको न जानता हो, तो वह अकृतार्थ होता है। परमात्मासे भिन्न वस्तुका ज्ञान सार्थक होगा। ''येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' छां. ६-३ वाक्यका अर्थ लिखते समय शंकराचार्यने कहा है। उनके अभिप्रायके अनुसार 'सर्ववित् समस्त ज्ञानके फलको प्राप्त करता है, मैं पिताजीमें रहकर रक्षण करता हूँ। इसीलिये वह मेरी पूजा पितृके रूपमें करता है। माताजीमें रहकर पोषण करता हूँ, अतएव मातृ शब्दसे पूजित होता हूँ। इसी तरह गुरूभावसे, राजभावसे मेरी पूजा करता है। यही परम रहस्य तत्त्व है। तुम पापरहित हो, इसलिये मैंने इसका उपदेश दिया है। इस तत्त्वको जो अच्छी तरहसे समझता है। वह बुद्धिमान् अपरोक्षज्ञानी होकर कृतकृत्य होता है। (मुक्त होता है)

इस तरह क्षराक्षर जीवोंसे परमात्माके भेदका प्रतिपादन किया है। यह भेदज्ञान ही मोक्षसाधन है। ये गीतावाक्य जीवपरमात्माके भेदके विषयमें प्रमाण हैं।

प्र. व. - शास्त्रीजी ! क्या आचार्यजीसे कथित अर्थ सही है ?

प्र. गं. - शंकराचार्यने ''भूतानि समस्त विकार जातानि'' अर्थ किया है। विकृत पदार्थ ही भूत हैं ''क्षरः सर्वाणि भूतानि'' वाक्यस्थ भूत शब्दका ब्रह्मादि चेतन ऐसा करना अयुक्त है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! ''ईश्वरः सर्वभूतानां'' वाक्यगत भूत शब्दका अर्थ शंकराचार्यने क्या किया है ?

वा.व. - २-३-४४ के ब्रह्मसुत्रके भाष्य में भूतशब्दका क्या अर्थ किया गया है।

प्र. गं. - 'ईश्वर = ईशनशीलो नारायण: सर्वभूतानां - सर्वप्राणिनां' भूत शब्दका जीव अर्थ किया है।

वा. वि. - 'भूतशब्देन जीवदानानि स्थावर जंगमानि निर्दिशति अहिंस्यन् सर्वभूतान्यदात्र तीर्थेम्य: इति प्रयोगात्' वाक्यसे भूतशब्द जीव वाचक कहा गया है।

वा. व. - शास्त्रीजी ! भूतशब्द जीवबोधक है यह विषय शंकराचार्यको सम्मत है या नहीं ?

प्र. गं. - जीव भूतशब्दवाच्य है, यह शंकराचार्यको सम्मत है।

वा. व. - गीतामें अन्य जगहोंमें भी भूत शब्द जीवका बोध करता है। यहाँ भूत शब्दसे जीव यही अर्थ ग्रहण करनेसे किस तरह अयुक्त होगा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - बिभर्ति शब्दसे धार्यधारक भाव, जानाति ज्ञातृज्ञेयभाव स्पष्ट होता है। इससे जीवब्रह्मभेद सिद्ध होता है।

प्र. गं. - भेद सिद्ध होता है पर वह भेद मिथ्या है।

वा. व. - आचार्यजी ! 'ईश्वरोऽहमहं भोगी' (गी. १६/१४) गीताश्लोकमें क्या कहा गया है ?

वा. वि. - जीव परमात्माके भेदका प्रतिपादन किया गया है।

प्र. गं. - आचार्यजी ! क्या आपके मनका स्वास्थ्य है ?

वा. वि. - मनका स्वास्थ्य है। इस तरहके प्रश्नका क्या कारण है ?

प्र. व. - ईश्वरोऽहं = मैं ईश्वर हूँ। इस तरह स्पष्टरूपमें जीवेश्वरका अभेद कहा गया। आप कहते हैं इस श्लोकमें भेद कहा गया है। इसलिये मैंने मन स्वास्थ्यके विषयमें पूछा।

वा. वि. - शर्माजी ! पूर्वोत्तर वाक्योंपर विचार करनेपर इस वाक्यमें भेद ही कहा गया है यह स्पष्ट होता है।

प्र. व. - पूर्वोत्तर वाक्य कौनसे हैं ? उन वाक्योंसे भेदका बोध किस तरह होता है ?

वा. वि. - ''द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुरएवच दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरीमता। दैवो विस्तरश: प्रोक्त: आसुरीं मे पार्थ मे श्रृणु'' सृष्टि दो प्रकारकी है - एक दैवी सृष्टि, दूसरी आसुरी सृष्टि। दैवी संपत्ति मोक्षरूप फल देनेवाली आसुरी संपत्ति बंधक है। वह बंधन अत्यंत घोर है। अर्थात् तम: प्राप्ति होगी। दैवी संपत्ति का बयान कर चुका हूँ, आसुरी संपत्तिका वर्णन करता हूँ। सुनो ! इस तरह आरंभ करके 'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्'' जगतको असत्य कहनेवाले आसुरी स्वभाव के होते हैं। और ''ईश्वरोऽहं'' मैं ईश्वर हूँ, स्वयं ईश्वर समझनेवाला आसुरी स्वभावका होता है। इस प्रकार कहकर आसुरीं योनिमापन्ना: मूढा: जन्मनि जन्मनि मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमांगतिं। (१६-२०) मुझे (श्रीकृष्णको) प्राप्त न करके, कभीभी नहीं पावोंगे, अधोगति प्राप्त करोंगे। ईश्वराभेद ज्ञानी की निन्दा की गयी, इस तरह जीवेश्वरभेद सिद्ध होता है।

प्र. व. - आचार्यजी ! 'ईश्वरोऽहं' वाक्यमें स्थित ईश्वरपदका अर्थ परमात्मा ऐसा क्यों करें ? मैं समर्थ हूँ ऐसा अर्थ क्यों न करें ?

२८३ - सिविल सूट (३)

वा. व. - 'ईश्वर: सर्वभूतानां' उत्तर वाक्यमें रहे ईश्वर पदका अर्थ - ईशनशीलो नारायण: यों अर्थ शंकराचार्यने किया है। यो लोक त्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यव ईश्वर: - पहले भी ईश्वर का अर्थ ईशनशीलो नारायण: किया गया है। शंकराचार्यने इसी प्रकार अर्थ किया है। ''अत एव ईश्वरोऽहं'' वाक्यका मैं ही ईश्वर हूँ। ऐसा जाननेवाला ही दैत्य होता है। यही सही अर्थ है।

प्र. व. - आचार्यजी ! स्वयंको ईश्वर समझनेवाला भले ही दैत्य हो अद्वैतियोंके लिये क्या बाधक है ? अद्वैती तो मैं ही ईश्वर हूँ ऐसा नहीं कहते न ?

वा. व. -४-१-३ के ब्रह्मसूत्र का व्याख्यान करते समय शंकराचार्यने लिखा है - शिष्यने पूछा, अज्ञान किसमें हैं ? प्रश्न करनेवाले तुम्हारे भीतर अज्ञान है ? मैं ईश्वर हूँ मुझमें कैसा अज्ञान ? इस सवालपर शंकराचार्य कहते है। ''नास्ति कस्यचिदबोध:'' अगर तुमने अपने आपको ईश्वर समझा है तो, तुम्हारे अंदर अज्ञ ान होगा ही नहीं। ईश्वरोहं यह ज्ञान ही ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान है। इससे यह सिद्ध होता है कि अद्वैती ईश्वरोऽहं कहते हैं। इसीलिये श्रीकृष्णने कहा है कि अपनेसे ही ईश्वर समझनेवाले दैत्य है, उनको अधोगति प्राप्त होती है। इस तरह जीवेश्वरमें अभेद कहनेवाले अद्वैतियोंकी निन्दा करते है और भेदका ही बोधन करता है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! ईश्वरस्सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत' इत्यादि गीताश्लोक नियम्य नियामकभावसे जीवपरमात्माके भेदका प्रबोधन करते हैं। 'स्मृतेश्च' सूत्रमें सूत्रकार भगवान् व्यासने कहा है, इस प्रकार शंकराचार्यने कहा है। सूत्रकार भगवान् व्यासको शंकराचार्यको, श्रीकृष्णको सम्मत है यह ज्ञात होता है। इसलिये जीवपरमात्माके भेदके विषयमें गीताके १६,१७,१८,१९,२० श्लोक प्रमाण हैं। विचार के दौरान यह कहा गया है। कि चतुर्मुखादि क्षरचेतनोंसे, अक्षरनामक लक्ष्मीसे भी भगवान् उत्तम है। यहाँ भेद स्पष्टरूपमें प्रतिपादित है। प्रवेश्य प्रवेशक रक्ष्य रक्षक भावसे, ज्ञातृज्ञेय भावसे, जीवपरमात्मामे रहे भेदका ही बोध करते हैं। ''ईश्वरोऽहमहं भोगी'' श्लोकमें कहा गया है कि, जीव और ईश्वरमें अभेद कहनेवाले दैत्य हैं, इन दैत्योंको ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती पर अधोगति होती है। इस प्रकार अभेद ज्ञानियोंकी निन्दा की गयी है। इस प्रकार गीताके वाक्य जीवेश्वरके भेदका बोध करते है।

इस विषयपर कोर्ट ध्यान दे यही प्रार्थना है।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। इत्यादि श्लोकोंसे नियम्य नियामक भावसे जीवपरमात्माके भेदका बोध होता

है ।'ईश्वरस्सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत' इत्यादि श्लोकोंमें भेदका ही कथन किया गया है। सूत्रकारने ''स्मृतेश्च सूत्रमें कहा है; शंकराचार्यने वेदव्यासकी दुहाई देते वैसे ही स्वीकार कर लिया है। सूत्रकारका, श्रीकृष्णका, शंकराचार्यका भेदकथन व्यावहारिक है अर्थात् मिथ्या है, पारमार्थिक नहीं।

''क्षरस्सर्वाणि भूतानि'' भूत शब्द जडवाचक होनेके कारण ईश्वर भूत भिन्न है कहनेसे जीवभेद सिद्ध नहीं होता । प्रवेश्य प्रवेशक भाव कहनेवाली गीता '' तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'' वाक्यके अनुसार कल्पित प्रवेशका वर्णन करता है । असत्यभूत प्रवेशसे सत्यभेद सिद्ध नहीं होता । रक्ष्य रक्षक भाव सभी मिथ्या है। पारमार्थिक भेद नहीं अत: ये वाक्य पारमार्थिक भेदके विषयमें प्रमाण नहीं।

''ईश्वरोऽहं'' पदस्थ ईश्वर शब्दका समर्थ ऐसा अर्थ हो सकता है। ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' अद्वैतियोंसे उक्त अभेदका निषेध किया है, इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। 'मैं ही ईश्वर हूँ' ऐसे अद्वैति समझते हैं। इस विषयमें भी आधार नहीं। अद्वैतियोंकी निन्दा करके द्वैतका (भेदका) बोध करता है। यह युक्ति संगत नहीं। कोइ इसपर गौरसे विचार करे यही प्रार्थना है।

वादि वकीलका पुनश्च आर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभो ! श्रीकृष्णने ''ईश्वरस्सर्वभूतानां'' गीताके (१७-६१) इत्यादि श्लोंकोंमें भूतशब्दका प्रयोग जीवोंमें किया है। ''असहिंसन् सर्वभूतानि'' प्रयोगमें भूत शब्दका प्रयोग चेतनोंमें हैं। शंकराचार्यने कहा है - भूतानां प्राणिनाम् २/३/४४ सूत्र भाष्यमें भूत शब्द चेतनोंमें प्रयुक्त है, यो शंकराचार्यने कहा है। अत: भूतशब्द चेतनवाचक है। उत्तम: पुरूषस्त्वन्य: स्पष्टरूपमें जीवोंसे परमात्माका भेद सिद्ध होता है। प्रवेष्टु प्रवेश्य भावसे भेद स्पष्ट है। ''तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'' इत्यादि श्रुत्युक्त प्रवेश्य प्रवेष्टृभाव मिथ्या है, इस विषयमें कोई सबूत नहीं। मिथ्या हो तो ब्रह्म ही मिथ्या हो। ब्रह्म अज्ञेय है, प्रमाणोंसे वेद्य नहीं कहनेवाले अद्वैती कहते हैं - ब्रह्म मिथ्या हो, वह हमारे लिये सम्मत है। शायद शशविषाण भाँति भी मानते होंगे। इसी कारण वेद, गीतामें उक्त प्रवेष्टृभाव सत्य ही है। उनसे ज्ञात होनेवाला भेदभी सत्य है। अत: इन वाक्योंमें जीव परमात्मा भेदही कहा गया है।

गीताके १६ अध्यायमें, प्रारंभमें ही कहा है - दैवी सृष्टि आसुरी सृष्टि दो प्रकारकी सृष्टि है। दैवी संपत्ति मोक्षका कारण बनती है। आसुरी तमप्राप्तिका कारण बनती है। मैं ही परमात्मा हूँ, जगत् असत्य इस प्रकार उपदेश सुनानेवाले दैत्य स्वभाव के होते है। इस प्रकार जन्मजन्मान्तरमें भी आसुरी योनिको प्राप्त कर आखिर अधोगति को प्राप्त करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ''ईश्वरोऽहं'' समझनेवालोंकी निन्दा है।

ब्रह्मसूत्रके ४-१-३ भाष्यमें यह संवाद है। किसी शिष्यने शंकराचार्यसे पूछा अज्ञान किसमें हैं ? शंकराचार्यने उत्तर दिया -प्रश्न करनेवालोंमें अज्ञान है। शिष्य बोला - मैं ईश्वर हूँ, शंकराचार्यने

२८५ – सिविल सूट (३)

उत्तर दिया – किसीमें भी अज्ञान नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि ईश्वरोऽहं ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है, यही अद्वैतियोंके लिये अभिमत है। अत: एव ईश्वरोऽहं श्लोक अभेदज्ञानकी निन्दाकर भेदका प्रतिपादन करता है। भेदके विषयमें प्रमाण है। इस तरह श्रुति, सूत्र, गीता से जीवेश्वरभाव सिद्ध होता है। जीवेश्वरके अभेदके विषयमें, पूर्वमें कथित आक्षेपके अनुसार श्रुतिसूत्र गीताका आधार नहीं। यही नहीं अभेदके विषयमें प्रमाण हैं। ऐसा कहना भी अयुक्त है क्योंकि अभेदको अद्वैति ऐक्यको ब्रह्मस्वरूप कहते हैं।

ब्रह्म अज्ञेय है, प्रमाणोंसे उसको नहीं जान सकते, यह भी कहते हैं। इसीलिये अद्वैतियोंके कथनके अनुसार ऐक्य ब्रह्मरूप होनेके कारण ऐक्य भी अज्ञेय होगा। प्रमाणोंसे ज्ञेय नहीं। अत: ऐक्यके विषयमें प्रमाण कहेंगे ऐसा जो अद्वैतियोंका कहना है, वह कथन उनके मतके अत्यंत विरूद्ध है।

इसलिये गीतामें कहे गये तत्त्वके अनुसार जीवेश्वर के अभेदको जानकर अधोगति प्राप्त करते हैं। इतना नहीं सात्विक लोगोंको भी ''ईश्वरोहं'' का उपदेश देकर उनको भी अधोगति के योग्य बनाते हैं। इसलिये ''अनन्य प्रोक्ते'' जीवेश्वरा भेदज्ञानिना अद्वैतिना प्रोक्ते गतिरन्यत्र नास्ति। अद्वैतियोंसे जो उपदेश ले चुके हैं। कोई अच्छीगति नहीं होगी। इस तरह उक्त होनेके कारण अद्वैति इस तरह उपदेश न करें, 'प्राक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ'' जीवेश्वर के भेद ज्ञानिसे (द्वैतियोंसे) कहा गया हो, समीचीन ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस काठक वाक्यमें उक्त होनेके कारण जीवेश्वरके भेदका ही उपदेश करे। जीवेश्वर के भेदको जानकर मोक्षादि पुरूषार्थको सज्ञन प्राप्त करें। इस तरह कोर्ट निर्णय करें, यही हमारी प्रार्थना है।

संयमनीपुरका हायकोर्ट
अठ्ठाईस कलियुग के शालिवाहन शके १८४९
चीफ जस्टिस धर्मराज एच. बी. के सामने चलाया गया वेदान्तविचार

सिविल सूट चौथा इश्यू

O. S. No. 564 -1927
निर्णय

वादि : सत्यबोधाचार्य उर्फ विष्णुदासाचार्य **प्रतिवादि : गंगाधर शास्त्री**
वकील माधवदास P.B.D. **वकील हरिहर शर्मा P.B.S.**

१) वादि वैदिक आस्तिक समाजके प्रतिनिधि के रूपमें अदालत की इजाजत लेकर इस दावेको दाखिल करता है।

२) इस दावेमें गंगाधर शास्त्रीजीको कोर्टकी अनुमति लेकर अद्वैत समाजके प्रतिनिधि की हैसीयतसे प्रतिवादि किया गया है।

३) वादि आस्तिक वैदिक मतसे संबद्ध है।

४) वैदिक मतके तत्त्व :-

अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादि परलोक यह लोक इत्यादि समस्त जगत सत्य है।

ब) परब्रह्म विष्णु सर्वोत्तम, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, अनंतकल्याण गुणोंसे परिपूर्ण है।

क) परमात्मा जीवोंसे भिन्न है।

ड) परमात्मा सर्वोत्तम है, सर्वकर्ता जीवोंसे भिन्न है। यह ज्ञान मोक्षका साधन है।

५) उपर कहे गये तत्त्व, वेदोंमें, वेदार्थ निर्णायक ब्रह्मसूत्रोंमें, श्रीमद्भगवद्गीतामें उक्त हैं। समस्त वैदिक लोग इन तत्त्वोंको स्वीकार करें क्योंकि वे इन पवित्र ग्रंथोंके आदेशसे, उपदेशसे बद्ध है।

६) यह वैदिकमत अनादि कालसे चला आया है।

७) तत्त्वोंकी वास्तविकता यही है, पर गौडपादाचार्य, उनके परम शिष्य शंकराचार्यने वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता के अन्यार्थकी कल्पना करके, शून्यवादि बौद्धमतको विज्ञानवादि बौद्धमतको वैदिकमत वेषभूषा धारण कराके, सामान्य लोगोंको गुमराह करके, वैदिक तत्त्वोंके विरूद्ध तत्त्वोंका उपदेश दिया है।

इस प्रकारका प्रचारका काम शिक्षानियम

भगवद्गीता सेक्शन् अध्याय १६में उक्त हैं, यह दण्डके योग्य अपराध बनता है।

८) प्रतिवादि अद्वैती इस तरह उपदेश करता है :-

अ) विष्णु सर्वोत्तम नहीं। सर्वज्ञ,सर्वकर्ता नहीं। अनन्तगुणपूर्ण नहीं। वह ब्रह्म सर्वधर्म रहित है।

ब) ऊपर चौथे (अ) विभागमें उक्त ब्राह्मणादि समस्त जगत् मिथ्या है।

क) परमात्मा जीवोंसे भिन्न नहीं।

ड) परमात्मा जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्तम है, यह ज्ञान मोक्षका साधन नहीं। ''अहं ब्रह्मास्मि'' ज्ञान ही मोक्षका साधन है।

९) इस तरह वेद, सूत्र, गीतामें उक्त तत्त्वोंको विपरीतरूपमें जानकर 'नष्टात्मानोऽल्पबुद्धय: । प्रभवन्त्युग्रकर्माण: क्षयाय जगतोऽहिता: । (गीता १६ श्लोकत्व) गीतोक्त विधानके अनुसार, स्वयं अधोगति प्राप्त करेंगे । अन्योंको भी अधोगतिकी ओर ले जायेंगे । आस्तीक सज्जनोंको आस्तीकमतसे दूर ले जाकर, अवैदिकमतके आश्रित बनाकर, उनको भी अधोगतिकी ओर ले जायेंगे।

सज्जनोंकी भलाई के लिये, निम्नलिखित रूपसे निर्णय दे। कोर्टसे हमारा यह विज्ञापन है।

१) परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्तम है । ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम वेद, यज्ञ, देवता, गंगादितीर्थ आदि जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं यही वैदिकमतका तत्त्व है। ब्रह्म निर्गुण है, जीवसे अभिन्न है। ब्राह्मणादि वर्णादि जगत् मिथ्या कहना वैदिकमतका तत्त्व नहीं।

६) ९वे विभागमें जो वादिका कथन है, वह गलत है। अद्वैतमतके आश्रयसे हमारा कुछभी नाश नहीं हुवा। इस मतके आश्रयसे अन्योंका कुछ नाश नहीं हुवा है।

इन कारणोंसे इस विषयपर किसीभी प्रकारका निर्णय न लेकर, उस अर्जीको बरखास्त करे।

इस प्रकारका स्टेटमेंट वकील हरिहर शर्मा द्वारा कोर्टमें देकर, प्रतिज्ञापत्रभी लिखा चुके हैं।

इसके बाद वादि प्रतिवादि वकीलोंके सामने विचारणीय इश्यू के क्रमके बारेमें विचार किया गया।

इश्यू (वादग्रस्त विषय)

१) रेस ज्यूडिकेट है या नहीं ? अर्थात इस विषयका विचार पहले किया गया है, पुन: विचार करनेका अधिकार कोर्टको है नहीं।

२) A) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम आदि जगत सत्य है या मिथ्या ?

B) स्वप्न सत्य है या मिथ्या ?

३) परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है या अभिन्न ?

४) परब्रह्म सर्वज्ञत्व, जगत्कर्तृत्व आदि कल्याण गुणोंसे परिपूर्ण है या नहीं ?

५) A) अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या नहीं ?

B) अद्वैतमत वैदिक है या अवैदिक ?

३-७-२७के दिन उभयपक्षके वकीलोंकी दलीलें हुई, दावा रेसज्युडीकेट नहीं। यह निर्णय दिया गया।

अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम आदि समस्त जगत् सत्य है या मिथ्या है ?

ब) स्वप्नपदार्थ सत्य है ? या मिथ्या ? दूसरा इश्श्यू विचारणीय था। २८-८-२८ के दिन

कोर्टसे यह निर्णय दिया गया कि जगत् सत्य है।

ब्रह्मजीवोंसे भिन्न है या नहीं ? अभिन्न है जीवेश्वर में भेद है या ऐक्य ? जीवब्रह्ममें भेद है, ऐक्य नहीं ऐसा २८-१२-२८ कोर्टसे निर्णय दिया गया।

१) परब्रह्म जीवोंसे भिन्न, सर्वोत्तम है। ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम वेद, यज्ञ, देवता, गंगादितीर्थ आदि युक्त जगत सत्य है, मिथ्या नहीं। यही वैदिकमतका तत्त्व है। ब्रह्म निर्गुण जीवोंसे वर्ण, जगत् मिथ्या वैदिक मतका तत्त्व नहीं।

२) वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता इनके विरूद्धार्थ की कल्पना करके, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म निर्गुण है। इत्यादि प्रतिवादिका उपदेश शास्त्रके विरूद्ध है।

३) इस प्रकार निर्णय करें। इसके बावजूद कोर्टके लिये युक्तिसंगत हो, उसका भी आदेश दे।

४) कोर्ट इस प्रकार आदेश नहीं देगा। लोग दु:खी हो जायेंगे।

इस तरह २५-३-१९२७ के दिन माधवदास वकीलके द्वारा दावा दाखिल कराके वादिने प्रतिज्ञापत्रको हाजिर किया है।

उसके बाद प्रतिवादिके नामपर समन्स भेजे जानेपर प्रतिवादिने ३०-३-२७ के दिन निम्नलिखित स्टेटमेंट दिया है।

प्रतिवादिका स्टेटमेंट

१) वादिने जो कुछ अपने आवेदनपत्रमें लिखा है, वह झूठ है।

२) वादिका मत अनादिकालसे चलकर आया नहीं।

३) वादिने चौथे विभागमें जो लिखा है वह झूठ है।

४) अ) अद्वैतमतको बौद्धमत कहना युक्तिसंगत नहीं।

ब) प्रतिवादि कहना ही वेदार्थ है।

४) अद्वैतमतके तत्त्व -

अ) ब्रह्मातिरिक्त ब्राह्मणवर्ण, देवता, संध्यावन्दनादि कर्म और इनसे युक्त जगत् स्वप्नकी तरह असत्य है।

ब) परब्रह्म निर्गुण है (समस्त धर्मरहित है)

क) जीव और ब्रह्म एक है।

ख) अंह ब्रह्मास्मि रूप ज्ञान ही मोक्ष साधन है।

५) इस विषयका निर्णय पहले हो चुका है, पुन: विचार करनेका अधिकार कोर्टको नहीं (Resjudicate) बाधा आता है।

६) वादिने ९ विभागमें जो कुछ कहा है वह गलत है। अद्वैतमतके आश्रयसे, हमारा कुछ नुकसान नहीं हुवा है। अद्वैतमतके तत्त्वोंके अनुसरण करनेवालेको किसीभी प्रकारकी हानि नहीं हुई है। इस कारणसे इस विषयमें कोई भी निर्णय लेकर दावेको बरखास्त कहे यही हमारी प्रार्थना है। इस तरहके स्टेटमेंटको वकील हरिहरशर्मा द्वारा कोर्टको देकर प्रतिज्ञापत्र भी लिखकर दिया है।

२८९ - सिविल सूट (४)

इस तरह श्रुति, सूत्र, गीतासे जीवेश्वर भेद सिद्ध होता है। पूर्वमें उक्त प्रमाणके अनुसार, जीवेश्वरके अभेदविषयमें, सूत्र, गीतामें कोई प्रमाण नहीं। यही नहीं अभेदके विषयमें प्रमाणोंको उपस्थित करनेवाले, अद्वैतियोंका कहना अयुक्त होता है। क्योंकि अद्वैती अभेदको ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। ब्रह्मतो अज्ञेय है। प्रमाणोंसे नहीं जाना जाता। ब्रह्म स्वरूप अद्वैत भी अज्ञेय होगा। इसलिये अद्वैतियोंका यह कहना हम अद्वैतके विषयमें प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अत्यंत विरूद्ध होगा।

गीताके अनुसार जीवेश्वर के अभेदको समझकर अधोगति प्राप्त करते हैं। इतना नहीं सज्जनोंको ईश्वरोऽहं का उपदेश करके, उनकी भी अधोगति योग्य बनाते हैं। इसलिये ''अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति'' जीवेश्वरभेद ज्ञानिना अद्वैतिना गतिरन्यत्र नास्ति अद्वैतियोंसे उपदेश लेनेवालोंको कोई अच्छी गति नहीं। जीवेश्वरका अभेद अप्रामाणिक है। अद्वैती इस प्रकार उपदेश न दे।

'प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ', जीवेश्वरके भेद ज्ञानियोंसे उपदिष्ट तत्त्व, जीवेश्वरके भेद ज्ञानको समझकर अच्छी गति प्राप्त करें। इस प्रकार अदालत निर्णय करे यही प्रार्थना।

परब्रह्म विष्णु, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, जगत्कर्ता, स्वतंत्र, संहारक, ज्ञानदाता, सर्वोत्तम, विचित्र शक्तियुक्त चन्द्रसूर्य के आधार, सर्वप्रकाशक, कर्म फलदाता, साक्षाद्द्रष्टा है। कल्याणादि अनंत गुणोंसे युक्त है या सकलधर्मरहित है, चौथे इश्श्यू पर कोर्टने विचार करके, ''ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि 'गुणोंसे युक्त है। ''इसको सिद्ध करनेके लिये वादिने वेद, सूत्र, गीता, प्रस्थानत्रयमें विद्यमान वाक्योंको प्रमाणके रूपमें प्रतिवादिने स्वीकार किया है, ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि गुणपूर्ण है, सकल धर्मरहित नहीं। इस तरह अदालत निर्णय करती है। इसके लिये कारण -

प्रमाण

१) वादिने कहा है ''यस्सर्वज्ञ: सर्ववित् यस्यज्ञानमयं तप: तस्मादेतत् ब्रह्म नामरूपमन्नं जायते''। यह वाक्य मुंडकोपनिषदका है। यह ब्रह्मका सामान्य सर्वज्ञत्व (सामान्य रीतिसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान विशेष सर्वज्ञत्व (विशेषरूपसे समस्त पदार्थोंको जानना) चतुर्मुख कारणत्व, नामरूपात्मक समस्त प्रपंच कारणत्व, इस उपनिषदमें उक्त है। शंकराचार्यने भी इस श्रुतिका इसी तरह व्याख्यान किया है।इसी कारणसे इस श्रुतिसे ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त है यह सिद्ध होता है। इस तरह कोर्ट निर्णय करता है।

२) परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च (श्वेतातर ६-९) तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं। पतिं पतीनां परमं परस्तातद्विधेम देवं भुवनेशमीऽयम्'' (६-७) ''एको देवस्सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च (श्वेता ११) नित्योनित्य: चेतनचेतनानां एको बहूनां विदधातिकामान्, एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां एकं बहुधा य: करोति तमात्मस्थं येनु पश्यन्ति धीरा: तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। श्वेताश्वतरोपनिषद् वाक्य कहते हैं कि ''परब्रह्म ज्ञानबल क्रियारूप शक्तिसे युक्त है।

और ये धर्म स्वाभाविक है। परब्रह्म जगत्कारण है। जगतके जितने कारण हैं उन समस्त कारणोंका कारण है। जगतका स्वामी है। जगतका नियमन करता है। बहुतसे देवता हैं, उन समस्त देवताओंका देवता परब्रह्म है। इन समस्त देवताओंको देवत्व देनेवाला वही ब्रह्म है। जगतके जितने भी रक्षक उन सभी रक्षकोंसे उत्तम है। जगन्नाथक और स्स्तुत्य है। उस परमात्माके विषयक ज्ञानको प्राप्त करना चाहिये। परमात्मा एक: - मुख्य है, जीव जडात्मक प्रपंचसे भिन्न है। देव: - क्रीडाकान्ति आदि गुणोंसे युक्त है।

परमात्मा सर्व प्राणियोंमें है, पर दूसरोंको दिखाई नहीं देता। केवल समस्त प्राणियोंमें रहकर सबोंका नियमन करता है। अनेकों लोगोंसे किये जानेवाले अनेकों कर्मोका फल देनेवाला वही है। सभी प्राणियोंका आश्रय है, आधार है वह साक्षी है। अर्थात् समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्षसे देखता है। चेता-ज्ञान युक्त है। सत्वरजतमोगुण रहित है। समस्त का अर्थात् चेतना चेतनका स्वामी है। सर्वकर्ता, नित्य पदार्थोंको नित्यत्व देता है। अनेक लोगोंको अपेक्षित पदार्थोंका निर्माण करके देता है। जो परमात्माके सर्वकर्तृत्व, सर्वनियामकत्व आदि पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त है जान लेते हैं, उसको शाश्वत सुखरूप मोक्षका लाभ होता है। इतरेषां - अन्य लोगोंको, पूर्वोक्त उक्त के विरोधमें परमात्मा निर्गुण है, मैं ही परमात्मा हूँ। मेरा नियंत्रण करनेवाला कोई नहीं। इस प्रकार जो जान लेता है, उनको सुख कभी नहीं होगा। बल्कि दु:ख ही होगा। इसीलिये परब्रह्मके अनंत गुण कहे जाते हैं, वेदोंमें शास्त्रोंमें मुमुक्षु उन गुणोंको जान लेना अनिवार्य है, इसी कारणसे वे गुण असत्य नहीं सत्य ही है। प्रतिवादी वेदवाक्योंको प्रमाण मानते हैं। अत: परमात्मा जगन्नियामकवादि अनंत गुणोंसे युक्त है। यह तत्त्व श्रुतियोंसे सिद्ध होता है। ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

परमात्मा समस्त जीवोंमें रहकर दीखता नहीं। केवल सर्व प्राणियोंमें नहीं पूरे विश्वमें व्याप्त है। (प्राणियोंमें रहकर नियमन करता है) सर्वप्राणियोंका आश्रय है, आधार समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखता है। चेता-ज्ञानी है, सत्त्व, रजोगुण, तमोगुणोंसे रहित है। सबका स्वामी है। सर्वकर्ता, नित्य पदार्थोंको नित्यत्व प्रद है। लोगोंसे अपेक्षित पदार्थोंका निर्माण करके देता है, जो साधक परमात्माके सर्वकर्तृत्व, सर्वनियामकत्व आदि पूर्वोक्त युक्त परमात्माको जानता है, उसको शाश्वत सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है। इतरेषां - पूर्वोक्त ज्ञानके विरूद्ध ज्ञान प्राप्त करनेवालोंको, सुख होता नहीं, किन्तु दु:ख ही होता है। अत: परमात्मा निर्गुण है। मैं ही परमात्मा हूँ। परमात्मा मेरा नियामक नहीं, यही विपरीत ज्ञान है। विपरीत ज्ञानियोंको दु:ख ही होता है। वेदोंका कहना है परमात्माके अनंत गुण हैं। 'मुमुक्षु यथा शक्ति' इन गुणोंको जाननेके लिये प्रयत्न करें। वेदवचन सत्य है। परमात्माके जगन्नियामकत्वादि गुण, इस श्रुतिसे सिद्ध होतें ऐसा कोर्ट का निर्णय है।

३) ''उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते।
उभावग्निश्च सूर्याचन्द्र सावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि'' ॥ ८-१३ ॥

छांदोग्य श्रुति कहती है - परमात्मा द्यावापृथिवी चन्द्रसूर्य का आश्रय है। चन्द्रसूर्याधारकरूप परमात्माके गुणको अदालत मानती है।

४) 'वेदैश्च सवैरहमेव वेद्य: (गीता १५-१६)

सर्वेवेक्ष यत्पदमामनन्ति (का. १-१-१५) इत्यादि प्रमाणोंसे परमात्माका अनंतवेदप्रतिपाद्यत्वरूप गुणको कोर्ट स्वीकार करता है।

५) वादिने प्रमाणके रूपमें ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' ''जन्माद्यस्ययत:'' ''शास्त्रयोनित्वात्'' ''अन्तस्तधर्मोपदेशात्'' ''आकाशस्तलिंगात्'' आदि ब्रह्मसूत्रोंका उद्धरण किया हैं। जिन सूत्रोंसे ब्रह्मका पूर्णत्व, जगज्जन्मादिकारणत्व, शास्त्रजन्य ज्ञानविषयत्व अथवा शास्त्रकर्तृत्व ईशितृत्व, भूतकारणत्व आदि धर्म ज्ञात होते है।

५६४ सूत्र साक्षात या परंपरासे परमात्माके गुणोंका प्रतिपादन करते हैं। वेदार्थनिर्णायक ब्रह्मसूत्रोंने ब्रह्मके गुणोंका प्रतिपादन किया है। निर्णयवेदभी परमात्माके गुणोंका प्रतिपादन है यह सिद्ध होता है। निर्णायक सूत्रोंमें उक्त धर्मोंको मिथ्या कहना युक्तिसंगत नहीं। ब्रह्मसूत्रोंसे ही ब्रह्म का अनंतगुणपूर्णत्व सिद्ध होता है। इसको कोर्ट कबूल करता है।

६) वादिने निम्नलिखित प्रमाणोंका दाखला दिया है । सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपहोनंच (गी. १५.१५)

''ईश्वर: सर्वभूतानां (गी. १८-६१) यो लोकत्रयमविश्य बिभर्त्यव्यव ईश्वर:''

''चातुर्वण्यं मयासृष्टं पुष्णामि चोषधीस्सर्वा:''

''परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्''

पुरूषं शाश्वतं दिव्यमादि देवमजं विभु । आहुस्त्वां ऋषयस्सर्वे देवर्षिनारदस्तथा । असितो देवलोक व्यास: स्वयंचैव ब्रवीषिमे सर्वमेतद्दतं मन्ये यन्मां वदसि केशव । इन गीता वाक्योंसे परब्रह्मका सर्वनियामकत्व, ज्ञानादिदातृत्व, लोकरक्षणकर्तृत्व ब्राह्मणादि सृष्टि कर्तृत्व, औषधीपोषकत्व । पवित्रत्वं, तेजोरूपत्व आदि अनेक धर्मोकी विद्यमानताके साथ उन धर्मोके सत्यत्व का भी ज्ञान होता है।

अदालत इन प्रमाणोंका आदर करती है।

७) ''अस्थूलमनणु.......एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत:'' इत्यादि बृहदारण्यकसे भी और उस वाक्यसे सूचित ''जगदवस्था प्रशास्तृपूर्विका व्यवस्थातत्वात्'' अनुमानसे ईश्वरका समस्त प्रकारका नियन्तृत्व, जगद्धारक प्रयत्न आदि धर्म सिद्ध होते हैं। ''अस्थूलमनणु'' बृहदारण्यक भाष्यमें इस अनुमानसे प्रशास्तृत्वादि गुण सिद्ध होते हैं, ऐसा शंकराचार्यने भी लिखा है। इस तरह परब्रह्म प्रशासकत्वादि गुणोंसे युक्त है। इस तत्त्वका स्वीकार अदालत करती है।

८) अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपं।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

पश्यामि..........दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयं (गीता १२-१३)

ये गीताश्लोक ''यदा पश्य: पश्यते रुकमवर्णं'' इत्यादि श्रुतियाँ अर्जुनके प्रत्यक्षसे, ईश्वरमें सुवर्णवर्ण, जगत्कर्तृत्व आदि धर्म सिद्ध होते है। ईश्वरके धर्मोको प्रत्यक्षभी प्रमाणित करता है। कोर्ट स्वीकार करता है।

परब्रह्म सकल धर्मरहित नहीं, इसके लिये कारण -

प्रतिवादिने ब्रह्मके निर्विशेषत्व सिद्ध करनेके लिये उदाहृत प्रमाण ''यस्सर्वज्ञः'' इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध ब्रह्मके सर्वज्ञत्वादि गुणोंका निषेध नहीं करता; प्रत्युत नियामकत्व, धारकत्व आदि धर्मोंका विधान करता है। प्रतिवादि उदाहृत प्रमाणोंसे ब्रह्मका निर्विशेषत्व सिद्ध नहीं होता, शासकत्वादि धर्म सिद्ध होते हैं। यह कोर्टका निर्णय है।

क्योंकि -

१) ''केवलोनिर्गुणश्च'' श्रुति और ''निर्गुणं गुणभोक्तृच'' गीतावाक्य इन दोनों प्रमाणोंमें ब्रह्मका निर्गुणत्व प्रतिपादित है यह प्रतिवादिका कहना अयुक्त है। ''गुणाः सत्वरजतमोगुण रहित'' यह अर्थ शंकराचार्यने किया है। अतएव प्रतिवादिका कथन अयुक्त है। ''भूस्वर्गादि'' १* ''लोकस्थ सर्वप्राणी'' जिस तरह सत्व रज तमो गुणोंसे युक्त हैं, उस तरह परमात्मा सत्वरज गुणोंसे युक्त नहीं। यही सिद्ध होता है। इसके विरूद्ध.....

'एको देवस्सर्वभूतेषु गूढः। सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्व भूतादि वासः साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च' वाक्यसे एकः मुख्य, क्रीडादिगुण युक्त, सर्व प्राणियोंका अन्तर्यामी, सर्वप्राणी नियामक, कर्मफलदाता, साक्षात् द्रष्टा इत्यादि परब्रह्मके धर्म कहे गये हैं। ''केवलो निर्गुणश्च'' वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्योंसे कारणत्वादि गुणोंका बोध होता है। अनेक प्रमाणोंके विरूद्ध ''निर्गुण'' पद ब्रह्मके निर्विषयत्व सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होगा।

प्रतिवादिका कहना इस प्रकार है - ''सर्वधर्म सत्व रजतमोगुणों के कार्य हैं। बह्म (सत्त्वरजतमोगुणोंसे रहित होनेसे) निर्गुण है कहा गया है। इसीसे ब्रह्मका सर्वधर्मरहितत्व सिद्ध होता है। प्रतिवादि की यह दलील तर्कयुक्त नहीं। क्योंकि सभी सत्वरजोगुणतमोगुण कार्य नहीं। शंकराचार्यने, ''पश्यमे पार्थरूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः। नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनिच'' श्लोकके व्याख्यानमें श्लोकगत ''दिव्यानि'' इस विशेषण का अर्थ 'अप्राकृतानि' अर्थ लिखा है, परमात्माके रूप सत्त्वरजोतमोगुणात्मक प्रकृतिकार्य नहीं यह सिद्ध होता है। अतः सभीको सत्वरजतमोगुणात्मक कार्य कहना अयुक्त है। (मतप्रवर्तक शंकराचार्यके विरूद्ध अर्थ होगा)

उपरोक्त कारणोंसे, निर्गुणपद ब्रह्मको सकल धर्मरहितके रूपमें बोध नहीं करा सकता। यह कोर्टका निर्णय है।

२) अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घं अलोहितं अस्नेहमच्छायमतमो अवाय्वनाकाशमसङ्गम रसंभगन्धमचुक्षुष्काम श्रोत्रमवागमनोऽतेज स्कमप्राणामसुखममात्रमनंतरम बाह्यं न तदाश्नाति किंचन तदाश्नाति कश्चन। (बृ. ३-८-८) श्रुति परब्रह्मके स्थूलत्वादि कुछ धर्मोंका निषेध करता है, इसे स्वीकार करनेपर, ''यस्सर्वज्ञः'' ''सकारणं करणाधिपाधिपः'' आदि श्रुतियोंसे उक्त सर्वज्ञत्व, जगत्कारणत्व, आदि गुणोंका निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि इस श्रुतिमें सर्वज्ञत्वादि गुणोंका निषेधक पद ही नहीं। इस वाक्यके उत्तरमें रहे ''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि

१* न तदस्ति प्रथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्यं प्रकृति जैर्मुक्तं। यदेभिस्त्या त्रिभिर्गुणैः।

२९३ - सिविल सूट (४)

सूर्याचन्द्रमसो विधृतौ तिष्ठत:.... द्यावापृथिव्यो.....एतस्य......निमेषा मुहूर्ता......तिष्ठति.......एतस्य..... प्राच्यो नद्य:....तिष्ठंन्ति.....तद्वा एतदक्षरं गार्गि द्रष्ट्.......श्रोतृ-श्मन्तृ.....विज्ञातृ = आदि बहुतसे वाक्योंसे ब्रह्मका द्रष्टत्व, सर्वज्ञत्व, नियन्तृत्व, धारकत्व, ज्ञान, प्रयत्न, श्रोतृत्व, मन्तृत्व, विज्ञातृत्व इत्याद्यनेक गुण सिद्ध होते हैं। शंकराचार्यने भी माना है कि इन वाक्योंसे ब्रह्मके नियन्तृत्वादि धर्म सिद्ध होते हैं।

''अणोरणीयान् महतो महीयान्, एषमे आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा शामाकद्वा शामाकतण्डुलाद्वैष: म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्जायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य: (छां. ३-१४-३) इन वाक्योंसे ब्रह्म ज्यायान् (स्थूल) 'अणु' कहनेसे सामान्य स्थूल नहीं (उसमें स्थूलत्व नहीं) अणु नहीं (उसमें अणुत्व नहीं) ऐसा अर्थ न करें, अस्थूल -प्राकृत स्थौल्य नहीं, प्राकृत अणुत्व नहीं। ये वाक्य सर्वज्ञत्वादि गुणोंका निषेध न कर, द्रष्टत्व, (सर्वज्ञत्व) शासकत्वादि गुणोंका बयान करता है। अत: 'अस्थूलं' आदि वाक्योंसे ब्रह्मका सकल धर्मराहित्यकी सिद्धि नहीं होती। कोर्टने इस तरहका निर्णय लिया है।

३) प्रतिवादिका कहना है - ब्रह्म सकल धर्मरहित है। इस विषयमें - ''यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रम वर्णमचक्षु: श्रोत्रं तदपाणिपादम्''

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा॥ ६॥ (मुं. १-१-६)

इस वाक्यमें द्दश्यत्वादि धर्म निषिद्ध है। आपातत: द्दश्यत्वादि धर्मोंका निषेध प्रतीत होता है। पर सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका निषेध तो नहीं। यही नहीं इसी वाक्यमें ''भूतयोनिं'' पदसे भूतकारणत्व, ''परिपश्यन्ति धीरा'' पदोंसे ''द्दश्यत्व'' ''नित्यं'' पदसे नित्यत्व सर्वभूतत्व, सूक्ष्मत्वादि धर्म कहे गये हैं।

इस मन्त्रके उत्तरमें ''अक्षरात्संभवतीह विश्वं'' (मुं. १-१-६) ''ततोऽन्नमभिजायते'' ''यस्सर्वज्ञस्सर्ववित्'' ''यस्य ज्ञानमयं तप:'' ''तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते (मुं.१-१-९) इन मन्त्रोंसे जगत्कारणत्व, अन्नोत्पादकत्व, सर्वज्ञत्वादि धर्म उक्त है।और ''मनसैवानु द्दष्टव्य:'' ''तस्मिन् द्दष्टे परावरे'' आदि वाक्योंसे ब्रह्मका द्दश्यत्वादि धर्म सिद्ध होते हैं। ''परिपश्यन्ति धीरा:'' वाक्य ब्रह्मका द्दश्यत्व प्रमाणित है। ब्रह्मके द्दश्यत्वके बयानसे ''अद्रेश्य'' पदसे द्दश्यत्वाभावका कथन 'मे माता वंध्या' वाक्यकी तरह स्वव्याहत होता है। ''अद्रेश्य'' सामान्यरूपसे द्दश्यत्वका निषेध नहीं किया जा सकता। परमात्माके अनुग्रहके बिना वह द्दश्य नहीं यह अर्थ कर सकते हैं।

अत: उपरोक्त वाक्य ब्रह्मके निर्विशेषत्वके विषयमें प्रमाण नहीं। कोर्टका यह निर्णय है।

४) ''ब्रह्मनिर्विशेष है'' इस विषयमें प्रतिवादिने जो ''यतो वाचो निवर्तन्ते'' श्रुतिका दाखला दिया है। यह भी तर्क संगत नहीं। क्योंकि यह श्रुति निर्विशेषत्वका बोध नहीं करती। इस श्रुतिमें ब्रह्मके निर्विशेषत्व बोधक पद ही नहीं। पद न होनेपरभी पाचकत्व धर्म (पचनकर्तृत्व, रसोई बनाना) किसीमें हो तो उसे भी पाचक कहते हैं। शामवर्णके व्यक्तिको शाम कहते हैं। उसी तरह ब्रह्ममें अगर कोई धर्म होता तो, उस धर्मवाचक पद ब्रह्म वाचक हो सकता था। ''ब्रह्म अवाच्य है'' यह कहना

युक्ति संगत नहीं होगा। ब्रह्म को अवाच्य कहनेसे, ब्रह्ममें कोई धर्म नहीं यह अर्थात् सिद्ध होता है। इस तरह प्रतिवादि की दलील अयुक्त है। क्योंकि 'यत:' शब्द ब्रह्म का बोध कराके ही उस ब्रह्मसे समस्त वाक्य, बोधक पद लौट आते हैं। ऐसा कहना चाहिये। श्रुति स्वयं ''यत:''शब्दसे ब्रह्मके बोधको उत्पन्न कराके, स्वयं ही शब्द ब्रह्मका बोध नहीं करा सकते ऐसा कहना तर्कसंगत नहीं।

''यत: ब्रह्म'' शब्द मुख्यवृत्तिसे ब्रह्मका बोध न करनेपरभी, लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मका बोध कराके, लक्षणावृत्तिसे लक्ष्य ब्रह्मसे ''वाच: निवर्तन्ते'' वाणी लौटती है। वाचकत्वका निषेध इस श्रुतिमें कहा है। यह कहना भी युक्त नहीं होता। क्योंकि, ''यत:'' इस वाक्यसे लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मज्ञान होनेके पहले ब्रह्मका ज्ञान आवश्यक है। ब्रह्म ज्ञान न प्रत्यक्षसे, न अनुमानसे होगा। पदोंसे ही होना चाहिये। उन पदोंसेभी लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मका ज्ञान होना चाहिये। पुन: लक्षणावृत्तिसे बोध होनेके लिये लक्षणावृत्तिसे ही ब्रह्मका ज्ञान हो। इस प्रकार अनवस्थारूप दोष प्राप्त होगा। अत: लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मका ज्ञान होना अशक्य है। ''वचसां वाच्यमुत्तमम्'' प्रमाणके अनुसार ब्रह्मका वाच्यत्व सिद्ध होता है। इसी कारणसे ''य तो वाचो निवर्तन्ते'' श्रुति ब्रह्मके वाच्यत्वका निषेध करके, सर्वधर्मराहित्य का बोध करता है, यह कथनभी सही नहीं। अगर ब्रह्म लक्षणावृत्तिसे ही बोध्य हो तो शक्य संबंधादि धर्म ब्रह्ममें सिद्ध होते हैं। ''भीषास्माद्वात: पवते, भिषोदेति सूर्य:'' इत्यादि पूर्वोक्त वाक्य ब्रह्ममें भयप्रदत्वद्यनेक धर्म कहे गये हैं। इसी प्रकरणमें स्थित ''आनंद ब्रह्मणो विद्वान्'' यह श्रुति ब्रह्ममें आनंदज्ञेयत्व, धर्मोंका बयान करती है। यतो वाचो निवर्तन्ते वाक्य ब्रह्मके निर्विशेषत्वके विषयमें प्रमाण नहीं होगा। इस तरह कोर्ट निर्णय करता है।

५) प्रतिवादी कहता है - ''अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं'' तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनंतं महत: परं ध्रुवां निचाय्यतं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते (काठक १-१३-१५) काठकोपनिषद् वाक्य सकल धर्मरहित ब्रह्म है इस विषयमें प्रमाण हैं।

इस वाक्यसे ब्रह्मका सकल धर्मराहित्य सिद्ध नहीं होता। यद्यपि इस वाक्यसे शब्द, स्पर्श, रूप, गुणोंका निषेध हुवा है। पर ब्रह्ममें सर्वज्ञत्वादि गुण नहीं, यह वाक्य नहीं कहता। बल्कि इसी वाक्यमें ''महत: पर:'' इत्यादि वाक्य ब्रह्मको महतत्त्वसे उत्तमत्व, नित्यत्वका बोध करता है। ''ईशानोभूतभव्यस्य'' ७.५ काठकश्रुति ''यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्रच गच्छति तंदेवा सर्वे अर्पितास्तदुनात्येति कारणत्व, देवाधारत्वादि गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। इसी कारणसे इस वाक्यसे ब्रह्मका सकल गुणराहित्य प्रमाणित नहीं होता। इस तरह कोर्टने निर्णय लिया है।

प्रतिवादिसे उदाहृत ''न स्थानतोपि परस्योभय लिंगं सर्वत्र हि'' सूत्रसे ब्रह्मका निर्विशेषत्व का बोध नहीं होता। निर्विशेषत्व वाचक पद ही इस सूत्रमें नहीं। वैदिक तत्त्वोंपर शास्त्रार्थ चल रहा है। इस परिस्थितीमें, शंकराचार्यने वेदोंका, वेदार्थनिर्णायक ब्रह्मसूत्रोंका आधार न देकर, ब्रह्मको निर्विशेष कहा है शंकराचार्यने। यह कहना युक्त है। वादग्रस्त विषयमें उनको प्रमाण मानना सही नहीं। इसी हेतुसे यह सूत्र ब्रह्मके निर्विशेषत्वके विषयमें प्रमाण इसे कोर्ट नहीं मानता। यह कोर्टका निर्णय है।

''नेहनानास्ति किंचन'' (वृ. का.) वाक्य भी ''ब्रह्ममें गुण नहीं'' इस विषयमें प्रमाण नहीं हो

सकता। प्रतिवादिने इसका दाखला दिया है। ''सर्वस्य वशी'', ''सर्वस्येशान:'' ''सर्वस्याधिपति: भूतपाल:'' ''ईशानो भूतभव्यस्य'', '' ज्योतिषां ज्योति:'' आदि पूर्वोत्तर वाक्योंमें ब्रह्मके सर्वस्वामित्वका, रक्षकत्व, ज्योतिरूपत्व आदि धर्म कहे गये हैं।

''मनसैवेदमाप्तव्यं'' ''मनसैवानुद्रष्टव्यं'' ''ज्ञेयत्वका बयान किया गया है। ''नेहनानास्ति किंचन'' श्रुतिमें सर्वधर्मोंका निषेध करनेका उद्देश होता तो ''नेहनानास्ति किंचन'' इह = इस ब्रह्ममें किंचन कुछ भी नहीं। न इह नाना अस्ति अधिक कहा गया है, इह - इस ब्रह्ममें नाना -भिन्न किंचन - कोईभी रूप, गुण हो, परमात्माके गुण दिया नहीं, परमात्माके गुणरूपोंके भेदका निषेध करता है। इस प्रकार कहना चाहिये। अनेक वाक्योंसे बहुतसे गुण सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत ब्रह्ममें गुण ही नहीं ऐसा कहना अयुक्त होगा। ब्रह्मके गुणोंका निषेध करना ही श्रुतिका उद्देश होता तो उत्तरभागमें 'ईशानो भूतभव्यस्य'' ''सर्वस्यवशी'' ''सर्वस्याधिपति:'' ''एष सर्वेश्वर:'' ''एषभूतधिप:'' ''एष: सर्वस्येशान:'' ''एष भूतपाल:'' ''एष: नित्योमहिमा ब्राह्मणस्य'' आदि अनेक धर्मोंका वर्णन किया गया है। यह वर्णन अनावश्यक होता, यदि श्रुति समस्त गुणोंका निषेध करना चाहती है तो इस कारणसे ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्य ब्रह्मके निर्विशेषत्वके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता ऐसा कोर्ट मानता है।

विश्वरूप माया निर्मित नहीं -

''माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद

सर्वभूत गुणैर्युक्तं मैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि। यह महाभारतका श्लोक है। इस श्लोकसे यह भास होता है कि विश्वरूप मायानिर्मित है। यद्यपि यह विश्वरूप अनेकों धर्मोंसे युक्त है, पर कल्पित है, अबद्ध है। इस श्लोकके आधारपर यह कहा जा सकता है कि ब्रह्म के गुण कल्पित हैं। यह दलील भी तर्कसंगत नहीं क्योंकि इस श्लोकके पूर्वभागमें नारायणने भगवानका स्तोत्र किया है, जिस स्तोत्रमें भगवानके गुणोंका उल्लेख हैं जैसे -

''नमस्ते देव देवेश......ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ते, महामूर्ते, बांधव, भक्तवत्सल, ब्रह्मण्यदेव, भक्तोहं त्वां दिदृक्षु: एकान्त दर्शनाय नमो नमो'' वाक्यसे देवदेवेशत्व, ब्राह्मणप्रियत्व, विश्वरूपत्व, महारूपत्व, बन्धुत्व, भक्तप्रियत्व, आदि अनेकों धर्मोंका वर्णन किया है। इसके अनंतर एवं स्तुत: स भगवान् गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभि:भगवान् विश्वदृक् सिंह सर्वभूर्तिमयप्रभु: दर्शयामास भगवान रूपं तत्परमम् हरि:। इस श्लोकै: तथ्यै सत्य अर्थ युक्त नामाभि: - नामोंसे भगवानका स्तोत्र किया गया है। ये सभी परमात्माके विशेषण हैं। पूर्ववांक्यमें देवदेवेश, विश्वमूर्ति इत्यादि पदोंसे प्रतिपादित धर्म सत्य हैं, इस प्रकार स्पष्टरूपमें उक्त है। इस रूपका विशेषण है। ''परमं''रूप मायानिर्मित होगा, किस तरह उत्तम होगा? यह विश्वरूप कल्पित नहीं। यही नहीं आगे ''तं प्रसन्नं प्रसन्नात्मा ववन्दे परमेश्वरम्। तमुवाच नंर्ध्नामूतं देवानामादिरव्यय: इत्यादि श्लोकोंमें, देवताओंके कारणत्व, नाशरहितत्व, विशेषण दिये गये है। विश्वरूप माया कल्पित होता, तो वह देवताओंका कारण और नाशरहित किस तरह होता। अत एव यह विश्वरूप कल्पित नहीं।

''माया ह्येषा मया सृष्टा। यन्मांपश्यसि नारदं'' यह श्लोक विश्वरूपको माया कल्पित नहीं

मानता। क्योंकि श्रीभगवानुवाच -

एकतश्चद्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षय: ।
इमं देशमनुप्राप्ता: ममदर्शनलालसा : ॥
न च मां ते ददृशिरे। न च द्रक्ष्यति कश्चन।
ऋते ह्येकान्तिक श्रेष्ठात् त्वं चैवेकान्तिकोत्तम: ॥

इन श्लोकोंसे भगवानने नारदको अपना विश्वरूप दिखाया और भगवान कहते है - ''मेरे दर्शनके लिये ''एकत:'' आदि ऋषि आ चुके हैं। पर उनको मैंने दर्शन नहीं दिये। एकान्त भक्तोंके सिवा मैं किसीको भी दिखाई नहीं देता। तुम भक्तोंमें उत्तम हो। तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हें दर्शन दिये हैं। इस तरह नारदका बरवान किया भगवानने। नारदके चेहरेसे नारदजीके मनोभावोंको भगवानने ताड लिया। नारदजीके मनोभाव इस प्रकार थे। रूपवान् घटपटादि पदार्थोंको हम अपने प्रयत्नसे देख सकते हैं। उन भौतिक पदार्थोंको देखनेके लिये जैसे भक्ति अनावश्यक है, वैसे ही रूपवान् रहे तुमको देखनेके लिये, अपने प्रयत्नसे देखेंगे तुम्हारी भक्ति क्यों करें ? मेरी सराहना क्यों करते हो ? इन भावोंको जानकर भगवान कहते हैं। -

''एतत्त्वया न विज्ञेयं। रूपवानि द्दश्यते।
इच्छन्मूहूर्तान्नश्येयं। ईशोऽहं जगतोगुरू ॥
मायाह्येषा मया सृष्टायन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूत गुणैर्युक्तं। मैवं मां ज्ञातुमर्हसि ॥

इन श्लोकोंका अर्थ - भगवान् रूपवान् होनेसे घटादिकीं तरह हमारे प्रयत्नसे दिखाई देते हैं। रूपवान् भगवानको देखनेके लिये भक्तिकी आवश्यकता नहीं, ऐसा मत समझो। तुम मुझे न देखो (मेरे दर्शन तुम्हें न हो) ऐसी इच्छा करूँगा तो, क्षणमें अद्दश्य हो जाऊँगा। मैं जगतका गुरू हूँ। मेरी इच्छासे तुमने मुझे देखा है। समस्त पदार्थोंकी सामर्थ्यसे युक्त मुझे ''एवं'' घटादिरूपकी तरह मत समझो; तुम भक्ति करो। दर्शन देनेकी मेरी ईच्छा होतो, (मेरे प्रसादके विना) तुम मुझे देख सकते हो। मेरे दर्शन के लिये तुम्हें एकान्त भक्त बनना होगा।

इस तरह भगवानके कथनके कारण यह प्रमाणित होता है कि विश्वरूप माया कल्पित नहीं। इसके विपरीत ''तथ्यैश्च नामभि:'' ''परमंरूपं'' ''देवानामादिरव्ययम्'' इत्यादि विशेषणोंसे अनेक गुणोंसे युक्त विश्वरूपकी सत्यता सिद्ध होती है।

गीतामें ''अनेक वक्त्रनयनमनेकाद्भुत दर्शन'' अनेक दिव्याभरणं १* दिव्यानेकोद्यता युधम्। दिव्यमालयांबरधरं दिव्यगंन्धानुलेपनं। सर्वाश्चमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् (भ. गी. ११-१०-११) इन श्लोंकोंमें यह विश्वरूप हजारों मुँह, आँखोंसे युक्त हैं, विश्वरूपमें अनेक आश्चर्यकारक पदार्थ दिखते हैं। यह विश्वरूप अनेक दिव्य = अप्राकृत (मायासे अकल्पित) गहने, आयुध, पुष्प, वस्त्र, चन्दनादिसे युक्त, नाशरहित है। विश्वरूपका अविनाशित्व, अप्राकृतिक आभरणसे युक्त कहा गया है। अत: यह विश्वरूप माया कल्पित नहीं।

१* दिव्यानि अप्रक्रतानि

२९७ – सिविल सूट (४)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं । त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं । त्वमव्यय: शाश्वत धर्मगोप्ता । सनातनश्चत्त्वं पुरूषो मतोमें अनादि मध्यान्तमनंतवीर्य (भ. गी. ११-१८-१९) श्लोंकोसे सम्मुख स्थित श्रीकृष्णके विश्वरूपके विषयें कहा गया है। यह विश्वरूप नाशरहित परब्रह्मका रूप है। ऐसा ही मुमुक्षु जान लें। यह विश्वरूप ही जगतका आधार है। शाश्वतधर्म का रक्षण करनेवाला है। इस तरह विश्वरूपमें नित्यत्व, धर्मरक्षकत्व आदि धर्म कहे गये हैं। अगर विश्वरूप कल्पित या मायानिर्मित होता तो यह कथन अयुक्त होगा। अत एव यह विश्वरूप मिथ्या नहीं। सत्य ही हैं। ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

वेदोंमें उक्त सर्वज्ञत्वादि धर्म व्यावहारिक हैं। पारमार्थिक नहीं 'ऐसी दलील भी व्यर्थ है, युक्तियुक्त नहीं। प्रमाणोंसे प्रमाणित धर्म पारमार्थिक ही होंगे। प्रतिवादि अद्वैतियोंने भी माना है। इसपर पुन: विचार करना अनावश्यक है।

अनेक द्दष्टियोंसे, प्रमाणोंसे युक्तियोंसे विचार करके, परब्रह्म सर्वज्ञत्वाद्यनेक धर्मोंसे युक्त है। सकल धर्म रहित नहीं। ये धर्म सत्य हैं। अविद्याकल्पित नहीं। इस तरह वेद, वेदार्थनिर्णायक ब्रह्मसूत्र गीता आदि प्रस्थानत्रयसे सिद्ध होता है। इस प्रकार कोर्टने निर्णय किया है।

डिक्रि

''यस्सर्वज्ञ: सर्ववित् यस्यज्ञानमयं तप: तस्मादेतत्'' ''ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते '' ''परास्यशक्तिविविधैवश्रूयते'' स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच। ''यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूषं ब्रह्मयोनि'', ''एकोदेव: सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'' आदि श्रुतियाँ ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' ''जन्माद्यस्ययत: अन्तस्तध्द्रेर्मोपदेशात्'' ''अन्तर्याम्याधिदेवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'' आदि ब्रह्मसूत्र ''अहं सर्वस्य प्रभव:, मत्त: सर्व प्रवर्तते, यो लोकत्रयमविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वर,'' आदि गीता श्लोक, परब्रह्मके सर्वज्ञत्व स्वतंत्रत्व आदि गुणोंका वर्णन करते हैं। इस तरहके ब्रह्मकी उपासना निर्गुणके रूपमें करनेवाले नैर्गुण्यमेव पश्यन्ति। न गुणान्नियुंजते। तेषां तमश्यरीराणां तम एव परायणं। परमात्माकी उपासना गुणपूर्णके रूपमें न करके, निर्गुणके रूपमें उपासना करनेवाला तमस्सको प्राप्त करके अत्यंत कठिन दु:खका अनुभव करते हैं। अत: परमात्माके सर्वज्ञत्वादि गुणोंकी उपासना करके अपरोक्षज्ञानको प्राप्त करके, उसीकी कृपासे ऐहिक आमुष्मिक पुरूषार्थ प्राप्तकर, नित्य सुखको प्राप्त करें।

संयमनीपुरं
२९-१०-१९२८

धर्मराज H. B.
मुख्यन्यायाधीश
हायकोर्ट

संयमनीपुर हायकोर्ट
२८ कलियुग शक १८४९ में चीफ जस्टिस्
धर्मराज एच. बी. के सन्मुख चला वाद
सिविल केस
O. S. No. 564 -1 1927

परब्रह्म सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, जगत्कर्तृत्वादि समस्त कल्याण गुणोंसे युक्त है या नहीं
४थे इश्यूका विचार

वादिसे पूछताछ

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

वादी - विष्णुदासाचार्य।

कोर्ट - कहिये - भगवानको गवाह रखकर कोर्टके सम्मुख जो कुछ मैं कहूँगा वह सत्य ही है, कल्पित नहीं।

वादी वकिल - आपका दावा क्या है ?

वादी - परब्रह्म सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्व, पालकत्व, सर्वनियामकत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वसंहारकत्व, ज्ञान प्रदत्व, सर्वोत्तमत्व, विचित्र शक्तिमत्व, चन्द्रसूर्याद्याधरत्व, सर्वप्रकाशत्व, कर्मफल दातृत्व, सर्वाश्रयत्व साक्षात द्रष्ट्रत्वादि समस्त कल्याण गुणोंसे पूर्ण है। पर प्रतिवादी परब्रह्मको निर्विशेष (समस्त कल्याणादि गुणरहित) कहते हैं। इस विषयपर चर्चा करके निर्णय देनेकी प्रार्थना करता हूँ।

वा. व. - परब्रह्म सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त है इस विषयमें आपके कौनसे प्रमाण हैं।

वा. वि. - श्रुति, सूत्र, गीता अनुमान प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वा. व. - श्रुतिको कहिये।

वा. वि. - बहुतसी श्रुतियाँ हैं, कितना कहें ?

वा. वि. - यस्सर्वज्ञस्सर्ववित्, यस्य ज्ञानमयंतपः तस्मादेतत् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते (मुंड १-१-९)

वा. व. - इस श्रुतिका अर्थ क्या है ?

वा. वि. - जो परब्रह्म अक्षर नामक है, वह सर्वज्ञ (समस्त पदार्थोंको जाननेवाला) सर्ववित ...समस्त पदार्थोंके ज्ञानयुक्त है, जिसका तप ज्ञानरूप है, उस अक्षरनामक परमात्मासे एतब्द्रह्म - यह चतुर्मुख ब्रह्म पैदा होता है। नाम - नामात्मक प्रपंच, रूपं - अर्थात्मभूत प्रपंच, अन्न पैदा होता है।

२९९ – सिविल सूट (४)

वा. व. – इससे क्या सिद्ध होता है ?

वा. वि. – परब्रह्म सर्वज्ञत्व, चतुर्मुखजनकत्व, नामरूपात्मकप्रपंच कारणत्वादि गुणोंसे युक्त है यह सिद्ध होता है।

वा. व. – और एक श्रुतिको कहिये।

वा. वि. – परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते । स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच (श्वेतातर ६-८)..... सकारणं करणाधिप: (श्वे. ६-९) तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं पति' पतीनां परमं परस्तात् विधेम देवं भुवनेशमीऽयम् ''एको देवस्सर्वभूतेषु गूढ: । सर्वव्यापी सर्वभूतानंतरात्मा। कर्माध्यक्षस्सर्वभूताधिवास: साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च'' (श्वे. ६-११) ''एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां एकं बीजं बहुधा य: करोति तमात्मस्थं येनु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्'' (श्वे. ६-१२) नित्योनित्यानां चेतन: चेतनानां एको बहूनां तो विदधाति कामान् (श्वे. ६-१३) इत्यादि श्वेतातरोपनिषत् के आठवे मन्त्रमें कहा गया है कि – परब्रह्मकी शक्ति उत्तम और स्वाभाविक है, कल्पित नहीं। ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियारूप है।

९वें मंत्रमें परमात्मा कारण है, कारणमात्र नहीं। लोकमें जितने भी करणाधिपति हैं (जीव है) परमात्मा उन सबोंके स्वामी हैं।

७वे मन्त्रमें जगतके जितने भी नियामक हैं, उन सबसे उत्तम है। अतएव महेश्वर शब्द वाच्य है। जगतके पालक जितने भी हैं। उन सबसे उत्तम पालक है। सर्वलोक नियामक सर्वलोकमें स्तुत्य है, इस तरह के परमात्माके ज्ञानको प्राप्त करना ही चाहिये।

ग्यारहवे मन्त्रमें परमात्मा एक: – मुख्य है अथवा जीव जडात्मक प्रपंचसे अत्यंत भिन्न है। देव: – क्रीडा, कान्ति गुणोंसे मंडित है। सर्वभूतेषु गूढ: – सभी प्राणियोंके हृदय गुहामें भी है। पर अद्दश्य है केवल प्राणियोंमें नहीं, समस्त जगतमें व्याप्त है। जीवोंमें रहकर नियमन करता है। कर्माध्यक्ष: – जीवोंसे किये गये कर्मोंके फल उनकी योग्यता के अनुसार देता है। सर्वभूताधिवास: – समस्त जीवोंका आश्रय है, साक्षी समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखता है। चेता ज्ञानाश्रय है।

बारहवे मन्त्रका अर्थ – जो परमात्मा सभी विषयोंमें समर्थ है सर्वकर्ता है, समस्त प्राणियोंके हृदयमें नियामक है, इन गुणोंसे युक्त परमात्माको जो लोग जानते हैं। उनको शाश्वत सुखरूप मोक्ष प्राप्त हैं। उक्त गुणोंके विरूद्ध, जीवको ही ब्रह्म, ब्रह्मको निर्गुण जो मानते हैं, उनको श्वाश्वत दु:खकी प्राप्ति होती है।

तेरहवे मन्त्रमें – नित्यानां नित्य: नित्यपदार्थोंको नित्यत्व देनेवाला चेतनानां चैतन: – समस्त चेतनोंको चैतन्य देनेवाला, अनेक जनोंको अपेक्षित पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाला है। यह परमात्मा परब्रह्म है कहा गया है।

इस प्रकार श्वेताश्वेततर उपनिषत् से यह सिद्ध होता है कि – परमात्मामें स्वाभाविक ज्ञानबल क्रियासे शक्तिमत्व, कारणत्व, सर्वकारणत्व, पदार्थांका स्वामित्व, ईश्वरेश्वरत्व, देवदेवत्व, पालक पालकत्व, सर्वजगन्नियामकत्व स्तुत्यत्व, क्रीडादि गुण धर्मवत्व, सर्वप्राणि वृत्तित्व, सर्वव्याप्तित्व, सर्वप्राणि नियामत्व, कर्मफलदातृत्व, सर्वप्राण्याश्रयत्व, सर्व साक्षित्व, ज्ञानाश्रयत्व, सर्ववशीत्व

कर्तृत्व, मोक्ष जनक ज्ञान विषयत्व, नित्यत्व प्रदत्व ज्ञान प्रदातृत्व आदि गुण हैं।

वा. व. - परमात्माके गुणानुवाद करनेवाली अन्य श्रुतियोंको कहिये।

वा. वि. - उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते । उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ, विद्युन्नक्षत्राणि, (छां. ८-१-३) इस श्रुतिमें परमात्मा मुक्त अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रोंका आश्रय है और अमुक्त अग्न्यादि देवताओंका आश्रय कहा गया है। परमात्मामें सूर्य चन्द्राद्याधारत्व सिद्ध होता है।

वा. व. - परमात्मामें विद्यमान धर्मोंको कथन करनेवाली अन्य श्रुतियोंको कहिये।

वा. वि. - 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य: (गीता १५/१८)

सर्वे वेदा: यत्पदमामनन्ति (का. १-२-१५) इत्यादि प्रमाणोंसे ब्रह्मका सर्ववेद प्रतिपाद्यत्व सिद्ध होता है, वेद अनंत है। अनंतवेदमें स्थित एक एक पद भी परमात्माके गुणोंका प्रतिपादन करता है। सभी वेद परमात्माके गुणोंका गान करते हैं।

वा. व. - उदाहरण के तौरपर और दो तीन श्रुतियोंको कहिये ?

कोर्ट - ऑर्डर - मिस्टर दास ! धर्मप्रतिपादक चार पाँच वेदवाक्योंको कह चुके है। और यह भी कह चुके हैं। सभी परमात्माके गुणोंका प्रतिपादन करते हैं। आगे उसका विचार करेंगे। अब वेदवाक्य कहनेकी आवश्यकता नहीं।

वा. व. - प्रभुकी ईच्छा !

वा. व. - आचार्यजी ! परब्रह्म के गुणोंको कहनेवाले सूत्रोंको कहिये।

वा. वि. - ''अथातोब्रह्मजिज्ञासा'' ''जन्माद्यस्ययत:'' ''शास्त्रयोनित्वात्'' आरंभ करके ''अनावृत्तिश्च शब्दात्'' ''अनावृत्ति: शब्दात्, अन्तिम सूत्र तक पाँचसौ चौसठ (५६४) सूत्र उस ब्रह्मके गुणोंका साक्षात् या परंपरासे कहते हैं।

वा. व. - सूत्र गुणोंका प्रतिपादन किस तरह करते हैं ?

वा. वि. - ''अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति बृहंति, बृह्मति इत्यादि श्रुतिके अनुसार ब्रह्म शब्द परमात्माके पूर्णत्वको, जगदुत्पादकत्वको कहते हैं। जन्माद्यस्ययत: सूत्र परब्रह्मके जगज्जन्मादि कारणत्वरूप गुणका बयान करता है। ''शास्त्रयोनित्वात्'' सूत्र शास्त्रजन्य ज्ञानविषयत्वका कथन करता है। अन्तस्तधर्मोपदेशात् ''आकाशस्तल्लिंगात्'' इत्यादि सूत्र अनेकों धर्मोंका प्रतिपादन करते हैं।

वा. व. - परब्रह्मके धर्म प्रतिपादक गीता वाक्योंको कहिये।

वा. वि. - ''सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तस्मृतिज्ञानमपोहमंच'' ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति, वेदैश्च सवैरहमेववेद्य:'' ''वेदान्त कृद्वेदविदेव चाहम् ॥ उत्तम: पुरूषस्त्वन्य: परमात्मेत्युप्रहत:'' १५/१७ ''यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर: (गीता १५/१७) चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं'' गामाविश्यच भूतानि धारयाम्यहमोजसा ''पुष्णामि चोषधी: सर्वा: (१५/१३) परंब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं भवान् ॥'' ''पुरूषं शाश्वतं देवमादिदेवं अजं विभुं । (१०-१२) आहुस्त्वां ऋषयस्सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यास: । स्वयं चैव

ब्रवीषि मे । सर्वमेतदृतंमन्ये यन्मां वदसि केशव (गी. १०-१४) इत्यादि गीता वाक्योंसे सर्वनियामकत्व, ज्ञानप्रतृदत्व, मोहदातृत्व, स्मरणदातृत्व, सकल वेद प्रतिपाद्यत्व, वेदान्त कर्तृत्व, समस्त वेद वेद्यत्व, सर्वोत्मत्व, सर्वाभिन्नत्व, लोकप्रवेशकर्तृत्व, लोकरक्षकत्व नाश रहितत्व, स्वामित्व, ब्राह्मणादिवर्ण सृष्टिकर्तृत्व, भूतलमें सर्वप्राणि धारणत्व, औषधिपोषकत्व, ब्रह्मत्व, तेजो रूपत्व, पवित्रत्व, पुरूषत्व, शश्वदेक प्रकारत्व, क्रीडादिगुणत्व, देवकारणत्व, उत्पत्तिराहित्य, व्याप्तत्व इत्यादि गुणोंका ज्ञान और गुणोंके सत्यत्वका बोध होता है।

वा. व. - ''परमात्मा गुणोंसे युक्त है' इस विषयमें अनुमान रूप प्रमाण कहिये ?

वा. वि. - ''परमात्मा पूर्णानन्द: जगत्प्रेरकत्वात्'' यह अनुमान परमात्माके पूर्णानन्दत्वका साधन करता है।

वा. व. - अनुमान का प्रयोग किसीभी तरहसे किया जा सकता है । परमात्मा पूर्णानन्द, चेतनत्वात् अस्मादिवत्, जैसे हम चेतन है पूर्णानंदरहित हैं, उसी तरह परमात्मारूप चेतन भी पूर्णानन्द रहित है। इस तरहका अनुमान किया सकता है। अत: अंनुमानको किस तरह प्रमाण मानते हैं ?

वा. वि. - ''अनुमान'' शब्दमें ''अनु'' अन्य प्रमाणोंके अनुसार ''मान'' यथार्थ ज्ञानको पैदा करता है। इस तरह अर्थ होता है। केवल अनुमान प्रमाण भले ही न हो, वेदादि प्रमाणोंके अनुकूल जो अनुमान है वह प्रमाण होगा। हमसे जो अनुमान दर्शाया गया उसके लिये ''कोह्येवान्यात् क: प्राप्यात् यदेष आकाशो आनन्दो नस्यात्'' इस श्रुतिका सहाय्य होनेके कारण यह अनुमान प्रमाण होगा।

वा. व. - प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये।

वा. वि. - ज्ञानियोंके प्रत्यक्षसे ईश्वरका कर्तृत्वादि गुणपूर्णत्व सिद्ध होता है।

वा. व. - ''ज्ञानियोंके लिये कर्तृत्वादि गुण प्रत्यक्ष है'' इस विषयको आप किस तरह कहेंगे ?

वा. वि: - वेदवाक्योंसे, गीताके वाक्योंसे, ज्ञानियोंको परब्रह्म कर्तृत्वादि गुणयुक्त है । ऐसा प्रत्यक्षानुभव है यह ज्ञात होता है।

वा. व. - वेद वाक्य कौनसा है ?

वा. वि. - ''यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूषं ब्रह्म योनिम्'' यह ज्ञात होता है कि ज्ञानी पुरूषको सुवर्णवर्णयुक्त, स्वामि, चतुर्मुख ब्रह्मके कारणके रूपमें देखता है। इससे यह ज्ञात होता है कि ज्ञानियोंको परब्रह्मके कर्तृत्वादि धर्मोका अपरोक्ष ज्ञान है।

वा. व. - गीता का वाक्य कौनसा है ?

वा. वि. - ''पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् (११-१६) द्रुष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं । लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ''इत्यादि बहुतसे गीता वाक्य, अनेक गुणोंसे युक्त परमात्माको अर्जुनने देखा, ऐसा कहते है। परमात्माका प्रत्यक्ष ज्ञानीको है यह सिद्ध होता है।

इस तरह वेद, सूत्र, गीता, प्रत्यक्ष अनुमान इन सबसे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त है।

सिविल सूट ४था इश्यू
प्रतिवादीसे पूछताछ

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

प्र. गं. - गंगाधर शास्त्री ।

कोर्ट - आप यह कहिये - भगवानके साक्षीसे कोर्टके सामने सत्य कहता हूँ।

प्र. गं. - भगवानको साक्षी बनाकर मैं कोर्टके सामने व्यावहारिक सत्य कहता हूँ।

प्र. व. - आप क्या कहते है ?

प्र. गं. - परब्रह्म निर्गुण है । (सकल धर्मरहित है) उस ब्रह्ममें सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्व, पालकत्व, मुक्तामुक्त सर्वनियामकत्व, सर्वस्वामित्व, सर्वस्वातंत्र्य, सर्व संहारकत्व, ज्ञानदातृत्व, सर्वोत्तमत्व, विचित्र शक्तिमत्व आदि गुण नहीं ऐसा हम कहते है ।

प्र. व. - परब्रह्मके निर्गुणत्वके विषयमें क्या प्रमाण है ?

प्र. गं. -. हम वैदिक है, वैदिकोंके लिये वेद, सूत्र, गीता ही आधार है ।

प्र. व. - ''ब्रह्म समस्त गुणरहित है'' ऐसा जो आपने कहा, उस विषयमें प्रमाणभूत श्रुतियोंको कहकर अर्थ कहिये ।

प्र. गं. - १) केवलो निर्गुणश्च (श्वे. ६-११) इस श्रुतिसे परब्रह्मके निर्गुणत्व के विषयमें प्रमाण उपलब्ध है ।

२) अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमरसमगंधम चक्षुष्कमश्रोत्रं अवागमनोऽतेजस्यमप्राणममुखममात्रमनंतरमबाह्यं, न तदश्नाति किंचन न तदाश्नाति किंचन (बृ. ३-४-४) अर्थ ब्रह्म ह्रस्व नहीं दीर्घ नहीं । इस चार प्रकार परिमाण रहित है । परिमाण रहित होनेसे ब्रह्म द्रव्य नहीं । ब्रह्म रक्तवर्णका नहीं । स्निग्ध नहीं, छायारूप नहीं, तमोरूप नहीं, वायुरूप नहीं, आकाशरूप नहीं, संगरूप नहीं, रसरूप नहीं, गंधरूप नहीं, चक्षुरूप नहीं अथवा चक्षुरहित है, श्रोत्ररहित है, वागीन्द्रियरूप नहीं, मनोरूप नहीं, तेजोरहित (अग्नि, सूर्यके प्रकाश युक्त नहीं), आध्यात्मिक वायुरूप नहीं, मुखरूप नहीं, अमात्रं = ज्ञानका कारण नहीं, भक्ष्य भी नहीं, अर्थात् ब्रह्म स्थूलत्वादि धर्मरहित होनेके कारण ब्रह्मका सर्वधर्मरहितत्व सिद्ध होता है ।

३) यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं, तदव्ययम् यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः । (मुंडक १-१-६) इस श्रुतिका अर्थ अद्रेश्यं - ब्रह्मज्ञानेंद्रियसे गम्य नहीं । (ज्ञानेंन्द्रियसे जाना नहीं जाता) अग्राह्यं - कर्मेन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं, अतः मूलपुरूष रहित है) अवर्ण - स्थूलत्व, शुक्लत्वादि धर्मरहित है, चक्षुरहित है, श्रोत्ररहित है, अपाणिपादं कर्मेन्द्रिय रहित है, नाशरहित है विभुं - विविध पदार्थोंके रूपमें है, सर्वगत है, अत्यंत सूक्ष्म है । हस्तपादादि अवयवोंका भी नाश नहीं होता ।

राजाका खजाना भले ही रिक्त हो जाये पर ब्रह्मका द्रव्यादि नाश नहीं होता । वह ब्रह्म ही अक्षर शब्दवाच्य है । सर्वप्राणियोंका कारण है, इस तरहके ब्रह्मको विवेंकी जानते हैं । इस तरह अर्थ होनेके

कारण यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म इन्द्रियोंसे ज्ञात होता है, वह ब्रह्म उत्पत्ति रहित, स्थूलत्वादि धर्मरहित है।

४) यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन: (यह तैत्तिरीयश्रुति III ९) यत: जिस आनन्दरूप परमात्मासे वाच: - शब्द मनसे निवृत्त होते हैं - (लौट आते हैं) ब्रह्मके वाचक नहीं होते। किसीभी शब्दसे ब्रह्म वाच्य नहीं होता।

दण्डी शब्द दण्डरूप द्रव्यसे युक्त पुरूषका बोध करता है। ''श्याम'' शब्द श्यामतागुणसे युक्त पुरूषका वाचक होता है। ''पाचक'' शब्द पचन करनेवाले (रसोई बनानेवालेका) बोधक है। इस तरह ब्रह्ममें द्रव्य गुणधर्म इत्यादिमें कोई धर्म होता तो, उस धर्म विशिष्ट बोधक शब्द ब्रह्म वाचक होता था। ब्रह्म शब्दसे अवाच्य है, यह कहना युक्त नहीं। इस श्रुतिसे ब्रह्मका अवाच्यत्व सिद्ध होता है। अवाच्यत्व के कथनसे ब्रह्ममें कोई धर्म सिद्ध नहीं होता।

५) 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथास्तं नित्यमगंधवच्च यत्, अनाद्यनंत महत्त परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते (कठोपनिषद् तृतीय वल्ली १५)' अर्थ - ब्रह्म शब्दगुण, स्पर्शगुण, रसगुण, गंधगुणरूप गुणोंसे रहित है। नाश रहित, नित्य है, कारण रहित है (परमात्माको जन्म देनेवाला कोई पदार्थ नहीं) अनंत = अन्तका अर्थ कार्यफल, ब्रह्मकार्य रहित है। महत्ततत्त्वसेभी विलक्षण है। इस तरहके ब्रह्मके ज्ञानसे मृत्युरूप संसारसे मुक्त होता है। इस श्रुतिसे भी ''ब्रह्म धर्मरहित है'' यह सिद्ध होता है।

प्र. व. - ६) शास्त्रीजी ! इस विषयमें गीताके श्लोकोंके प्रमाणतया उद्धरण करो।

प्र. गं. - निर्गुणं गुणभोक्तृच (गी. १३-१४) निर्गुण शब्द ब्रह्मके गुणराहित्य का बोध कराता है।

प्र. व. - ब्रह्मके निर्गुणत्वके विषयमें ब्रह्मसूत्रमें कोई आधार हो तो कहिये और अर्थ कहिये।

प्र. गं. - ''न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंग'' ''सर्वत्र हि'' (ब्रह्मसूत्र ३-२-११) प्रमाण है। इससे यह सिद्ध होता है कि सभी वेदान्त वाक्योंमें, ब्रह्मको निर्विशेष मानना चाहिये। अत: ब्रह्मको सगुणके रूपमें, सगुण निर्गुणकके रूपमें न मानना चाहिये। यह सिद्ध होता है।

जिरह (Cross examination)
''केवलो निर्गुणश्च'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - शास्त्रीजी ! क्या आपने शंकराचार्यके लिखे गीताभाष्यको पढा है ?

प्र. गं. - पढा है।

वा. व. - ''निर्गुणं गुणभोक्तृ च'' (गीता १३-१४) गीता श्लोकके ''निर्गुण पदका शंकराचार्यने क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. - ''निर्गुणं सत्वरजस्तमांसि'' गुणा: त्रैर्वर्जित'' अर्थात् सत्वगुण रजोगुण तमोगुण रहित, यह अर्थ किया है।

वा. व. - श्वेताश्वेतरोपनिषत्के शांकरभाष्यको पढा है ना ?

प्र. गं. – अच्छी तरहसे पढा है, पर उस भाष्यके लेखकके विषयमें विवाद है । क्या आद्यशंकराचार्यने किया है अथवा दूसरे शंकराचार्यने ?

वा. व. – किसीने क्यों न बनाया हो क्या आपको मान्य है या नहीं ?

प्र. गं. – मान्य ही है, उसमें क्या शक है ?

वा. व. – उपनिषतमें शंकराचार्यने ''निर्गुण'' पदका क्या अर्थ किया है ?

प्र. गं. – परब्रह्म सत्वगुणसे, रजोगुणसे और तमोगुणसे रहित है । गीताभाष्यके जैसे ही अर्थ किया है।

वा. व. – निर्गुणपदसे ब्रह्ममें क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – परब्रह्म सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे रहित है। यह सिद्ध होता है।

वा. व. – सकल धर्मरहित, सर्वगुण रहित ऐसा सिद्ध होगा ना यह सिद्ध नहीं होता।

प्र. गं. – ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि, किसी भी धर्मसे रहित है। यह सिद्ध नहीं होता।

वा. व. – शास्त्रीजी ''केवलो निर्गुणश्च'' श्रुतिका पूर्व वाक्य कौनसा है ?

प्र. गं. – ''एको देव: सर्वभूतेषु गूढ: । सर्वव्यापी सर्वभूतानामन्तरात्मा कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास साक्षीचेता वाक्य।

वा. व. – इस वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – एक: – अकेला (दूसरी वस्तु न होनेसे) देव: क्रीडादि गुण युक्त, सर्वभूतेषु गूढ: = सर्व प्राणियोंमें निवास करनेवाला सबमें व्याप्त यही नहीं, सभी प्राणियोंमें रहकर उनका नियमन करनेवाला कर्माध्यक्ष: – समस्त प्राणियोंमें रहकर उनका नियमन करनेवाला कर्माध्यक्ष: – समस्त प्राणियोंसे किये गये, किये जानेवाले कर्मोंके फल देनेवाला, सर्वभताधिवास: = सर्वभूतोंका (प्राणियोंका) आश्रय, साक्षी = सबकुछ देखनेवाला, केवल शुद्ध निर्गुण: = सत्व रज तमोगुणोंसे रहित ऐसा अर्थ है।

वा. व. – इस वाक्यसे परब्रह्मके किन गुणोंका ज्ञान होता है ?

प्र. गं. – परमात्माके क्रीडादिगुण, सर्वगतत्व, प्राणिनियामकत्व, कर्मफलदातृत्व, सर्वाश्रयत्व आदि गुणोंका ज्ञान होता है।

वा. व. – ''एकं'' पदके कितने अर्थ हैं ?

प्र. गं. – ''एके मुख्यान्यकेवला'' कोशके अनुसार, प्रमाणान्तरसेभी मुख्य, अन्य (भिन्न) केवल, असहाय आदि अर्थ होते हैं।

वा. व. – ''सर्वभूतान्तरात्मा आदि पदोंसे सर्व प्राणियोंका नियामक, सर्वव्यापक, कर्मफलदाता, सर्वाश्रय आदि कहे गये है। ब्रह्मातिरिक्त दूसरी वस्तु की विद्यमानता, ''एकोदेव'' श्रुतिसे सिद्ध होते हैं न ?

प्र. गं. – सही है। ब्रह्मातिरिक्त अन्य वस्तुओंकी सिद्धि होती है।

वा. व. – ''एक:'' पदका आप क्या अर्थ कहते हैं ?

प्र. गं. – एक: – अकेला, दूसरी वस्तु नहीं ऐसा अर्थ करते है।

वा. व. - श्रुतिके उत्तरपदोंसे दूसरी वस्तुका अस्तित्व सिद्ध होता है। इसी श्रुतिमें रहे ''एक:'' पदका दूसरी वस्तु नहीं ऐसा करना ''मे माता वंध्या'' ''मेरी मा बाँझ'' इस तरह विरूद्ध अर्थ होगा।

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - शास्त्रीजी ! तमीश्वराणां परमं महेश्वरं। तं देवतानां परमं च दैवतं। पतिं पतीनां परमं परस्तात्। यजामदेवं भुवनेशमीऽयं'' यह वाक्य किस उपनिषदमें हैं ?

प्र. गं. - यह वाक्य श्वेताश्वेतरोपनिषत् के ''केवलो निर्गुणश्च ११के मन्त्रके पूर्वमें सातवा मन्त्र है।

वा. व. - इस मन्त्रका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - 'ईश्वराणां - जगतके नियामकोंको विशेषरूपमें नियुक्त करता है। देवानां हि देव: = देवताओंको देवत्व देनेवाला जगतके समस्त पालकोंका पालक है। समस्त जगतका स्वामी है। पूरे विश्वसे स्तुत्य है। इस तरहके परमात्माके ज्ञानको प्राप्त करें।

वा. व. - इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - ब्रह्ममें सर्वनियामकत्व, पालकत्व, स्वामित्वादि गुणोंकी सिद्धि होती है।

वा. व. - ''एकोवशी निष्क्रियाणां बहूनां। एकं बीजं बहुधा य: करोति। तमात्मस्थं येनु पश्यन्ति धीरा: तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषा॥ (श्वे. ६-१२) इसका अर्थ क्या है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - परमात्मा सर्वसमर्थ है। अनेकपदार्थोंका निर्माण करता है। जो परमात्माको सर्वस्वामित्वादि गुणोंसे युक्त जानते हैं। उनको शाश्वत सुखानुभव का लाभ होता है। अन्योंको नहीं होता। परमात्मामें समस्त शक्ति है, पदार्थोंका निर्मातृत्व, ज्ञेयत्व, मोक्षदातृत्वादि गुणसिद्ध होते है।

वा. व. - नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानां (श्वे. ६-१-३) वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - परमात्मा नित्यपदार्थोंको नित्यत्व देता है, चेतनोंको चैतन्य देता है। इस प्रकार परमात्माके नित्यत्व प्रदातृत्व, चैतन्य प्रदातृत्व गुण सिद्ध होते है।

वा. व. - 'न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकं' (श्वे. ६-१३) इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

कोर्ट - मिस्टर दास ! एकही वाक्यको कितनी बार पूछते हैं ? दूसरे वाक्यके विचारको शुरू कीजिये। बस कीजिये इस वाक्य पर विचार।

वा. व. - धर्मराज प्रभु ! ब्रह्मके निर्गुणत्व सिद्ध करनेके लिये अद्वैती इस वाक्यको मुख्य मानते हैं और कदम कदमपर उसका प्रमाण देते हैं। इस वाक्यके पूर्वोत्तरमें परमात्मा का जगत्कारणत्व, पालकत्व आदि गुण कहेजानेके कारण और शंकराचार्यने सत्व, रजो, तमोगुणरहित ''ऐसा निर्गुण'' शब्दका अर्थ करनेके कारण यह श्रुति समस्त धर्मराहित्यका बोध नहीं करती, इस रहस्यको बतानेके लिये इस प्रकार विचार किया गया। अदालतकी आज्ञाके अनुसार इस विचारको समाप्त करते हैं। मौका आनेपर फिर विचार करनेकी अनुमति दें।

वा. व. - अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घंअलोहितंअस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गम रसमगधमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽते जस्कममप्राणममुखममात्र मनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदाश्नाति कश्चन (बृ. ३-३१८) यह श्रुति परमात्मामें समस्त धर्मोंका निराकरण करता है या

कुछ धर्मोंका निराकरण करता है।

प्र. गं. - स्थूलत्वादि कुछ धर्मोंका निराकरण करती है। श्रुति सभी धर्मोंका निषेध नहीं करती।

वा. व. - ''अस्थूलमनणु'' वाक्य किस उपनिषत् के किस प्रकरणमें है ?

प्र. गं. - बृहदाराण्योपनिषत् के अक्षरनामक परमात्मा प्रकरणमें हैं।

वा. व. - एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठत: एतस्य..... द्यावा पृथिव्यौं विधृते तिष्ठत: एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता: अहोरात्राण्यर्धमासा ऋतव: संवत्सरा....... एतस्य.... प्राचोन्यानद्य:. तिष्ठन्ति एतस्य...ददतो मनुष्या: आदि वाक्य किस प्रकरणमें हैं ?

प्र. गं. - अक्षर प्रकरणमें ''अस्थूलं'' वाक्यके उत्तरमें है।

वा. व. - ''एतस्य वा'' वाक्यका क्या अर्थ हैं ?

प्र. गं. - इस अक्षरनामक परमात्माके प्रशासनसे अर्थात् आदेशसे सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवीलोक तदभिमानी देवता, निमिष, मुहुर्त, अहोरात्रि अर्धमास, मास, ऋतु, संवत्सर इनके अभिमानी देवता आदि अक्षरनामक परमात्मासे विधृत हैं। (परमात्माने धारण किया है)

वा. व. - शंकराचार्यने अपने भाष्यमें ''एतस्य वा अक्षरस्य'' वाक्य किसके लिये प्रवृत्त हुवा है ऐसा कहते हैं ?

प्र. गं. - अक्षरनामक परमात्माके अस्तित्वके विषयमें प्रमाणको प्रस्थापित करनेके लिये इन वाक्योंकी प्रवृत्ति है ऐसा शंकराचार्यने अपने भाष्यमें कहा है।

प्र. गं. - १) ''जगद्व्यवस्था प्रशास्तृपूर्विका व्यवस्थात्वात् राज्यव्यवस्थावत्,'' जैसे राज्यमें व्यवस्था शासक राजासे होती है, वैसे ही जगद् की व्यवस्था दण्डधारीसे ही होती है। अत: जगतके लिये एक प्रशासकको मानना चाहिये। वह प्रशासक ही अक्षर नामक परमात्मा है। इस प्रकारके अनुमानको अक्षर नामक परमात्माके विषयमें ज्ञान होता हैं।

२) ''विमतौ विशिष्ट ज्ञानवता निर्मितौ प्रकाशकत्वात् दीपवत्'' जैसे दीप बुद्धिवान् पुरुषसे निर्माण किया वैसे ही जगतको प्रकाश देनेवाले सूर्यचन्द्रका निर्माण करनेवाले अक्षरनामक परमात्मा है यह अनुमान इससे प्रमाणित होता है।

३) ''विमतौ नियन्त्रृपूर्वको विशिष्ट चेष्टावत्वात् भृत्यवत् ज्यो एक सेवकका नियन्त्रण करनेवाला होता है। त्यों सूर्यचन्द्रादिकोंका नियन्त्रण कोई है, इस अनुमानसे अक्षरनामक परमात्मा सिद्ध होता है।

४) विमते प्रयत्नवता विधृते अस्वातंत्र्यात् हस्तन्यस्त पाषाणवत् जिस तरह पत्थरको प्रयत्नपूर्वक हाथमें धारण करते हैं, उसी तरह द्युलोक, पृथिवीलोक का धारण भी प्रयत्नशील पुरूषने किया है। यह अनुमान सूचित होता है। प्रयत्नसे धारण करनेवाला अक्षरनामक परमात्मा ही है। जगतका नियमन, धारण, ज्ञान प्रयत्न आदि गुणोंसे युक्त परमात्मा सिद्ध होता है। इस तरह शंकराचार्यने लिखा है।

वा. व. - इस वाक्यसे अक्षरनामक परमात्माके कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. - नियन्त्रत्व, धारकत्व, ज्ञान, प्रयत्न आदि गुण सिद्ध होते है।

वा. व. - 'तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यद्रष्टं द्रष्टृ श्रोतृ मन्तृ, विज्ञातृ एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्गि आकाश ओतश्च प्रोतश्च'' इस वाक्यका अर्थ कहकर इससे क्या सिद्ध होता है ? कहिये।

प्र. गं. - अक्षरनामक परमात्मा द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता है। संपूर्ण विश्वका आधार है। यह अर्थ है। अक्षरनामक परमात्मामें द्रष्टत्व, श्रोतृत्व, मंत्रत्व, विज्ञात्व गुण सिद्ध होते हैं।

वा. व. - इस उत्तर वाक्यके अनुसार अक्षरनामक परमात्माका धारकत्व, ज्ञान, प्रयत्न, द्रष्टुत्व, श्रोतृत्व, नियामकत्व आदि धर्म कहे गये है । इस स्थितिमें ''अस्थुलमनणु'' श्रुति स्थूलत्वादि धर्म निषेध करती है, इसलिये परमात्माको धर्मरहित कहना, उस विषयमें प्रमाण के रूपमें श्रुतिका उदाहरण किस तरह युक्त होगा ?

प्र. गं. - (उत्तर नंहीं)

वा. व. - अणोरणीयान् महतो महीयान् (का. १-२-२०) ''एषमें आत्मा अन्तहृदयेअणीयान् व्रीहेर्वायवाद्वा, सर्षपाद्वा, शामकाद्वा, शामाकतडुंलद्वैषमे आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाद्वाज्याया दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य: ।। (छांदोग्य ३-१४-३) इसका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - परमात्मा अत्यंत अणु है, अत्यंत स्थूल है। यही परमात्मा मेरे हृदयमें व्रीहीयवादिसे भी अणु है। और पृथिव्यादि लोकोंसे महान् स्थूल है।

वा. व. - इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - परमात्मामें स्थूलत्व, अणुत्वरूप धर्म है। यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''यस्य ब्रह्मच क्षत्रंच उभे भवत ओदन: । मृत्युर्यस्योपसेचनं'' (काठक) यह वाक्य किस धर्मका बोध कराता है।

प्र. गं. - परमात्माके सर्वभक्षण कर्तृत्वका ज्ञान कराता है।

वा. वं. - इस प्रकार ''अणोरणीयान्'' आदि बहुतसी श्रुतियाँ परमात्माके स्थूलत्वादि धर्मोका बयान करते है। ''अस्थूलमनणु'' श्रुति धर्मोका निषेध करती है। यह कहना विरूद्ध होगा कि नहीं ?

प्र. गं. - ''अणोरणीयान्'' श्रुति व्यावहारिक स्थूलत्वादि धर्मोका निर्देश करती है । ''अस्थूलमनणु'' श्रुति पारमार्थिक स्थूलत्वादिका निषेध करती है। अत: कोई विरोध नहीं।

कोर्ट - प्रमाण अपने अपने विषयोंको तात्विकरूपमें ही पारमार्थिक सत्यके रूपमें बोध कराते हैं, व्यावहारिक रूपमें ज्ञान नहीं कराते। इस विषयमेंभी प्रमाण व्यावहारिक वस्तुओंका बोध कराते हैं। और अप्रामाणिक कहना एक ही है। इस विषयमें आपके ग्रंथही आधारभूत हैं। इसके विरूद्ध अनेकों बार उसी विषयको न कहकर दूसरी कोई युक्ति हो तो कहिये।

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

३ यत्तदद्देश्यं श्रुतिपर विचार

वा. व. - ''यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रवर्णमच क्षुश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं ।

तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा: ॥ (मुंडक १-१-६) वाक्य अद्रश्यत्वादि धर्मोंका मात्र निषेध करता है या सर्वज्ञत्वादि समस्त धर्मोंका निषेध करता है ?

प्र. गं. - द्रश्यत्वादि कुछ धर्मोंका निषेध करता है। यह वाक्य समस्त धर्मोंका निषेध नहीं करता।

वा. व. - इस वाक्यगत ''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्म'' ''अव्ययं भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा'' इस वाक्यसे किन धर्मोंका बोध होता है।

प्र. गं. - नित्यत्व, विभुत्व, सूक्ष्मत्व, भूतकारणत्व, द्वश्यत्व आदि धर्मोंका ज्ञान होता है।

वा. व. - इस वाक्यके आगे ''तथाक्षरात्संभवतीह विश्वं (मुं. १-१-७) तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्तमभिजायते, य: सर्वज्ञ: सर्ववित् यस्यज्ञानमयं तप: । तस्मादेत् ब्रह्म नामरूपमन्नं जायते (मुंडक) इन वाक्योंका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. - अक्षरनामक परमात्मासे जगत् पैदा होता है। परमात्माने सृष्टि करनेका विचार किया। बादमें परमात्मासे अन्न (पृथिवी) उत्पन्न हुवा। वह परमात्मा सर्वज्ञ है। सामान्यत: विशेषत: समस्त पदार्थोंको जानता है। परमात्माका तप ज्ञानरूप है। उस परमात्मासे नामात्मक प्रपंच, अन्न पैदा होते है।

वा. व. - इस वाक्यसे ब्रह्मके कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. - परब्रह्ममें जगत्कर्तृत्व, सर्वज्ञत्व आदि गुण सिद्ध होते हैं।

वा. व. - ''यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूषं ब्रह्मयोनिम्'' इस (३-१-३) मुंडक वाक्यका अर्थ क्या है ? इस वाक्यसे ब्रह्मके कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. - परमात्मा सोनेके रंगका है। जगत्कर्ता, जगतका स्वामी, चतुर्मुख ब्रह्माका भी कारण आदि गुणोंसे युक्त हैं। इस तरहके भगवानको जो देखता है उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस वाक्यसे सुवर्णरूपके जैसे रूप, जगत्कर्तृत्व, स्वामित्व, चतुर्मुख कारणत्व आदि गुण सिद्ध होते हैं।

वा. व. - ''यत्तद्रेश्यमग्राह्यं'' वाक्यसे द्वश्यत्व, नित्यत्व, विभूत्व, सूक्ष्मत्व, भूत कारणत्व, अव्ययत्व आदि धर्म ज्ञात होते हैं। और उत्तम वाक्यसेभी जगत्कर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, सुवर्णवर्णत्व, ईशत्व, चतुर्मुख कारणत्व आदि अनेक धर्म ज्ञात होते है। इस स्थितिमें ब्रह्ममें कोई धर्म नहीं। ब्रह्म निर्गुण इस विषयमें यह वाक्य किस तरह प्रमाण होगा ?

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

(४) यतो वाचो निवर्तन्ते विचार

वा. व. - शास्त्रीजी ! 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह 'इस वाक्यके आधारपर आप यह कहते हैं कि ब्रह्म अवाच्य है। इस वाक्यसे ब्रह्मही अवाच्य है ऐसा क्यों सिद्ध हो ? शशविषाण (खरगोश का सींग भी) अवाच्य क्यों न हो ?

प्र. गं. - ''यतो वाचो निर्वतन्ते'' वाक्यस्थ ''यत:'' पद ब्रह्मबोधक होनेके कारण, यत: =

३०९ – सिविल सूट (४)

जिस ब्रह्मसे वाचः = शब्द लौट वापस आते हैं। यह अर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म अवाच्य है। ''यतः'' शब्द शशविषाणका बोधक नहीं हो सकता। अतः शशविषाणसे शब्द लौटकर वापस आते है यह अर्थ नहीं होगा। इसी कारण शशविषाणका अवाच्यत्व सिद्ध नहीं होगा।

वा. व. – ''यतः'' सर्वनाम है, इस सर्वनाम पदसे शशविषाण क्यों ग्राह्य नहीं होगा ?

प्र. गं. – यतः इस सर्वनाम प्रस्तुत बुद्धिस्थ विषयको ही लेना चाहिये। पूर्वमें ब्रह्मका निरूपण किया गया है, उस विषयमें प्रमाणके रूपमें ''तदर्प्येषश्लोको भवति'', ''यतो वाचो निवर्तन्ते'', ''अप्राप्य मनसा सह'', ''आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्'', ''यतः पदके उत्तरमें ब्रह्म शब्द होनेके कारण ''यतः'' पदसे ब्रह्मको ही ग्रहण करना चाहिये। शशविषाण का ग्रहण नहीं कर सकते।

वा. व. – ''यतः'' पद ब्रह्मका बोध कराता है न ? ब्रह्मका बोध किये विना वापस लौटते नहीं न ?

प्र. गं. – ''यतः'' पद ''ब्रह्म'' पद ब्रह्मबोध किस तरह करेगा ?

वा. व. – ''भीषादस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषादस्मादग्निश्चेद्रंस्य मृत्युर्धावति पंचमः (त ५-७) मंत्रका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – अस्मात् – परमात्माके भयसे वायु अपना काम करता है। सूर्य, अग्नि, यम आदि परमात्माके भयसे ही अपने अपने काम करते रहते है।

वा. व. – इस वाक्यसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. गं. – परब्रह्म परमात्मा अग्न्यादिकोंका भयकारण है यह सिद्ध होता है।

वा. व. – ''अस्मात्'' पद किसका बोध कराता है ?

प्र. गं. – ब्रह्मका बोध कराता है।

वा. व. – ''ब्रह्मविदाप्नोति परं......सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म '' वाक्यका अर्थ क्या है ?

प्र. गं. – जो परब्रह्मको जानते हैं, वे परब्रह्मको प्राप्त करते हैं। वह परब्रह्म सत्य है, ज्ञानरूप है, अपरिच्छिन् है।

वा. व. – इससे परब्रह्मके कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. – ज्ञेयत्व, प्राप्यत्व, सत्यत्व, ज्ञानरूपत्व, अपरिच्छिन्नत्व सिद्ध होते है।

वा. व. – श्रुतिस्थ ''ब्रह्मपद'' किसका निर्देश करती है ?

प्र. गं. – परब्रह्मका निर्देश करती है।

वा. व. – इस प्रकार अनेकों शब्द ब्रह्मका बोध करते है। तैत्तरीय उपनिषत् के अनेक वाक्योंसे ब्रह्मके धर्म सिद्ध होते हुवे भी, ब्रह्मनिर्गुण है। (सकल धर्मरहित है) अवाच्य है, कहना पूर्वोत्तर वाक्योंका विरूद्ध होगा। यह वाक्य ब्रह्मके निर्गुणके विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

प्र. गं. – (उत्तर नहीं)

(५) ''अशब्दमस्पर्श'' श्रुतिपर विचार

वा. व. - ''अशब्दमस्पर्श'' वाक्यसे ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि समस्त धर्मरहित सिद्ध होता है ? अथवा कुछ धर्मोसे रहित सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - शब्द, स्पर्श, गंध आदि कुछ धर्मोसे रहित सिद्ध होता है, पर सर्वज्ञत्वादि सकल धर्मरहित सिद्ध नहीं होता।

वा. व. - इस वाक्यस्थ ''महत: परं ध्रुवं नित्यं'' वाक्यसे कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. - महत्तत्वसे भी उत्तमत्व, ध्रुवत्व, नित्यत्व आदि गुण सिद्ध होते हैं।

वा. व. - ''अणोरणीयान् महतो महीयान्'' ''ईशानो भूतभव्यस्य यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति तं देवास्सर्वेर्पितास्तदुनात्येति कश्चन'' एकोवशी सर्वभूतांतरात्मा एकं रूपं बहुधा य: करोति'' ''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां'' ''अंगुष्ठमात्र: पुरूषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्ट:'' कठोपनिषत् के इन वाक्यसे किन गुणोंका ज्ञान होता है ?

प्र. गं. - अणुत्व, महत्व, पूर्वमें स्थित भविष्यमें होनेवाले जगतको स्वामित्व, सूर्योदय, सूर्यास्तका कारणत्व, सर्वदेव धारकत्व, सर्वस्वामित्व, सर्वप्राणि नियामकत्व, नानाविधरूप कर्तृत्व, नित्यप्रदत्व, चैतन्यदायकत्व सबके हृदयमें रहकर नियमन कर्तृत्व आदि ब्रह्ममें विद्यमान गुणोंका ज्ञान होता है।

वा. व. - 'अशब्दमस्पर्श' वाक्यमें उत्कृष्ठत्वादि धर्म कहे गये है और इस वाक्यके पूर्वोत्तर वाक्यमें भी अनेक धर्म उक्त हैं। इस स्थितिमें ब्रह्ममें अप्रयोजक धर्म न होनेसे ब्रह्मको निर्गुण कहना, सकल गुणरहित के विषयमें श्रुतिको प्रमाणित करना कैसे युक्त होगा ?

(६) निर्गुणं गुणभोक्तृच विचार

वा. व. - शंकराचार्यने अपने गीताभाष्यमें 'निर्गुण' पदका अर्थ क्या किया है ?

प्र. गं. - ''गुणा: सत्वरजस्तमांसि तै: रहितं निर्गुण'' सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुणोंसे रहित ऐसा अर्थ किया है।

वा. व. - ''गीतामें भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च'' (गीता ८-१५) ''ज्योतिषामपि तज्ज्योति: तमस: परमुच्यते'' (गीता ८-१७) ''अहं सर्वस्य प्रभव:'' ''मत्तस्मृतिर्ज्ञानमपहोनंच'' (गीता १५) इत्यादि वाक्योंसे परमात्माके कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

प्र. गं. - रक्षणकर्तृत्व, नाशकर्तृत्व, जगत्कारणत्व, प्रकाशदातृत्व, तम: परत्व, ज्ञानदातृत्व, अज्ञान दातृत्व, नियामकत्व आदि गुण सिद्ध होते है।

वा. व. - इस तरह गीताके वाक्योंसे अनेक गुणोंकी सिद्धि होते हुए भी, और शंकराचार्यके निर्गुणपदका अर्थ सत्व रज तमोगुण रहित ऐसा अर्थ करनेपर आपने निर्गुण पदका अर्थ समस्त गुणरहित इस विषयमें क्यों उद्धरण किया ?

प्र. गं. - (उत्तर नहीं)

(७) ''न स्थानतोपि'' सूत्रपर विचार

प्र. गं. - मायलॉर्ड ! हमारे पक्षमें महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित त्र्यंबक शास्त्री का गवाह है। वे इस विषयको अच्छी तरहसे जानते हैं। उनसे पूछताछ करनेकी अनुमति आप दें।

कोर्ट - मिस्टर शर्मा ! वैसे ही हो।

प्र. व. - (बारमें आये त्र्यंबक शास्त्रीसे) महामहोपाध्याय शास्त्रीजी ! क्या ब्रह्म निर्गुण (समस्त गुण रहित) है या सगुण (गुणयुक्त)है ?

प्र. सा. - साक्षात् भगवान् नारायणने ही ''न स्थानतोऽपि परस्योभय लिंगं सर्वत्र हि'' (ब्र. सू. ३-२-२) सूत्रमें सगुण ब्रह्म प्रतिपादक और निर्गुणब्रह्म प्रतिपादक वाक्योंपर विचार करके ब्रह्म निर्गुण ही है। इस तरह निर्णय करनेसे ब्रह्म निर्गुण ही है, इसमें क्या विचार होगा ?

प्र. व. - ''न स्थानतोपि'' सूत्रका अर्थ क्या है ?

प्र. सा. - ''सर्वकर्ता माँ सर्वकाम:, सर्वगन्ध:, सर्वरस: (छां. ३-१४-७) आदि वाक्य ब्रह्ममें सर्वकामत्वादि गुणोंका कथन करते हैं। ''अस्थूलमनणु'' (बृ. ३-८-७) इत्यादि वाक्य ब्रह्मको निर्गुण कहते हैं। इस तरहकी विप्रतिपत्ति होनेपर क्या ब्रह्मको सगुण समझे या निर्गुण समझे ? इस प्रकार संशय आनेपर दो प्रकारकी श्रुतियाँ हैं। दोनों श्रुतियाँ प्रमाण है। ब्रह्मको सगुण और निर्गुण दोनों समझे। इस प्रकार पूर्वपक्ष प्राप्त हुवा। ''सविशेषत्व, निर्विशेषत्व दोनों धर्म परस्पर विरूद्ध हैं, ब्रह्ममें दोनों प्रकारके धर्मोको स्वीकार नहीं कर सकते। पृथिव्यादि रूप उपाधिसे भी विरूद्ध धर्म युक्त नहीं होते। ब्रह्मको एक ही प्रकार समझना चाहिये। ''अशब्दमस्पर्श'' आदि वेदान्त वाक्य ब्रह्मको निर्विशेष कहते है। ब्रह्मको निर्विशेष ही मानना चाहिये।

प्र. गं. - इस सूत्रसे क्या सिद्ध होता है ?

प्र. सा. - ब्रह्म निर्विशेष है, केवल इस सूत्रसे नहीं ''अशब्दमस्पर्श'' इत्यादि वेदवाक्योसे भी ब्रह्मका निर्विशेषत्व सिद्ध होता है।

क्रॉस एक्जामिनेशन्

वा. व. - महामहोपाध्याय शास्त्रीजी ! ब्रह्ममें सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्व, पालकत्व, मुक्तामुक्त नियामकत्व, सर्वस्वामित्व, सर्वसंहारकत्व, ज्ञानदातृत्व, सर्वोत्तमत्व, विचित्रशक्तिमत्व, चन्द्रसूर्याद्यधीनत्व, सर्वप्रकाशत्व, कर्मफल दातृत्व, सर्वाश्रयत्व, साक्षद्द्रष्टत्व आदि गुण प्रतिपादक वेदवाक्य हैं या नहीं ? इस विषयमें पूर्वमें विचार किया गया है, उस रिकॉर्डको देखकर कहिये।

प्र. सा.. - रिकॉर्डोको देखनेकी जरूरत नहीं, ब्रह्ममें सार्वज्ञयादि गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले वेदवाक्य मौजूद है।

वा. व. - सर्वज्ञत्वादि गुण प्रतिपादन करनेवाले वेदवाक्योंके होनेपर आप ब्रह्मको निर्गुण क्यों

कहते हैं ?

प्र. सा. - धर्म निषेधक वाक्य भी वेदमें हैं, इसलिये ब्रह्मको निर्गुण कहते हैं।

वा. व. - वेदवाक्योंसे जिन गुणोंका निषेध किया गया है उन गुणोंका स्वीकार मत कीजिये। जिन गुणोंका निषेध नहीं हुवा है, उन गुणोंके को स्वीकार करनेमें क्या बाधा है ?

प्र. सा. - सर्वज्ञत्वादि गुणोंको भी निषेध करनेवाले वाक्य भी है।

वा. व. - उन वाक्योंको कहिये।

प्र. सा. - ''तत्त्वमसि (छां.) केवलो निर्गुणच (श्वेताश्वेतर) नेहनानास्ति किंचन (बृ. और कठ) आदि वाक्य।

वा. व. - ''तत्त्वमसि'' वाक्यमें गुण निषेध करनेवाला पद नहीं। आप किस तरह कहते हैं कि इस वाक्यसे ब्रह्मके गुणोंका निषेध किया गया है ?

प्र. सा. - ''तत्त्वमसि'' वाक्यसे जीवब्रह्मके अभेदका बोध होता है। अगर ब्रह्ममें सर्वज्ञत्वादि गुण होते तो, अल्पज्ञ जीवके साथ ब्रह्मका ऐक्य संभव नहीं होगा। अत: यह सिद्ध होता है कि ब्रह्ममें तीनों कालोंमें गुण नहीं होते।

वा. व. - जीवके साथ ब्रह्मका ऐक्य सिद्ध हुवे बिना, ब्रह्मके गुण अप्रामाणिक नहीं होंगे। ब्रह्मके गुणोंकी अप्रमाणिकता की सिद्धि होनेतक जीव ब्रह्मकी एकता सिद्धि नहीं होगी। इस प्रकार अन्योन्याश्रय रूप दोष आयेगा। ''तत्त्वमसि'' वाक्यसे ब्रह्मगत गुण अप्रामाणिक नहीं होंगे।

कोर्ट - इस विषयपर विचार तीसरे इश्श्यूमें किया गया है। अत: दूसरा विचार हो।

वा. व. - वैसे ही होगा महाप्रभो ! प्रतिवादिने ही तत्त्वमसि वाक्यका उद्धरण किया है, उसपर विचार करनेकी नौबत आयी। दूसरा कुछ विचार करेंगे। शास्त्रीजी ! नेहनानास्ति किंचन वाक्यका तात्पर्य क्या है ?

प्र. सा. - इह - इस ब्रह्ममें, नाना किंचन = कोई भी धर्म (गुण) नहीं। यही नेहनानास्ति किंचन श्रुतिका तात्पर्य है।

वा. व. - नेहनानास्ति किंचन वाक्यके पहले और बादमें विद्यमान वाक्योंसे, ''मनसैवेदमाप्तव्यं'' ''मनसैवानुद्रष्टव्यं'' (ब्र.) सर्वस्येशानं, सर्वस्याधिपतिः भूतपालः ईशानो भूतभव्यस्य वाक्योंसे परब्रह्मका ज्ञेयत्व, सर्वनियामकत्व, सर्वाधिपतित्व, भूतपालकत्व, समस्त विश्वका स्वामित्व, आदि गुण सिद्ध होते हैं।

प्र. सा. - ये वाक्य सर्वस्वामित्व, सर्वनियामकत्व आदि का बोध कराते हैं।

वा. व. - ''निर्गुणं'' पदका, शंकराचार्यने गीताभाष्यमें उपनिषद्भाष्यमें क्या अर्थ किया है ?

प्र. सा. - सत्वरज तमोगुण रहित ही निर्गुण है यही शंकराचार्यका कथन है।

वा. व. - शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार तो ब्रह्म समस्त धर्मरहित यह सिद्ध नहीं होगा न ?

प्र. सा. - ''ब्रह्म निर्गुण है'' यह वेदोंसे, गीताके वाक्योंसे सिद्ध होता है या नहीं ? इसपर विचार चला है। शंकराचार्यके भाष्यसे ''निर्गुण'' सिद्ध होता है नहीं यह विचार नहीं। शंकराचार्यके भाष्यसे निर्गुण सिद्ध होनेपरभी, वेदोंसे, गीतासे, निर्गुण पदसे समस्त गुण रहित है। इस तरह सिद्ध होनेमें

कोई आपत्ति नहीं।

वा. व. - आप शंकराचार्यके भाष्यको मानते हैं या नहीं ?

प्र. सा. - इस सवाल का जवाब हम नहीं देंगे।

वा. व. - ''एकोदेव: सर्वभूतेषु गूढ:...... केवलो निर्गुणश्च (श्वे) इस वाक्यसे भी पूर्वोत्तर वाक्योंमें से भी ब्रह्मके क्रीडादिमत्व, सर्वगतत्व, प्राणिनियामकत्व, कर्मफलदातृत्व, सर्वाश्रयत्व, सर्वनियामकत्व, पालकत्व, स्वामित्व, पदार्थ निर्माण कर्तृत्व आदि गुण ज्ञात होते हैं।

प्र. सा. - इस वाक्यसे स्पष्टरूपमें इन गुणोंका ज्ञान होता है।

वा. व. - इस प्रकार वेदवाक्योंसे अनेक गुण सिद्ध होते हैं। आप परब्रह्मको निर्गुण क्यों कहते हैं ?

प्र. सा. - ''निर्गुण'' पदसे गुणोंका अभाव ज्ञात होता है और ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्यसे गुणोंका निषेध किया जाता है।

वा. व. - नतदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुन: । सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं। यदेभिस्यात् त्रिभिर्गुणै: (गीता १२-४०) समस्त प्राणिभी सत्वरजतमोगुणोंसे बद्ध है। ''मामेभ्य: पदमव्यम् (७-१४) आदि वाक्योंसे यह उक्त है । शंकराचार्यने वैसे ही अर्थ किया है इसलिये भी, गुण शब्दका प्रयोग ''सत्वरजोगुण तमोगुण'' में होनेसे निर्गुण पदका ''सत्वरजोगुण तमो गुणों रहित'' इस अर्थको छोडकर, सकल गुणरहित यह सर्वप्रमाण विरूद्ध होनेके कारण ब्रह्मको सकल गुणरहित कहना युक्ति विरूद्ध होगा । ''नेहनानास्ति किंचन'' वाक्यमें गुणनिषेधक पद नहीं । ''ईशानो भूतभव्यस्य'' ''सर्वस्य वशी'' इत्यादि पूर्वोत्तर वाक्योंसे स्वामित्वादि अनेक गुण ज्ञात होते हैं। ब्रह्ममें गुण नहीं ऐसा कहना पूर्वोत्तर अनेक वाक्योंके विरूद्ध होगा।

प्र. सा. - आकाशमें दिखाई देनेवाला नैल्य (नीलारंग) आरोपित है और रूपाभाव सत्य है। जिस तरह आकाश नीलरूप युक्त है यह कहना, रूप नहीं ऐसा कहना विरोधी नहीं होते, उसी तरह ब्रह्ममें दीखनेवाले सर्वज्ञत्वादि गुण आरोपित है । धर्माभाव सत्य है । सर्वज्ञत्वादिगुण ब्रह्ममें हैं, सर्वज्ञत्वादि गुण नहीं इस तरह वेदोंका कहना विरूद्ध नहीं होगा।

वा. व. - शास्त्रीजी ! आरोपित (भ्रमसे दीखनेवाला) आरोपित होनेके कारण, चाँदीको (आरोपित) बोध करनेवाला प्रत्यक्ष अप्रमाण होता है, सर्वज्ञत्वादि गुणोंको आरोपित कहेंगे तो आरोपित गुण मिथ्या होनेसे, सर्वज्ञत्वादि गुणोंका प्रतिपाद करनेवाले वेद अप्रमाण होंगे । क्या आप भी बौद्धकी तरह वेदोंका अप्राप्य मानेंगे।

प्र. सा. - बौद्ध समस्त वेदोंके अप्रामाण्यका स्वीकार करते हैं। हम केवल सर्वज्ञत्वादि गुण प्रतिपादक वेदोंके अप्रामाण्यका स्वीकार करते हैं। ब्रह्म प्रतिपादक वेदभागको प्रमाण मानते हैं। अत: हम बौद्धोंकी तरह समस्त वेदको अप्रमाण नहीं कहते।

व. वा. - अद्वैतमतके अनुसार ब्रह्म ज्ञेय है या अज्ञेय है ?

प्र. सा. - ब्रह्म अज्ञेय ही है।

वा. व. - अगर ब्रह्म अज्ञेय है तो वेदोंसे जाना नहीं जाता न ?

प्र. गं. - ब्रह्म वेदोंसे ज्ञेय नहीं होता।

वा. व. - अगर ब्रह्म अज्ञेय है नहीं तो, ब्रह्म प्रतिपादक वेदको प्रमाण मानते हैं, ऐसे जो आपने पूर्वमें कहा व्याहति दोष (पूर्वोत्तरविरोध) रूप दोष होगा।

प्र. सा. - ''अनवस्थादयो दोषासत्तां निघ्नन्ति वस्तुनः। अद्वैतिनां ते सुहृदः प्रपंचे तत् प्रसंजकाः॥'' हमारे पूर्वाचार्यने कहा है, इसलिये व्याहत्यादि हमारे लिये मान्य हैं।

वा. व. - लौकिक, वैदिकलोग, व्याहत्यादिदोषोंको दूर रखनेके लिये बडी महेनत करते हैं। इस प्रकारके दोषोंको मानना क्या अयुक्त नहीं होगा ?

प्र. सा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ब्रह्म तो वेदप्रतिपाद्य नहीं, वेदमें उक्त जगतको आरोपित कहेंगे तो वेद अप्रमाण ही होगा न ?

प्र. सा. - वास्तविकरूपमें विचार करनेपर ''वेदाः अवेदाः, देवाः, न देवाः (बृ) आदि वाक्योंसे वेद असत्य ही है। ''न वेदा न यज्ञाः'' शंकराचार्यने वेदको असत्य ही कहा है। ''सति कुड्ये चित्रकर्म'' न्यायके अनुसार वेद होता तो उसके प्रामाण्य या अप्रामाण्यके विषयमें विचार कर सकते थे। जैसे कुछ भी नहीं, वैसे वेद भी नहीं। वेदका प्रामाण्य सर्वथा नहीं।

वा. व. - वेद नहीं तो आपका किससे सिद्ध होगा ?

प्र. सा. - दो पदार्थ हैं एक जगत् दूसरा ब्रह्म। हमारे मतमें जगत् असत्य हैं। जगतके असत्यत्व सिद्ध करनेके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं। ब्रह्म स्वतसिद्ध है (स्वप्रकाश है)। प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होता। अतं एव हमारे मतमें प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं। (हमें प्रमाणोंकी अपेक्षा नहीं)

वा. व. - ''शून्यं सत्यं, जगन्मिथ्या। हमारे मतमें जगत् मिथ्या है। मिथ्यात्वकी सिद्धि करनेके लिये प्रमाणोंकी अपेक्षा नहीं। शून्य स्वप्रकाश है। (स्वप्रकाश का अर्थ है प्रमाणसे ज्ञेय नहीं) इस तरहकी स्थितिके कारण हमें प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं। आपके जैसे बौद्ध कहेंगे तो, क्या आप उनके मतका खण्डन करेंगे या नहीं ? या मौन धारण करेंगे।

प्र. सा. - ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' कहनेवाले हमारे अद्वैतमतमें ब्रह्मातिरिक्त बौद्धमतका खण्डन, अद्वैतमतकी स्थापना और अद्वैतमतका ये वाद सभी मिथ्या हैं। (तीनों कालोंमें नहीं) इसलिये बौद्धमतके खण्डनके लिये, अद्वैतमतकी स्थापनाके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं। खण्डनमण्डन आदि समस्त व्यवहार द्वैतावस्थामें करना होगा। हम अद्वैत निष्ठ हैं, आपके साथ उत्तर प्रत्युत्तर नहीं चलायेंगे।

कोर्ट - शास्त्रीजी ! अगर आप अद्वैतनिष्ठ हैं तो यहाँ क्यों आये ? ब्रह्मके निर्गुणत्वकी सिद्धि के लिये क्यों जमीन आसमान एक कर रहे हो ? यज्ञ, स्नान, संध्यावन्दन आदि क्यों करते हों ?

प्र. सा. - हमारे मतमें वास्तवमें स्नान, संध्या, यज्ञ आदिका अनुष्ठान करना आवश्यक नहीं। हम इस समय ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म भावरूप मोक्ष नये सिरेसे आनेवाला नहीं। बन्ध, अज्ञान ये सभी होते तो चले जाते। अज्ञान मिथ्या ही है। इसलिये ये जानेवाले नहीं। ब्रह्मको निर्गुण कहना, निर्गुणके रूपमें कहना, सब कुछ असत्य ही है। उसकी सिद्धिके लिये प्रयत्न नहीं करते। सबकुछ भ्रम है।

३१५ - सिविल सूट (४)

निर्गुण ब्रह्मकी सिद्धिके हमारे प्रयत्न, स्नान, संध्या आदिका अनुष्ठान करते हैं। ऐसा जो आप देखते हैं वह भी मिथ्या है। हमारा अनुष्ठानभी मिथ्या ही है।

कोर्ट - क्या आप नास्तिक हैं ?

प्र. सा. - क्या आप नास्तिक हैं ? यह प्रश्न और हम नास्तिक नहीं यह उत्तर दोनों मिथ्या ही हैं।

कोर्ट - मिस्टर शर्मा ! क्या आपने शास्त्रीका कहना सुना ? वे कहते हैं कि सबकुछ मिथ्या है। इस साक्षीसे आप क्या करेंगे ?

प्र. व. - प्रभो ! शास्त्रीजीका कहना सुना। वे कहते हैं कि अद्वैतमतका तत्त्व ऐसा ही है। उनकी बात वैसे ही रहे। विचार् करनेवाले न्यायाधीश आप हैं। वेद, सूत्र, गीतारूप प्रस्थानत्रयमें जो कहा गया है, उसे देखकर निर्णय करना चाहिये। प्रतिवादि गंगाधरशास्त्रीसे कुछ पूछना है, आपकी अनुमति चाहिये।

कोर्ट - अच्छी बात है, आप पूछ सकते हैं ?

प्र. व. - गंगाधर शास्त्रीजी ! अर्जुनको कृष्णसे दिखा गया अनेक गुणोंसे संपन्न विश्वरूप सत्य हैं ? या मिथ्या है ? (कल्पित है या मायामय है)

प्र. गं. - अनेक गुणोंसे युक्त विश्वरूप मिथ्या है (मायामय है)

प्र. व. - इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

प्र. गं. - भारतके शान्तिपर्वको देखिये। भगवानने जिस तरह अर्जुनको विश्वरूप के दर्शन कराये, उसी तरह नारदजीको भी दिखाकर स्वयं भगवान् कहते हैं - ''माया ह्येषा मया सृष्टां यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं मैवं मां ज्ञातुमर्हसि'' (म.भा.शां. ३४७ अ) यहाँ विश्वरूप मायामय कहा गया है।

प्र. व. - सिर्फ आप विश्वरूपको मायामय कहते हैं या प्राचीन लोगोंने कहा है ?

प्र. गं. - शंकराचार्यने ही १-१-२० के ब्रह्मसूत्रके व्याख्यानमें ही कहा है - निम्नलिखित शंकराचार्यके शब्दोंको पढिये - ''स्यात् परमेश्वरस्यापि इच्छा वशात् मायामयरूपं साधकानुग्रहार्थ'' ''माया ह्येषां मया सृष्टं यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूत गुणैर्युक्त मैवं मां ज्ञातुमर्हसि'' (म.भा.शां अ. ३४७) इस तरह इन वाक्योंसे अनेक गुणोंसे युक्त इस विश्वरूपको मायामय अथवा मिथ्या कहा है। अतः परमात्मामें दीखनेवाले गुण, धर्म, विश्वरूप आदि मिथ्या है। ब्रह्म केवल निर्विशेष है यह सिद्ध होता है।

क्रॉस ऐक्झामिनेशन्

वा. व. - शास्त्रीजी ! आप महाभारत शान्तिपर्वके ३४७ अध्यायको इसके पूर्वमें रहे अध्यायको देखकर कहते हैं, या शंकराचार्यके भाष्यको देखकर कहते हैं ?

प्र. गं. - महाभारत के शान्तिपर्वगत ३४६, ३४७ अध्यायोंको देखकर ही कहता हूँ। क्या

शंकराचार्यके भाष्यके आधारपर कहना नहीं चाहिये ? ''वह भाष्य अयुक्त है'' ऐसी आपकी राय रही होगी।

वा. व. - कोर्टमें शंकराचार्यके मतके अनुसार ब्रह्म निर्गुण है या द्वैतमतके अनुसार सगुण है, इस तरह विचारके चलते वक्त वादि शंकराचार्यके भाष्यको क्यों स्वीकार करेंगे ? स्वीकार नहीं करेंगे। उस भाष्यको अयुक्त ही कहेंगे। इसलिये शान्तिपर्व के ३४६-३४७ अध्याय के श्लोकोंका अर्थ ही कहिये।

नारद उवाच् - ''नमस्ते देवदेवेश....ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ते बांधव, भक्तवत्सल, ब्रह्मण्यदेव......भक्तोहं त्वां दिद्दक्षु: एकान्त दर्शनाय नमो नम: (अ. ३४६)

भीष्म उवाच - एवं स्तुतस्स भगवान्। गुह्यै स्तत्थेश्च नामभि: भगवान विश्वदृक् सिंह: सर्व मूर्तिमय: प्रभु: दर्शयामास मुनये रूपं तत्परमं हरि:.... सहस्रनयन: श्रीमान्। शतशीर्ष: सहस्रपात्। सहस्रोदर बाहुश्च। अव्यक्त इति च क्वचित् ओंकारमुद्रिरन् वक्त्रा। सावित्रीं च तदन्वयांम्। शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्य:। चतुर्वेदान् गिरन् बहून आरण्यकं जगौ देवो। हरिर्नारायणो वशी।

प्र. गं. - देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादि देवताका स्वामी, ब्राह्मणोंका प्रिय विश्वमूर्ते - अनेकरूपोंसे युक्त, महामूर्ते - श्रेष्ठ भक्तोंका बांधव - मैं भक्त हूँ, तुम्हें एकान्तमें देखने आया हूँ, तुम्हें नमस्कार ! इस तरह १* - तथ्यै = सत्यभूत अर्थका प्रतिपादन करनेवाले विश्वमूर्ते आदि नामोंसे नारदजीने भगवानका स्तोत्र किया। सर्वज्ञ, परम श्रेष्ठ, समर्थ नारायणरूपी परमात्मा हजारों आँखोवाला, शिखावाला पाद, उदर, भुजायें आदिसे युक्त हैं। एक मुँहसे ओंकारका उच्चारण करता है। इस तरहके भगवानने अपने उत्तमरूपके दर्शन नारदजीको करवाया। विनयान्वित होकर नारदजीने भगवानका स्तोत्र किया। सर्वज्ञ, परम श्रेष्ठ समर्थ नारायण रूपी परमात्मा हजारों आँखोंवाला, शिखावाला पाद, उदर, भुजायें आदिसे युक्त हैं, एक मुँहसे ओंकारका उच्चारण करता है। इस तरहके भगवानने अपने उत्तमरूप के दर्शन नारदजीको करवाया। विनयान्वित होकर नारदजीने नमस्कार किया। उस समय देवताओंको जन्म देनेवाले अविनाशी परमात्मा नारदजीसे कहता है - नारद ! एकत, द्वित, त्रित नामधारी महर्षि मेरे दर्शन के लिये यहाँ तो आये पर वे मेरे दर्शन

१* 'तथ्यैनामभिस्तुत:'' वाक्यमें नामोको ''तथ्यै:'' ''सत्यभूत'' विशेषण दिया गया है। विश्वमूर्ति, देव, देवेश, भक्तप्रिय आदि विशेषणोंसे ज्ञेय परमात्माका विश्वरूप, नामक्रिया आदि गुण सत्य हैं, मिथ्या नहीं। यह सिद्ध होता है।

तं प्रसन्न: प्रसन्नात्मा। नारदो द्विजसत्तम: वाग्यतो प्रणतो भूत्वा ववन्दे परमेश्वरं। तमुवाच न तं मूर्घ्ना देवानामादिरव्यय:॥

श्री भगवानुवाच :-
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षय:
इमं देशमनुप्राप्ता: मम दर्शन लालसा:
न च मां ते द्द्दशिरीरे। न चन्द्रक्ष्यति कश्चन।
ऋते ह्येकान्तिकास्त्रेष्टा: त्वं चैवेतन्ति कोत्तम:।
एतत्त्वया न विज्ञेयं। रूपवानिति द्दश्यते।
इच्छन्मुहुर्तान्नश्येयं। ईशोऽहं जगतो गुरू:।
माया ह्येषा मया सृष्टा। यन्मां पश्यसि नारद॥

नहीं कर सके। नारद ! एकान्त भक्तोंके सिवा दूसरे कोई भी मुझे देख नहीं सकते। तुम एकान्त भक्तोंमें श्रेष्ठ हो इसलिये मेरे दर्शन हुवे....नारद !

एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवनिति द्दश्यते। रूपयुक्त घटपटादि प्रत्यक्ष जिस तरह भक्ति न होनेपर दिखाई देते हैं, उसी तरह मेरा साक्षात्कार भी भक्तिके बिना हो सकता है। आसानीसे दर्शन होते हैं ऐसा मत समझो। क्योंकि 'इच्छन्मुहूर्तान्नश्येयं ईशोहं जगतां गुरू: माया ह्येषा मया सृष्टा, यन्मां पश्यसि नारद'। तुम्हें दर्शन न देनेकी इच्छा हो तो, एक ही क्षणमें मैं अद्दश्य हो जाता हूँ, तुम्हें मेरे साक्षात्कार न हो ऐसी इच्छा होनेपर तुम मुझे देख नहीं सकते। क्योंकि मैं ईश हूँ (अर्थात् अद्दश्य शक्ति मुझमें है) मैं जगतका गुरू हूँ।

'मां पश्यसीति यत् एषा माया सृष्ठा'। तुम्हें जो मेरे दर्शन हुवे, वह दर्शन मेरी इच्छासे ही हुवा है।

वा. व. - गंगाधर शास्त्रीजी ! ''तथ्यैश्च नामभि:'' वाक्यगत ''तथ्यै'' विशेषणसे क्या सिद्ध होता है।

प्र. गं.. - ''विश्वमूर्ते, महामूर्ते, ब्राह्मणप्रिय, देव देव आदि पदोंसे उक्त विश्वरूप, देवदेवत्व, आदि असत्य नहीं, यह सिद्ध होता है।

वा. व. - ''रूपं यत्परमं हरि:'' वाक्यमें ''परमं'' यह विश्वरूपका विशेषण है, इसीसे यह सिद्ध होता है कि विश्वरूप उत्तम है।

प्र. गं. - सही है। इस रूपका उत्तमत्व सिद्ध होता है।

वा. व. - उत्तमरूप असत्य किस तरह होगा ?

प्र. गं. - उत्तमरूप क्या असत्य होगा ? सत्य ही होगा।

वा. व. - क्या असत्यरूप अविनाशी होगा ?

प्र. गं. - असत्यरूप नष्ट होगा ही।

वा. व. - ''देवा नामादिरव्यय:'' वाक्यसे विश्वरूपमें कौनसा धर्म कहा गया है ?

प्र. गं. - इस रूपके देवताओंका कारणत्व, नाशरहितत्व धर्म कहे गये हैं।

वा. व. - देवता कारणभूत, नाशरहित रूप, मायिक होकर असत्य किस तरह होगा।

प्र. गं. - देवता कारणभूत रूप, अविनाशीरूप असत्य नहीं होगा।

वा. व. - आपने इस विश्वरूपको असत्य क्यों कहा ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - 'एतत्वया न विज्ञेयं रूपवान् इति द्दश्यते।
इच्छन् मुहूर्तान्नश्येयं ईशोऽहं जगतो गुरू:।
माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यन्ति नारद॥ इन श्लोंकोका अर्थ कहिये।

प्र. गं. - रुपयुक्त घटपटादि पदार्थ, पुरूषकी इच्छासे, पुरूषके प्रयत्नसे दीखते हैं। इसी प्रकार रूपवान् होनेसे, परमात्मा की इच्छा न होनेपर, पुरूषके प्रयत्नसे ही परमात्मा दिखाई देगा ऐसा न समझे। जब परमात्मा की इच्छा न हो, कि इसे न दिखाई दे, तो एक ही क्षणमें वह अद्दश्य हो जायेगा। उस तरह की शक्ति परमात्मामें है। इसलिये परमात्मा का साक्षात्कार परमात्मा की

इच्छासे होगा।

वा. व. - इस महाभारतके श्लोकसे, विश्वरूप का मायिकत्व किस तरह सिद्ध होता है ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''अनेक वक्त्रानयनमनेकाद्भुत दर्शनं। अनेक दिव्याभारणं दिव्यानेकोद्यतायुधं। दिव्य माल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनं सर्वाश्चर्यमयं देवं अनंतं विश्वतो मुखम् (गीता ११-१०-११ श्लोक) श्लोक किसका वर्णन करते हैं ?

प्र. गं. - विश्वरूपका वर्णन करते हैं।

वा. व. - इन श्लोकोंका अर्थ कहिये ?

प्र. गं. - विश्वरूप अनेक मुखोंसे, अनेकों नेत्रोंसे युक्त है। बहुतसे आश्चर्यकारक इस विश्वरूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। दिव्य (अप्राकृतक) अलंकारोंसे युक्त हैं। अप्राकृत आयुधोंसे युक्त हैं। अप्राकृत गंधसे, अविनाशी, इस तरहके अपने रूपको श्रीकृष्णने अर्जुनको दिखाया।

वा. व. - शास्त्रीजी ! क्या मायिकरूप अनंत नाशरहित हो सकता हैं ?

प्र. गं. - मायिकरूप नाशवान ही है, अविनाशी नहीं।

वा. व. - मायिकरूपके राहने, वस्त्र, आयुध, गन्ध क्या अप्राकृतिक अमायिक हो सकते हैं ?

प्र. गं. - मायिकरूपके अलंकारादि अमायिक कैसे होंगे ? मायिक ही होंगे।

वा. व. - गीतामें इस विश्वरूपको नाशरहित कहा है और अलंकारोंको दिव्य कहा है। इस तरहके विश्वरूपको मायिक कैसे कह सकते हैं ?

प्र. गं. - उत्तर नहीं।

वा. व. - ''त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं । त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं । त्वमव्यय: शाश्वत धर्मगोप्ता। सनातनस्त्वं पुरूषो मतो मे (गीता ११-१८,१९) इन श्लोंकोंसे किस रूपका वर्णन किया गया है।

प्र. गं. - विश्वरूप का वर्णन है।

वा. व. - इन श्लोकोंका अर्थ कहिये ?

प्र. गं. - विश्वरूपसे अर्जुन कहता है - ''तुम नाशरहित परब्रह्म हो। यह जानना चाहिये। तुम पूरे विश्वके आश्रय हो। तुम नित्य हो। (कभी तुम्हारा परिवर्तन नहीं होता) तुम धर्मका रक्षण करनेवाले हो। तुम सनातन हो ''अनादि मध्यान्त'' तुम्हें न अग्र है, न पीछा न मध्य।

वा. व. - मायिक रूप (कल्पित रूप) नाश रहित ब्रह्म स्वरूप समस्त जगतके आश्रय हो, नाशरहित आद्यन्तरहित यह कहना किस तरह संगत होगा।

प्र. गं. - मायिकरूपको, नाशरहित, समस्त जगतका आश्रय कहना युक्त नहीं।

वा. व. - अविनाशी परब्रह्म स्वरूप भूत विश्वरूप मायिक है यह कहना भी तर्क संगत नहीं।

प्र. गं. - इसपर विचार कर उत्तर दूँगा।

प्र. व. - आचार्यजी ''निर्गुण'' पदके लिये आप क्या अर्थ कहते हैं ?

वा. व. - ''निर्गुण'' पदका अर्थ सत्वरजतमोगुण रहित है। शंकराचार्यने समस्त गुणरहित यह

अर्थ न कर सत्वतमोगुण रहित ऐसा अर्थ किया गया है। यही नहीं ''असंशयं समग्रं मां'' (गीता ७-१) श्लोकके व्याख्यानमें ''समग्रं'' समस्त विभूति बलशक्तैश्वर्यादि गुण संपन्नं और ''सर्वेशत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणै: सर्वोत्तमस्य सत्यकाम: सत्यसंकल्प: ईश्वर: वाक्योंसे ब्रह्ममें विभूति, बल, ऐश्वर्य, शक्ति, सर्वोत्तमत्व, सर्वज्ञत्वादि गुण कहे गये हैं। श्रुति-सूत्र, गीता, वाक्योंसे उक्त सर्वज्ञत्वादि सिद्ध होते हैं। अत: ''निर्गुण'' पदका सकल गुणरहित अर्थ नहीं कर सकते। सत्व, रजोगुण, तमोगुण रहित यही अर्थ कहना होगा।

प्र. व. - सर्वज्ञत्वादि समस्तगुण सत्वरज तमोगुण के कार्य है। ब्रह्ममें सत्वगुण रजोगुण तमोगुण न होनेसे, कार्यभूत सर्वज्ञत्वादि गुण भी ब्रह्ममें नहीं होंगे।

वा. वि. - ''पश्यमे पार्थरूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रश: । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनिच ॥ (गीता ११-५) इस श्लोकके व्याख्यानमें शंकराचार्यने लिखा है - दिव्यानि - अप्राकृतानि, नानावर्णाकृतीनिच इत्यादि वाक्योंसे परब्रह्मके रूपको, ''नीलपीतादि वर्णको ''अप्राकृत'' यह विशेषण दिया गया है। जिससे यह रूपभी अप्राकृत होगा। सत्वगुण रजोगुण तमोगुण कार्य नहीं। सत्वरजतमोगुण के कार्य न होनेपर भी अन्य रूप हैं।

प्र. प. - विष्णुदासाचार्यजी ! प्राकृत नहीं कहा है। पर सत्वरजोतमोगुण कार्य नहीं। ऐसा शंकराचार्यने कहाँ कहा है। आप किस तरह कह सकते हैं कि ये सत्वरजोगुण तमोगुण नहीं।

वा. वि. - ''मयाध्यक्षेण प्रकृति:'' (गीता ११-१०) श्लोकके व्याख्यानमें ''त्रिगुणात्मिका अविद्यालक्षणा प्रकृति:'' वाक्यसे प्रकृतिको त्रिगुणात्मक कहा है। और ''अजामेकां लोहितकृष्ण शुक्लां (श्वे)'' इत्यादि श्रुतियोंमें, पुराणोंमें प्रकृति सत्वरजोतमोगुणात्मक है यह कहा गया है। इस तरह ईश्वरके गुण प्राकृत नहीं। यह कहेजानेके कारण, सत्वरजतमोगुणात्मक्न नहीं यह सिद्ध होता है। और यदेकमव्यक्तमनन्तरूप। विश्वं पुराणं तमस: परस्तात् श्रुतिमें परब्रह्मके अनंतरूप तमस: परं = सत्वरजोतमोगुणात्मक प्रकृतिके परे हैं। प्रकृति कार्य नहीं। अत: परमात्माके गुण अप्राकृत होनेसे, अर्थात् प्रकृतिगुण के परे होनेके कारण मात्रसे परमात्माको समस्त धर्म रहित नहीं कह सकते।

वादि वकीलकी ऑर्ग्युमेंट

वा. व. - (कोर्टसे) धर्मराज प्रभु ! परब्रह्म सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्व, पालकत्व, सर्वनियामकत्व, स्वामित्व, स्वतंत्रत्व, संहारकत्व, ज्ञानदातृत्व, सर्वोत्तमत्व, विचित्र शक्तिमत्व, चन्द्रसूर्याद्याधारत्व, सर्वप्रकाशत्व, कर्मफलदातृत्व, सर्वाश्रयत्व, साक्षाद्द्रष्टत्व आदि कल्याणादि गुणोंसे परिपूर्ण है। वे गुण पारमार्थिक सत्य हैं। इस विषयमें श्रुति, सूत्र, गीता आधार हैं।

१) ''यस्सर्वज्ञ: सर्ववित्'' ''यस्य ज्ञानमयं तप:'' ''तस्मादेतत्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते, श्रुतिसे ब्रह्मका सर्वज्ञत्व, चतुर्मुखोत्पादकत्व, नामरूपात्मक प्रपंच कारणत्व आदि गुण सिद्ध होते हैं। इस श्रुतिका अर्थ शंकराचार्यने इसी प्रकार लिखा है।

२) परास्य शक्तिर्विवधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच (श्वे. २-८) 'सकारणं करणाधिय:' (श्वे. ६-९) ''तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं दैवतंच पतिं पतीनां परमं परस्तात् विधेम देवं भुवनेशंमीऽयं'' ''एको देवस्सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च:'' नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान्'' एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां एक बीजं बहुधा य: करोति तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां इन श्वेताश्वेतरोपनिषद् वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्ममें ज्ञानबल क्रिया है। जितने भी करणाधिपति है। अर्थात् (जीव है) उन सबोंका अधिपति परमात्मा है। उन करणाधिपतियोंका नियोक्ता परमात्मा ही है। समस्त देवताओंसे भी उत्तम देवता है। परम पूज्य है। जगतका पालक है, जगतको साक्षात् देखता है।

एक: = असहाय, प्रधान, (श्रेष्ठ) जगतसे भिन्न, क्रीडादिगुणोंसे युक्त, सर्वप्राणियोंमें आवास करनेवाला, केवल सर्वप्राणियोंमें नहीं समस्त पदार्थोंमें व्याप्त है । उन पदार्थोंमें रहकर उनका नियमन करता है। कर्मफल देनेवाला, सर्वप्राणियोंका आधार, समस्त जगतको साक्षात् देखता है। सत्वरजोतमोगुण रहित है । नित्यपदार्थोंको नित्यत्व दाता, समस्त लोगोंको उनके अपेक्षित पदार्थोंको देनेवाला । सर्वस्वामि, चेतनोंको चैतन्य देनेवाला वही है । इस तरह परमात्माको अन्तर्यामिके रूपमें जो देखता है, उसीको शाश्वत सुख मिलता है, दूसरोंको नहीं। किनको शाश्वत सुख नहीं होता ? परमात्मा सभी धर्मोंसे रहित है, वह सबोंका स्वामी नहीं, वंद्य भी नहीं, रक्षक नहीं, मैं ही ब्रह्म हूँ। इस तरह जो समझते हैं। उनको शाश्वत सुख नहीं होता, दु:ख ही होता है। इस परमात्माके अनेक गुण उक्त हैं।

''उभेस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ'' (छांदोग्य उपनिषद्) परब्रह्म मुक्त हुवे। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदिका भी आश्रय है। इससे परमात्माका सूर्यचन्द्राद्या धारकत्व व्यक्त होता है। हरेक शब्द एकंएक गुणका प्रतिपादन करता है। ''वेदैश्चसर्वैरहमेव वेद्य:'' (गी. १५ अ) सर्वे वेदायत्पदमानमन्ति आदि वाक्योंमें उक्त तरहसे अनंत वेद परमात्माका प्रतिपादन करते हैं। इसी परमात्माके अनंत गुण सिद्ध होते हैं।

वेदार्थ निर्णायक ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' सूत्रसे आरंभ करके ''अनावृत्ति: शब्दात्'' अन्तिम सूत्रतक पांचसौ चौसठ सूत्र परमात्माके अनंत गुणोंका प्रतिपादन करते हैं। दृष्टान्त के लिये कुछ सूत्रोंका उद्धरण करते हैं।

''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' सूत्रमें ब्रह्म शब्दसे ''अथ कस्मादुच्यते ब्रह्म बृहंति ब्रह्मेति बृहयन्तित्वा'' इत्यादि श्रुतिके अनुसार बृहतादि अनेक गुणोंका प्रतिपादन है। ब्रह्मका विचार करना चाहिये, इस तरह कहनेके कारण ब्रह्मका ज्ञेयत्व सिद्ध होता है। ''जन्माद्यस्ययत'' सूत्रसे ब्रह्मका जगज्जन्मादि कारणत्व प्रमाणित होता है । ''शास्त्रयोनित्वात्'' इस सूत्रसे शास्त्रजन्य ज्ञानविषयत्वरूप धर्मका बोध होता है। अद्वैतमतके व्याख्यान के अनुसार शास्त्रकर्तृत्वरूप धर्मका निर्देश करता है। इसी तरह ''अन्तस्थद्धर्मोपदेशात्'' ''आकाशल्लिंगात्'' इत्यादि सूत्रोंसे अनेकों गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। ''सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्ट: । मत्तस्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥''

''ईश्वरस्सर्वभूतानां'' ''उत्तम: पुरूषस्त्वन्य:'' ''चातुर्वण्यं मयासृष्टं''

''यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्य ईश्वर:'' ''परब्रह्म परंधाम पवित्रं परं भवान्'' ''सर्वमेतद्रतं मन्ये यन्मां वदसि केशव'', इत्यादि गीतावाक्य, परब्रह्मका जगत्कारणत्व, ईश्वरत्व, शासकत्व आदि धर्मोंका प्रतिपादन करके, परमात्माके सभी धर्म सत्य है, असत्य नहीं यह भी कहते है।

''पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम्'' ''द्दष्टवाद्भुतरूपमुग्रं तवेदं'' इत्यादि गीतावाक्योंसे भी ''यदा पश्य: पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमिशं पुरूषं ब्रह्मयोनिं'' इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे सिद्ध, अर्जुनादिकके प्रत्यक्षसे, परब्रह्मका कर्तृत्व, रुक्मवर्णत्व, स्वामित्व, चतुर्मुखकारणत्व, अनंतरूपत्व इत्यादि धर्म सिद्ध होते हैं।

जगद्व्यवस्था प्रशास्तृपूर्विका व्यवस्थात्वात् राज्यव्यवस्थावत् इत्यादि अनुमानसे भी, नियामकत्वादि गुण सिद्ध होते हैं। उपरोक्त विचारोंसे, यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि समस्त कल्याण गुणपूर्ण है। इन विचारोंको मानना चाहिये। इस तरह मैं कोर्टसे विज्ञापन करता हूँ।

प्रतिवादि वकीलका आर्ग्युमेंट

प्र. व. – मायलॉर्ड ! परब्रह्म निर्विशेष है, समस्त धर्मोंसे रहित है। उसमें सर्वज्ञत्वादि धर्म नहीं क्योंकि –

१) केवलो निर्गुणश्च'' श्वेताश्वेतर श्रुति कहती है कि ब्रह्म निर्गुण है । ''निर्गुण'' पदका सत्वरजतमोगुण रहित इस अर्थको शंकराचार्यने लिखा है। निर्गुण पदसे ब्रह्म सकल धर्मरहित है। इस तरह वादिका कहना सही नहीं। ब्रह्म सत्वगुण रजोगुण तमोगुण रहित होनेसे, ब्रह्ममें सत्व रज तमोगुण कार्यभूत धर्म नहीं होंगे। निर्गुणपदसे ब्रह्म सर्व धर्म रहित सिद्ध होता है।

२) ''अस्थूलमनण्वह्रस्व'' श्रुति कहती है – ब्रह्म स्थूल नहीं, ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं, रक्त वर्णका नहीं, स्नेहरूप नहीं, चक्षुरूप नहीं, वागीन्द्रियरूप नहीं, तेजोरूप नहीं, वायुरूप नहीं, ज्ञानका कारण नहीं। अन्तर रहित है, बाह्यरहित है, भक्षण करनेवाला नहीं, भक्ष्य भी नहीं (भक्षण करने योग्य नहीं) इस तरह यह स्थूलत्वादि धर्मोंका निषेध करती है।

३) ''यतत्तद्रेश्यमग्राह्य मगोत्रमवर्णमचक्षु: अश्रोत्रतदपाणि पाद नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:'' मुंडक श्रुतिमें कहा गया है। परब्रह्म अद्रेश्यं – ब्रह्म ज्ञानेन्दियसे जानने योग्य नहीं। अग्राह्यं कर्मेन्द्रियसे ग्रहण करने योग्य नहीं। अगोत्रं – गोत्ररहित, अवर्णं – शुक्लत्व, स्थूलत्वादि धर्मरहित है। चक्षु, श्रोतृ, कर्मेंद्रिय, नाश रहित, विभुं – विविध पदार्थ रूपको ग्रहण करनेवाला, परब्रह्मके द्दश्यत्वादि धर्मोंका निषेध करती है श्रुति।

४) ''यतोवाचो निवर्तन्ते'' श्रुति कहती है कि ब्रह्म निर्विशेष है। क्योंकि – ब्रह्म प्रकृत है, अप्रत्यक्ष है, अत एव ब्रह्ममें प्रत्यक्षसे, अनुमानसे गुणोंका ज्ञान नहीं होता। शब्दोंसे ही ब्रह्म के गुणोंको जानना होगा। ब्रह्मतो अवाच्य है, अर्थात् शब्दोंसे प्रतिपाद्य नहीं। श्रुतिका यह तात्पर्य होनेसे, ब्रह्ममें गुण सिद्ध नहीं हो सकते। रसोई बनानेवालेको पाचक कहते है। ''पण्ड'' ज्ञानयुक्त मनुष्यको पण्डित

कहते हैं। उसी तरह ब्रह्ममें धर्म होते तो, धर्मबोधक पदोंसे ब्रह्म वाच्य होता। हो सकता था। धर्म बोधक पदोंसे ब्रह्म वाच्य होता, ''अवाच्य'' यह तर्क संगत नहीं हो, श्रुति प्रमाणसे ब्रह्म सिद्ध न होनेके कारण, वह सर्वधर्मरहित है यह सिद्ध होता है।

५) ''अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगंधवच्च यत् अनाद्यनंतं महत: परं ध्रुवं। निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते। १-१३-१५ के वाक्यमें कहा गया है। ब्रह्म, शब्द, स्पर्श, रूप, रससे, रहित है। नाश रहित है। शब्दादि गुणोंका निषेध किया गया है। अत: इस काठक वाक्यसे ब्रह्म शब्दादि धर्मसे रहित है यह सिद्ध होता है।

६) ''निर्गुणं गुणभोक्तृच'' १३-१४ गीता श्लोकसे ब्रह्मका निर्गुणत्व सिद्ध होता है।

७) ''न स्थानतोपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि'' इस ब्रह्मसूत्र व्याख्यानमें शंकराचार्य इस तरह लिखते हैं - ''वेदोंमें दो प्रकारके वाक्य हैं। कई वाक्य ब्रह्मको निर्विशेष समस्त धर्मरहित कहते हैं। दो प्रकारके वाक्य प्रमाण हैं। क्या इसलिये ब्रह्मको सविशेष और निर्विशेष दोनों मानें, या इन दोनोंमें से किसी एकको माने। इस तरहकी आपत्ति के आनेपर शंकराचार्यने सूत्रके आधारपर निर्णय दिया है। एक ही रूपका स्वीकार करें। वह निर्विशेषत्व सिद्ध होता है।

८) १-१-२० के ब्रह्मसूत्रके व्याख्यानमें शंकराचार्यने कहा है - ''माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूत गुणैर्युक्तं मैवं मां ज्ञातुमर्हसि (महाभा. शां. ३४७ अ.) महाभारतके वाक्यके आधारपर, यह सिद्ध किया है - अनंतगुणयुक्त विश्वरूपको मायामय या कल्पित कहा है। इससे यह प्रमाणित होता है कि, विश्वरूप और उसके गुण असत्य हैं। ब्रह्ममें वेद वाक्य जो गुणोंको कहते हैं, केवल निषेध करनेके लिये हैं। अत एव मिथ्याभूत धर्मोंका अनुवाद करते हैं वेदवाक्य धर्म प्रतिपादनमें वेदवाक्योंका तात्पर्य नहीं। मिथ्या पदार्थज्ञापक सीपंको चाँदी के रूपमें बोध करनेवाला प्रत्यक्ष जिस तरह अप्रमाण होता है, उसी तरह मिथ्याभूत सर्वज्ञत्वादि धर्मोका प्रतिपादन करनेवाले वेद वाक्योंको अद्वैती बौद्धोंकी भाँति अप्रमाण मानते हैं, ऐसा न समझें। क्योंकि दो प्रकारके मिथ्या पदार्थ है - १) व्यावहारिक २) प्रातिभासिक। ''इदं रजतं'' इत्यादि प्रत्यक्ष प्रातिभासिक पदार्थोका ज्ञान कराता है, इसलिये अप्रमाण है। सर्वज्ञत्वादि धर्म व्यावहारिक हैं, व्यावहारिक धर्मोके प्रतिपादन करनेवाले वेदवाक्योंका तात्विक प्रामाण्य न होनेपर व्यावहारिक प्रामाण्यको मानते हैं। बौद्धोंके जैसे सर्वथा अप्रामाण्यको नहीं मानते। विचार करनेपर वास्तवमें ''अत्रपिता अपिता भवति'' ''वेदा: अवेदा:'' यह वेद वाक्य ही अपने मिथ्यात्व का बयान करता है। वेद मिथ्या है, वेद प्रामाण्य भी मिथ्या ही है। वेद ही जब मिथ्या होगा तो, अद्वैतमतकी सिद्धि
किस तरह होगी ? दूसरे मतका खण्डन किस तरह होगा ? इस आशंकाकी कोई गुंजाईश नहीं।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्यां'' माननेवाले अद्वैतमतमें जगत के मिथ्यात्वको स्वीकार करनेके कारण जगत या जगदन्तर्गत पदार्थोकी सिद्धि के लिये कोई प्रमाण नहीं चाहिये। प्रमाणोंसे जगत् सिद्ध होनेपर, उस जगतके सत्य होनेपर हमारा अद्वैतमत ही नष्ट हो जायेगा।

ब्रह्म अज्ञेय है, ब्रह्म स्वप्रकाश है (अन्य प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होगा। ब्रह्म की सिद्धि के लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं, हमारा मत भी जगतकी भाँति है। अन्य मतका खण्डन इतर प्रमाणोंका

खण्डन सबकुछ असत्य होनेसे, प्रमाणोंसे मतखण्डन होगा तो, मत खण्डन सत्य होगा, अद्वैतमतका लय हो जायेगा।

इस प्रकार वेद, सूत्र गीता, प्रस्थानत्रयमें भी निर्विशेष ब्रह्म ही उक्त है। ब्रह्मको निर्वेशेष ही मानना पडेगा। महाप्रभु न्यायमूर्ति इसका विचार करे यही हमारी प्रार्थना है।

वादि वकीलका आर्ग्युमेंट

१) ''केवलो निर्गुणश्च'' श्रुतिमें भी ''निर्गुणं गुणभोक्तृ च'' गीता वाक्यमें भी स्थित निर्गुण पदका अर्थ सत्वरजोगुणतमोगुण रहित ऐसा अर्थ किया गया है। शंकराचार्य इसी प्रकार अर्थ किया है। निर्गुणपदका सत्वरजतमोगुण रहित यह अर्थ ही योग्य है। निर्गुण पदके पूर्वोत्तर वाक्यमें ब्रह्म स्वाभाविक रूपमें ज्ञान बल क्रिया युक्त है, करणाधिप जीवोंका अधिपति है। जगतमें जितने देवता ईश्वरनामसे प्रसिद्ध उन सबोंका नियामक है, सर्वदेवताओंको देवत्व देनेवाला, जगतका रक्षण करनेवाला, ऐसे अनेकों गुण प्रतिपादित हैं। इन अनेक वाक्योंके विरूद्ध ''निर्गुण'' पदका सर्व धर्मरहित ऐसा अर्थ करना युक्त नहीं होगा। वेदोक्त सर्वज्ञत्वादि धर्मोंको मिथ्या कहना भी अवैदिक नास्तिकोंके लिये भले ही योग्य हो। वेदोंके प्रामाण्य को स्वीकार करनेवाले वैदिकोंके लिये योग्य नहीं होगा। वेदोक्त सबकुछ असत्य है ऐसा कहना, अथवा वेदोंको अप्रमाण कहना एक ही है।

''निर्गुण'' श्रुतिसे गुणोंका निषेध करना है, इसीलिये ''यस्सर्वज्ञ:'' आदि वाक्योंसे गुणोंका अनुवाद करती है श्रुति, उस श्रुतिका तात्पर्य गुणोंके कहनेमें तात्पर्य नहीं, यह कहना भी सही नहीं। क्योंकि जैसे ''अयं सर्प:'' (यह सांप है) इस तरह किसीको भ्रम आया हो, उसका अनुवाद करके खण्डन करना योग्य होगा। प्रसक्ति के बिना '' यह साँप नहीं'' यों निषेध करना जैसे युक्त नहीं, वैसे ही परमात्मामें विद्यमान सर्वज्ञत्वादि गुणोंके विषयमें किसीका भ्रम हो, तो उन गुणोंका अनुवाद करके परमात्मामें वे गुण नहीं। इस तरह निषेध किया जा सकता है। परमात्माके विद्यमान गुण वेदोंके अतिरिक्त किसीसे भी सिद्ध नहीं होता, वेद गुणोंका अनुवाद करके उन्ही गुणोंका निषेध करता है। ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं और वेद वाक्यमें उस जगह यह कहा गया है ऐसी भी दलील तर्क संगत नहीं। अनुवादकताके कोई भी संकेत इसमें नहीं।

''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं'' (कीचडमें पैरोको फँसाकर उसका क्षालन करना बुद्धिमानी नहीं, इससे यही बेहतर है कीचडमें पैर ही न रखे) इससे यही अच्छा है कि (इ) गुणोंका कथन ही नहीं करे, गुणोंका बयान करके निराकरण करना योग्य नहीं।

उपरोक्त कारणोंसे ''यस्सर्वज्ञ:'' इत्यादि श्रुतियाँ गुणोंके निषेध के लिये गुणोंका अनुवाद करती है ऐसा कहना गुणोंके कथनमें तात्पर्य नहीं कहना अत्यंत अयुक्त है। यही नहीं सर्वज्ञत्व सर्वशक्यादि गुणोंका निषेध करनेवाला कोई भी वेद वाक्य नहीं, जो वाक्य परब्रह्मका प्रतिपादन करता है, वह वाक्य परब्रह्मके गुणोंका कथन करता ही है। परब्रह्मका ज्ञान, अगर शब्द परमात्माके गुणोंका कथन नहीं करेंगे। तो केवल शब्दोंके पठनसे परब्रह्म का ज्ञान नहीं होगा। जैसे पाचक शब्द,

अपनेसे बोधित वस्तुमें पचन क्रिया (रसोई बनानेकी क्रिया) नहीं रहेगी, तो पाचक शब्द व्यर्थ होगा, अत एव पाचक पचन क्रियाका बोध कराता है। ''पाठक'' शब्द पठन क्रियाका बोध, ''श्याम'' शब्द श्याम वर्णका बोध, ब्राह्मण ब्रह्मणत्वका बोध करते हैं। वैसे ही ब्रह्म शब्द, ब्रह्ममें रहे बृंहितत्वादि (पूर्णत्वादि गुणोंका बोध करता है) आत्म शब्द से ''यच्चाप्नोति यदादत्ते। यच्चास्ति विषयान्निह यच्चास्य संततो भाव: तस्मादात्मेति भण्यते ''। इत्यादि प्रमाणके अनुसार जगत्कर्तृत्व, स्वामित्वादि गुणोंको प्रतिपादन करता है। प्रतिवादि जिस श्रुतिको कहा है ''केवलो निर्गुणश्च'' श्रुति ब्रह्मके सत्वरजतमोगुणोंका निराकरण अन्य गुणोंका निषेध नहीं करता। शंकराचार्यने इसी प्रकार अर्थ लिखा है।

सब कुछ सत्वरजतमोगुण कार्य है। इसीलिये परमात्मा सत्वरजतमोगुण रहित होनेसे, परमात्मामें सत्वरजतमोगुणोंका कार्य कोई नहीं है। यह अर्थात् सिद्ध होता है। प्रतिवादिकी यह युक्ति तर्क संगत नहीं। शंकराचार्यने ही कहा है -

पश्य मे पार्थरूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रश:।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनिच॥ (गीता ११-२)

गीताश्लोकके व्याख्यानमें परमात्माके रूपके जो विशेषण दिये गये हैं। उसमें ''दिव्यानि'' इसका अप्राकृतानि ऐसा अर्थ है। प्रकृतिके कार्य न होनेपर भी रूपादि हैं। यह सिद्ध होता है। सबकुछ सत्वरजोमोगुण कार्य है यह कहना सही नहीं। अत: निर्गुण पदसे परब्रह्म निर्गुण है यह सिद्ध नहीं होता।

''यस्सर्वज्ञ:'' आदि वेदवाक्योंमें उक्त सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्वदि धर्मोंका निषेध ''अस्थूलमनणु'' वाक्यमें स्थूलता, सूक्ष्मता आदि गुणोंका निषेध किया गया है यह आभास मिलता है, पर ''अणोरणीयान् महतो महीयान्'' श्रुतिमें परब्रह्मत्वका अणुत्व, महतादि गुणोंका पूरा निषेध तर्कसंगत नहीं होता। अत: प्राकृत स्थूलत्व अणुत्व गुणोंका निषेध किया जाता है। इस प्रकार अर्थ कंरना चाहिये।

''अस्थूलमनणु'' वाक्यके आगे रहे ''एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि'' आदि वाक्योंमें द्रष्टत्व, नियमनकर्तृत्व, धारकत्व, ज्ञान प्रदत्व, सर्वज्ञत्व मन्त्रृत्व, विज्ञातृत्व, सर्वधारकत्व ज्ञेयत्वादि गुण कहे गये हैं। ''यस्सर्वज्ञ:'' आदि श्रुतिमें उक्त सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका निषेध अस्थूलमनणु वाक्यमें किया जाता है ऐसा कहना, वैसे ही है जैसे ''मे माता वन्ध्या'' मेरी माँ बाँझ है कहने से अयुक्त होता है।

''यत्तद्देश्यमग्राह्य'' वाक्यमें आपातत: यह प्रतीत होता है कि दृश्यत्वादि धर्मोंका निषेध किया गया है। पर ''यस्सर्वज्ञ:'' श्रुतिमें सिद्ध सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका निषेध नहीं किया गया है। इस वाक्यसे सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका निषेध किया गया है ऐसा कहना तर्क संगत नहीं। यह विषय बालक भी समझ सकते हैं, इस विषयपर कोर्ट ध्यान दे।

''आत्मावाऽरे द्रष्टव्य:, श्रोतव्य: मन्तव्य:'' मनसैवानु द्रष्टव्यं इत्यादि वाक्योंसे भी, ''यत्तद्देश्यं'' वाक्यके उत्तरमें स्थित ''यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:'' वाक्य परमात्मामें दृश्यत्व

(अपरोक्ष ज्ञान विषयत्व) स्पष्टरूपमें उक्त है। ''अद्दश्यं'' पद का ब्रह्म द्दश्य नहीं। इस प्रकारका अर्थ युक्त नहीं होता। इसमें स्वव्याहंतिरूप दोष आता है। (अपनी ही उक्ति के विरूद्ध होगी) इसी कारण ''द्दश्यतेऽग्रया बुद्धया'' ''शुद्धेन मनसा सदा'' इत्यादि वाक्योंके अनुसार अशुद्ध मनसे ब्रह्म द्दश्य नहीं, अग्रया बुद्धया शुद्ध भूत मनसे ही जाना जाता है। इस प्रकार अर्थ करें। ''सर्वगतं सुसूक्ष्मं भूतयोनिं'' इत्यादि पदोंसे सर्व व्याप्तत्व भूतकारणत्व, इत्यादि धर्म कहे जाते है। आदि वाक्य इस वाक्यके उत्तरभागमें स्थित ''यस्सर्वज्ञ:'' इत्यादि वाक्य सर्वज्ञत्वादि गुणोंका प्रतिपादन करते हैं। अत: ब्रह्मके निर्विषयत्वके विषयमें कोई प्रमाण नहीं।

४) 'यतो वाचो निवर्तन्ते'' वाक्यसे भी ब्रह्मके सकल धर्मराहित्य को बोध नहीं होता। क्योंकि इस वाक्यमें ब्रह्मके सकल धर्मराहित्यका बोध करनेवाला कोई पद ही नहीं। शब्दसे ही ब्रह्ममें गुणो की सिद्धि होनी चाहिये। यत: जिस परमात्मासे वाचो निर्वर्तन्ते - शब्द वापस लौट आते हैं। इस प्रकार श्रुतिका अर्थ है। जो ब्रह्म शब्दोंसे वाच्य नहीं। होता उस अवाच्य ब्रह्ममें शब्दोंसे वाच्य गुणोंकी सिद्धि किस प्रकार होगी ? इसलिये ''यतो वाचो निवर्तन्ते'' श्रुति ब्रह्मके शब्दवाच्यत्व का निषेध करके, ब्रह्म समस्त गुण रहित है। इस विषयमें प्रमाण होता है। इस तरह प्रतिवादिकी दलील सही नहीं। क्योंकि ''यत:'' शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान न होनेपर इस वाक्यसे शब्दवाच्यत्व कैसे सिद्ध होगा ?

दूसरी दलील इस प्रकार है - ब्रह्म शब्दसे वाच्य न होनेपर भी लक्षणावृत्तिसे ज्ञात ब्रह्ममें वाच्यत्वका निषेध करते हैं। यह कहना भी सही नहीं। इसका कारण यह है - लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मका बोध होनेके लिये, पूर्वमें वह ब्रह्म ज्ञात होना चाहिये। ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्षसे, अनुमानसे नहीं होगा। शब्दसे ही होना चाहिये। यह शब्दभी लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मज्ञान कराता है, कहनेसे इसके पूर्ववर्ती ब्रह्मका ज्ञान होना चाहिये। इस तरह अनवस्थारूप दोष आयेगा। लक्षणावृत्तिसे ब्रह्मका ज्ञान होता है यह कहना युक्ति संगत नहीं। किसी तरह लक्षणावृत्तिसे ज्ञान होता है ऐसा माननेपर भी शक्य संबंधादि (मुख्यवृत्तिसे बोध्य वस्तुका संबंध) आदि धर्मोंसे युक्त वस्तुका बोध कराता है, जिससे शक्य संबंधादि धर्म सिद्ध होते हैं। अत: ''यतो वाचो निवर्तन्ते'' श्रुति ब्रह्मके धर्मोंका निषेध नहीं करती।

५) ''अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्'' वाक्यसे ब्रह्मके सकल धर्मराहित्यका बोध नहीं होता। क्योंकि यह वाक्य केवल धर्मोंका निषेध करता है। पर सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका निषेध नहीं करता। इतना ही नहीं इसी वाक्यमें ''अनाद्यनंतं महत: परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते'' इन पदोंसे उत्तमत्व, निचाय्यत्व, (विचार्यत्व या उपास्यत्व) ध्रुवत्वादि गुणोंका ज्ञान होता है और उत्तर वाक्यमें ''ईशानं भूतभव्यस्य'' ''यतश्चोदेति सूर्यो:'' ''अस्तं यत्र च गच्छति तं देवास्सर्वेऽर्पिता:'' इति ये सभी वाक्य परमात्माके गुणोंका प्रतिपादन करते हैं। इसी कारण यह वाक्य ब्रह्मके निर्गुणत्वके विषयमें आधार नहीं होता।

६) 'निर्गुणं गुणभोक्तृच' यह गीता वाक्य भी निर्गुणब्रह्मके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता। क्योकि, शंकराचार्यने ही 'निर्गुणं सत्वरजोतमोगुणरहितं'' इस प्रकार अर्थ किया है। सकल गुणरहित ऐसा निर्गुणपदका अर्थ नहीं हो सकता और भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं'' ''ज्योतिषं ज्योति:'' ''अहं सर्वस्य

प्रभव:'' आदि गीता वाक्योंसे परब्रह्मके रक्षणकर्तृत्व, नाशरहित, प्रकाशकर्तृत्व आदि बहुतसे गुण प्रमाणित होते हैं। अत: 'निर्गुणं गुणभोक्तृच'' गीता वाक्य निर्गुण ब्रह्मके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकता।

७) ''न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं'' ''सूत्रमें ब्रह्म निर्विशेष है'' यह नहीं कह सकते क्योंकि इस सूत्रमें ''निर्विशेष:'' बोधक पद नहीं। अत: इस सूत्रको परब्रह्मके निर्गुणत्वके विषयमें प्रमाणतया उपस्थित नहीं कर सकते। ब्रह्म निर्विशेष है – समस्त गुण रहित है। इस तरह शंकराचार्य अर्थ कह चुके हैं, जिससे ''न स्थानतोपि'' सूत्रसे ब्रह्मका निर्विशेषत्व सिद्ध नहीं होता। यह किस तरह कह सकते हैं ? यह प्रतिवादिके बीच विचारके दौरान, उभयमतके लिये सम्मत, मान्य वेदोंको हि प्रमाणतया उद्धृत करना चाहिये। अपने अपने मतके प्रवर्तक आचार्योके वाक्योंको सबूत के तौरपर न कहें। उपरोक्त विचार करते वक्त ''न स्थानतोऽपि'' सूत्रमें निर्विशेष बोधक पद न होनेके कारण, यह सूत्र निर्विशेष ब्रह्मके विषयमें प्रमाण नहीं होगा।

''तत्त्वमसि'' वाक्य भी निर्विशेष ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करता, यही नहीं इसके विपरीत ''सर्वेशत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वज्ञत्वादिभि, गुणै: । सर्वोत्तमस्सत्यकाम: सत्य संकल्प: ईश्वर: तत्पदार्थ:'' इस तरह शंकराचार्यके मतके अनुसार ही वास्तवमें ''तत्त'' पद सर्वोत्तमत्व, सर्वज्ञत्व आदि गुणयुक्त ब्रह्मका ही निरूपण करता है। इसी तरह इस वाक्यसे सविशेष ब्रह्मका ही बोध होता है। इस वाक्यपर तीसरे इश्श्यूमें विचार चलकर निर्णय भी हो चुका है। ''नेह नानास्ति किंचन'' वाक्यसे भी निर्विशेष ब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती। क्योंकि इस वाक्यमें ''ब्रह्मनिर्विशेष है'' बोधक पद ही नहीं। इसके पूर्व वाक्यमें ''मनसैवानुद्रष्टव्यं'' ब्रह्मके ज्ञेयत्वका प्रतिपादन है। ''यतश्चोदेति सूर्य:'' ईशानो भूतभव्यस्य आदि पूर्वोत्तर वाक्य चन्द्रसूर्यादि नियामकत्व, जगत्स्वामित्व आदि बहुतसे गुणोंका प्रतिपादन है। इस स्थितिमें मध्यस्थित ''नेहनानास्ति किंचन''वाक्य, पूर्वोत्तर वाक्यके विरूद्ध ब्रह्मके गुणोंका निषेध होतो ''नेहनानास्ति किंचन'' ब्रह्ममें कोई भी गुण नहीं। इतना कहनेमात्रसे वेदका अभिप्राय सिद्ध हो सकता था। ''नाना'' पद व्यर्थ होगा। अत एव परमात्मासे भिन्न नहीं, इस महतत्वके बोधनके लिये इस वाक्यकी प्रवृत्ति है। गुणाक्रियायोंके पूर्ण निषेध के लिये यह वाक्य प्रवृत्त नहीं। ''यस्सर्वज्ञ:'' आदि श्रुतियोंसे उक्त सर्वज्ञत्वादि गुणोंको मिथ्या कहनेपर, मिथ्या धर्मप्रतिपादक वेदोंको बौद्ध के जैसे अप्रमाण मानना पडेगा। वैदिक कहनेवालोंको वेदोंका व्यावहारिक प्रामाण्यका स्वीकार करते है, बौद्धोंकी तरह वेदोंको अप्रमाण नहीं कहते, कहना भी युक्त नहीं। व्यावहारिक प्रामाण्य का कथन, अप्रमाण कहना एक ही है। इसका विचार पहले हो चुका है।

वेदोंमें दो भाग है। १) ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाला वेदभाग २) ब्रह्म के अतिरिक्त यज्ञ, धर्म, देवता, ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रमादिका प्रतिपादन करनेवाला वेदभाग । इनमें ब्रह्मके सर्वज्ञत्वादि धर्मोंका प्रतिपादन करनेवाले वेदभागको अप्रमाण माननेपरभी, ब्रह्मप्रतिपादक वेदभागको प्रमाण मानते हैं। बौद्ध समस्त वेदको अप्रमाण कहते हैं। इस तरह हमारे अद्वैतमतमें और बौद्धमतमें भेद है। यह कथन भी अयुक्त है।

३२७ - सिविल सूट (४)

अद्वैतमतमें परब्रह्म स्वप्रकाश है, इतरावेद्य है। (अन्योंसे ज्ञेय नहीं, अज्ञेय है। ऐसा कहनेके कारण ब्रह्मको जान नहीं सकते। अत: ब्रह्मके विषयमें वेद प्रमाण नहीं। जगत् मिथ्या है। जगतके विषयमें भी वेद प्रमाण नहीं। अर्थात् सर्ववेद अप्रमाण ही है। इसलिये वेदप्रतिपाद्य सर्वज्ञत्वादि धर्मोंको मिथ्या न कहे। माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं मैवं त्व ज्ञातुमर्हसि (महाभारत शां. ३४७) इस श्लोकके इसके पूर्वोत्तर श्लोकोंके अर्थ विचार करनेपर विश्वरूप का मिथ्या नहीं यह सिद्ध होता। जैसे, पूर्ववाक्योंमें नारदादि ऋषि परमात्माके पास आकर प्रार्थना करते हैं - नमस्ते देवदेवेश.....ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ते, महामूर्ते, बांधव, भक्तवत्सल, ब्रह्मण्यदेव, भक्तोऽहं त्वां दिदृक्षुरेकान्त दर्शनाय नमो नम:। इस प्रकार देवदेवताओंके, देवोंके भी स्वामि बने, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ति महामूर्ति भक्तोंके अत्यंतप्रिय, हे भगवान ! मैं भक्त हूँ, तुम्हारे दर्शनके लिये आया हूँ॥ (शान्ति ३४६) इस तरह प्रार्थना करनेपर (३४७ अध्यायमें) ''एवं स्तुतस्सत भगवान् गुह्यै तथ्यैश्चनामभि: भगवान् विश्वदृक् सिंह: सर्वमूर्तिमय: प्रभु: दर्शयामास मुनये रूपं तत्परमं हरि: श्लोकमें तथ्यैश्चनामभि: सत्यभूत गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले पदोंसे स्तुत सर्वज्ञ, सर्वश्रेष्ठ, हरिने (नारायणने) नारदको विश्वरूप दिखाया।

परब्रह्म में देवदेवेशत्व, ब्राह्मणप्रियत्व, भक्तवत्सल्य आदि गुण सत्य ही है, असत्य नहीं। इस तरह ''तथ्यैश्च नामभि:'' पदोंसे स्पष्टरूपमें कहा गया है और सहस्त्रनयन: श्रीमान् सहस्रशीर्ष: सहस्त्रपात्, सहस्त्रोदर बाहुश्च... ओंकारमुद्गिरन् वक्त्रात्सावित्रीं च तदन्वयां। शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्य: चतुर्वेदान् गिरन् बहून आरण्यकं जगौ देव:। हरिर्नारायणो वशी। तं प्रसन्नं प्रसन्नात्मा ववन्दे परमेश्वरम्। तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्यय: (म. भां. शां. ३४७, ७-८-२-१०-१२) आदि श्लोकोंसे सहस्त्र नेत्रोंसे युक्त, समस्तवेदोंका उच्चारण करनेवाला विश्वमूर्ति ही देवताओंका कारण है। अव्यय: - नाशरहित विशेषण देनेके कारण देवताओंका कारणीभूत यह विश्वरूप मायिक नहीं। यह सिद्ध होता है।

''माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद'' श्लोकमें विश्वरूपको मायिकत्व, असत्य उक्त है। ऐसा जो प्रतिवादिका कहना पूर्वोत्तर वाक्योंपर दृष्टि न देनेसे हुवा है जैसे -

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षय:।
इमं देशमनुप्राप्ता मम दर्शन लालसा:॥
न च मां दृष्टरीरे न च द्रक्ष्यति कश्चन।
ऋते ह्येकान्ति श्रेष्ठात्। त्वचैवेकान्तिकोत्तम: (श्लोक १३)

इस तरह भगवानने नारदको अपने रूपको दिखाया और कहा मेरे दर्शन के लिये एकत, द्वित, त्रित, आदि महर्षि आये थे। वे मेरे दर्शन नहीं कर सके। एकान्तिक भक्तके सिवा कोई भी मुझे देखने समर्थ नहीं। हे नारद ! तुम एकान्त भक्तोंमें बहुत श्रेष्ठ हो। इसलिये मैंने तुमको दर्शन दिये, इस तरह भगवानने नारदजीकी प्रशंसा की। इस तरह की प्रशंसा के सुननेपर नारद अपने मनमें सोचने लगे। रूप धारण करनेवाले घटपटादि पदार्थ जैसे अपने प्रयत्नसे दिखाई देते हैं, जिनको देखने के लिये भक्ति आवश्यक नहीं, वैसे तुम भी रूपवान् होनेसे देखते हो। तुम्हारे दर्शनके लिये एकान्त

भक्ति क्यों चाहिये ? विना कारण मेरी प्रशंसा क्यों करते हो ? इस प्रकारकी शंका नारदजीके मनमें आयी। नारदजीके चेहरेसे ही उसके भावोंको ताडकर भगवान इस प्रकार कहते हैं -

एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति द्वश्यते।
इच्छन्न मुहूर्तान्नश्येयं। ईशोऽहंजगतांगुरू :॥
माया ह्येषा मया सृष्ट यन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं मैवं मां ज्ञातुमर्हसि॥

अर्थ - नारद ! घटपटादि पदार्थ, जिस तरह रूपवान हैं। एकान्त भक्तिके सिवा दीखते हैं, वैसे रूपवान् होनेके कारण एकान्त भक्ति के बगैर मैं दिखायी दूँगा। इस तरह मत समझो। तुमको दर्शन न दूँ ऐसी इच्छा करूँगा तो मैं एक ही क्षणमें अद्वश्य हों जाऊँगा। मैं घटपटादिकोंकी तरह नहीं हूँ। अद्वश्य होनेकी सामर्थ्य मुझमें हैं। मैं जगत् का गुरू हूँ। अत: अपनी इच्छासे ही दिखाई दूँगा। वह जो देखना चाहता है उसको भक्ति करनी पडेगी। भक्ति नहीं होगी, मुझे दर्शन देनेकी ईच्छा नहीं होगी। इच्छा न हो तो मैं दर्शन नहीं दूँगा। तुमने जो मेरे दर्शन किये वह मेरी इच्छासे ही हुवे हैं। अद्वश्य होनेकी शक्ति मुझमें हैं। अत एव मुझे घटपटादिकोंकी तरह मत समझो। इस तरह पूर्वोत्तर वाक्योंके संबंधसे इन श्लोंकोका अर्थ होता है। विश्वरूप मायिक या कल्पित है। इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। गीतामें भी अनेक ''वक्त्रनयनं अनेकाद्भुत दर्शनं अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं। दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्य गंधानुलेपनं सर्वाश्चर्यमयं देवं अनंतं ''विश्वतोमुखम्'' (गीता १०-११) इत्यादि श्लोकोंसे यह ज्ञात होता है कि यह विश्वरूप अनेक गुणोंसे युक्त हैं। अनेक अप्राकृत (अकल्पित) सत्यभूत अलंकार अप्राकृत आयुध, अप्राकृत माला, दिव्य गंध मेरे विश्वरूपका नाश नहीं होता, विश्वरूपका अविनाशित्व कहा गया है और अप्राकृत जो अविद्या कल्पित नहीं, सत्य है। सत्यभूत अलंकार भी नहीं। ''दिव्यानि'' शब्दका अर्थ शंकराचार्यने सत्वरजोतमो गुणात्मक अविद्या कार्य नहीं, वही अप्राकृतिक है। यह विश्वरूप मायिक, कल्पित किस तरह होगा ? विश्वरूप सत्य ही है।

''त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य परं निधानं
त्वमव्यय: शाश्वत धर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरूषो मतो मे॥

अनादि मध्यान्तमनंतवीर्य (गीता ११-१३-१९) इस श्लोकमें समस्त जगतके आश्रय हो शाश्वत धर्म रक्षक हो, तुम्हारा न आदि है न अन्त है। धर्मरक्षकत्वादि धर्म कहे गये हैं। विश्वरूप झूठ होता तो उपरोक्त वर्णन युक्ति संगत नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि विश्वरूप सत्य है, असत्य नहीं।

इस प्रकार ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि अनंत गुणोंसे युक्त है। इस विषयमें श्रुति, सूत्र, गीता, प्रस्थानत्रयका आधार है, ब्रह्म सर्वज्ञत्वादि अनंत गुणोंसे युक्त है, इस विषयमें हमारे विज्ञापन को कोर्ट ध्यान दे यह हमारी प्रार्थना है।

श्री :

संयमनिपुर का हायकोर्ट

२८ वा कलियुग के शालिबाहन शक १८४९

चीफ जस्टिस धर्मराज एच. बी. के सामने चला

वेदान्त विचार

सिविल सूट पाँचवाँ इश्यू

O.S.No.564 1927

जड्जमेंट

वादि : सत्यबोधाचार्य उर्फ विष्णुदासाचार्य
वकील :
माधवदास P. B. O.

प्रतिवादि : गंगाधरशास्त्री
वकील :
हरिहर शर्मा P. B. S.

वादिका दावा इस प्रकार है :-

१. वादिने वैदिक आस्तिक समाजके प्रतिनिधि के रूपमें कोर्टकी अनुमतिपाकर इस दावेको दाखल किया है।

२. कोर्ट की इजाजत के तहद इस दावेमें गंगाधर शास्त्रीको अद्वैत समाजके प्रतिनिधिके रूपमें चुना है।

३. वादि आस्तिक वैदिकमतसे संबद्ध है।

४. वैदिक मतके तत्त्व :-

अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, यज्ञादि क्रिया, देवता, वेद, गंगादितीर्थ, स्वर्गादि परलोक, यह लोक इत्यादि समस्त विश्व सत्य है।

ब) परब्रह्म (विष्णु) सर्वोत्तम, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, अनंतकल्याण गुणपूर्ण है।

क) परमात्मा जीवोंसे भिन्न है।

ड) परमात्मा सर्वोत्तम, सर्वकर्ता, जीवोंसे भिन्न है, इस प्रकारका ज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

५. ये तत्त्व वेदोंमें, वेदार्थनिर्णायक ब्रह्मसूत्रोंमें,और श्रीमद् भगवद्गीता में उक्त हैं. इसलिये वैदिक लोग इन तत्त्वोंको स्वीकार करनेमें बद्ध है।

६. यह वैदिक मत अनादि है।

७. तत्त्वोंकी वास्तविकता यही है पर गौडपादाचार्य उनके परम शिष्य शंकराचार्यने, वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता के विपरीत अर्थोंकी कल्पना करके, शून्यवादिमतको विज्ञानवादि बौद्धोंके मतको वैदिक मतके वेषको चढाकर,उस मतका अद्वैतमत नाम रखकर, उस मतको वैदिकमतकी भाँति भासमान होनेके जैसे किया है, जिससे वैदिकमतावलंबी भी इस जालमें फँस चुके हैं, उन्ही लोगोंको अद्वैतमतका

उपदेश देते थे।

इस तरह करना प्राचीन शिक्षानियम, भगवद्गीता सेक्शन - १६ में उक्त दण्ड योग्य होता है।

८. प्रतिवादि अद्वैती इस तरह उपदेश करते है।

अ) विष्णु (परब्रह्म) सर्वोत्तम नहीं, सर्वकर्ता,अनंतगुणपूर्ण नहीं. वह समस्त गुणोंसे रहित है।

ब) ऊपर चौथे विभागमें उक्त ब्राह्मणादि समस्त जगत् मिथ्या है।

क) परमात्मा जीवोंसे भिन्न नहीं.

ड) ''परमात्मा जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्तम है इस प्रकारका ज्ञान मोक्ष के लिये साधन है'' यही भी सही नहीं।

''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं हूं ब्रह्म) ज्ञान ही मोक्षका साधन है।

९. इस प्रकार वेद, सूत्र गीता में उक्त तत्त्वोंको विरूद्ध समझकर ''नष्टात्मानोल्पबुद्धय: । प्रभवन्त्युग्रकर्माण: क्षयाय जगतोहिता; (गीता अध्याय १६ श्लोक ९) कथनके अनुसार स्वयं तो अधोगति प्राप्त करते हैं, इतना ही नहीं अन्य सज्जनोंको आस्तिक मतसे निकालकर, उनको भी अधोगति ले जा रहे हैं, अत एव सज्जनोंकी भलाई के लिये निंम्ननिर्दिष्ट रीतिसे निर्णय लेने की प्रार्थना है।

१. परमात्मा जीवोंसे भिन्न है, सर्वोत्तम है, ब्राह्मणादि वर्ण ब्रह्मचर्याद्याश्रम, वेद, यज्ञ, देवता, गंगादितीर्थ आदिसे युक्त जगत सत्य है। मिथ्या नहीं यही वैदिक मतका तत्त्व है। ब्रह्म निर्गुण है, जीवोंसे अभिन्न है, ब्राह्मणादिवर्ण, जगत् मिथ्या है। यह वैदिक मतका तत्त्व नहीं।

२. वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता इनके विरूद्धार्थ की कल्पना करके जगत् मिथ्या है, ब्रह्म निर्गुण है इत्यादि प्रतिवादिका उपदेश शास्त्रके विरूद्ध है।

३. इस प्रकार निर्णय करें और इसके बावजूद कोर्टको युक्तिसंगत हो उसका भी आदेश करें।

४. अदालत इस प्रकार हुक्म जारी करे. इस प्रकार हुक्मनामा जारी न करनेपर लोग बहुत दु:खी हो जायेंगे।

इस तरह २५-३-१९२७ के दिन माधवदास वकील द्वारा, दावा दाखल कराके, वादिने प्रतिज्ञापत्र भी लिखकर दिया है।

बादमें प्रतिवादि के नामपर समन्स भेज देनेपर प्रतिवादिने ३०-३-१९२७ के दिन निम्नलिखित के अनुसार स्टेटमेंट दिया है।

प्रतिवादि का स्टेटमेंट

१. वादिने जो कुछ अपनी अर्जीमें लिखा है वह असत्य है।

२. वादि का मत अनादि नहीं।

३. वादिने चतुर्थ विभागमें जो कुछ कहा है वह झूठ है।

४. अ) हमारा अद्वैतमत ही वैदिक है।

ब) अद्वैतमतको बौद्धमत कहना अयुक्त है।

क) प्रतिवादिका वेदार्थ ही सच्चा वेदार्थ है।

५. अद्वैतमतके तत्त्व :-

अ) ब्रह्मातिरिक्त ब्राह्मणादि वर्ण, देवता, संध्यावंदनादि कर्म अर्थात पूरा जगत् स्वप्नकी तरह असत्य है।

ब) ब्रह्म निर्गुण है।

क) जीव ब्रह्म एक ही है।

ड) ''अहं ब्रह्मास्मि'' मैं ही ब्रह्म हूँ ज्ञान ही मोक्ष साधन है।

६. इस विषयपर पूर्वमें ही निर्णय हो चुका है। पुन: विचार करनेका अधिकार कोर्टको नहीं। रेस जूडी केट की बाधा होगी।

७. वादिने नववे विभागमें जो कहा है वह असत्य है। अद्वैतमत के आश्रयसे हमारा कुछ भी नष्ट नहीं हुवा है।

इन कारणोंसे, इस विषयपर कोई भी निर्णय न लेकर अर्जीको बरखास्त करना चाहिये, यह प्रार्थना है। इस प्रकारका स्टेटमेंट लिखकर वकील हरिहर शर्मा द्वारा कोर्टको देकर प्रतिज्ञापत्र लिख चुके है।

इसके बाद वादि प्रतिवादिके सामने अग्रिम इश्श्यू पर विचार हुवा.

इश्श्यू (वादग्रस्त विषय)

१. रेसज्यूडीकेट है या नहीं ? इस विषयका निर्णय पूर्वमें किये जानेके कारण, कोर्टको इसपर विचार करनेका अधिकार है या नहीं।

२. अ) ब्राह्मणादिवर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम आदि जगत् सत्य है या मिथ्या है।

ब) स्वप्न सत्य है या मिथ्या है।

३. परब्रह्म जीवोंसे भिन्न है या अभिन्न है।

४. परब्रह्म सर्वज्ञत्व, जगत्कर्तृत्वादि गुणोंसे परिपूर्ण है या नहीं ?

५. अ) अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या नहीं ?

ब) अद्वैतमत वैदिक है या अवैदिक है ?

दो तीन दिन पहले इश्श्यू पर विचार चला ३-७-२७ के दिन उभय पक्ष के वकीलोंके आर्ग्युमेंट चला। यह दावा रेसज्यूडीकेट नहीं ऐसा निर्णय हुआ।

अ) ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम आदि सत्य है या मिथ्या है।

ब) स्वप्न पदार्थ सत्य है या मिथ्या है ? इन विषयो पर विचार चला २८/८/२८ के दिन कोर्टने निर्णय दिया जगत् सत्य है। ब्रह्म जीवोंसे भिन्न या अभिन्न है। इसपर निर्णय हुवा ब्रह्म जीवोंसे भिन्न है। (२०-११-१९२८)

ब्रह्म सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्वादि गुणोंसे युक्त है या इन गुणोंसे रहित है। चौथेइश्श्यू पर विचार चला। ब्रह्म सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, जगत्कर्तृत्वादि पारमार्थिक सत्यभूत गुणोंसे युक्त है। वह निर्गुण नही इस प्रकार कोर्टने २८/८/२८ के दिन निर्णय दिया।

इस दिन अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या एक है। अद्वैतमत वेदोंसे सिद्ध है या नहीं वैदिक है या नहीं, वेदोंसे सिद्ध न होकर क्या वेदका विरोधी है, इसपर विचार करके अद्वैतमत और शून्यवादि बौद्धमत एक ही है, कोर्टने निर्णय दिया।

इसके लिये कारण :

अद्वैतमतके तत्त्व	**शून्यवादि बौद्धमतके तत्त्व**
१. ब्रह्म सत्य है, ज्ञानरूप है आनंदरूप, निर्विशेष, अज्ञेय अवाच्य है।	१. शून्य निर्विशेष, सत्य, ज्ञानरूप,आनन्दरूप अज्ञेय अवाच्य है। शून्य एक ही तत्त्व है।
२. वेद, देवता, यज्ञ, गंगादितीर्थ,ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम परलोक आदि जगत् शशविषाण की तरह, धूपमें दीखनेवाले पानीकी भाँति, स्वप्न जैसे मिथ्या असत् है, ब्रह्म एक ही परमार्थ सत्य है।	२. वेद, देवता, यज्ञ, गंगादितीर्थ, ब्राह्मणादि वर्ण ब्रह्मचर्याद्याश्रम परलोक वगैरह खरगोश की सींग, स्वप्न के जैसे मरूमरीचीकी तरह मिथ्या असत्य है।
३. जीव, अहंब्रह्म, अहंब्रह्म कहकर उपासना कर ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार करके ब्रह्मभाव प्राप्त करता है।	३. जीव अहं शून्यं अहं शून्यं कहकर उपासना करके शून्यैक्य साक्षात्कार करके शून्यभाव प्राप्त करता है।

इस प्रकार दोनों मतोंके तत्त्व एक ही है, अत: अद्वैतवाद शून्यवाद एकही है। तामस लोग वेदोंमें श्रद्धायुक्त होकर, वेदोक्त धर्मोंका अनुष्ठान करते। इस धर्मबलसे, देवताओंमें पीडा पहुँचाते समय देवताओंसे प्रार्थित परमात्माने, असुर जनोंको धर्मसे भ्रष्ट कराके, दुर्बल बनाने के उद्देशसे, बुद्धरूप धारण करके, मोहक बुद्ध शास्त्रका निर्माण किया। समयके बीत जानेपर पुन: असुरलोग वेदोंमें श्रद्धालु होकर धर्मानुष्ठान करने लगे। भगवानकी आज्ञा के अनुसार, शंकरने ब्राह्मणशरीर प्राप्त करके श्रुतिवाक्योंके नामकरण करके प्रचार किया है। इस शास्त्रमें जीवपरमात्माका ऐक्य, परमात्माका निर्गुणत्व, निर्विशेषत्व कहा गया है।

३३३ – सिविल सूट (५)

१*विष्णुपुराण, २*पद्मपुराण
३* बृहद् ब्रह्मसंहिता आदि पुराणोंमें भगवान् वेदव्यासने पराशरऋषिने कहा है, अन्य अनेकों ज्ञानियोंसे

१* प्रसीदनाथ दैत्येभ्य: त्राहिन: शरणार्थिन:
त्रैलोक्यै: यज्ञभागाश्च दैत्यैर्ल्हाद पुरोगमै:
हृतानो ब्रह्मणोप्राज्ञामुल्लंध्य परमेश्वर।
स्ववर्ण धर्मा भिरता वेदमार्गानुसारिण :॥
न शक्यास्तेरहन्तुमस्माभिस्तपसावृता
तुमपायमशेषात्मन् अस्माकं वातुमर्हसि
येन तानसुरान्हन्तुं भवमे भगवन् क्षमा:
इत्युक्तो भगवान् तेभ्यो मायामोहं शरीरत:
समुत्पाद्य ददौ विष्णु: प्राहचेदं सुरोत्तमान्
मायामोहोऽयमखिलान् दैत्यान्तान् मोहयिष्यति
ततो वध्या: भविष्यन्ति वेदमार्ग बहिष्कृता:
इत्युक्ता प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागत: ॥

२* पार्वत्युवाच – तामसानिच शास्त्राणि समाचक्ष्वममानध
संप्रीक्तानिचयैविप्रैर्भगवद्भक्ति वर्जितै: ।
क्रमश; तेषां नामानि क्रमश; समाचक्ष्व सुरेश्वर॥
रूद्र: उवाच – श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथा क्रमं
येषां स्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि
प्रथमं हि मया प्रोक्तं शैवं पाशुपतादिकं
मच्छशक्त्यावेशितैर्विप्रै: प्रोक्तानि च तत: श्रृणु॥
कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्
गौतमेन तथान्यायं सांख्यंतु कपिलेन वै॥
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतगर्हितं
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा
बौद्ध शास्त्रमसत्प्रौक्तं नग्ननील पटादिकं।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव कथितं देवि कलौब्राह्मणरूपिणा।
अपार्थं श्रुति वाक्यानां दर्शयन् लोक गर्हितम्।
परेशजीवयोरैक्यं मयातु प्रतिपाद्यते।
ब्रह्मणोऽस्य स्वयंरूपं कलौयुगे। वेदार्थवन्महा शास्त्रं मायावादमवैदिकम्

३* राजन् कार्यस्य मिथ्यात्वं नैर्गुण्यं परमात्मन:
आभासवादो जीवस्यपाषंडैरूपकल्पितम्
नैतद्विश्वसनीयं ते मयोक्तमपि मायया
आज्ञया वासुदेवस्य मोहनाय सुरद्विषाम्
प्रवर्तिमच्छास्त्रं अयार्थस्य शासनात्
मायावादमिदं शास्त्रं मायामोह प्रवर्तितं।

कहे जानेके कारण अद्वैतमत बौद्धमत ही है।

४* शंकराचायसे भी प्राचीन, शंकराचार्यके परमगुरू गौडपादाचार्य के समकालीन पण्डितोंने भी अद्वैतमत को बौद्धमत ही कहा है। यह विषय गौडपादाचार्यके ग्रंथसे, ५* उसके व्याख्यानरूप भाष्यसे ६* भाष्यके व्याख्यानरूप आनंदगिरी के ग्रंथसे ७* और गौडपाद कारिकाके व्याख्यानरूप मिताक्षर ८* गौडपादीय विवेक इत्यादि ग्रंथोंसे ज्ञात होता है और शंकराचार्यके समकालीन ९* भास्कराचार्य १०* विज्ञानभिक्षु ११* पार्थसारथी मिश्र आदि बहुतसे पण्डितोंने अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहा है, अत: अद्वैतमत बौद्धमतही है बौद्धमत ही है ऐसा निर्णय कोर्ट करता है।

प्रतिवादि जो कुछ कहेगा द्वेषमूलक ही कहेगा, उसके सभी बयानको सत्य मानेंगे, तो सभी मतमें प्रतिवादि होंगे ही वे अन्य मतको दूषण देते ही रहते हैं, उस दूषणको मानेंगे तो सही नहीं होगा। अद्वैतमतके प्रतिवादि भास्कराचार्यादि द्वेषमूलक कह चुके हैं कि अद्वैतमत बौद्धमत है, अतएव उसको मानना सही नहीं, इस तरह जो प्रतिवादियोंका कहना है कोर्ट उस कथनको बरखास्त करता है। क्योंकि

१२* अद्वैतियोंने भगवान् वेदव्यासको नारायणका साक्षात् अवतार माना है, महात्मा पराशरादि द्वेषमूलक झूठ बोलते हैं ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं, साक्षीदार बडा आदमी हो या छोटा उसके बयानको उस समयतक असत्य नहीं कह सकते, जबतक उस बयानकी बाधा न आये। यह कानून का नियम है। शास्त्रकार जो स्वत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य की दुहाई देते हैं, वे भी यही कहते हैं

४* ज्ञानमात्रं पारमार्थिकं। तत्रैव ज्ञातृज्ञेयादि कल्पितमिति
सौगतमेव भवतापि संगृहीतमित्याशंक्याह ज्ञानमिति

५* ज्ञानं नैव तद्बुध्देन भाषितं (गौडपादीय)

६* ज्ञानज्ञेय ज्ञातृभेद रहितं परमार्थ तत्त्वमद्वयमेव नतत् बुद्धेन भाषितम्।

७* उपरोक्त तीन परिच्छेदके वाक्य -
यद्यपि बाह्यार्थ निराकरणं ज्ञाममात्र कल्पनाचाध्याय वस्तु सामीप्यं उक्तं इदंतु परमार्थ तत्त्वमद्वैतं वेदान्तेष्वेव विज्ञेयमित्यर्थ: (शां.भा.)

८* ननु ज्ञान मात्रमेव तत्त्वं ज्ञातृज्ञेयादि सर्व तत्र कल्पितं ...बौद्धमताचार: स्यात् इत्याह नैतदिति - यद्यपि बाह्यार्थ निराकरणं ज्ञानमात्रस्यास्तित्वं च स्वीकृतं तथापि नैतदद्वैत दर्शनं बुद्धेन सुगतेन भाषितं भेदांगीरादात् इत्यर्थ: परमार्थाद्वैत दर्शनं वेदान्तैक्यगम्यमिति नान्यसाधारणामित्यर्थ:

९* येतु बौद्धमतालंबिनो मायावादिनस्तेप्यनेनैव न्यायेन सूत्रकारेणै निरस्ता वेदितव्या:। 'महायानिक बौद्धगाथितं मायावादि व्यावर्णयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति।

१०* येतु रज्जुसर्पादिवत् प्रपंच स्याततत्तुच्छंत्वामिच्छान्ति तेतु बौद्धप्रभेवादावेव। मायावादमच्छास्त्र प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते इत्यादि पद्मपुराण वाक्यात्। असत्यमप्रतिष्ठंते जगदाहुरनीश्वरं इत्यादि गीता वाक्याच्य -

११* तस्मात् वरं अस्माकं मायावादात् महायानिक वाद:

१२* व्दापरेंप्यापरे विष्णु: व्यासरुपी महामुने। वेदमेकं सुबहुधाकुरूते जगतोहितं (पराद्वार:)

भट्टाचार्याख्यो द्विजवन: कश्चिदुगेशादागत्य दुष्टमतावलम्बिनो बौध्दान् जैनानसंख्यान् राजमुखादनेक विद्याप्रसंग भेदैर्नि जित्य एषां शीर्षाणि परशुभिच्छित्वा बहुषु उलूखलेषु निक्षिप्य करभ्रमणै: चूर्णीकृत्य चैवं दुष्टमतध्वसमाचरन् निर्भयो लोके वर्तते श्रुत्वादेतद्भुतं कर्म गुरू: शंकराचार्य: शिष्यसमन्वितो प्राप्तोराधाख्यनगरं जयशब्द विजृंभितं (तदनु) जानुमात्र दग्धोपि भट्टाचार्य: तं (शंकराचार्य प्रति) जागृत्कालानुगतो नूतनो बौद्धतर: इति प्राह - (आनन्दगिरी शंकर द्विग्विजय)

बाधक के आनेतक उसको प्रमाण ही माने अन्यथा नहीं। प्रकृतमें भास्करादि पण्डितोने अद्वैतमतको बौद्धमत कहा है उनके कथन की कोई बाधा नहीं आयी है, यही अद्वैतमतके तत्त्वोंको और बौद्धमतके तत्त्वोंकी तुलना करेंगे, उन दोनों मतोंकी समानता स्पष्ट होती है। अत: भास्कराचार्यादिके बयान द्वेषमूलक होनेसे उसको न माने ऐसा जो प्रतिवादियोंकी दलील है, कोर्ट उसको खारिज करता है।

अद्वैति ब्रह्मविद्याभरणकारने ''शून्यवादि पक्षस्तु'' भाष्यके व्याख्यान करते वक्त इस तरह लिखा है - शून्यको भावरूप मानेंगे तो, हमारा ब्रह्मरूप अशून्य होगा हमारा ब्रह्मवाद शून्यवाद एकही हो जायेंगे। इस तरह कंठत: दोनों मतोंको एक माना है।

उसी ब्रह्मविद्याभरणकारने कहा है, शून्य अगर प्रपंचाभाव रूप होगा तो, प्रपंच प्रमाणोंसे उपलब्ध होनेपर, प्रपंच नहीं, प्रपंच भाव ही शून्य है यही तत्त्व है इसका समर्थन करना अशक्य होगा।

''ब्रह्म प्रपंचाभावरूप है'' इस तत्त्वको अद्वैतियोंने अद्वैतसिसिद्ध खण्डन खण्डनखाद्य आदि ग्रंथोंमें स्वीकार किया है। ''शून्यप्रपंचभावरूप'' है इस पक्षमें प्रपंचाभावरूप ब्रह्म और प्रपंचाभाररूप शून्य एक ही हो जाते हैं। दोनों मत एक हो चुके। इसलिये अद्वैतमत शून्यवादियोंका बौद्धमत एक ही है ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

जिस शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन किया, उस शंकराचार्यके अद्वैतमतको बौद्धमत कहना युक्तिसंगत नहीं। इस तरह अद्वैतियोंकी दलील तर्कसंगत नहीं।

''बौद्धादि नास्तिकध्वस्त वेदमार्गं पुराकिल। भट्टाचार्य: कुमारांश: स्थापयामास भूतले वेदबाह्यान्निराकृत्य भट्टाचार्यैर्गते पति।'' (शंकराचार्यका सर्वसिद्धान्तसारसंग्रह)

शंकराचार्यके इन श्लोकोंसे यह ज्ञात होता है - बौद्धादि नास्तिकोंसे नष्ट वेदमार्ग की स्थापना भूमण्डलमें की, वेदबाह्य (बौद्धोंको) निरस्तकरके कुमारिल भट्टसे स्थापित वेदमार्गमें लोग प्रवृत्त हुवे। शंकराचार्यने स्पष्टरूपमें कहा है।

आनन्दगिरीसे रचित शंकर विजय ग्रंथसे निम्नलिखित इतिहास उपलब्ध होता है।

कुमारिल भट्टाचार्य एक ब्राह्मण श्रेष्ठ उत्तर प्रदेशसे आकर दुष्ट मतके आश्रय लेनेवाले असंख्यात बौद्धोंसे, जैनोंसे शास्त्रार्थ करके विजयी होकर, राजासे कहकर बौद्धोंके सरोंको कुल्हाडोसे छिन्न करके ऊखलोंमें डालकर चूर्ण कर दिया। अब वह निर्भय है। इस प्रकार के अद्भुत कर्म सुनकर शंकराचार्य कुमारिल भट्ट रूद्ध ग्राममें रहता था, उस स्थानपर आये शंकराचार्य वह रूद्ध नगर जय घोषसे पूरा भरा था। सर्वत्र जय शब्दका निनाद था, शिष्य समेत शंकराचार्य उसके पास गये, अपने सामने आये शंकराचार्यको देखकर भट्ट कहता है - ''अरे नूतन बौद्ध श्रेष्ठ, जब मैं जागृत था तुम नहीं आये, अब घुटनोंतक जल गया हूँ।''

इसी तरह विद्यारण्य शंकर विजयसे ज्ञात होता है।१* इसलिये यह स्पष्ट है कि शंकराचार्यने

१* उपन्यसत्सु साक्षेपं खण्डयत्सु परस्परं। तेषूदतिष्टन्निर्घोषो भिंदन्निव रसातलं। अध:पेतुर्बुधेद्रेण क्षता: पक्षेसु तत् क्षणं व्यूढ कर्कणशतर्केन तथागत धराधरा:। निरस्ताखिल संदेहो विनष्टेतर दर्शनात्। व्यधादाज्ञां ततो राजा वधाय श्रुति विद्विषां। आसोतोशतुषाराद्रे बौद्धानां वृद्धबालकं। न हन्ति य: स हन्तव्यो भृत्या नित्यत्व शासन्नृप:। कुमारिल मृगेंद्रेण हितेषु निज हस्तिषु निष्प्रत्यूहमवर्धन्त श्रुतिशाखा: समन्तत:।(विद्या. शं.विजय)

बौद्धमतका खण्डन किया ऐसी जो प्रसिद्धि है वह नितांत झूठ है। ऐसा कोर्ट का निर्णय है।

बौद्ध जिसको शून्य कहते हैं, वह शून्य निर्विशेष नहीं, सत्य नहीं, ज्ञानरूप नहीं, आनंदरूप नहीं, अज्ञेय नहीं, अवाच्य नहीं। अत: निर्विशेष सत्य ज्ञानानंदादिरूप ब्रह्म शून्यसे भिन्न है। इस प्रथमतत्त्व ब्रह्मके विषयमें प्रतिवादि जो कहते है। उसका विचार करनेपर 'निर्विशेषत्वात्च्छून्यवच्छून्यस्य'' सहस्त्र नामोंके शंकराचार्यके भाष्यसे भी ''निर्विशेषं स्वयंभातं'' बौद्धोंके वाक्योंसे अद्वैतियोंके ब्रह्मकी भाँति शून्य भी निर्विशेष है यह सिद्ध होता है।

''द्वे सत्वे समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना। लोके सांवृत सत्यं च सत्यं च परमार्थत:।'' इन बौद्धोंके वाक्योंसे ''शून्यवादिनां न्यूनतया अपि सत्यत्वात्'' भामती आदि अद्वैतियोंके वाक्योंसे शून्य, ब्रह्मकी तरह सत्य है।

शून्यवादिभिरपि सत्वरहित ज्ञानानंदात्मकत्वस्य ब्रह्मणोऽन्यत्रांगीकारात् इस अद्वैतसिद्धि के वाक्यसे ''शून्यवादस्य विज्ञानवाद विशेषरूपत्वात् तथाचानंदोपि ज्ञानाकारत्वात् ज्ञानाभिन्न इति ज्ञानानंदात्मकत्वं तन्मते (शून्यवादिमते) ब्रह्म भिन्नेपिति इस गौडब्रह्मानंदीय वाक्यसे भी ''केवलांसंविदंस्वस्थां मन्यन्ते मध्वमापुन:'' ''अद्वयज्ञानैकरूपां शून्यतां विभाव्य ओं शून्य वज्र स्वभावात्मकोहं'' ''केवलां अद्वय विज्ञप्तिलक्षणां'' आदि बौद्धवाक्योंसे भी बौद्धोंका शून्य अद्वैतियोंके ब्रह्मके जैसे ज्ञानरूप, आनंदरूप है यह सिद्ध होता है।

अद्वैतसिद्धि ग्रंथमें शून्य सत्वरहित ज्ञानानंदरूप कहा गया है, बौद्ध जैसे शून्यका सत्यत्व स्वीकार करते है कैसे यह सिद्ध होता है यह आक्षेप सही नहीं। क्योंकि ''सत्यं च परमार्थत:'' आदि बौद्ध वाक्योंसे ''शून्यवादिनामपि शून्यताया: सत्यत्वात्'' आदि अद्वैत ग्रंथोंसे शून्यका सत्यरूपत्व सिद्ध होता है। अत: इस विषयमें अद्वैतसिद्धिकारका वाक्य ग्राह्य नहीं।

''निर्विशेषं स्वयं भातं निर्लेपमजरामरं शून्यतत्वमसि ज्ञेयं मनोवाचामगचोरं'' इस बौद्धोंके वाक्यसे शून्य अद्वैतियोंके ब्रह्मके जैसे अज्ञेय, अवाच्य है यह सिद्ध होता है। इसलिये अद्वैतियोंके ब्रह्मकी तरह बौद्धोंका शून्य निर्विशेष, सत्य, ज्ञानरूप, आनंदरूप, अज्ञेय, अवाच्य है इसी हेतुसे ब्रह्म, शून्य, नाम भिन्न है, ब्रह्म शून्यसे भिन्न नहीं।

ब्रह्मको निर्विशेष मानते हैं अद्वैती और ''नाम वा कर्म वा भेदो वा न ब्रह्मप्यस्ति'' ब्रह्ममें कोई भेद नहीं। स्पष्टरूपसे अद्वैती मानते हैं। शून्यसे ब्रह्ममें किसी भेदकी गुंजाईश नहीं। इसी कारणसे अद्वैतियोंका ब्रह्म, बौद्धोंका शून्य एक ही है, ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

वेद और जगतके विषयमें निर्णय

''अद्वैतियों के मतमें वेदोंको मानते हैं, वेदोंके प्रामाण्य का स्वीकार करते है। वेदोक्त ब्राह्मणादि धर्मोंको, ब्रह्मचर्याद्याश्रमोंको मानकर, वर्णाश्रमधर्मोंको वेदोंसे उक्त स्नान, संध्या, भगवत्पूजा, यज्ञ, दान, वेदाध्ययन का अनुष्ठान करते शुद्धान्त:करण युक्त होकर, श्रवण, मनन, ध्यान करके, वेदान्त शास्त्रोंसे ब्रह्मापरोक्षज्ञान को प्राप्त करके ब्रह्मभावरूप मोक्ष का लाभ उठाना चाहिये ऐसा कहा गया

है । इस कारणसे अद्वैति आस्तिक हैं । बौद्धोंके मतमें वेदोंकी मान्यता नहीं, वेदोक्त ब्राह्मणादि धर्म, ब्रह्मचर्याद्याश्रम मानते नहीं । यज्ञादिकोंका भी आदर नहीं करते, और वेदोक्त यज्ञादिकोंका स्वीकार न करने के कारण बौद्ध नास्तिक हैं । इस प्रकार नास्तिकोंका बौद्धमत और आस्तिक शीरोमणि अद्वैतियोंका मत एक ही है ऐसा प्रतिपादन करना युक्ति युक्त नहीं ।

इस तरह प्रतिवादियोंकी दलील, समस्त विषयोंमें दोनों मत एक है, आपकी (प्रतिवादियोंकी) युक्ति विफल है । ऐसा कोर्टने निर्णय लिया है । जैसे उनको आस्तिक कहते हैं जो परलोकको परलोकके साधनोंको, फलदाता ईश्वरको, जानकर मानकर परलोक की प्राप्ति के लिये कर्मानुष्ठान करते हैं । परलोकादि के अस्तित्व को ठुकराकर पुण्यकर्म न करनेवाले नास्तिक हैं ।

असत्यभूत वेदान्त वाक्यसे सत्यभूत ब्रह्मकी सिद्धि किस तरह होगी ।१* (ब्र. सू. शांकर २-१-१४) ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामोयजेत्'' ज्योतिष्टोमसे प्राप्त होनेवाला स्वर्ग, ज्योतिष्टोमयाग, सपनेमें किये गये यज्ञ प्राप्त होनेवाला स्वर्ग भी असत्य है । आकाश, सृष्टि, शशविषाणके जैसे झूठ है । इस तरह सिद्धान्त लेशसंग्रह ग्रंथमें उसके व्याख्यानमें कहा गया है । जाग्रतकालीन सभी पदार्थ कल्पित हैं, स्वप्नके पदार्थ कल्पित है । इन दोनोंमें (जाग्रत और स्वप्नमें) क्या अन्तर होगा ? संक्षेप शारिरीक वाक्योंसे स्वप्नपदार्थ भी माया कल्पित है । गंधर्व नगर जैसे असत्य है । बद्ध संसारी जीव नहीं बद्ध मोक्षसाधक मनुष्य नहीं । मोक्षकी इच्छा करनेवाला मानव नहीं । समस्त प्रपंच असत्य है यह गौडपादाचार्यकी कारिकावोंसे उसके व्याख्यानभूत शंकराचार्यके भाष्यसे, अन्य अनेकों अद्वैतियोंके वाक्योंसे यह ज्ञात होता है कि जगत् स्वप्नकी तरह, गंधर्व नगरके जैसे असत्य है, अद्वैति इस तत्त्वको मानते हैं ।

यथामाया यथास्वप्नो गंधर्वनगरं यथा
तथोत्पादस्तथास्थानं तथा भंग उदाहृत:

इन बौद्धोंके वाक्योंसे जगत् स्वप्नकी तरह, गंधर्व नगर जैसे असत्य है, इस तरह बौद्ध मानते हैं ।

अद्वैती कहते हैं - यह जगत् मरूमरीची की तरह, स्वप्नकी भाँति परलोकादि जगत्, परलोकके साधन असत्य हैं । गन्तव्य लोक नहीं, कर्तव्य कर्म नहीं, श्रोतव्य कोई वस्तु नहीं, विचार्य पदार्थ नहीं । 'गजोपि मिथ्या पलायनमपि मिथ्या' उक्ति के अनुसार स्नान संध्या, यज्ञ, वेदाध्ययन आदि

१* १) कथं त्व सत्येन वाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्मत्वस्य सिद्धि: (ब्र. सू. शां. २/१/१४-१) ज्योतिष्टोमादि श्रुति बोधितानुष्ठानात्फल सिद्धि: (सिद्धान्तलेश संग्रह)

२) स्वप्नेकश्चित्कदाचित् ज्योतिष्टोमादिश्रुतिं कल्पयित्वतत: साधन विशेषमुपलम्य तदनुष्ठानात्फलं लभते' तत्तुल्यं जागरणेऽपि स्वर्गादि फल लंभनं ''दियदादि सृष्टितत क्रमादे: शश श्रंगायमाण त्वं (मि. स. व्या.)

३) न सुकल्पितं यदि जागरितं वद कीदृसी खलुविलक्षणता । स्वप्नादमुष्य भवतोऽभिमतो परिकल्पितत्वमुभयोस्तु समं (संक्षेप शा. २/३२)

४) स्वप्नमाया यथादृष्टे - गंधर्व नगरं यथा तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणै: । न निरोधो चोत्पत्ति: न बध्दोन च साधक: । न मुमुक्षुर्नवैमुक्त: (गौ. कारिका) गन्धर्वनगरं दृश्य मानमेवसन् अकस्माद् भावता गतं दृष्टं यथाच स्वप्नमाये दृष्टे असद्रूपे तथा विश्वमिदं द्वैतं समस्तमसत् दृष्टं.......द्वैतस्यासत्वात् (गौ. शा. भा.)

कर्मके अनुष्ठानका दिखावा करते हैं, इसी तरह बौद्ध स्वर्गादिकोंको मिथ्या मानते हैं, पर '' न हि स्वप्न सुखाद्यर्थ कश्चित्प्रवर्तते'' ''नास्तिक्य परिहारार्थ ऐसा वार्तिककार कहते हैं। आस्तिक जनोंको गुमराह करनेके लिये ''स्वर्गकामश्चैत्यं वंदेत्'' वाक्यमें, स्वर्गादिकोंके उद्देशसे कर्मानुष्ठानका दिखावा होता है। जगतके विषयमें दोनों मत एक ही है। इसी कारणसे अद्वैतियोंको आस्तिक, बौद्धोंको नास्तिक नहीं कह सकते। दोनों नास्तिक मत ही हैं ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

अद्वैती वेदोंका प्रामाण्य मानकर, वेदोक्त परलोकादि जगत्को व्यावहारिक सत्य कहते हैं। बौद्ध वेदोंको प्रमाण नहीं मानते। वेदोक्त, परलोकादिकको व्यावहारिक सत्य भी नहीं मानते। इसी कारणसे बौद्ध नास्तिक है, अद्वैती आस्तिक हैं, इस प्रकार प्रतिवादिका कहना सही नहीं, ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

जैसे परलोकादिकको व्यावहारिक सत्य समझते हैं, वैसे ही बौद्ध भी परलोकको व्यावहारिक सत्य मानते हैं, यह कहना ''द्वेसत्वेसमुपाश्रित्य बुद्धानां धर्म देशना'' इस बौद्ध के वाक्यसे नास्तिक्य परिहारार्थं संवृति कल्पनाचेत् वार्तिककारके वाक्यसे ''यदुच्येत्'' इत्यादि भामती वाक्यसे सिद्ध होता है।अद्वैती व्यावहारिक सत्यको मानते हैं, बौद्ध व्यावहारिक सत्यको नहीं मानते, इस तरह दोनो मतोंमें भेद दिखाना युक्त नहीं।

अगर घरमें बेटा हो तो शादी कर सकते हैं, बेटा ही नहो, बेटेका विवाह जैसे युक्त नहीं होगा। उसी तरह वेदको ही मृगतृष्ण के जैसे असत्य माननेपर, उस वेदका प्रामाण्य भी युक्त नहीं होता। अद्वैती वेदोंके प्रामाण्य का स्वीकार करते, बौद्ध वेदोंके प्रामाण्यका स्वीकार नहीं करते, इन दोनों मतमें भेद है, यह प्रतिवादिका कथन युक्ति संगत नहीं होता।

प्रमाण, अपने अपने विषयमें पारमार्थिक सत्यको ही ग्रहण करते हैं, व्यावहारिक सत्यके रूपमें ग्रहण नहीं करते। ऐसा, शांकरभाष्य, भामती में उक्त होनेके कारण, वेदादि प्रमाणोंसे उक्त लोक, वेद, यज्ञ, तीर्थ, देवता, कर्तव्य-भोक्तृत्व आदि व्यावहारिक सत्य है, इस प्रकार अद्वैतियोंकी दलील विरूद्धोक्ति होगी।

''प्रमाण'' शब्द विद्यमान प्र-मा-अन तीनों भागोंमें प्र - पारमार्थिक सत्यको विषयी करनेवाला, मा-ज्ञान, अन् - पैदा करनेवाला (पारमार्थिक सत्यभूत वस्तुभूत विषयीकरनेवाले ज्ञानको पैदा करनेवाला) यह पारमार्थिक सत्य होगा। इस तरह प्रमाण शब्दका अर्थ है। व्यावहारिक सत्य शुक्तिरजतकी भाँति बाध्य होता है। यह अर्थ अप्पय्य दीक्षित आदि विद्वानोंके वाक्योंसे सिद्ध होता है। अत: परलोकादि व्यावहारिक सत्य है कहना बाध्य है ऐसा कहना है। व्यावहारिक सत्यके रूपमें परलोकादिकोंका वर्णन करनेवाले वेदादि प्रमाण, पारमार्थिक सत्यभूत पदार्थोंका ज्ञान नहीं कराते ऐसा कहना, वेदोंको प्रमाणके रूपमें मानते हैं, बौद्ध नहीं मानते, इस तरह भेदको दिखाना अयुक्त है। कोर्ट निर्णय करता है कि यह कहना तर्कसंगत नहीं।

अद्वैतिमतके अनुसार, ब्रह्मापरोक्ष ज्ञानको प्राप्त करके आनंदरूप ब्रह्मरूप बनकर ब्रह्मानंदका अनुभव करता है। बौद्धमतके अनुसार शून्यापरोक्ष प्राप्त करके, शून्यरूप (शून्यापरोक्ष) होता है। अद्वैतियोंमें और बौद्धोंमें कोई भेद नहीं।

३३९ - सिविल सूट (५)

जिस तरह ब्रह्म आनंदरूप है, ज्ञानरूप है, ऐसे अद्वैति कहते हैं। बौद्ध भी शून्यको आनंदरूप ज्ञानरूप मानते हैं।

अद्वैतमतमें - मोक्षावस्थामें जीव, आनंदरूप ब्रह्म होता है पर आनंदका अनुभव नहीं करता.

बौद्धोंके अनुसार भी मोक्षावस्थामें जीव आनंदरूप शून्य होता है।

इस तरह मोक्षावस्थामें भी बौद्धोंमें और अद्वैतियोंमें कोई भेद नहीं।

इस प्रकार सभी विषयोंमें, अद्वैत मतमें शून्य ही तत्त्व है। बौद्धमतमें शून्य ही तत्त्व है। अत: अद्वैतमत, बौद्धमत दोनों एक ही है।

विज्ञानवादी बौद्ध और अद्वैतियों के मतके विषयमें निर्णय जगत प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे दिखता है। शुरूमें सबकुछ शून्य है कहनेपर, कुछ मूर्ढशिष्योंको पसंद नहीं आयेगा, ऐसा समझकर थोडासा बदलाव किया, बदलाव इस प्रकार है जगत सत्य है, पर क्षणिक है, कहने लगे, अन्तमें शून्यवादमें क्षणिक वादका पर्यवासन हुवा।

मध्यम शिष्योंसे वे कहने लगे, विज्ञान एक ही तत्त्व है। उस विज्ञानमें समस्त जगत् कल्पित हैं। आखिर इस विज्ञानवाद का पर्यवसान भी शून्यवादमें ही होता है।

उत्तम शिष्योंसे वे कहा करते थे - शून्य एक ही तत्त्व है। उस शून्यमें समस्त जगत् कल्पित है। बौद्धोंके ''देशनालोकनाथानां'' आदि ग्रंथोसे और ''विनेय भेदाद्वा'' शांकर भाष्य, तथा 'हीनमध्यमोत्कृष्टधिय:'' आदि (२/२/१८) भामती ग्रंथसे सिद्ध होता है। अद्वैतमत और शून्यवादिमत एक ही होनेपर अद्वैतमत, विज्ञान वादि बौद्धमत ही होगा।

इसके बावजूद -

विज्ञान (ब्रह्म) एक तत्त्व उस विज्ञानमें समस्त जगत कल्पित है। ऐसे अद्वैती कहते हैं। बौद्ध कहते हैं - विज्ञानमें समस्त जगत् कल्पित है - १) गौडपादकारिका २) शांकरभाष्य ३) आनंदगिरी टीका ४) मिताक्षर ५) गौडपादीय विवेक ६) पंचपादिक ७) विवरण ८) संक्षेप शारिरक, शंकर विजय आदि अद्वैतियोंके ग्रंथोंसे ज्ञात होता है। इसी कारणसे अद्वैतमत विज्ञानवादि बौद्धमत ही है ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

विज्ञान एक ही तत्त्व है। उस विज्ञानमें समस्त जगत् कल्पित हैं। अंशमें साम्य होनेपर भी, अद्वैतियोंका विज्ञान (ब्रह्म) उपनिषदोंसे ज्ञेय है, एक ही है, नित्य है।

बौद्धोंका विज्ञान उपनिषदोंसे ज्ञेय नहीं। अनेकत्वयुक्त है, क्षणिक है। (क्षणिकत्व युक्त है) इस तरह अद्वैतमतमें, विज्ञानवादि बौद्धमतमें अन्तर है। दोनों मतोंमें भेद है। अद्वैतियोंका यह कथन युक्ति संगत नहीं कोर्ट इसको बरखास्त करता है। बरखास्तगीके कारण -

ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, वेद, वेदाध्ययन यज्ञ, देवता, भगवत्पूजा, स्वर्गादि परलोक, सबकुछ ज्ञानमें कल्पित है। ज्ञान एक ही सत्य है। बौद्धोंके जैसे अद्वैती जब स्वीकार करते है, तब वह ज्ञान नित्य हो या अनित्य हो एक हो या अनेक हो, आस्तिक की तरह वेदाध्ययन, यज्ञ, स्नान, ईश्वरपूजा, आदिका अनुष्ठान अद्वैतियोंके लिये योग्य नहीं होगा। अद्वैती बौद्धोंके जैसे नास्तिक अवैदिक ही है। ज्ञान नित्य है, एकत्वयुक्त है। इस तरह अद्वैतियोंका कहना अनुपयुक्त है।

वास्तवमें, सूक्ष्मविचार करनेपर अद्वैतियोंका ज्ञान निर्विशेष है। भेदादि सकल धर्मरहित है। अज्ञानमें भी एकत्व नहीं, नित्यत्व भी नहीं, उपनिषद् वेद्यत्व भी नहीं। बौद्धोंके ज्ञानसे भिन्न भी नहीं। बौद्धोंका विज्ञान भी निर्विशेष है। उसमें ज्ञानमें क्षणिकत्व नहीं, अनेकत्व नहीं और सर्वकालवृत्तित्व रूप नित्यत्व भी नहीं। विज्ञान अनेक पदार्थों से युक्त है। सखण्ड है, अद्वैतियोंका ब्रह्मरूप ज्ञान अखण्ड है। अत: सखण्डरूप नित्यत्व, अखण्डरूप ब्रह्मका स्वरूप कहना युक्त नहीं होगा। ''न केवलत्वं'' दशश्लोकी श्लोकसे यह ज्ञात होता है। एकत्व ब्रह्मकल्पित होनेके कारण, कोई भी गुण नहीं ऐसा शंकराचार्यने ही कहा है। एकत्व अद्वैतियोंके ज्ञानमें (ब्रह्ममें) नहीं। सत्यभूत ज्ञानस्वरूप भी नहीं। बौद्धोंका विज्ञान अखण्ड है, निर्विशेष है समस्त धर्म रहित है, अत: बौद्धोंके विज्ञानमें अनेकत्व नहीं। क्षणिकत्व नहीं। क्षणिकत्व सखण्ड होनेके कारण, अखण्ड बौद्धोंका ज्ञान स्वरूप भी नहीं होगा।

किंच आलय विज्ञानं स्थायीचेत् नामान्तरेण ''अस्मदात्मैव स्यात्'' इस तरह संक्षेप शारीरक (२-६९) श्लोक व्याख्यानमें बौद्धोंका आलयविज्ञान स्थायी (नित्य) है, वह हमारा ब्रह्म ही है, ऐसा मधुसूदन सरस्वती कहते है। आलयविज्ञान ''समस्तवासनाधारमभ्यगच्छन्'' अक्षरं (अविनाशी) आत्मानमथ्युपैति'' २/२/३२ के ब्रह्मसूत्र व्याख्यानमें, बौद्ध आलय विज्ञानको नित्य मानते हैं। भामतीकारके वचनके अनुसार बौद्धोंका विज्ञान अद्वैतियोंके ब्रह्मके जैसे नित्य है। अद्वैतियोंके ज्ञानमें, बौद्धोके ज्ञानमें नित्यत्व, क्षणिकत्व, एकत्व, अनेकत्व के विषयमें कोई विशेष नहीं।

किसी एक वस्तुका बोधन करनेवाले शब्द उसी समय कर सकते हैं, जब उस वस्तुमें, द्रव्य, गुण, कर्म, जाति, भेद, संबंध, किसी धर्मका रहना आवश्यक है। अद्वैतियोंके ज्ञानमें (ब्रह्ममें) उपरोक्त धर्मोंमें कोई धर्म नहीं, कोई भी शब्द अद्वैतियोंके ब्रह्मका बोध नहीं करता। उपनिषदेकगम्यत अद्वैतियोंके ज्ञानमें (ब्रह्ममें) संभव नहीं। अत: उपनिषदेक वेद्यत्व के विषयमें भी भेद नहीं सिद्ध हुवा। दोनों जगतको कल्पित मानते है। इस कारणसे अद्वैतमत, विज्ञानवादियोंका मत एक ही है ऐसा कोर्ट निर्णय करता है।

डिक्री

१. अवैदिक अद्वैतमतका उपदेश प्रतिवादी वैदिकमतके रूपमें न करें।

२. सात्विक लोग उन अद्वैतियोंका उपदेश सुनकर, अद्वैतमतके अनुसार ''अहं ब्रह्मास्मि'' ऐसी उपासना न करे।

३. उस प्रकार अद्वैति उपदेश करते हैं, सात्विक लोग उस उपदेशको सुनकर, अद्वैतमतके अनुसार उपासना करेंगे तो ''मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यांत्यधमां गतिं''गीता में कहा गया है। उस गीतामें उक्त दण्ड के पात्र होंगे। इसलिये ''यदापश्य: पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजन: परमं साम्यमुपैति''

''योमामेवासंमूढो जानाति पुरूषोत्तममं..... इति बुध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत''

३४१ – सिविल सूट (५)

''अनावृत्ति: शब्दादनावृति: शब्दात्, आदि श्रुति, गीता, सूत्रमें उक्त तरहसे, परमात्मा सर्वोत्तम है, जगज्जन्मादि कर्ता है। हिरण्यगर्भ, रुद्र, आदि समस्त प्राणियोंका पिता है। इस तरह समझकर, उपासना करके ब्रह्मापरोक्ष ज्ञानको प्राप्त करके संप्रसादोऽसमच्छरीरात् – परंज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण: कामान्नीकारूप्यनुसंचरन्'' आदि श्रुतियोंमें उक्त प्रकार परमात्माको प्राप्त करके, बन्धनसे मुक्त होकर वैकुंठादि स्थानोंमें अभीष्ट फल का अनुभव करते सामगानसे परमात्माका स्तोत्र करके, सुखसे रहें इस तरह डिक्री है।

संयमनीपुर
१०-०३-१९२९

धर्मराज एच्. बी.
चीफ जड्ज हायकॉर्ट

श्री

संयमनीपूर का हायकोर्ट

O.S.No. 564 of 1927

अ) अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है या एक है ?

ब) अद्वैतमत वैदिक (वेदसे सिद्ध है) अथवा वेदके विरूद्ध है ।

पांचवे इश्श्यू के मुद्देका विचार

वादी विचार

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

वादी - विष्णुदासाचार्य

कोर्ट - ईश्वरकी कसम खाकर यह कहिये कि कोर्टके सामने जो कुछ कहेंगे सत्य कहेंगे ।

वादी - ईश्वरका शपथ लेकर कहता हूँ कि जो कुछ कोर्टके सामने कहूँगा वह सत्य कहूँगा ।

कोर्ट - आपका कहना क्या है ?

वादी - अद्वैतमत और बौद्धमत एक ही है । इसी कारणसे बौद्धमत के जैसे अद्वैतमत भी अवैदिक है । दोनो मत वेदविरूद्ध है, वेदोंसे सिद्ध नहीं होते । अवैदिक होनेसे ही अनर्थ के कारण है, इसलिये मोक्षादि फलोंकी इच्छा करनेवाले वैदिक आस्तिक लोगोंसे स्वीकार करने योग्य नहीं । अत: मोक्षादि फलोंकी कामना करनेवाले, द्वैतमतका आश्रय लेकर मोक्ष प्राप्त करें यही हमारा निरूपण हैं ।

प्रतिवादि विचार

कोर्ट - आपका नाम क्या है ?

प्र.वा. - गंगाधर शास्त्री

कोर्ट - ईश्वरकी कसम खाकर यह कहिये की कोर्टके सामने जो कुछ कहेंगे सत्य ही कहेंगे ।

प्र.वा. - हमारे मतमें ब्रह्मातिरिक्त पारमार्थिक सत्य पदार्थ ही नहीं, सबकुछ व्यावहारिक सत्य है । अत: पारमार्थिक सत्य कहता हूँ ऐसा कहना अशक्य है । इसलिये ईश्वरकी कसम खाकर व्यावहारिक सत्य कहता हूँ ।

कोर्ट - आपका कहना क्या है ?

प्र.वा. - अद्वैतमत बौद्धमत नहीं । अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है अद्वैतमत वैदिक मत है । बौद्धमत अवैदिक है । अद्वैतमत के अनुसार आचरण करनेवालोंको परमपुरूषार्थ का लाभ होगा ।

कोर्ट - द्वैतमतके अनुसार आचरण करनेवालोंको फल प्राप्त होता है या नहीं ?

प्र.वा. - द्वैतमतके अनुसार आचरण करनेवालोंको फल प्राप्ति होगी । हम भी द्वैतमतके अनुसार ब्राह्मणादि वर्णको, ब्रह्मचर्याद्याश्रमको, वेदोंमें विहित स्नान, संध्या, यज्ञ, गंगादि तीर्थस्नान, वेदाध्ययन, श्रवण मनन ध्यान करते हैं । लेकिन अद्वैत मतके अनुसार आचरण करके सगुण ब्रह्मज्ञान

को प्राप्त करनेवालोंको वैकुंठ लोक की प्राप्ति होती है। निर्गुण ब्रह्मभाव रूप मोक्ष नहीं मिलता। हमारे मतके अनुसार ''अहं ब्रह्मास्मि'' के रूपमें ध्यान करके ब्रह्मापरोक्ष प्राप्त करनेवालोंको निर्गुण ब्रह्मभाव रूप मोक्ष प्राप्ति होती है। द्वैतमतके अनुसार यह आचरण निम्न दर्जेका है। अद्वैतमतके जो आचरण है, निर्गुणब्रह्म बनना उच्च दर्जेका आचरण है। अत: द्वैतमतके अनुसार आचरण करनेपर भी, फल प्राप्त होनेपर भी, उत्तम फल नहीं। अद्वैतमत ही उत्तम है। अद्वैतमतके अनुसार आचरण करनेपर उत्तम फल मिलेगा।

वा.व. – महाप्रभो ! इस विचारमें प्रतिवादि, वादिके ऊपर स्वयं क्रॉस करना चाहते है। कोर्टका आदेश हो।

कोर्ट – मिस्टर माधवदास मिस्टर हरिहरशर्मा क्या कहते है ? आपके विचार क्या हैं ?

वा.व. – हमारे मुवक्किल वादिको भी प्रतिवादिके ऊपर क्रॉस करने अनुमति मिलेगी तो वादि प्रतिवादि परस्पर क्रॉस करके, अपने विचार आधार सहित कोर्टके सामने रखेंगे तो, हमें कोई एतराज नहीं।

कोर्ट – मिस्टर हरिहर शर्मा ! मिस्टर माधवदास के कथनके अनुसार, बीचमें आप दोनों क़िसी भी विषयपर क्रॉस कर सकते हैं, कोर्ट भी क्रॉस करेगा, वादि प्रतिवादि अपने पक्षोंके प्रमाणोंको, परपक्षके दोषोंको कोर्टके सामने रखे।

वा. व. – प्रतिवादि वकील एस एस्

प्र.व. – हमारे शंकराचार्यने अवैदिक बौद्धमतका खण्डन करके वैदिक मतकी स्थापना की है। इस स्थितिमें शंकराचार्यका अद्वैतमत और बौद्धमत एक ही है यह कहना किस तरह युक्ति संगत होगा ?

वादि – शास्त्रीजी ! क्या इस ग्रंथको आपने देखा है ?

प्र.वा. – देखा है।

वादि – यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र.गं. – शंकराचार्य का लिखित 'सर्व सिद्धान्त संग्रह' ग्रंथ है।

वादि – १* इस श्लोकको पढकर अर्थ कहिये।

प्र.वा. – पूर्वमें बौद्धादिसे, नास्तिकोंसे नष्ट किये वेदमार्ग की स्थापना कुमारके अंशभूत भट्टाचार्यने की। वेदबाह्य लोगोंका निराकरण करके भट्टाचार्य के अनुष्ठित मार्गपर लोग चलने लगे।

वादि – इस श्लोकसे क्या ज्ञात होता है ? बौद्धोंके मतका नाश किसने किया ? वैदिकमतकी स्थापना किसने की ? शंकराचार्यने क्या कहा है ?

प्र.वा. – कुमारिल भट्टने बौद्धमतका खण्डन करके वैदिकमतकी स्थापना की ऐसा शंकराचार्यने कहा है।

वादि – यह ग्रंथ कौनसा है ?

१* बौद्धादि नास्तिक ध्वस्त वेदमार्ग पुरा किल ॥ भट्टाचार्य: कुमारांश: स्थापयामास भूतले ॥ वेद बाह्यान्निराकृत्य भट्टाचार्य गतेपथि ॥ (सर्वसिद्धान्त सारसंग्रह)

प्र.वा. – आनंदगिरीसे रचित शंकर विजय

वादि – १* इन वाक्योंका अर्थ कहियेगा।

प्र. – भट्टाचार्य नामका एक ब्राह्मण श्रेष्ठ उत्तर देशसे आकर दुष्ट मतके आश्रित असंख्यात बौद्धोंका राजा के द्वारा अनेक शास्त्रास्त्रोंकी आयोजना कर, उनको परास्त करके विजय पाकर कुल्हाडीसे बौद्धोंके सरोंका शिरच्छेद कराके, ऊखलोंमें डालकर चूर्ण करके इस प्रकार दुष्ट मतका नाश करके, भयरहित हो जी रहा है। शंकराचार्यने इस अद्भुतको सुना और वे शिष्योंके साथ जय शब्दसे युक्त रूद्ध नामके नगर आये. उस समय कुमारिल भट्टाचार्यने आये हुये शंकराचार्यसे पूछते हैं – ओ नूतन बौद्ध (नये सिरेसे बौद्धमतकी स्थापना के लिये प्रयत्न करनेवाले) मैं जब जागृत था तुम नहीं आये। अब घुटनोंतक मेरा शरीर जल गया है, इस समय तुम्हारे साथ क्या वाद करूँ ?

वा. – शंकरविजयके आधारसे, बौद्धमतका खण्डन किसने किया ?

प्र. वा. – कुमारिल भट्टने ही बौद्धमतका खण्डन कियाहै ऐसा सिद्ध होता है।

वादि – क्या आपने इस ग्रंथको देखा है, किसने यह ग्रंथ लिखा है ?

प्र. वा. – इस ग्रंथको मैंने देखा है, यह विद्यारण्यका लिखित शंकर विजय है।

वादि – शंकर विजय के २* इन श्लोंकोका अर्थ कहिये।

प्र. वा. – कुमारिल भट्टने बौद्ध पण्डितोंके साथ वाद करके, बौद्धोंपर विजय पाकर वेद द्वेष करनेवाले समस्त बौद्धोंको आसेतु हिमाचल तक फैले, अबालवृद्धोंको, राजाके द्वारा संहार कराया। वह राजा सुधन्वा नामका था। जो नौकर बौद्धोंका संहार नहीं करेगा, उसका भी संहार करने का आदेश दिया था। कुमारिल भट्ट जैसे सिंहसे बौद्धरूप हाथी मारे जानेपर, श्रुतिशाखायें (समस्त वेद) विना रोकटोक अभिवृद्ध हुवे। सभा सज्जन वेदोक्त मार्गपर चलने लगे।

विद्यारण्य के शंकरविजयसे, बौद्धमतका खण्डन किसने किया ?

प्र. व. – कुमारिल भट्ट ने बौद्धमतका खण्डन किया यह सिद्ध होता है, पर कुमारिल भट्टने बौद्धमतका खण्डन किया उसके बांद फिर बौद्धमतकी अभिवृद्धि हुई होगी। उस समय शंकराचार्यने खण्डन किया, ऐसा कह सकते हैं, शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन ही नहीं किया यह कहना सही नहीं।

वादि – कुमारिल भट्टने दोषदुष्ट बौद्धमतका नाश करके आबालवृद्ध समस्त बौद्धोंका संहार कराके भरतखण्डमें वेदमार्ग की स्थापना की और निर्भय बने रहे। उस समय शंकराचार्य शिष्योंके साथ कुमारिल भट्टको देखने गये। उस समय शंकराचार्य प्रौढावस्थामें रहे होंगे। उनकी आयुही

१* भट्टाचारान्यो द्विजवर: कश्चिदुदगेदेशादागत्य दुष्ट मतावलंबिनो बौद्धान् जैनान् सांख्यान् राजमुखादनेक विद्याप्रसंग भेदै; निर्जित्य तेषां शिर्षाणि परशुभिच्छित्वा बहुषु उलूखलेष्वक्षिप्य कट भ्रमणै; चूर्णीकृत्य चैवं दुष्टमतध्वंसनमाचरन् निर्भयो वर्तते॥

२* उपन्यसत्सु साक्षेपं खण्डयत्सु परस्परं। तेषूदि तिष्टन् निर्घोषो भिंदन्निव रसातलम्। अध: पेतुबुधेब्द्रेण क्षता: पक्षेषु तत्क्षणं। व्यूढ कर्कणशतर्के तथागत धराधरा:। निरस्ताखिल संदेहो विनस्वेतर दर्शनात्। व्यधादाज्ञां ततो राजा वधायश्रुतिविद्विषाम् असितोरातुषाराद्रे बौद्धानां वृद्धबालकं। न हन्ति य: स संहतव्यो भृत्यान् इत्याशासत् नृप:। कुमारिल मृगेंद्रेण हतेषु जिन हस्तिषु निष्प्रत्यूह मवर्धन्त श्रुति शाखा: समंतत। (विद्यारण्य शंकरविजय)

बत्तीस सालकी थी, थोडेसे समयमें बौद्ध मतका पुन: उद्भव संभव नहीं। अत; शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन किया यह कहना ऐतिहासिक सत्य नहीं।

प्र. - आचार्यजी ! आपके कथन के अनुसार शंकराचार्य के कालमें ही कुमारिल भट्टने बौद्धमतका खण्डन किया। समस्त बौद्धोंका संहार किया। बौद्धलोग न होनेके कारण बौद्धमतका प्रचार भी नहीं रहा होगा। शंकराचार्यको उसके खण्डन का मौका नही मिला यह घटना भले ही सत्य हो। पर बौद्धमतको अद्वैतमत नाम देखकर शंकराचार्यने प्रचार किया, यह किस तरह कहते है ? इसके लिये प्रमाण क्या है ?

वा. - १* पार्वतीने शंकरसे पूछा ? किसने तामस शास्त्रोंका निर्माण किया ? रूद्रदेव कहते हैं - मेरी शक्तिसे युक्त गौतमादिसे न्यायशास्त्रादि ग्रंथोंका लेखन किया गया। विष्णुने बुद्धरूप का धारण करके बौद्ध शास्त्रका निर्माण किया। मायावाद रूप अद्वैतशास्त्रके नामसे प्रसिद्ध है। मैंने ही ब्राह्मणरूप धारण करके उस अद्वैत शास्त्रका निर्माण किया, उस मायावाद शास्त्रमें श्रुतियोंका अर्थ लोकनिन्दित रूपमें कीया। जीव परमात्माके ऐक्यका बोधन किया। ब्रह्मको निर्गुण कहा। इसीसे यह ज्ञात होता है कि अद्वैतशास्त्र और बौद्धशास्त्र एक ही है।

२* बृहद्ब्रह्मसंहिता के आठवे अध्यायमें कहा गया है कि जगत् मिथ्या है, परमात्मा निर्गुण है, जीव परमात्मा का आभास है। यह मत पाखंडियोंसे कहा गया है। भगवान वासुदेवकी आज्ञासे, दैत्योंके मोहके लिये, मैंने ही इसे कहा है। पर इसपर विश्वास न करें। यह मायावाद माया मोहसे कहा है। मायावाद को बौद्धमत ही मानकर कहा गया है।

''यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदांचयत्'' सर्ववेदान्त सिद्धान्त सार संग्रहके शंकराचार्यके वाक्यमें कहा गया है, जो शून्यवादिका शून्य है, ब्रह्मवादिका जो ब्रह्म है, उस ज्ञानी प्राप्त करता है। इस उक्तिसे यह ज्ञात होता है कि शून्य और ब्रह्म एक ही हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि अद्वैतमत और बौद्धमत एक ही है।

''यद्यपि बाह्यार्थ निराकरणं ज्ञानमात्र संकल्पनाच अद्वयमेत्तन्न बुद्धेन भाषितं, इदंतु परमार्थतत्त्वं, अद्वैतं, वेदान्तेष्वेव विज्ञेयमिति'' शंकराचार्यके वाक्योंसे ज्ञानंनैतब्दुद्धेन भाषितं, इस गौडपादके

१* पार्वत्युवाच: - तामसानिच शास्त्राणि समाचक्ष्वम मानध ॥ संप्रोक्तानिच यैर्विपोर्भगवद्भक्ति वर्जितै: । तेषां नामानि क्रमश: समचश्व सुरेश्वर ॥

रूद्रउवाच : - श्रुषुदेवी प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमं। येषां स्मरण मात्रेण पातित्यं ज्ञानिनापि। प्रथमं हि मया प्रोक्तं शैवं पाशुपतादिकं। यच्छक्त्यावेशितैर्विप्रै: प्रोक्तानिच तत: श्रुणु ॥ कणादेनतु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्। गौतमे न तथ्यान्यायं सांख्यंतु कपिलेन वै ॥ धिषणेन कथाप्रोक्तं चार्वाकमति गर्हितं ॥ दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ॥

बौद्ध शास्त्रमसप्रोक्तं नग्ननील पटादिकं मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्न बौद्धमुच्यते मयैव कथितं देवी कलौ ब्राह्मणरूपिणा। अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयन् लोकगर्हितं.... परेशजीवयोरैक्यं मयातु प्रतिपाद्यति ॥ ब्राह्मणोस्य स्वयं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया। सर्वस्यप्यश्रमोहनार्थं। कलौ युगे वेदार्थवन्महाशास्त्रं माययायदवैदिकं।

२* राजन्कार्यस्य मिथ्यात्वं नैर्गुण्यं परमात्मन: आमास वादो जीवस्य पाषंडरूपकल्पित: ॥ नैतद विश्वसनीयं ते मयोक्तमपि मायया। आज्ञया वासुदेवस्य मोहनाय सुरद्विषां। प्रवर्तिगंमसच्छास्त्रंमयथार्थस्य शासनात...... माया वाद मिदंशास्त्रमायामोह प्रवर्तितं ॥

वाक्यसे, ''ज्ञानमात्रं पारमार्थिक तत्रैव ज्ञातृज्ञेयादि कल्पितमिति सौगतमतमेव भवतापि संग्रहीतमित्यांशंक्याह -आनंदगिरीके वाक्योंसे, शंकराचार्यके परमगुरू गौडपादाचार्यके समय ही, जब अद्वैतमत प्रचारमें आया उस समय ही महापंडित कहते थे - ज्ञान एक ही तत्त्व है, ब्राह्मण वर्णादि समस्त जगत् उस ज्ञानमें ही कल्पितं है, यह अद्वैतमत बौद्धमत ही है। उस समय के विद्वानोंने समझा, अद्वैतमतने बौद्धमतका स्वीकार किया है।

शंकराचार्यके समकालीन भास्कराचार्यने २-२-२९ के ''वैधर्म्याच्य न स्वप्नादिवत्'' ब्रह्मसूत्र भाष्यमें लिखा है ''ये तु बौद्धमतावलंबिनो मायावादिनस्ते ह्यनेन न्यायेन सूत्रकारेणैव निरस्ता वेदितव्या:'' वाक्यसे और १-४-२५ के ब्रह्मसूत्र भाष्यमें भी महायानिक बौद्धगाथितं मायावादं व्यावर्णयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति'' वाक्यसे अद्वैतमत (मायावादमत) बौद्धमत एक ही है। सूत्रकारसे ही निराकरण किया गया है।

विज्ञानभिक्षुने अपने सूत्रभाष्यमें कहा है - ''ये तु रज्जुसर्पादिवत् प्रपंचस्यात्यन्त तुच्छतामिच्छन्ति'' '' तेतु बौद्ध प्रभेदा ऐव, मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते'' इत्यादि पुराण वचनात्, असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरं इति गीता वचनात्'' वाक्योंसे अद्वैतमत बौद्धमत ही है पद्मपुराण, गीताका प्रमाण देकर विज्ञान भिक्षुने कहा है, विज्ञान भिक्षु अपने भाष्यके आरंभमें कहा है - मायावाद मत बौद्धमत ही है पार्थ सारथी मिश्रने कहा है अपने शास्त्रदीपिका ग्रंथमें - ''तद्वरं अस्मान्मायावादात् महायानिक वाद:'' अद्वैतमतसे बौद्धमत ही अच्छा है, अद्वैतमत बौद्धमतसे निकृष्ट है, आनंदगिरी शंक्रविजयमें कुमारिल भट्टने शंकराचार्यसे कहते हैं - नूतनो बौद्धतर:'' नूतन बौद्धश्रेष्ठ, रामानुजादि अनेक ग्रंथकारोंने अद्वैतमतको बौद्धमतही कहा है, यही नहीं सर एस्. राधाकृष्णन् आदि आंग्लभाषा पण्डित भी, अद्वैतके ग्रंथोंकी समीक्षा करके, कहा है अद्वैतमत बौद्ध ही है। इन आधारोंसे, अद्वैतमत और बौद्धमत् एक ही हैं यह निश्चित होता है।

प्र.व. - आपकी बातोंको सुनकर हमें हँसी आ रही है। कोर्टको भी हँसी आये बिना नहीं रहेगी। क्योंकि सभी मतोंमें प्रतिवादी रहते ही हैं। अद्वैतमतके भी पहले से प्रतिवादि हैं, प्रतिवादियोंने अद्वैतमतको अवैदिक बौद्धमतके रूपमें निंदा की होगी। पर निंदकोंके वाक्योंको आप सत्य क्यों मानते हैं। कुछ लोग द्वेषके कारण हमारे मतकी निंदा करते हैं। बच्चे भी यह समझते हैं कि बौद्धमत आरै अद्वैतमत एक ही नहीं हो सकते। द्वैषियों के कथनके आधारपर क्या अद्वैतमतको बौद्धमत कह सकते हैं ?

वादि - वकील महोदय ! कोर्टमें किसीके साक्षीकी सत्यताको परखनेके लिये दूसरे साक्षीको बुलाना पडेगा ?

प्र.व. - कोई साक्षी देगा तो, उसकी बाधा नहीं होगी, तो उस साक्षीको सत्य मानना ही पडेगा। कोई भी आदमी हो चाहेछोटा हो या बडा हो,उसके कथनको उस समयतक साक्षीको सत्य मानेंगे जब तक उसकी कोई बाधा न हो। इसीलिये पूछते हैं क्या तुम्हें और वादिका कोई रिश्ता है ? रिश्ता हो तो उसकी बातोंपर विश्वास करना कठिन होगा। विश्वास रखेंगे ही नहीं।

अथवा तुम्हारे और प्रतिवादिमें कोई झगडा है ? क्या तुम्हारे झगडे के कारण मॅजिस्ट्रेटने तुमको

इस केसमें फँसाया। वह कहेगा कि प्रतिवादि के साथ झगडा कर मैं कोर्ट गया था, इससे पता चलेगा कि वादि और प्रतिवादिमें द्वेष है। द्वेषके कारण वह झूठ बोलता है। सत्य नहीं बोलता वह गवाह प्रमाण नहीं होता। क्या तुम वादिके घरमें खाना खाते हो ? वह हाँ कहेगा तो, हम समझेंगे कि भोजन करनेके कारण झूठ साक्षी दे रहा है। इससे भी होशियार, कर्मसे, पैसेसे बडा होगा तो, उसके विरूद्ध कोई साक्षी देगा तो, साक्षीदारका झूठापन सिद्ध होगा। उस साक्षीकी कोई बाधा नहीं होगी तो छोटे आदमीका साक्षी भी प्रमाण होगा।

वादी – हरिहर शर्मा वकील महोदय ! प्रकृत हमारी राय यही है। किसीके साक्षी होनेके बाद, उसके विरूद्ध दूसरा साक्षी न आये तो हम यह मानते हैं कि पहला साक्षी ही प्रमाण है, वही सत्य होगा। कोर्टमें जिस तरह मानते हैं, उसी तरह कोई भी वाक्य हो, प्रत्यक्ष हो, अनुमान हो, इनसे जो अर्थ जिस तरह अवगत होगा, वह अर्थ वैसे ही होगा। ऐसे मानते हैं, इसको ही स्वत: प्रामाण्य कहते हैं, किसीभी अर्थको जैसे समझते हैं, बाधक न होनेपर, उस अर्थको वैसे ही मानना चाहिये। बाधक होनेपर किसी वाक्यको उस पदार्थको झूठ मानना चाहिये, इसीको परत: अप्रामाण्य कहते हैं। बाधक न होनेपर, प्रत्यक्ष अनुमान, आगमसे पदार्थ जिस तरह होता है, उसे वैसे ही समझे, बाधकके अभावमें पदार्थ के अभावको निश्चित न करें। इस प्रामाण्यकी सिद्धि को द्वैत और अद्वैत दोनों मानते हैं।

प्रकृत, भास्कराचार्य, विज्ञानभिक्षु, रामानुजाचार्य, कुमारलि भट्ट, पार्थसारथी मिश्र आदि पंडितोंने अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहा है। उस कथनका कोई बाधा नहीं, इन पण्डितोंके कथनको सत्य मानना पडेगा। इतना ही नहीं पद्मपुराणमें साक्षात् नारायणावतार भगवान् वेदव्यास आदिने अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहा है।

गौडपादाचार्य, शंकराचार्य आदि अद्वैतियोंने भी अद्वैतमतमें और बौद्धमतमें समानताका स्वीकार किया है। इसी कारणसे बौद्ध चीन देशमें है, हम भरतखण्डमें हैं। बौद्धकाले कपडों का उपयोग करते है, हम सफेद कपडोंका उपयोग करते हैं। उनकी भाषा अलग है, हमारी भाषा दूसरी है। इन अनुपयुक्त भेद को न कहकर, ब्रह्म, जगत मोक्ष साधन, वेदप्रमाण आदि मुख्य विषयोंमें, बौद्धमतमें और अद्वैतमतमें वैषम्य है, साम्य नहीं, इस रहस्यको जब तक दूसरोंको नहीं बतायेंगे, उस समयतक अद्वैतमत बौद्ध मतही यह कल्पना नष्ट नहीं होगी, यह मेरा अभिप्राय है।

प्र.व. – आचार्यजी, आस्तिकशिरोमणि से युक्त हमारे अद्वैतमतमें वेदोक्त, ब्राह्मणादि वर्णोंको, ब्रह्मचर्याद्याश्रमको, स्नान, संध्या, भगवत्पूजा, यज्ञ, दानादिकोंको, कर्मादिसे शुद्धान्त:करणयुक्त होकर श्रवण, मनन, ध्यान करके, परमात्माके अपरोक्षको प्राप्त करके ब्रह्मभावरूप मोक्ष प्राप्त करना चाहिये ऐसा कहा गया है। बौद्धमतमें वेद मिथ्या है। वेदोंका प्रामाण्य भी नहीं, ब्रह्मणादि धर्म नहीं। ब्रह्मचर्याद्याश्रम नहीं, यज्ञ दान नहीं। ब्रह्मभावरूपी मोक्ष भी नहीं। इस तरहके बौद्धमतको अद्वैतमत कहना, आज एकादशी है, आपको पित्त हुआ होगा। (स्वामीजी क्रोध न करें) सावकाश उत्तर दीजिये।

वादि – धर्मराज ! अनुमति हो तो कहूँगा। आप सुनने की कृपा करें।

वादि - शास्त्रीजी ! आस्तिक कौन है ? नास्तिक किसको कहते हैं ?

प्र.वा. - १* परलोक है, साधन है। परलोक दाता ईश्वर है, इस तरह कहनेवाले आस्तिक हैं। परलोक नहीं, परलोकके लिये साधन नहीं। परलोक दाता ईश्वर नहीं; इस तरह कहनेवाले नास्तिक मिथ्या बुद्धि से युक्त मनुष्य नास्तिक है।

वादि - स्वर्गादि परलोक नहीं। परलोक साधक यज्ञादि नहीं। उस लोकको देनेवाला ईश्वर नहीं। इस तरह कहनेवाले आस्तिक है या नास्तिक ?

प्र.वा. - स्वर्गादि परलोक उसके साधनभूत यज्ञादि, फलदाता ईश्वर नहीं, ऐसे कहनेवाले नास्तिक ही हैं। इसमें कोई संशय नहीं।

वादि - परलोक नहीं। प्रत्यक्ष सिद्ध यह लोक भी नहीं। कहनेवाले नास्तिक ही हैं या आस्तिक है ?

प्र.वा. - परलोक नहीं - यहलोक भी नहीं कहनेवाले नास्तिक ही है। यही नहीं ये नास्तिक नास्तिक हैं। (महानास्तिक है)

वादि - बौद्ध कहते हैं - यह लोक नहीं, परलोक नहीं। साधन नहीं अर्थात् परलोक साधन मिथ्या है। इस कारण बौद्ध महानास्तिक हैं न ?

प्र.वा. - इसमें संशय क्या हैं, वे (बौद्ध) परम नास्तिक हैं।

वादि - शास्त्रीजी ! ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:'' यह श्लोक किसका है ?

प्र.वा. - शंकर भगवत्पादने ही इस श्लोकको कहा है।

वादि - उस श्लोकका अर्थ क्या है ?

प्र.वा. - ब्रह्म एक ही सत्य है, उस ब्रह्ममें ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, स्नान, संध्या, यज्ञ, वेद, दान, तीर्थ, स्वर्गादि परलोक, यह लोक आदि पूरा जगत ब्रह्ममें कल्पित हैं। अर्थात् असत्य है, जीव ब्रह्म ही है।

वादि - ब्राह्मणादि वर्ण, सारा जगत कल्पित है इसका अर्थ क्या है ?

प्र. वा. - आचार्यजी ! यह प्रसिद्ध विषय है। फिर भी आप पूछते हैं इसलिये कहता हूँ। सींपमें वास्तवमें अविद्यमान रजत जिस तरह अज्ञानसे प्रतिभात होता है। रस्सेमें अविद्यमान साप जैसे दीखता है। स्वप्नमें अविद्यमान वस्तु जैसे दीखते है। उसी तरह कभी भी न रहा पूरा जगत अज्ञानसे प्रतीयमान होता है। वस्तुत: विश्व तीनों कालोमें नहीं।

वादि - शास्त्रीजी, आज शिवरात्री है। आपके मतकी स्थिरता नहीं। यह लोक, परलोक, उनके साधन, फल देनेवाला ईश्वर, नहीं ऐसे कहनेवाले बौद्धोंको नास्तिक कहना चाहिये ऐसा आप कहते हैं। उनके जैसे आपभी (अद्वैती) यह लोक नही, परलोक नहीं, फल देनेवाला ईश्वर नहीं ऐसे कहते हैं। और अपनेको आस्तिक शिरोमणि कहलाते हो। यह किस तरह संभव है ? आप भी बौद्धोंके जैसे नास्तिक शिरोमणि बन चुके।

१* अस्ति परलोक: इति बुद्धि यस्य स: आस्तिक:। नास्ति परलोक इति बुद्धि: यस्य स: नास्तिक:'' मिथ्याद्दष्टि: नास्तिक:''

३४९ - सिविल सूट (५)

प्र.वा. - आचार्यजी ! हमारे मतका ज्ञान आपको अच्छी तरह नहीं। हम जगतको कल्पित कहते हैं, पर उसे व्यावहारिक सत्य मानते हैं। पूरा जगत् उसमें विद्यमान ब्राह्मणादि वर्ण, यज्ञ, कर्म, याग आदि व्यावहारिक सत्य है। बौद्धोंकी भाँति अत्यंत असत् नहीं कहते। हम बौद्ध के जैसे महानास्तिक नहीं। कैसे नास्तिक बन सकते हैं। आपने हमको नास्तिक शिरोमणि कहा। भेदबुद्धि रहित हमको कोई क्रोध नहीं। फिर भी कोर्टमें जो कुछ बोलना है सोचसमझकर बोले, यह मनमें रहे।

वादि - शास्त्रीजी ! लौकिक विचारोंको रहने दीजिये।

१. व्यावहारिक सत्यत्वको माननेपर भी नास्तिकत्व नष्ट नहीं होगा।

२. अद्वैतियोंके जैसे बौद्ध भी व्यावहारिक सत्यत्वको मानते हैं। बौद्ध व्यावहारिक सत्यकों नहीं मानते ऐसा कहना गलत है।

प्र. वा. - बौद्धोंने व्यावहारिक सत्यका स्वीकार किया है, इसके लिये क्या प्रमाण है ?

वादि - ''द्वे सत्वे समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना। लोके सांवृत नित्यत्वं सत्यं च परमात्मन:'' इस वाक्यसे यह ज्ञात होता है कि बौद्धमतमें व्यावहारिक सत्य और पारमार्थिक सत्य दो सत्य है। सांवृतिक सत्य = आविद्यक सत्य = व्यावहारिक सत्य। सत्य दो प्रकारके हैं इस तरह बौद्धोंके कहने पर ''सत्यचेत् सांवृतिकेय'' इत्यादि १* श्लोकोंसे सत्य होगा। सांवृत सत्य (झूठा सत्य) व्यावहारिक सत्य किस तरह होगा ?

'मृषा' असत्य होगा तो सत्य पदार्थोंमें उसका अन्तर्भाव किस तरह होगा ? सत्यपदार्थमें सत्यस्वरूप धर्म भी नहीं, पारमार्थिक सत्यपदार्थका और झूठ पदार्थका सत्य यह नाम भी नहीं। जैसे ''वक्त्रासव'' लार लाला भी लार ही है ऐसा होनेपर भी लोगोंको गुमराह करनेके लिये लार और वक्त्रासव ऐसे भिन्न भिन्न पदोंका उपयोग करते है। वैसे ही मिथ्या झूठ संवृत्ति सांवृतसत्य, व्यावहारिक सत्य आदि पदोंका एक ही अर्थ होनेपर भी, आस्तिक लोगोंको फँसानेके लिये, झूठ के स्थानपर मिथ्या यह न कहकर संवृत्ति (सांवृतिक सत्य - व्यावहारिक सत्य) कहना, वास्तवमें जो नहीं, वह होगा ही नहीं, जो है वह पारमार्थिक सत्य ही है बौद्ध असत्यपदार्थको व्यावहारिक सत्य (सांवृत्तिक सत्य) इस तरहके पदोंका प्रयोग लोगोंको गुमराह करनेके लिये करते हैं। इस प्रकार कुमारिल भट्टने कहा है, इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध व्यावहारिक सत्यको मानते हैं।

और न्याय क्या कहें बौद्ध कह चुके कि जगत सत्य नहीं, उसपर शून्यवादिपक्षस्तु ''सर्वप्रमाण विप्रतिर्षिसिद्ध: इति तन्निराकरणायानदर: क्रियते'' वाक्यसे शंकराचार्य कहते हैं - प्रमाण जगतके सत्यत्वका विषयीकरण करते हैं, अर्थात् जगतके सत्यत्वका समझाते हैं। जगतको सत्य न मानेंगे तो प्रमाण का विरोध होगा, इस तरह बौद्धके पक्षको आक्षिप्त करनेपर बौद्ध कहते हैं। प्रमाण जगतके व्यावहारिक विषयोंको समझाते हैं, हम (बौद्ध) जगतके पारमार्थिक सत्यत्वका निषेध करते है। इस

१* सत्यं चेत् संवृत्ति: केयं मृषाचेत् सत्यता कथं। सत्यत्वं न च सामान्यं मृषार्थपरमार्थयो; ॥ तुल्यार्थत्वेपि तेनैषां मिथ्या संवृति शब्दयो: वंचनार्थमुपन्यास: लालावक्त्रासवादिवत्। नास्तिक्य परिहारार्थ संवृत्ति कल्पनेति च ......। तस्माद्य नास्ति नास्त्येव। यदस्ति परमार्थत: तत्सत्यमन्यत् मिथ्या: न सत्यद्वय कल्पना न हि स्वप्नसुखाद्यर्थं धर्मेकश्चत् प्रवर्तते ॥

प्रकार भिन्न विषयक होनेसे प्रमाण विरोध नहीं आयेगा। इसके निराकरण प्रवृत्त होता है – 'नह्यं सर्वप्रमाण प्रसिद्धो लोक व्यवहारौन्यत्रामनधिगम्यते। तदपहोतुमपवादाभादभावे उत्सर्ग प्रसिद्धै;'' भाष्य, उस भाष्यका व्याख्यानरूप प्रमाणानिहि स्वगोचरे प्रवर्तमानानि तत्त्वमीद मित्येव प्रवर्तन्ते अतारकत्वंतु तद्गोचरस्यास्यान्यतो बाधकादवगन्तव्यम्। सांव्यवहारिकृदलं प्रामाण्यं नतुतात्विकत्येव प्रवर्तन्ते यह भाक्षसी वाक्य है, इससे यह ज्ञात होता है कि प्रमाण अपने अपने विषयोंको तात्त्विक (पारमार्थिक) सत्यके रूप में ग्रहण करते हैं, व्यावहारिक सत्यके रूपमें ग्रहण नहीं करते। इस प्रकार खण्डन किये जाने के कारण बौद्ध जगतके विषयमें व्यावहारिक सत्यका स्वीकार करते हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

बौद्ध और अद्वैत जगतके विषयमें व्यावहारिक सत्यत्वको स्वीकार करते है। बौद्ध नास्तिक नास्तिक क्यों ? बौद्धोंके जैसे ब्राह्मणादिवर्ण आदि जगतके व्यावहारिक सत्यत्व कहनेवाले अद्वैति नास्तिक नास्तिक क्यों नहीं ? इसका कोई भी कारण नहीं कह सकते। अत: अद्वैती भी बौद्धोंकी तरह नास्तिक नास्तिक ही होंगे इसमें कोई भी संदेह नहीं।

कोर्ट – ''परलोक नहीं'' कहनेवाले नास्तिक, परलोकको व्यावहारिक सत्य कहनेवाले अद्वैती नास्तिक कैसे ?

वादि – धर्मराज प्रभो ! ''वचनार्थमुपन्यासो'' लालावक्त्रा सवादिवत् नास्तिक्य परिहारार्थ संवृत्तिः कल्पनेतिच। इस प्रकार बौद्धोंका खण्डन करने वक्त कुमारिल भट्टने कहा है। जगतको असत्य कहनेसे, लोग हमको (अद्वैतियोंको) नास्तिक कहेंगे, इस नास्तिक व्यवहारके परिहारके लिये, स्वर्गादि लोक परलोकके असत्यत्व बुद्धिस्थ होनेपरभी, परलोकको व्यावहारिक सत्य कहते हैं। वास्तवमें विचार करनेपर व्यावहारिक सत्य, शुक्ति रजतके जैसे सींपमें भासमान रजत की तरह, अथवा मृगतृष्णिका के जैसे अथवा रज्जुसर्प की भाँति अत्यंत असत्य ही है, तीनों कालमें नहीं।

''व्यावहारिक विषयस्य शुक्तिरूप्यादिवत्कदाचित् वाद्यविषयेच व्यावहारिक प्रमाणमिति व्यवहारस्य अद्वैत परिभाषा मात्र सिद्धत्वात्'' इत्यादि वाक्योंसे अद्वैतियोंने ही कहा है। तीन कालमें नहीं ऐसा कहना, या व्यावहारिक सत्य कहना दोनों एक ही हैं, परलोकादि तीनों कालमें नहीं। ऐसे कहनेवाले जिस तरह नास्तिक होंगे उसी तरह व्यावहारिक सत्य कहनेवाले भी निश्चित रूपसे नास्तिक ही है।

वा. व. – धर्मराज प्रभो ! ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः शंकराचार्यने तीन विषय कहे हैं, उन तीन विषयमें जगत् मिथ्याकल्पित है। इस विषयमें भी व्यावहारिक सत्य और पारमार्थिक सत्य इस प्रकार दो प्रकारके सत्य है। दो प्रकारके सत्यके विषयमें अद्वैतमत और बौद्धमत एक ही है। इसे ध्यानमें रखनेकी प्रार्थना करते हैं।

कोर्ट – वह विचार अब किस लिये ? विचार पूर्ण होनेके बाद देखेंगे। अद्वैती ब्रह्मको तत्त्व मानते हैं। थोडेसे बौद्ध विज्ञानको तत्त्व कहते हैं। उस मुख्यविषयमें अद्वैतियोंमें और बौद्धोंमें भेद है या नहीं ? उस विषयकी चर्चा करेंगे।

३५१ – सिविल सूट (५)

वा.व. – वैसे हो प्रभो ! शास्त्रीजी ! आपने जिस ब्रह्मको माना है वह ब्रह्म कैसा है ?

प्र.वा. – हमारा ब्रह्म निर्विशेष है (समस्त गुण रहित है) सत्यरूप, ज्ञानरूप, आनंदरूप, अज्ञेय है और अवाच्य है।

प्र. व. – आचार्यजी बौद्धोंके स्वीकृत शून्य कैसा है ?

वादी – बौद्धोंका शून्य है कैसा है, हम क्या कहें ? अद्वैतियोंके ग्रंथोंसे, बौद्धोंके ग्रंथोंसे ज्ञात होता है, शास्त्रीजीको अज्ञात क्या है ?

प्र. व. – कोर्टमें जो पूछा जाता है, उसीका जवाब दीजिये। किसीको ज्ञात हो या अज्ञात हो।

वादि – ठीक है मैं कहता हूँ, बौद्धोंसे उक्त शून्य निर्विशेष है। (समस्तगुण रहित है) सत्य, ज्ञान आनंदरूप है, अज्ञेय है और अवाच्य है।

वा. व. – शास्त्रीजी, अद्वैतियोंसे उक्त ब्रह्म, बौद्धोंसे कहा गया शून्य एक ही स्वरूपके हो गये। इस कारणसे अद्वैतियोंका ब्रह्म, बौद्धोंका शून्य एक ही हो गया न ?

प्र.वा. – माधवदासजी, शून्य निर्विशेष, सत्य, ज्ञानस्वरूप, आनंदरूप अज्ञेय अवाच्य है। इस तरह बौद्धों का कहना है। इस तरह आपने कहा। आधार के बिना आपने कहा। हमने ब्रह्मके विषयमें जो कहा, शून्य भी उसी तरह है, कहने मात्रसे क्या शून्य व ब्रह्म एक होंगे ? प्रमाणके बिना आपभी वकील कहलायेंगे, मैं भी वकील बनूँगा।

वा.व. – आचार्यजी ! शून्य के निर्विशेषत्व के विषयमें प्रमाण प्रस्तुत कीजियेगा।

वादी – शास्त्रीजी, क्या आपने इस ग्रंथको देखा है ?

प्र.वा. – देखा है। यह शंकराचार्यका लिखा हुवा। ''विष्णुसहस्त्रनामका'' भाष्य है।

वादि – इस वाक्यको पढ़कर उसका अर्थ कहिये।

प्र. वा. – ''निर्विशेषत्वाच्छून्यवच्छून्य:'' ब्रह्म शून्य की निर्विशेष होनेके कारण, शून्य कहलाता है। ऐसा अर्थ है।

वादि – इससे ब्रह्मके जैसे शून्य भी निर्विशेष है यह सिद्ध हुवा कि नहीं ?

प्र. वा. – शून्य की निर्विशेषता सिद्ध हो, शून्य सत्य है इस विषयमें क्या प्रमाण हैं ?

वादि – ''द्वेसत्वे समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्म देशना। लोके सांवृत सत्यं च, सत्यं च परमात्मन: ॥''

इस ग्रंथसे जगत व्यावहारिक सत्ययुक्त है। (सांवृत) शून्य पारमार्थिक सत्य है। यह सिद्ध होता है। ''अपि च शून्य वादिनां शून्यताया: अपि सत्यत्वात्''. भामती वाक्यसे शून्यवादियोंके शून्यका सत्यत्व सिद्ध होता है।

प्र. वा. – भले ही शून्य सत्य हो, निर्विशेष भी हो, वह शून्य ज्ञानानंदरूप है, इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

वा. – आपके अद्वैतग्रंथ ही प्रमाण है। ''सत्यज्ञानमानंदं ब्रह्म'' सत्यत्वरूपत्व ज्ञान स्वरूपत्व आनंद स्वरूपत्व ये ही ब्रह्मके लक्षण है, तीनोंके विशेषणोंके प्रयोजनको जताते हुवे कहते हैं ''शून्यवादिभिरपि सत्व रहित ज्ञानानंदात्मक त्वस्य ब्रह्मणोऽन्यत्रंगीकारात्'' मिलितं विना न निर्विकिचित्सा ब्रह्म सिद्धि: इति मिलितं लक्षणं। इस तरह अद्वैतसिद्धि तथा ज्ञानात्मकानंदात्मक

वत्वं तन्मते (शून्यवादिमते) ब्रह्म भिन्नेपीति तद्वारणाय सत्यमिति, गौडब्रह्मानंदी के व्याख्यानसे ब्रह्मज्ञानरूप आनंदरूप, इतना लक्षण कहनेपर, शून्यवादी शून्यको भी ज्ञानरूपत्व कहते हैं। शून्यवादमें ब्रह्म अन्तर्भूत न हो सत्य रूपत्व ब्रह्मका लक्षण है ऐसे कहते हैं। इससे शून्यका ज्ञानानंदात्मकत्व सिद्ध होता है।

प्र. वा. - शून्य सत्यरूप नहीं। ''अद्वैतसिद्धि ब्रह्मानंदी ग्रंथमें कहा गया है न ? ''शून्यका सत्यरूपत्व'' किस तरह मानेंगे।

वा. - भामत्यादि अद्वैतग्रंथोंमें शून्यके सत्यरूपत्वका कथन है। बौद्ध ग्रंथोंसे यह पता चलता है कि शून्य सत्यरूप है। सत्यरूपत्व सिद्ध होनेके कारण उस अंशमें अद्वैत सिद्धि ग्राह्य नहीं। आकार सहिता बुद्धिः योगाचारस्य सम्मता। केवलां संविदंरकस्तां मन्यन्ते मध्यया पुनः ॥ अद्वयज्ञानैकरूपां शून्यतां विभाव्य ओं शून्यताज्ञान वज्र स्वभावात्मकोहं इति अधितिष्ठेत्'' ''केवलां अद्वयविज्ञप्तिलक्षणां.......अनंता पश्येत् इत्यादि बौद्धोंके वाक्योंसे शून्यका ज्ञानरूपत्व, ज्ञानात्मानंद रूपत्व सिद्ध होता है।

वा. व. - शास्त्रीजी यह ग्रंथ कौनसे है ? क्या आपको मालूम है ?

प्र. वा. - पता है। यह शंकराचार्यका भाष्य, दूसरा उसका व्याख्या ब्रह्मविद्याभारण है।

वा.व. - क्या ये ग्रंथ आपको मान्य है ?

प्र. वा. - ये ग्रंथ हमारे लिये परम मान्य है।

वा. व. - इन वाक्योंके अर्थ कहिये।

प्र. वा. - सूत्रकारने ज्ञान एक ही तत्त्व है, उस ज्ञानमें ज्ञातृ, ज्ञेयादि समस्त बाह्य प्रपंच ज्ञानमें कल्पित है। इस प्रकारके योगाचार के मतके निराकरण के लिये सूत्रोंकी रचना जिस तरह की है वैसे शून्य एक ही तत्त्व है, शून्यमें समस्त जगत कल्पित है, इस माध्यमिक बौद्धोंके खण्डन के लिये सूत्र क्यों नहीं बनाया ? इस शंकाके निवारण के लिये १* शून्यवादि पक्षस्तु यह भाष्य प्रवृत्त हुवा। शून्यवादि पक्ष सर्वप्रमाणोंसे निषिद्ध है। अत एव हेय है, तिरस्करणीय है। साधन करनेके लिये अशक्य है। इस कारणसे, शून्यवादि मतके निराकरण के लिये सूत्र की रचना नहीं की, इसे कहनेके लिये अद्वैतानंदने ब्रह्मविद्याभरणकारने कहा है - बौद्धोंका शून्य भावरूप होगा तो शून्य और ब्रह्मके शब्दमात्र भिन्न होंगे। शून्यवाद ब्रह्मवाद एक ही हो जायेंगे। इसलिये, शंकराचार्यके विचार के अनुसार, शून्यवादि मत सर्वप्रमाण विरूद्द है, हमारा अद्वैतमत भी सर्वप्रमाण विरूद्ध होगा। शंकराचार्यकी राय इस तरह नहीं। शून्य भावरूप है ऐसा बौद्ध कहेंगे तो, शून्यवाद, ब्रह्मवाद एक ही होनेके कारण शून्यभाव रूप है यों कहनेवाला शून्यवाद स्वीकार करने योग्य है।

बौद्ध कहते हैं वह शून्य प्रपंचाभावरूप है। इस कथनपर आक्षेप जब प्रपंच प्रमाणोंसे उपलब्ध है,

---

१* शून्यवादिपक्षस्तु सर्वप्रमाण विप्रतिषिद्धः इति तन्निराकरणायानादरः क्रियते (ब्र. सू. शां. भा. २-१-२) शून्य पदेन सर्वप्रपंचातीतं भावरूपं कंचित्तत्वं विवक्षितं, उताभावरूपं, नाद्य तथा सति वाचोयुक्त्येन्तरेण ब्रह्मवाद एवाश्रितः यदि द्वितीय पक्षः तदा सर्वप्रमाण विरोधः सर्वप्रमाणै प्रपंचे उपलभ्यमाने तदभावः एव तत्त्वमिति निरूपयितुम शक्यत्वात्, दूषणस्य स्फुटतया न तन्निराकरणाय सूत्रकृता सूत्राण्यारचितानि।

दिखाई देता है, प्रपंच ही नहीं, प्रपंचाभाव ही तत्त्व है, इस प्रकारका निरूपण आवश्यक हुवा, यह दोष स्पष्ट होनेके कारण, इस तरहके दुर्बल मतके निराकरण करनेके लिये, सूत्रकारने सूत्रकी रचना नहीं की। शून्य प्रपंचाभावरूप है, इस प्रकारका शून्य वादिका मत सर्वप्रमाण विरूद्ध है, दूसरे शून्यवादि मतका निराकरण ही शंकराचार्यके भाष्यका तात्पर्य है। यही ब्रह्मविद्याभरणकारका अभिप्राय है।

वा. व. – गंगाधर शास्त्रीजी ! बौद्धोंका शून्य भावरूप होगा तो आपका ब्रह्म और वह भावरूप शून्य एक ही हुवा। वह शून्यवादमत और आपका मत एक ही होगा, यही इस ग्रंथकारकी राय है न ?

प्र.वा. – शून्य भावरूप होगा तो अद्वैतियोंका ब्रह्मवाद, बौद्धोंका शून्यवाद एक ही होगा। यही ब्रह्मविद्याभरणाकार अद्वैतानंद का विचार है।

वा. व. – यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. – यह मधुसूदन सरस्वतीका अद्वैतसिद्धि ग्रंथ है।

वा. व. – १* इस वाक्यके तात्पर्य कहिये।

प्र. वा. – प्रपंचाभाव सत्य है या मिथ्या है, यह प्रश्न पूछकर प्रपंचाभाव सत्य होगा तो, ब्रह्म एक सत्य, प्रपंचाभाव एक सत्य इस तरह दो सत्य सिद्ध हो जायेंगे। अद्वैतकी हानि होगी, प्रपंचाभाव

वा. व. – शास्त्रीजी ! यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. – यह खण्डन खण्ड खाद्य ग्रंथ है।

वा. व. – ''भावेभावानतिरेक स्वीकारादेवाद्वैताव्याद्यात:'' वाक्यका और इसके व्याख्यानभूत ''अस्माभिरपिब्रह्मातिरिक्ता भावानंगीकारात् नाद्वैत व्याघात:'' इस वाक्यों के अर्थ कहिये।

प्र. वा. – अभाव भी ब्रह्मस्वरूप ही है। ब्रह्मातिरिक्त अभावका स्वीकार हम नहीं करते। अभाव भी एक सत्य है। ब्रह्म एक सत्य यह सिद्ध होता है। जिससे अद्वैत पर विपत्ति नहीं आयेगी। यंह इस वाक्यका अर्थ है।

वा. व. – ब्रह्म प्रपंचाभावरूप है, खण्डनखण्डखाद्यकार कहते है। अद्वैतसिद्धिकारका वही अर्थ है न ?

प्र. वा. – ब्रह्म प्रपंचाभावरूप है यही तात्पर्य।

वा. व. – शून्यको भावरूप न माननेवाले बौद्ध, शून्यके किस रूपको मानते है। इसमें कोई विचार नहीं। ब्रह्मविद्याभरणमें ''सर्वप्रमाणै: प्रपंच उपलभ्यमाने तदभावएव तत्, इस मतका स्वीकार करके ही खण्डन किया है।

वा. व. – शून्यमें और ब्रह्ममें अन्यविषयोंमें साम्य स्वीकार करके, अभाव विषयमें जब चर्चा हुई, बौद्धोंने कहा शून्य भी भावरूप है, भावरूप शून्यको बौद्ध मानते है। वह शून्य अद्वैतियोंका ब्रह्म ही हुवा, स्पष्टरूपमें अद्वैतियोंने कहा है। बौद्धोंने जब शून्यको प्रपंचाभावरूप कहा, अद्वैती ब्रह्मको प्रपंचाभावरूप कहने लगे। प्रपंचाभावरूप शून्यमें और प्रपंचाभावरूप ब्रह्ममें किसी भी अंशमें भेद न

१* प्रपंच निषेधाधिकरणीभूत ब्रह्माभितान्निषेधस्य तात्विकत्वेपि नाद्वैत हानिकरत्वम् असत्य होगा तो प्रपंच सत्य होगा, इस प्रकारके आक्षेप पर प्रपंचाभाव के सत्यताका ही हम स्वीकार करते हैं। प्रपंचाभाव सत्य होनेपर अद्वैत की कोई हानि नहीं होगी। वह प्रपंचाभाव ब्रह्मस्वरूप है। (ब्रह्म प्रपंचाभावरूप है।) कहते है। यही इस वाक्य का तात्पर्य है।

रहा, जिससे अद्वैतियोंका ब्रह्म और बौद्धोंका शून्य एक ही हो गये न ?

प्र. वा. - उत्तर नहीं।

वा. व. - धर्मराज प्रभु ! अद्वैतमतमें ब्रह्म एक तत्त्व है, उस ब्रह्ममें ब्राह्मणवर्णादि समस्त जगत कल्पित है, ऐसा कहा गया है। शून्य निर्विशेष है। सत्यज्ञानानंदस्वरूप है, अज्ञेय है, अवाच्य है, शून्य भावरूप है। अद्वैति अपने मुँहसे कहते है। भावरूप शून्यवाद और भावरूप ब्रह्मवाद एक ही है ऐसा अद्वैति स्वीकार कर चुके हैं। अगर शून्य प्रपंचाभावरूप है तो, अद्वैतियोंका ब्रह्म भी प्रपंचाभावरूप है। इस कारणसे अद्वैतियोंके ब्रह्ममें बौद्धोंके शून्यमें कुछ भी भेद नहीं रहा। अद्वैति जगतको कल्पित मानते हैं, बौद्ध भी जगत् को कल्पित मानते हैं। बौद्ध और अद्वैति दोनों जगतको व्यावहारिक सत्य कहते हैं। बौद्धमतमें और अद्वैतमतमें किस विषयमें भेद है ? इसे समझानेके लिये मिस्टर हरिहर शर्माको आज्ञा करें।

कोर्ट - मिस्टर हरिहर शर्मा ! बौद्धमतमें और अद्वैतमतमें कौनसे भिन्न विषय हैं, इनको स्पष्ट करने के लिये, अपने पक्षके गंगाधर शास्त्रीसे कहिये।

प्र. व. - वैसे ही हो महाप्रभु !

प्र. गं. - गंगाधर शास्त्रीजी ! अद्वैतमत और बौद्धमत इन दोनोंमें किन विषयोंमें भेद है बताइये।

प्र. वा. - अनेक विषयोंमें भेद है।

वा. व. - एक एक विषयको कहियेगा।

प्र. वा. - अद्वैतीवेदको प्रमाण मानते हैं। वेदोक्त विधानोंका आचरण स्वर्गादि फलोंके उद्देशसे करते हैं। बौद्ध वेदोंको प्रमाण नहीं मानते। वेदोक्त विधानोंको भी आचरणमें नहीं लाते। ये हैं बौद्धोंमें रहे विरूद्ध धर्म।

वादी - यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - शंकर भगवत्पादका बृहदारण्यक भाष्य, उसका व्याख्यानरूप आनंदगिरी की टीका

वादी - १* इन वाक्योंके अर्थको स्पष्ट कीजिये।

प्र. वा. - बौद्धोंके शिष्य द्वैतमतके प्रपंचको (स्वर्गादि लोक) मिथ्या कहते हैं। पर, जिस तरह स्वर्गकामश्चैत्यंवन्देत्'' परलोकके प्रतिपादन करनेवाले अपने शास्त्रोंका प्रामाण्यका स्वीकार करते हैं, उसी तरह (अग्निहोत्रादि शास्त्रस्यादि प्रामाण्यं गृह्णन्ति) अग्निहोत्रादि शास्त्रका प्रामाण्य भी युक्त होगा।

वादी - इन वाक्योंसे बौद्ध अद्वैतियोंकी तरह स्वर्गादि परलोकको मानते हैं, और स्वर्गलोककी प्राप्ति के लिये साधन भी करते हैं, यह सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. वा. - स्वर्गादि लोकोंको मानते हैं। पर क्या उसकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म करते हैं ऐसा सिद्ध होता है।

१*- शास्त्रस्य प्रामाण्यं न गृण्हीयुः (बृ.शां.भा. ५७१) किं च न द्वैतथ्यं शास्त्र प्रामाण्य विद्यातरं, येतु बौद्धादिभिः श्रेयसे प्रस्थापिता स्वशिष्याः द्वैतमिथ्यात्वावगमेपि स्वर्गकामैश्चत्यं वन्देत् इत्यादि शास्त्रप्रामाण्यं गृण्हन्ति तथा अग्निहोत्रादि शास्त्रस्यापि प्रामाण्यं भविष्यति साधनशक्त्यनपहारादित्याहेति।)

वादी – अद्वैतियोंके जैसे बौद्ध स्वर्गके उद्देशसे पुण्यकर्म नहीं करते यह भेद किस तरह युक्त होगा ?

प्र. वा. – उत्तर नहीं।

वादी – शास्त्रीजी ! वेद प्रमाण है'' इसका अर्थ क्या है ?

प्र. वा. – क्या इसको महान समझकर प्रश्न करते है।

वादी – प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो या साधारण हो कहनेमें क्या दिक्कत है ?

प्र. वा. – प्रमाण शब्दमें प्र. मा. ल्युट, तीन भाग हैं।

प्र – सत्यभूत वस्तुको ज्ञापन करनेवाला, मा = ज्ञानका उत्पादन करनेवाला, यह अर्थ है। वेद प्रमाण है इसका अर्थ इस प्रकार हुवा सत्यभूत वस्तुके विषयमें ज्ञान पैदा करनेवाला। (वेदोंसे उत्पन्न ज्ञानसे ज्ञात होनेवाला पदार्थ सत्य होता है।)

वादि – शास्त्रीजी ! यह ग्रंथ कौनसा है ? किसने लिखा है ?

प्र. वा. – अप्पय्य दिक्षीत का लिखा हुवा सिद्धान्त लेशसंग्रह है और उसका व्याख्यान।

वादी – यह ग्रंथ आपको सम्मत है या नहीं ?

प्र. वा. – अप्पय्य दीक्षित बडे हैं, उनके ग्रंथको हम प्रमाण मानते हैं, उन्होंने तो अपने स्वकीय विचारोंको नहीं लिखा है प्राचीन, आचार्योंके सिद्धान्त का संग्रह करके कहा है। इसीलिये इस ग्रंथका नाम ''सिद्धन्तलेशसंग्रह'' रखा है।

वादी – **१*** इन वाक्योंको पढकर उनका तात्पर्य कहिये।

प्र.वा. – एक मनुष्यने किसी समय ''ज्योतिष्टोमेनस्वर्गकामो यजेत्'' श्रुति की कल्पना की, उस श्रुतिसे साधनविशेषोंको समझकर, उन साधनोंका अनुष्ठान करके स्वर्गादि फल प्राप्त करना वैसा ही है, वास्तवमें सूक्ष्मविचार करनेपर ऐसा प्रतीत होता है, आकाशादि सृष्टि भी खरगोशके सींग की तरह असत्य है। वैसे ही श्रुतियोंसे उक्त स्वर्गादि फलों कल्पना करनेवाला कोई न होनेसे असत्य ही है।

वादी – शास्त्रीजी यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. – गौडपादाचार्य का लिखित माण्डूकोपनिषत् कारिकायें

वादी – क्या आपको मान्य है ?

प्र. वा. – शंकरभाष्यसहित ये कारिकायें हमें परम मान्य है।

१* जोतिष्टोमादि श्रुतिबोधितानुष्ठानात् फल सिद्धिः स्वप्न श्रुति बोधितानुष्ठान प्रयुक्त फल संवादतुल्या (सिद्धान्तलेश संग्रह) स्वप्ने ही कश्चित् कदाचित् जोतिष्टामादि श्रुतिं लभ्यते। तुत्तुल्या जागरणेपि स्वर्गादि फल लंभनमित्यर्थः। वस्तुतस्तु श्रुतिमात्र प्रतीत वियदादिसर्ग तत्क्रमादेरिव श्रुतिमात्र प्रतीत स्वर्गादि फल, स्यापि, असत्यमेवा प्रेतं कल्पकाभावस्य तुल्यत्वात् इति बोध्यं सृष्ट्यादिश्रुति पाद्यस्य वियदादि सृष्टितत्क्रमादेः शशिश्रृंगायिततया श्रुतेरालंमन भावाद प्रमाण्यं स्यादिति। (सि.ले.स. व्याख्या))

वादी - १* इन श्लोकोंका अर्थ कहिये और शंकराचार्यके व्याख्यानकी राय कहिये।

प्र. वा. - स्वप्नपदार्थ जैसे असत्य है, वैसे ही मायाकल्पित पदार्थ असत्य हैं। घर, दूकान, लोगोंसे युक्त गंधर्वनगर जैसे असत्य होकर भी सत्यकी तरह प्रतिभाषित होता है। उसी प्रकार यह जगत् असत्य है, जगत असत्य होनेके कारण न इसकी उत्पत्ति है, न नाश है, संसारी जीव नहीं, मोक्ष साधक जीव नहीं। मोक्षकी इच्छा करनेवाला पुरूष नहीं। इस प्रकार समस्त जगत् शशविषाण, गंधर्व नगरादि पदार्थों की तरह असत्य है।

वादी - यथा माया यथा स्वप्नो गंधर्वनगरं यथा।
तथोत्पदस्तथा स्थानं तथा भंग उदाहृत: ॥
यह श्लोक किस ग्रंथका है ?

प्र. वा. - 'माध्यमिकवृत्ति'' नामक बौद्ध ग्रंथका है।

वादी - इसका अर्थ क्या है ?

प्र. वा. - जिस प्रकार मायिक पदार्थ असत्य है, उसी प्रकार स्वप्न असत्य है। उसके व्याख्यानमें शंकराचार्यने भी बौद्धोंके जैसे कहा है - उत्पत्ति वगैरह सबकुछ असत्य है ऐसा कहा है न ?

प्र. वा. - सही है, उत्पत्यादि जगतको असत्य कहा है।

वादी - शास्त्रीजी ये वाक्य किनके हैं ?

प्र.वा. - शंकराचार्यसे लिखे वाक्य हैं। २*

वादी - इनके अर्थ कहियेगा।

प्र. वा. - पुण्य नहीं, पाप नहीं, मंत्र नहीं, जाति भेद नहीं, न माँ है, न पिता है न देवता, न स्वर्ग, न परलोक, यहलोक भी नहीं वेद, यज्ञ, गंगादि तीर्थ, ब्राह्मणादि वर्ण नहीं। ब्रह्मचर्याद्याश्रम नहीं। शास्त्र नहीं, शास्ता नहीं, गुरू, शिष्य नहीं। तुम भी नहीं, मैं भी नहीं हूँ, सांख्यमत, शैवमत, पंचरात्र

१* स्वप्नमाये यथा दृष्टे गंधर्वनगर यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणै: ॥२१॥
न निरोधो न चोत्पत्ति: न बद्धो न च साधक :।
न मुमुक्षु: न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ॥२२॥

स्वप्नश्च माया च स्वप्नमाये असद्वस्त्वात्मिके सद्यसात्विके इव लक्ष्येते अविवेकिभि:। यथाच प्रसारित पण्यापण ग्रह प्रासाद स्त्री पुंजन पदव्यवहाराकीर्णमिव गंधर्वनगरं द्दश्यमानमेव सत् अकस्मात् अभावतांगतं दृष्टं यथा स्वप्नमाये दृष्टे असद्रूपे तथा विश्वामिदंद्वैत्यत्यं समस्तं असत् दृष्टं न निरोध: न प्रलय: उत्पत्ति: जननं बद्ध: संसारिजीव: साधक: साधनवान् मुमुक्षु: मोचनार्थि मुक्त: विमुक्तबंध: उत्पत्तिप्रलय ययोरभावात् बद्धादयो न सन्ति, इत्येषा परमार्थता द्वैतस्यासतात्।

२* न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा:।
न मे जातिभेद: (निर्वाणषट्क) न माता न पितावा न देवा न लोका: न वेदा
न यज्ञा: न तीर्थान्यंबुवती न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा: न शास्ता
न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न चत्वं न चाहं, न चायं प्रपंच: (दशश्लोकी)
तस्मात् अविद्याकार्यत्वात् सर्वकर्मणां तत्साधनां च यज्ञोपवीतादीनां
परमार्थ दर्शन निष्ठेन त्याग: कर्तव्य: (उपदेश साषस्ती))

पाशुपत नहीं। सौरमत गाणपत्यमत, शाक्तमत, मीमासकमत नहीं। इससे ज्यादा क्या कहे ?

समस्त जगत् पूर्वमें नहीं था, इस समय भी नहीं है, भविष्यमें नहीं रहेगा (असत्य है) जो कुछ दिखता है, वह भ्रमसे ही दीखता है, इसलिये सर्वकर्मोंका त्याग करे। कर्म के लिये उपयुक्त यज्ञोपवितादिकोंको त्याग देना चाहिये।

वादी – शास्त्रीजी ! आपके अद्वैतमतके अनुसार वेदोक्त पुण्यपाप स्वर्गलोक, ब्राह्मणादि वर्ण वगैरह जगत नहीं, शुक्ति रजत की तरह मृगजल के जैसे, शशविषाणकी भाँति असत्य होगा तो, वेदका प्रामाण्य किस तरह युक्ति संगत होगा। बौद्धोंके जैसे वेद अप्रमाण ही हुवा न ?

प्र. वा. – आचार्यजी ! आप लोगोंको गुमराह करने के लिये, ग्रंथके किसी वाक्यको लेकर, उत्तर वाक्यको छोड देते हैं। वेद अप्रमाण होगा इस शंकाका उत्तर सिद्धान्तलेश संग्रहमें दिया गया है।

वादी – उस उत्तर वाक्यका उद्धरण कर वेदके प्रामाण्यकी स्थापना कीजिये।

प्र. वा. – सिद्धान्तलेश संग्रहकारने १* वेदोक्त यज्ञादि जगत् असत्य होगा तो, वेद अप्रमाण हो जायेगा, इस तरहकी शंकाको लेकर ज्योतिष्टोमादि श्रुतीनां ''इत्यादि वाक्योंसे, यज्ञ, स्वर्गादि लोक, ब्राह्मणादि वर्ण, उपासना आदि जगत् असत्य होनेपर, कर्म और उपासना करनेवाले मनुष्यका मन शुद्ध होता है। अन्त:करण शुद्ध होनेपर मनुष्य वेदान्त शास्त्रका अधिकारी बनता है। वेदान्त शास्त्रका ज्ञान, ब्रह्मके यथार्थ ज्ञानको पैदा करता है। इसलिये वेद प्रमाण है। बौद्धमतकी भाँति अद्वैतमतमें वेद अप्रमाण है इस शंकाके लिये मौका ही नहीं।

वादी – शास्त्रीजी ! यज्ञ असत्य है, उपासना झूठ है, यज्ञ किया असत्य है, यज्ञ करनेवाला असत्य है। अन्त:करण शुद्धि सत्य नहीं। वेद, ब्रह्म, ब्रह्मका प्रतिपादन असत्य है। २* ''वंध्या पुत्र मृगजलमे स्नान करके गगन कुसुमसे सजधजकर खरगोशके सींगके धनुष्य लेकर आते है'' यह उक्ति की तरह, वंध्यापुत्र के वाक्यके जैसे, झूठे वेदोंसे कहे गये, असत्य यज्ञोंसे, और झूठी उपासनासे, झूठे मनुष्यका असत्य मन भ्रमपूर्ण शुद्धिको प्राप्त करके, असत्यभूत वेदान्त शास्त्र, झूठे निर्गुण ब्रह्मका झूठे ज्ञानको पैदा करता है। इसलिये झूठे वेदोंका प्रामाण्य है यह कहना असंभव है। इस तरह कहनेसे वेद प्रमाण नहीं हो सकता।

प्र. वा. – आचार्यजी ! हमारे वेदान्तमतकी प्रक्रिया शायद आपको मालूम नहीं होगा, यज्ञादि व्यावहारिक सत्य हैं। व्यावहारिक सत्यभूत यज्ञादिकोंका बोध करनेवाले वेद व्यावहारिक प्रमाण हैं। हमारे मतमें वेद अप्रमाण है ऐसा कहना सही नहीं।

वा. व. – (कोर्टसे) प्रभो ! शास्त्रीजी पारमार्थिक सत्य और व्यावहारिक नामसे ''सत्य'' कहते हुवे, वेद व्यावहारिक सत्यभूत यज्ञोंका बोध करते है। इस तरह पुन: पुन: कहते हैं, यह गलत है।

१* ज्योतिष्टोमादि श्रुतिनां च सत्वशुद्धि द्वारा ब्रह्मणि तामन्त्रार्यप्रामाण्यं (सि. ले. सं.) कर्म वाक्यैरूपासानवाक्यैश्य विह्तानि कर्मोपासनानि अनुतिष्ठत: शुद्धिर्भवति शुद्धसत्वस्वचाधिकारिणो वेदान्त शास्त्रं ब्रह्मप्रमितिंजनयति..... इतिना प्रामाण्य प्रसंग इति. (व्याख्यान)

२* मृगतृष्णांभसि स्नात: खपुष्पकृत शेखर:। एष वंध्या सुतो याति शशश्रृंग धनुर्धर:।)

क्योंकि प्रमाण अपने विषयोंको पारमार्थिक रूपमें ही ग्रहण करते हैं १* व्यावहारिक रूपमें ग्रहण नहीं करते। इस तरह भामतीकारादि अद्वैति मान चुके हैं। व्यावहारिक प्रमाण केवल अद्वैतियोंकी परिभाषा है। व्यावहारिक प्रमाण, अप्रमाण ही है, पहले कोर्ट निर्णय ले चुका है। ''व्यवहारदशेयं विद्याविद्येति भेद परिभाषा नास्त्येव'' इस प्रकार शंकराचार्यने भी ''स्वात्म'' निरूपणमें कहा है। इसलिये कोर्ट आदेश दे कि पुन: पुन: व्यावहारिक न कहे।

क़ोर्ट - मि. हरिहर शर्मा ! व्यावहारिक पर विचार हुआ है। (रेसज्युडीकेट) पुनः पुनः उस विचार न करे। ऐसे आपके शास्त्रीजी को कहें।

प्र. वा. - आचार्यजी ! हमारे निर्गुणब्रह्मको किस तरह आप अप्रामाणिक कहते हैं ?

वादी - शास्त्रीजी यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - यह अद्वैतसिद्धि ग्रंथ है।

वादी - क्या आप इसको प्रमाण मानते हैं न ?

प्र. वा.- यह हमारे लिये प्रमाण है।

वादी - इन वाक्योंके अर्थ कहिये।

प्र. वा. - शुद्ध निर्गुणब्रह्म वेदादिजन्य ज्ञानका विषय नहीं होता। विशिष्ट, मिथ्याभूत ब्रह्म ही ज्ञानका विषय बनता है। वृत्तिज्ञान के रहते वक्त ब्रह्म अनुपहित रहता है। वह शुद्ध किस तरह होगा ? वेदादिजन्यज्ञान का विषय ब्रह्म नहीं होगा तो ब्रह्म की सिद्धि किस तरह होगी ? ऐसी शंका न हो। ब्रह्म स्वयं प्रकाश होनेसे सिद्ध होता है।

वादी - शुद्ध ब्रह्म वेदादि प्रमाणोंसे ज्ञात होता है या नहीं ?

प्र. वा. - वेदादि प्रमाणोंसे जाना नहीं जाता।

वादी - शशविषाण, वंध्यापुत्र ये पदार्थ हैं या नहीं ? ये सत् है या असत् ?

प्र. वा. - नहीं। असत् है।

वादी - क्यों ?

वा. व. - मानाधीना मेयसिद्धि: प्रमाण के रहनेपर ही प्रमेय सिद्ध होते हैं। शशविषाण, वंध्यापुत्र इत्यादिकों की सत्ताके विषयमें, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम प्रमाण नहीं, इस कारणसे शशविषाण, वंध्यापुत्र को असत् कहते हैं।

वादी - अद्वैतियोंका ब्रह्म प्रत्यक्ष अनुमान आगमसे ज्ञेय नहीं, वह भी शशविषाण की तरह असत् हुवा।

प्र. वा. - हमारा ब्रह्म प्रमाणोंसे ज्ञेय न होनेपर भी, स्वयंप्रकाश होनेसे सत् है। शशविषाण स्वप्रकाश नहीं, प्रमाणोंसे ज्ञेय भी नहीं। अत: असत् होंगे।

वा. - क्या ब्रह्मके स्वप्रकाशत्वके विषयमें प्रमाण हैं ? प्रमाणोंसे क्या ब्रह्म स्वप्रकाशके रूपमें ज्ञात होता है ?

१* शुद्धं हि न दृश्यं ...... किन्तूपहितमेव तच्च मिथ्यैव हि. वृत्तिदशायां अनुपहितं भवति .... न चैव सति शुद्ध सिद्धि न स्यादिति वाच्यं, स्वतएव तस्य प्रकाशकत्वेन सिद्धत्वादि।)

३५९ – सिविल सूट (५)

प्र.वा. – प्रमाणोंसे ब्रह्म स्वप्रकाश के रूपमें ज्ञात होगा तो पुन: उपहित ब्रह्म (अशुद्ध ब्रह्म ही) होगा। इस हेतुके कारण ब्रह्मके स्वप्रकाशत्व के विषयमें प्रमाण नहीं।

वादी – प्रमाणोंके न होनेपर भी अगर ब्रह्म स्वप्रकाश होगा तो प्रमाणोंके न रहनेपर ''शशविषाण'' स्वप्रकाश क्यों न हो ?

प्र. वा. – (उत्तर नहीं)

वादी – ब्रह्मको स्वप्रकाशके रूपमें ग्रहण करनेपर भी, स्वप्रकाश का अर्थ क्या है ?

प्र.वा. – अन्य प्रमाणोंसे जानने अयोग्य (इतरावेद्य)

वादी – ''शशविषाण'' भी अन्य प्रमाणोंसे जानने योग्य नहीं ?

प्र.ग. – शशविषाण अन्य प्रमाणोंसे जानने अयोग्य ही है, तो क्या होगा ?

वा. – ''शशविषाण'' अन्य प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होता शशविषाण भी आपके ब्रह्मकी तरह स्वयंप्रकाश हो चुका न ?

प्र.गं. – (उत्तर नहीं)

वा. व. – ''अद्वैतियोंका ब्रह्म है'' इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं। शशविषाण की सत्तामें भी कोई प्रमाण नहीं। शशविषाण स्वप्रकाश, ब्रह्म भी स्वप्रकाश, दोनों पदार्थ एक ही तरह है। शशविषाण असत् क्यों ? ब्रह्म सत् क्यों ? इसका कोई कारण नहीं। इसीलिये आपके ब्रह्मको हमने असत्य कहा।

प्र. गं. – उत्तर नहीं।

वा.वि. – महाप्रभु ! सत्यभूत पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला ही प्रमाण है। अद्वैतमतके अनुसार वियदादि समस्त जगत् असत्य है। असत्यभूत जगतका प्रतिपादन करनेवाला प्रमाण नहीं कहा जायेगा। अद्वैत का निर्गुण ब्रह्म वेदोंसे प्रतिपादित नहीं हो सकता। ब्रह्म अद्वैतमतमें स्वप्रकाश है। स्वप्रकाश का अर्थ है, इतर समस्त प्रमाणोंसे ज्ञेय नहीं होता। शशविषाण की तरह अप्रामाणिक है, इसीलिये वेद ब्रह्मका प्रतिपादन नहीं करता। असत् ब्रह्मके प्रतिपादनसे वेद भी प्रमाण नहीं होगा। अन्यथा शुक्ति रजतका, शशविषाणका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ भी प्रमाण हो सकता है। इस प्रकार अद्वैतमतमें जगत्, ब्रह्म, सबकुछ असत्य ही है, अत: वेद सत्यभूत किसीभी पदार्थ का बोध नहीं करा सकता। इसलिये बौद्धमतके जैसे वेद अत्यंत अप्रमाण होगा, इस तरह बौद्ध और अद्वैती कहते हैं कि असत्य का बोध करता है। वेद प्रमाणके विषयमें भी बौद्धोंमें और अद्वैतियोंमें कोई भी भेद नहीं। इसको ध्यानमें रखे यही हमारी प्रार्थना है।

विज्ञान वादि बौद्ध और अद्वैतमतके साम्यपर विचार

कोर्ट – आचार्यजी ! अद्वैतमत, विज्ञानवादि बौद्धोंका मत ही है, इस तरह आप कहते हैं, वह कैसे ?

वा. – धर्मराज महाराज ! शून्यवाद बौद्धोंके लिये सम्मत मत है, मुख्यमत है। किन्तु कुछ मूढ शिष्योंको निर्विशेष शून्य तत्त्व और समस्त जगत शून्यमें कल्पित है, कहनेपर अपने मतमें तुरंत

विश्वास नहीं होगा। इस उद्देशसे, शून्य और विज्ञान एक होनेपर भी, 'शून्य यो नामांकन करके विज्ञान ही तत्त्व है। बाह्य प्रपंच विज्ञानमें कल्पित है, विज्ञानवाद शून्यवादमें तनिक भेदको भी दर्शाते हैं, पर विज्ञानवाद और शून्यवाद दो होनेपर भी एक ही तत्त्व है। इसलिये शून्यवाद और अद्वैतमत एक ही है, ऐसा हम सिद्ध कर चुके हैं। विज्ञानवादि मत और अद्वैतमत की तुलना करनेपर एक ही हो जाते है।

कोर्ट - विज्ञानवादि मत और शून्यमत एक ही है, मूढ शिष्योंके लिये विज्ञान तत्त्व है यह कहा यह आपको किस तरह मालूम हुआ ?

वादी - १* शिष्य तीन प्रकारके होते हैं, कनिष्ट, मध्यम और उत्तम। कनिष्ट शिष्योंको, बाह्य पदार्थोंके सत्यत्व कहकर क्षणिकत्व भी कहा गया है। मध्यम शिष्योंको विज्ञान एक ही सत्य है। जगत् असत्य है, दोनोंको शून्य एक ही तत्त्व है। इस तरहककी बुद्धि पैदा करते हैं। उत्तम शिष्योंको उपदेश देते हैं कि शून्य एक ही तत्त्व है, पूरा जगत् मिथ्या है, बौद्धोंने और अद्वैतियोंके कथन के अनुसार, विज्ञानवाद का उपदेश देनेवाले बौद्धोंके लिये भी शून्य ही तत्त्व है।

कोर्ट - शास्त्रीजी ! आचार्य कहते हैं कि विज्ञानवादि बौद्धमतके तत्त्वोंकी और अद्वैतवादि तत्त्वोंकी तुलना करनेपर दोनों तत्त्व एक ही प्रकार के हैं। किस तरह एक हैं इस विषयपर आप विचार करें।

प्र. वा. - आचार्यजी ! हमारा अद्वैतमत, विज्ञानवादि बौद्धोंका मत एक ही है। इस कथनके लिये प्रमाण क्यां है ?

वादी - गौडपादाचार्य, शंकराचार्यादि अद्वैतियोंके ग्रंथ और बौद्धोंके ग्रंथ आधार है।

प्र. वा. - अद्वैत ग्रंथोंका बयान कीजिये।

वादी - शास्त्रीजी यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - इसमें तीन ग्रंथ है १) मांडूक्योपनिषत्कारिका गौडपादका लिखा हुवा
२) उसका भाष्य शंकराचार्यसे लिखित
३) भाष्य की टीका आनंदगिरी की लिखी हुई।

वादी - इन वाक्योंके अर्थको स्पष्ट किजीये। २*

प्र. वा. - ज्ञान एक ही परमार्थ सत्य है। उस ज्ञानमें ज्ञातृज्ञेयादि समस्त जगत् कल्पित है। इस प्रकार आपने बौद्धमतका स्वीकार किया है। इस उस समयके पण्डितोंके आक्षेप पर गौडपादाचार्यने उत्तर दिया ''ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितं'' यद्यपि ज्ञान एक ही सत्य है, उस ज्ञानमें भी बाह्यमें विद्यमान

१* देशनालोलोक नाथानां सत्याशय वसानुशा:। भिद्यन्ते बहुधालोके उपायैर्बहुभि: पुन:। गंभीरोत्तान भेदेनक्वाचिच्चो देभयलक्षणा। भिन्यापदेशना भिन्ना शून्यताद्वय लक्षणा। भिन्यापिदेशना भिन्ना शून्यताद्वय लक्षणा॥ (बोधिचित्त विवरण) सच - बहुप्रकार: .... विनयभेदाद्वा (ब्र.सू. २/२/१८ शां. भा.) हीनमध्यमोत्कृष्टाधियोहि शिष्या भवंति ये हीनमत यस्ते सर्वास्ति त्यदेन तदाशयनुरोधात शून्यतायामवतार्यन्ते येतुमध्यवास्ते ज्ञानमात्रास्तित्वेन शून्यतायामवतार्यंते येतु प्रकृष्टमृतयस्तेभ्य: साक्षादेव शून्यतत्त्वं प्रतिपाद्यते (भामती - २-२-१८)

२* ज्ञानमात्रं पारमार्थिकं तत्रैव ज्ञातृज्ञेयादि कल्पितमिति सौगतमेतमेव भवतासंगृहीतमित्याशंक्याह - ज्ञानमिति, ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितं ज्ञानज्ञेय ज्ञातृभेद रह्तिं परमार्थतत्त्वमद्वयं एतत् न बुद्धेन भाषितं ज्ञानज्ञेय ज्ञातृभेदरह्तिं परमार्थतत्त्वमद्वयं एतत् न बुद्धेन भाषितं यद्यपि बाह्यार्थ निराकरणं ज्ञानमात्र कल्पना चाद्वैयं वस्तु सामीप्य मुक्तं इदं परमार्थ तत्त्वमद्वैतं वेदान्तष्वेव विज्ञेयमित्यर्थ:)

३६१ - सिविल सूट (५)

ब्राह्मणवर्णादि समस्त जगत् कल्पित है, इसीलिये असत्य है, इस प्रकार बौद्धोंके जैसे हमने स्वीकार किया है, फिर भी ज्ञानज्ञेय ज्ञातृभेद रहित अद्वय = द्वितीय वस्तुरहित परमार्थतत्त्व वेदान्तसे जानना चाहिये। इसलिये बौद्धमत और अद्वैतमत एक ही है, इस शंकाके लिये मौका ही नहीं।

वादी - यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - स्वयं प्रकाशानंद सरस्वतीसे प्रणीत गौडपादाचार्यकी कारिका व्याख्यान मिताक्षरा।

वादी - ''ज्ञानंनैतद्बुद्धेन भाषितं'' इस श्लोकके व्याख्यानके तात्पर्य कहिये।

प्र.वा. - उपरोक्त ग्रंथोंके तात्पर्यके जैसे ही बौद्धमत के साम्य शंकालेकर परिहार करें।

वादी - यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - यह गौडपादीय विवेक ग्रंथ है।

वादी - ''ज्ञानं'' श्लोकके व्याख्यानके तात्पर्य कहिये।

प्र.वा. - कितना पूछते हैं ? इस ग्रंथका तात्पर्य भी उपरोक्त ग्रंथके जैसा ही है। (बौद्धमतमें अद्वैतमतमें साम्य, शंका, परिहार)

वादी - यह कौनसा ग्रंथ है ?

प्र. वा. - विद्यारण्यका लिखा शंकर विजय।

वादी - १* इन श्लोकोंका तात्पर्य कहिये।

प्र. वा. - शंकराचार्य एक देवालय गये थे, प्रवेश करते समय किसीने कहा आपको देवालयमें प्रवेश करने की इच्छा हो तो पहले इस प्रश्नका उत्तर दीजिये बौद्धके मतमें और आपके मतमें (अद्वैतमतमें) क्या भेद है ? बादमें देवालयमें प्रवेश कीजिये, शंकराचार्यने कहा - विज्ञानवादी विज्ञानका क्षणिकत्व मानते हैं, बहुत्वका भी स्वीकार करते हैं यही दोनों में भेद है।

वादि - शास्त्रीजी - इस ग्रंथका नाम क्या है ? किसने लिखा है।

प्र. वा. - यह संक्षेप शारीरिक नामका ग्रंथ है। सर्वज्ञमुनिने इसे लिखा है। अद्वैतसिद्धिपर मधुसूदन सरस्वतीने इसकी टीका लिखी है। २*

वादी - इन श्लोकोंके और उनके व्याख्यानका अर्थ कहिये।

प्र. वा. - बौद्धोंके जैसे ज्ञान एक ही सत्य है। उस ज्ञानमें आकाशादि समस्त प्रपंच कल्पित है।

१* विविक्षुर्यदि देवतालयं। विज्ञानवादस्यच किं विभेदकं भगवन्मतात् ब्रूहि ततः परं व्रज। विज्ञानवादी क्षणिकत्वमेतेषांचांगीचकारपि बहुत्वमेषः। वेदान्तवादी स्थिर संविदेकत्वं चांगीचकार महान् विशेषः।

२*- ननु सर्वस्यापि वियदादि प्रपंचस्य स्वप्नतुल्यत्वे तद्विज्ञानात्मकमेव सर्ववक्तव्यं ततश्च विज्ञानवादि समय प्रवेशात्तिरिति शंकते।

ननु शाक्य भिक्षुसमयेन समः प्रतिभात्ययंच भगवत्समयः। यदि बाह्य वस्तु वितथं नु कथं समयाविमौ च सद्दशौ भवतः यदि बोध एव परमार्थवपु न तु बोध्यमित्यभिमतं भवति ननुचश्रितं भवति बुद्धमुनेर्मतमेव कृत्स्नमिह मस्करिभिः नन्विति शाकोजिन्न बौद्धों विज्ञानवादी तसिद्धान्ते नेत्यर्थः भगवतः भगवत्पादादेः (शंकरादेः) समय इत्यर्थः 'ननुविज्ञानवादिना वेदप्रामाण्यस्यानभ्युपगमात् कथं तदम्युगंतृ भगवत्समयस्य तत्समयतुल्यतेतिचेत् सत्यं तथापि विज्ञानातिरिक्त विज्ञेयानभ्युपगम कथनंच तत्तुल्यं तेनापि तथैवांगीकारादित्याह... यदिति बाह्यं विज्ञानातिरिक्तं वस्तु वितथं अलीकं कथंत्विति संबंध॥

स्वप्न पदार्थ के जैसे असत्य है। इस तरह अद्वैती कहते हैं। अतएव बौद्धमत और अद्वैतमत समान हैं। इस प्रकार कहनेपर आपत्ति यह है कि विज्ञानवादी वेदोंके प्रामाण्यका स्वीकार नहीं करते अद्वैति वेदोंको प्रमाण मानते है। अत: अद्वैतमत, बौद्धमतके समान नहीं हो सकता। इस तरहके आक्षेपपर उत्तर देते हैं, बौद्ध वेदोक्त ज्ञानातिरिक्त पदार्थोंको अद्वैति नहीं मानते, अद्वैतियोंके लिये भी वेद अप्रमाण ही हुवा। अत: अद्वैतमत बौद्धमत ही है यह सिद्ध होता है।

वादी - यह ग्रंथ कौनसा है ?

प्र. वा. - तत्त्व संग्रह नामका बौद्धग्रंथ है।

वादी - १* इन श्लोकोंको अर्थ कहिये।

प्र. वा. - पृथ्वी आदि समस्त जगत् नित्यभूत ज्ञानरूप तत्त्वमें कल्पित हैं। उस ज्ञानरूपको ही अद्वैती आत्मा कहते हैं, इस कारणसे अद्वैतमत और हमारा बौद्धमत एक ही है। अतएव अद्वैतमत सही है। लेकिन ज्ञानको नित्य कहते हैं, इसलिये वह मत तनिक दोषपूर्ण है।

कोर्ट - आचार्यजी कितने ग्रंथोंको पूछते हैं ? कोर्टके बहुतसे समयको इसीमें खर्च करते हैं, अग्रिम विचारको प्रस्तुत करें।

वादी - प्रभु ! यह आवश्यक होनेसे मैंने पूछा है। और भी अनेकों ग्रंथोंका पूछना आवश्यक है। आप मना करेंगे, छोड देंगे। आवश्यकता पडनेपर अनुमति दे।

कोर्ट - वैसे ही हो।

वादी - अद्वैतग्रंथोंसे और बौद्ध ग्रंथोंसे यह सिद्ध हुवा कि अद्वैतमतके तत्त्व और बौद्धमतके तत्त्व एक है।

प्र. वा. - आचार्यजी ! अद्वैतिग्रंथोंके विचार हो, या बौद्धग्रंथोंके विचार हो एक नहीं होते। कुछ भागमें दोनों मतोंके तत्त्वोंकी एकता दीखती है। उन्हीं ग्रंथोंमें अद्वैतमततत्त्वोंमें और बौद्धमतके तत्त्वोंमें भेद कहा गया है। इस हालतमें बौद्धमतके तत्त्व और अद्वैतमतके तत्त्व एक है यह कहना किस तरह युक्त होगा ?

वादी - शास्त्रीजी ! बौद्धमत और अद्वैतमतमें किन अंशोंमें ऐक्य, किन अंशोंमें भेद कहा गया है कहिये।

प्र. वा. - ज्ञान एक ही परमार्थ तत्त्व है, वह सत्य है। उस ज्ञानमें जगत् कल्पित है, इस तत्त्वको बौद्ध मानते हैं। अद्वैतिभी इसका स्वीकार करते हैं, पर ज्ञानरूप तत्त्वको बौद्ध क्षणिक, प्रतिक्षण भिन्न भिन्न होता है, इसलिये अनेक कहते हैं। अद्वैती कहते हैं कि वह ज्ञान (ब्रह्म) एक ही है, नित्य है। वेदान्तों से जानने योग्य है। इस अंशमें बौद्धमतमें और अद्वैतमतमें भेद स्पष्ट है। इस तरह की भिन्नता के बावजूद आप दोनों मतोंको एक किस तरह कहते हैं, दोनोंमें कुछ अंशोंमें साम्य देखनेपर, भी एक कहते हैं तो अनेकमतोंमें इस प्रकारका साम्य दीखता है, क्या वे मत एक हो सकते हैं ?

१* नित्य ज्ञान विवर्तोयं क्षितितेजोजलाधिक: । आत्मातदात्मकश्चेति संगिरन्ते परे पुन: । .... तेषामल्पापराधंतु दर्शनं नित्यतोक्तित: ॥) (३३८ तत्त्वसंग्रह बौद्धग्रंथ)

३६३ – सिविल सूट (५)

वा. वि. – शास्त्रीजी ! अद्वैतमतके तत्त्वोंमें और बौद्धमतके तत्त्वोंमें कोई भेद हो, दोनों मत भिन्न हो सकते हैं। उस तरह भेद हो तो कहिये।

प्र. वा. – ''इदं तु पारमार्थतत्त्वमद्वैतं वेदान्तष्वेव ज्ञेयम्'' शंकराचार्यके कथन के अनुसार, हमारा अद्वैतियोंका ब्रह्म (ज्ञान) वेदान्तोंसे जानने योग्य है, बौद्धोंका विज्ञान न हो, शून्य हो, वेदान्तसे जानने योग्य नहीं। अद्वैतोंका ब्रह्म, बौद्धोंका शून्यरूप कैसा होगा ?

वा. वि. – अद्वैतियोंके ब्रह्ममें प्रमाणोंके लिये विषय बननेके लिये कारणीभूत धर्म न होनेसे, अद्वैतब्रह्म का प्रमाण सामान्योंका भी विषय नहीं बन सकता, अत एव बौद्धोंके विज्ञान की तरह, शून्य की भाँति वेदान्तसे अज्ञेय ही रहेगा।

कोर्ट – मिस्टर हरिहर शर्मा इस विषयपर विचार कीजिये।

प्र. व. – वैसे ही होगा महाप्रभो !

प्र. व. – आचार्यजी ! ब्रह्म प्रत्यक्षसे क्यों दीखता ?

वा. वि. – प्रत्यक्ष से देखने के लिये, प्रत्यक्ष योग्य पदार्थमें रूपादि होना आवश्यक है। अद्वैतियोंके ब्रह्ममें रूपादि धर्म नहीं, इसलिये ब्रह्म प्रत्यक्ष गोचर नहीं होता।

प्र. व. – अनुमानसे क्यों दीखता ?

वादी – ''नेषातर्केण मतिरापनेया'' काठकादि श्रुतियोंमें ब्रह्म अनुमानका विषय नहीं बन सकता, अनुमान धर्मयुक्त पदार्थोंका ही ज्ञान कराता है। अद्वैती ब्रह्ममें किसीभी धर्मको स्वीकार नहीं करते। अत: अद्वैतियोंका ब्रह्म अनुमानका विषय नहीं बन सकता।

प्र. वा. – वेदादि शब्द प्रमाणोंसे ब्रह्म क्यों दीखता नहीं।

वा. वि. – शब्दोंसे अर्थ दो प्रकारसे दीखता है। एक पदसे दीखना, अनेकों पदोंसे (वाक्यसे) दीखना। एक ही पदसे दीखनेवाला रूढ शक्तिसे, या योगशक्तिसे दीखना इस तरह दो प्रकार है। मिसालके तौरपर ''घट'' एक पदसे रूढ शक्तिसे दीखता है। ''पंकज'' पद अपने पदमें विद्यमान ''पंक'' ''जनि'' ''ड'' अवयवोंके अर्थसे संबंद्ध (पंकजनि कतृ) कीचडमें पैदा हुवे कमलरूप अर्थका बोध करता है। ''वज्रं हस्तेदन्ते'' वाक्य अपने घटक वज्र शब्द द्वितीया विभक्तिमें है। ''हस्त'' शब्द सप्तमी विभक्तिमें हैं। (डु दाञ्ञ धातु तिङत प्रत्यय) इनके अर्थ संबद्ध हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्रका बोध कराते हैं। अद्वैतियोंका ब्रह्म, वेदगत रूढपदोंसे, या यौगिक पदोंसे हो अथवा वाक्यसे ज्ञेय नहीं होगा।

प्र. व. – ब्रह्म रूढ पदसे क्यों ज्ञेय नहीं होता ?

वादी – आपसे कहेजानेवाले ''इंग्लीश'' शब्दोंसे, हमारे जैसे वैदिकोंको क्या अर्थज्ञान होगा ?

प्र. वा. – शब्दोंसे अर्थज्ञान होनेके लिये, पूर्वमें यह शब्द इस अर्थका बोध कराता है यह ज्ञान होना आवश्यक है। (इसीको व्युत्पत्ति कहते है।) यह ''इंगलीश'' शब्द का प्रकारके अर्थका बोध कराता है। इस प्रकार की व्युत्पत्ति इस पदका यह अर्थ है। व्युत्पत्ति न होनेके कारण इंग्लीश शब्दोंसे हमें अर्थज्ञान नहीं होता।

वादी – यह पद इस अर्थका बोध कराता है, यह अर्थ इस पदसे वाच्य है, इस प्रकारके ज्ञानके

लिये पूर्वमें वह अर्थज्ञान होना चाहिये न ?

प्र. वा. - पूर्वमें घटको प्रत्यक्ष देखा है तो, घट शब्दसे (घट) वाच्य है। बडे लोगोंके वाक्योंसे ज्ञात मनुष्यको घडा ले आवो कहनेपर घट शब्दसे घडेका ज्ञान होगा। इसी प्रकार किसी भी शब्दसे एक पदार्थ का ज्ञान रूढीसे होनेके लिये, उस पदार्थ का ज्ञान पहले होना आवश्यक है।

वादी - रूढ शब्दोसे ब्रह्मका ज्ञान होनेके लिये पूर्वमें ब्रह्म का ज्ञान होना चाहिये।

प्र. वा. - पूर्वमें ब्रह्मका ज्ञान होना चाहिये।

वादी - पूर्वमें ब्रह्मका ज्ञान किससे होगा ?

प्र. वा. - प्रत्यक्षसे, अनुमानसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता, शब्दसे ही होना चाहिये।

वादी - शब्दोंसे ब्रह्मज्ञान होनेके लिये, पूर्वमें शब्दसे ब्रह्मज्ञान होना चाहिये। पुन: शब्दसे ब्रह्मज्ञान होनेके लिये, पूर्वमें शब्दसे ही ब्रह्म होना आवश्यक है। इस प्रकार अनवस्थारूप दोष आयेगा। इसलिये रूढ शब्दसे ब्रह्म ज्ञान होता है यह युक्त नहीं।

इसी प्र ार लक्षणावृत्तिसे हो, गौणीवृत्तिसे हो ब्रह्मज्ञान होने के लिये पूर्वमें ब्रह्मका ज्ञान होना चाहिये। वह ब्रह्मज्ञान शब्दसे ही होना चाहि, पुन: अनवस्था आयेगी।

प्र. वा. - ब्रह्मज्ञान, पदसे रूढशक्तिसे लक्षणावृत्तिसे गौणी वृत्तिसे भले ही ब्रह्मज्ञान न हो, लेकिन यौगिकपदसे ब्रह्मका ज्ञान होता है, ऐसा क्यों न कहे ?

वादी - 'पंकज' योगिकपदसे पंकज निकतृ (कीचडमें पैदा हुवा) विशिष्ट वस्तु ही ज्ञात होता है। अखण्ड वस्तुका ज्ञान नहीं होता। अद्वैतब्रह्म विशिष्ट वस्तु नहीं, अखण्ड वस्तु है।

वादी - इस ग्रंथसे बौद्धका विज्ञान नित्य है, विज्ञानको नित्य मानता है यह सिद्ध होता है या नहीं।

प्र. वा. - उत्तर नहीं।

वादी - यह ग्रंथ कौनसा है ?

कोर्ट - आचार्यजी ! कितने ग्रंथोंको पूछते हैं ? बस कीजिये।

वा. वि. - (क़ोर्टसे) महाप्रभो ! बौद्धोंका विज्ञान नित्य है। इस विषयमें, अनेकों प्रमाण और भी बाकी है, उस विषयको समझाने की कोशिश करते हैं। मना करेंगे तो छोड देंगे, मौका आनेपर अनुमति दें। अन्य विषयका विचार करते हैं। अनुमती दिजीये।

कोर्ट - वैसे हो।

वा. वि. - आपका ब्रह्म सविशेष हैं या निर्विशेष है ? (धर्म या गुणोंसे युक्त सविशेष) (गुणरहित निर्विशेष)

प्र. गं. - हमारे मतके अनुसार ब्रह्म सकल धर्मरहित है।

वा.वि. - आपको यह किस तरह ज्ञात हुवा कि ब्रह्म सकल धर्मरहित है।

प्र. गं. - हमारे शंकरभगवत्पादके १) सहस्त्रनामभाष्य २) बृहदारण्यकभाष्य ३) ब्रह्मसूत्रभाष्य आदिसे यह मालूम हुवा कि ब्रह्म निर्विशेष है। नाम, रूप, कर्म, भेद, जाति, गुणोंसे धर्म रहित है।

३६५ – सिविल सूट (५)

वा. वि. – बौद्धोंका विज्ञान निर्विशेष है या सविशेष है ?१*

प्र. गं. – बौद्धोंका विज्ञान निर्विशेष है।

वा. वि. – शास्त्रीजी ! आपके मतमें अंगीकृत ज्ञान निर्विशेष है। क्या बौद्धोंके ज्ञानमें क्षणिकत्वरूप धर्म है ? अद्वैतियोंके ज्ञानमें नित्यत्वरूप धर्म है ?

प्र. गं. – अद्वैतियोंके ज्ञानमें नित्यत्वरूप धर्म नहीं। बौद्धोंके विज्ञानमें क्षणिकत्व रूप धर्म भी नहीं।

वादी – क्षणिकत्व धर्म बौद्धोंके ज्ञानमें नहीं। नित्यत्व आपके (ब्रह्म) में नहीं, तो क्षणिकत्व, नित्यत्वरूप धर्म होनेसे दोनों मतोंमें भेद का कहना किस तरह युक्त होगा ?

प्र. गं. – आचार्यजी हमारे ज्ञानमें नित्यरूप धर्म न होनेपरभी नित्यत्व ज्ञानका स्वरूप ही है। बौद्धोंके ज्ञानमें क्षणिकत्व न होनेपर भी क्षणिकत्व बौद्धोंके ज्ञान का स्वरूप ही है। स्थैर्यं स्वरूपात्मकं चैतन्यस्यच, भंगुरत्वमेव सर्वस्य ते दर्शने। इस तरह संक्षेप शारीरिक में कहा है, इसलिये हमारे विज्ञानमें बौद्धके विज्ञानमें भेद है।

वा. वि. – ''भट्टस्य कट्यां सरट: प्रविष्ट: आपके आचार्यजी के कटि प्रदेशमें एक गिरगिट ने प्रवेश किया। इतना कहते ही विचारशील शिष्यने कहा ''छिद्राभावात् कथं प्रवेश:'' कटि प्रदेशमें छिद्र ही नहीं गिरगीट किस तरह प्रवेश करेगा ? कहकर हँसने लगा। दूसरा मूढ शिष्य आचार्यजीके कटि भागमें गिरगिटने प्रवेश किया कहकर रोने लगा। इस तरह प्राचीन कहानी कही जाती है। विचारशील शिष्योंके जैसे आपको विचार करना होगा। मूढ शिष्य की तरह जो कुछ कहते हैं उसपर विश्वास न करें।

प्र. वा. – संक्षेप शारीरकारके कथनमें क्या अनुपपत्तियाँ है ?

वादी – सकलकालवृत्तित्वं, अनेक पदार्थोंसे युक्त नित्यत्व, अनेक असंयुक्त ज्ञान का स्वरूप किस तरह होगा ? इसपर विचार न करके ''क्षणिकत्व बौद्धोंके ज्ञानका स्वरूप है, नित्यत्व अद्वैतियोंके ज्ञानका स्वरूप है अत: इनमें भेद नहीं यह कहना युक्तिसंगत नहीं।

प्र. वा. – उत्तर नहीं।

वादि – क्षणिकत्व, नित्यत्व में भेद न हो। अद्वैत ब्रह्म = ज्ञान एक ही है। बौद्धोंका विज्ञान अनेकत्वयुक्त है। उनमें भेद होगा न ?

वा. वि. – शास्त्रीजी अद्वैतियोंसे उक्त (ब्रह्म), बौद्धोंसे उक्त ज्ञान निर्विशेष है, अद्वैतियोंके ज्ञानमें एकत्व नहीं, बौद्धोंके ज्ञानमें बहुत्व नहीं। इस एकत्व, बहुत्वसे बौद्ध, अद्वैतियोंके ज्ञानमें भेद नहीं आयेगा। निर्विशेष होनेसे भेद भी नहीं।

प्र. वा. – अद्वैतियोंने ब्रह्ममें एकत्वको नहीं माना है, इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

वादी – शास्त्रीजी ! ब्रह्मको निर्विशेष मानने से, एकत्व धर्म नहीं क्या यह सिद्ध नहीं होगा ? यही

१* १) निर्विशेषत्वात् शून्यवत् शून्य:

२) यस्मिन् न कश्चिद् विशेषोऽस्ति, नाम वा रूप वा, कर्मवा, जातिर्वा गुणो वा

३) समस्त विशेष रहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं नान्यद् तद्विपरीतम्

नहीं शंकराचार्यके ग्रंथ, उसपर मधुसूदन सरस्वतीका व्याख्यानभूत सिद्धान्त बिंदु आदि ग्रंथ प्रमाण हैं।

प्र. वा. - शंकराचार्यका वाक्य कौनसा है ? उसे दिखाईये।

वादी - १* इस वाक्यको, उसके व्याख्यानको पढकर, आप ही स्वयं अर्थ कहे।

प्र. वा. - ''एकमेवाद्वितीयं'' श्रुतिमें ब्रह्मका एकत्व उक्त है। ब्रह्ममें एकत्व नहीं इस तरह कैसे कहते हैं, इस तरहकी शंकाके आनेपर 'न वा केवलत्वं' वाक्यसे एकत्व अविद्या कल्पित है - असत्य है। इसलिये ब्रह्ममें एकत्व नहीं। ऐसा शंकराचार्य कहते है।

वादी - शास्त्रीजी। शंकराचार्यके इस वाक्यसे ब्रह्मज्ञानमें अद्वैतमतके अनुसार एकत्व नहीं यह सिद्ध होता है या नहीं ?

प्र. वा. - अद्वैतमतमें ब्रह्म-ज्ञानमें एकत्व सिद्ध नहीं होता।

वादी - बौद्ध, ज्ञानके निर्विशेषत्वको मानते हैं। नानात्व - अनेकत्व धर्मको मानते हैं या नहीं ?

प्र. वा. - वास्तवमें अनेकत्व धर्मका स्वीकार नहीं करते। अनेकत्व कल्पित है।

वादी - अद्वैतियोंके ब्रह्मज्ञानमें नित्यत्व, एकत्व नहीं। बौद्धोंके विज्ञानमें क्षणिकत्व, अनेकत्व नहीं, बौद्धोंके विज्ञानमें और अद्वैतियोंके विज्ञानमें भेद है यह कहना कैसा समंजस होगा ?

प्र. वा. - ''चोद्यं वा परिहारो वा क्रियतां द्वैतभाषया'' २* उक्तिके अनुसार द्वैतमतमें शंकायें और समाधान कहना है। द्वैत या अद्वैत को न माननेवाले हमें मिथ्याविचार अपेक्षित नहीं। भ्रान्त इसका विचार करते हैं। हमारे जैसे पण्डित पाषाणकी तरह चुप रहे, इस तरह हमारे शंकराचार्यने कहा है, हम आपके साथ कोई विचार नहीं करेंगे। आपके किसी भी प्रश्नका उत्तर न देकर चुप बैठे रहते हैं।

वादी वकीलका आर्ग्युमेंट

मतकी भिन्नता के लिये, मतमें उक्त तत्त्व भिन्न हों। अद्वैतियोंसे कहे गये तत्त्व, शून्यवादि बौद्धोंसे कथित तत्त्व एक ही होनेके कारण अद्वैतमत शून्यवादी बौद्धोंका मत ही है।

१* ननु एकमेवाद्वितीयमिति श्रुत्या एकत्वं प्रतिपाद्यते नेत्याह न वा केवलत्वमितिं। केवलत्वं एकत्वं तस्याविद्यकत्वात् (दशश्लोकी))

२* ''किं वा पेक्ष्यमिहापि मय्यतितरां मिथ्या विचाराधिकं द्वैताद्वैत विवर्जिते समरसे मौनं परं सम्मतं (प्रौढानुभूति) मिथ्यावाद विचार चिन्तन महो कुर्वन्त्यद्दष्टात्मतमका: भ्रान्ता: विनतपारगा दृढधियस्तूष्णीं शिलावत् स्थिता:)

३६७ - सिविल सूट (५)

अद्वैतमतके तत्त्व	शून्यवादि बौद्धके तत्त्व
१) ब्रह्म एक ही सत्य है।	१) शून्य एक ही तत्त्व है।
२) उस ब्रह्ममें समस्त जगत् अज्ञानसे कल्पित है, सपने की भाँति शुक्ति रजत जैसे, शशविषाणासा मिथ्या है।	२) उस शून्यमें समस्त जगत् अज्ञानसे कल्पित है, स्वप्न, शुक्ति रजत शशविषाण जैसे असत्य है।
३) अहं अहंब्रह्म रूपमें उपासना करके ब्रह्मभावरूप मोक्ष प्राप्त करें	३) अहं शून्यं अहं शून्यं उपासना करके शून्यभावरूप मोक्ष प्राप्त करे।

इस प्रकार दोनों मतके तत्त्व एक ही हैं, दोनों मतोंमें भेद नहीं। यह अवैदिक अद्वैतमत अनर्थका कारण बन सकता है। इसलिये प्रतिवादि अद्वैती, इस मतका उपदेश वैदिकमतके नामसे न करें, वैदिक सज्जन, आस्तिक लोग, इस अद्वैतमतका आश्रय न ले। मोक्षादि पुरूषार्थ के साधनीभूत द्वैतमत का आश्रय करके मोक्षादि पुरूषार्थ प्राप्त करें, यह प्रार्थना है।

प्रतिवादि वकीलका ऑर्ग्युमेंट

अद्वैतमतमें और शून्यवादि बौद्धमतमें जगतके कल्पित के विषयमें साम्य है। अन्य विषयोंमें भेद है इस कारणसे अद्वैतमत और बौद्धमत एक नहीं।

अद्वैतमतके तत्त्व	शून्यवादी बौद्धमतके तत्त्व
१) ब्रह्मतत्त्व (सत्य) जगतके भ्रमका अधिष्ठान है।	१) शून्य तत्त्व (सत्य) जगतके भ्रमका अधिष्ठान है।
२) जगत् व्यावहारिक सत्य है।	२) जगत् व्यावहारिक सत्य नहीं।
३) वेद प्रमाण है।	३) वेद प्रमाण नहीं।
४) स्वर्गादि परलोकका अस्तित्व है।	४) स्वर्गादि परलोक नहीं, उसके साधक पुण्यकर्म भी नहीं।
५) अद्वैत आस्तिक है।	५) बौद्ध नास्तिक है।
६) शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन किया है।	६) बुद्धोंने बौद्धमतकी स्थापना की है।

इन विषयोंमें अद्वैतमतमें और बौद्धमतमें भेद होनेके कारण अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है, एक नहीं। कुछ विषयोंमें अद्वैतमतमें और बौद्धमतमें साम्य है, पर एक नहीं हो सकते भेद के रहते हुये भी एक है ऐसे कहेंगे तो, सभी मत एक एक साम्यसे एक ही हों। साम्य और विरोध के रहते हुये भी एक होनेकी नौबत आ जाये इस तरह मानना युक्त नहीं, अद्वैतमत भिन्न है, बौद्धमत भिन्न है। यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान करके, अहं ब्रह्म अहं ब्रह्म, उपासना करके अन्तकरण को शुद्ध करके, वेदान्त शास्त्रोंसे अहं ब्रह्म रूप अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके, उस ज्ञानसे, अज्ञानकी निवृत्ति कर निर्गुण ब्रह्म भावरूप मोक्ष प्राप्त करें (हम निर्गुण ब्रह्म नहीं इस भ्रमका निवार, करें। यही उत्तम फल है। इस तरह सिद्धान्त लेश संग्रहादि अद्वैतियोंके ग्रंथोंमें कहा गया है।

ब्रह्म सर्वज्ञत्व, स्वतंत्रत्व, सर्वेशत्व, सर्वोत्तमत्व सत्य संकल्पत्व, सत्य कामत्वादि गुणोंसे पूर्ण है। जगत् सत्य है। जीव परमात्मासे भिन्न है। आदि द्वैतियोंसे कहे जानेवाले तत्त्व वेद, सूत्र, गीता आदि ग्रंथोंमें उक्त होनेके बावजूद भी उन तत्त्वोंके प्रतिपादनमें वेदादिकोंका तात्पर्य नहीं। इसलिये वह द्वैतमत उस प्रकारका आचरण, मोक्ष की पहली सीढी है, वह कनिष्ठ है।

अद्वैतमतके अनुसार आचरण, मोक्षतक उत्तम दर्जेका है। इसलिये उत्तम फलकी इच्छा करनेवाले अद्वैतमतके अनुसार आचरण करे। इस तरह कोर्ट आदेश करें और द्वैतियोंके दावेको बरखास्त करे ऐसी प्रार्थना है।

वादी वकीलका री आर्ग्युमेंट

प्रतिवादिने कहा : ''ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव ना परः'' ब्रह्मसे भिन्न जगत्, शशविषाण, गंधर्वनगर, मरूमरीचीका की तरह असत्य है। इस तरह बौद्धोंके जैसे स्वीकार करनेसे, वेद असत्य है। वेदका प्रामाण्यभी असत्य है यह सिद्ध होता है। इसलिये सन विषयोंमें अद्वैतमतमें और बौद्धमतमें कोई भेद नहीं होगा।

अद्वैतियोंके जैसे परलोकादि जगतका व्यावहारिक सत्य मानते हैं। यह बौद्धग्रंथोंसे ज्ञात होता है। अद्वैतग्रंथोंसे भी सिद्ध होता है। इसलिये इस विषयमें दोनों मतमें कोई भेद नहीं। वेदादि प्रमाण जगतके व्यावहारिक सत्यत्वका बोध नहीं कराते, पारमार्थिक सत्यत्वका ही बोध कराते हैं। इस तरह शंकरभाष्य, भामती, ग्रंथोंसे ज्ञात होता है। इसलिये प्रमाणोंसे सिद्ध वेदादि जगतको व्यावहारिक सत्यत्व कहते हैं। यह कहना युक्त नहीं।

व्यावहारिक सत्य, असत्य ही है ऐसा अप्पय दीक्षितने और अनेकों लोगोंने स्वीकार किया है। जगतको असत्य कहनेसे जैसे प्रमाण विरोध होता है, वैसे जगतको व्यावहारिक सत्य कहनेसे भी प्रमाण विरोध होता है।

शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन नहीं किया, कुमारिल भट्टने बौद्धमतका खण्डन किया, यह शंकराचार्यके ग्रंथोंसे, शंकरविजय ग्रंथोंसे सिद्ध होता है। शंकराचार्यने बौद्धमतका खण्डन किया है। इसलिये शंकर का अद्वैतमत बौद्धमत नहीं होगा, ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं। अद्वैतमत बौद्धमत ही है। इस तरह साक्षात् नारायणावतारी भगवान् वेदव्यासने ही कहा है। शंकराचार्यके पहले ही (जिस समय अद्वैतमत प्रचारमें आया उस समय) उस समय के विद्वानोंने अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहा है, इस प्रकार गौडपादाचार्य, शंकराचार्यादि अद्वैतग्रंथोंसे पता चलता है। शंकराचार्यादि अद्वैतियोंने अपने मतमें और बौद्धमतमें साम्य स्वीकार करके, अपने मतके आग्रहसे तनिक भेद दिखाया है, वस्तुतः वह भेद नहीं।

शंकराचार्यके समकालीन भास्कराचार्यने विज्ञानभिक्षु आदि पण्डितोंने अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहा है। इसलिये अद्वैतियोंके विषयमें द्वेष ता, द्वेषसे वे कहा करते थे, यह कहना सही नहीं। अद्वैतमतके तत्त्वोंमें और बौद्धमतके तत्त्वोंमें कोई भेद नहीं। अतः दोनों मत एक ही है। (जो जैसे है,

उसको उसी तरह कहना) द्वेषमूलकके रूपमें कल्पना करने का कारण नहीं। कोर्टमें किसीने एक विषयमें गवाही देगा, अगर उसकी कोई बाधा नहीं आयेगी तो, साक्षीदारके साक्ष्यको सत्य ही मानते हैं। उसी तरह शंकराचार्यके पूर्वकालीन पंडितोंने, शंकराचार्यके समकालीन विद्वानोंने, शंकराचार्यके पश्चात् आये पण्डितोंने भी अद्वैतमतको बौद्धमत ही कहते है। तत्त्वोंकी तुलना करनेपर वैसा ही सिद्ध होता है। दोनों मत एक ही हैं कोई बाधा नहीं इसलिये स्वीकार करना पडेगा। शंकराचार्यादि अद्वैतियोंनेअद्वैतमतमें और बौद्धमतमें बहुतसे अंशोमें साम्यको मानते है। किसी तरह थोडेसे अंशोंमें भेद दिखाते है। वास्तवमें कोई भेद नहीं ऐसा विज्ञापन हम कर चुके हैं। इसलिये अद्वैतमत बौद्धमत ही हैं।

अद्वैती कहते हैं – ब्रह्मज्ञानरूप, आनंदरूप और सत्य है।

बौद्ध कहते हैं – शून्य असत्य है, ज्ञानरूप नहीं, आनंदरूप नहीं।

अत: बौद्धमतमें और अद्वैतमतमें इस अंशमें भेद है। यह दलील युक्त नहीं। ब्रह्म, सत्य, ज्ञानस्वरूप, आनंद स्वरूप, अज्ञेय आवाच्य सकल धर्मरहित है, अद्वैतियोंके कथनके अनुसार शून्य सत्य, ज्ञानरूप, आनंदरूप, अज्ञेय, अवाच्य समस्त धर्मरहित कहते हैं बौद्ध। यह विषय बौद्धोंके ग्रंथोंसे अद्वैतियोंके ग्रंथोंसे सिद्ध होता है। केवल शून्य, ब्रह्ममें किसी भेदको नहीं मान सकते। भेदक धर्मके अभावमें शून्यवाद ब्रह्मवाद ही है, इस तरह अद्वैती ब्रह्मविद्याभारणकार कहते हैं कि शून्य भावरूप है तो वह ब्रह्मरूप हुवा। इस तरह स्वीकृत हो सकता है। शून्य प्रपंचाभाव होनेपर भी, अद्वैतसिद्धयादि ग्रंथोंमें ब्रह्मको भी प्रपंचाभाव रूप माना गया है। इस कारणसे अद्वैतियोंका प्रपंचाभावरूप ब्रह्म, प्रपंचाभावरूप बौद्धोंका शून्य एक ही होंगे।

अद्वैतोंका ब्रह्म वेदादि प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता। यह अद्वैतियोंसे स्वीकृत है, बौद्धोंके शून्य की तरह अप्रामाणिक ही होगा। अत: अद्वैतिका ब्रह्म स्वीकार्य नहीं होगा।

''ब्रह्म स्वप्रकाश होनेसे सिद्ध होता है। यह युक्त नहीं क्योंकि ब्रह्मको प्रमाणोंसे नहीं जान सकते, प्रमाणोंसे जानने योग्य भी नहीं। ब्रह्मके स्वप्रकाशकत्व के विषयमें प्रमाण भी नहीं। प्रमाणके न रहनेपर भी अगर ब्रह्मको स्वप्रकाश मानेंगे तो शशविषाणको भी स्वप्रकाश मानना पडेगा। ब्रह्मको स्वप्रकाश माननेपर भी, अद्वैतियोंके अर्थके अनुसार इतरावेद्य ही स्वप्रकाश है। अवेद्य वस्तु सिद्ध हुवा, अर्थात् वेद्य हुवा, यह तर्क संगत नहीं होगा। इस तरह मानेंगे तो ब्रह्म के जैसे प्रमाणोंसे अवेद्य शशविषाण भी वेद्य हो, इसलिये अद्वैतियोंका ब्रह्म शशविषाण की तरह अप्रामाणिक ही होगा।

वेद अद्वैतब्रह्मका प्रतिपादन नहीं करता। वेदोंसे प्रतिपाद्य जगतके असत्य होनेसे, वेद प्रमाण है, सत्य पदार्थोंका बोध करता है, यह तर्क संगत नहीं होता। जगत् जगदन्तपाती सब कुछ, वेद प्रतिपाद्य होनेसे भी असत्य, कहकर वेदको प्रमाण विरूद्ध होगा। अत: अद्वैतमतके अनुसार वेद अप्रमाण ही है।

बौद्ध भी कहते हैं – ''स्वर्गकामश्चैत्यं वंदेत्'' शास्त्राधारपर स्वर्गके लिये पुण्यकर्म करते हैं। और अहं शून्य: अहं शून्य: इस तरह उपासना करके शून्यपरोक्ष प्राप्त करके, निर्गुणशून्यभावरूप मोक्ष प्राप्त करते हैं। (अद्वैतियोंके निर्गुण भावरूप मोक्ष की तरह) इस तरह अद्वैतियोंने ही कहा है।

'अद्वैती वेदोक्त कर्म करके स्वर्गादि लोक प्राप्त करते हैं। शुद्ध मनस्क होकर श्रवणादि करके ब्रह्मापरोक्ष को प्राप्त करके निर्गुण ब्रह्मरूप मोक्ष प्राप्त करते है। अत: बौद्ध पुण्यकर्म करके स्वर्गादि प्राप्त नहीं करते, मोक्ष भी प्राप्त नहीं करते। ऐसा कहना युक्त नहीं।

यज्ञ, उपासना, कर्म करना, कर्म करनेवाला, अन्त:करण, शुद्धि, शास्त्र, शासन करनेवाला, वेद अद्वैतोंका निर्गुण ब्रह्म, बन्ध, मोक्ष, मोक्ष की इच्छा करनेवाला, ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम सब कुछ असत्य कहते कहते, हम भी असत्य है। ब्रह्मचर्याद्याश्रम भी असत्य, ब्रह्मचर्याद्याश्रमोंको असत्यभूत वेदसे, विहित यज्ञादि भी असत्य, असत्यभूत अन्तकरणमें झूठी शुद्धि पाकर, असत्य श्रवणादि करके, असत्य वेदान्तशास्त्रसे असत्य निर्गुण ब्रह्म प्राप्त करना वैसा ही है। वंध्यापुत्र मृगमरीचिकामें स्नान करके, गगन कुसुमसे सजधजकर शशश्रृंग धनुष्यको धारण करके युद्ध करता है। ऐसा कहना जैसे अयुक्त है, यह छोटे बालक भी समझते हैं।

''ज्योतिष्टोमदि श्रुति बोधितानुष्ठानात् फलसिद्धि: स्वाप्न श्रुतिबोधितानुष्ठान प्रयुक्त फल संवादतुल्या'' इस प्रकार सिद्धान्तलेश संग्रहादि ग्रंथोंसे, स्वप्नपदार्थ जैसे याग स्वर्ग, सबकुछ असत्य है। ''न हि स्वप्न सुखाद्यर्थ'' यज्ञ यागादिमें प्रवृत्त होना अयुक्त है। इस तरह कुमारिल भट्ट ने कहा है। स्वर्गके लिये यज्ञ यागादिमें प्रवृत्त होना अयुक्त है, इस विषयको अद्वैतियोंने समझा है, फिर भी ''वचनार्थमुपन्यास'' आस्तीक लोगोंको फँसाने के लिये ही कर्मानुष्ठान का नाटक करते हैं। वस्तुत: उनके मतके अनुसार, कर्तव्य कुछ भी नहीं, उनका फल भी नहीं। इस तरह अद्वैतमत, अवैदिक शून्यवादियोंका बौद्धमत एक ही है। इस तरह का आदेश दे, कोर्टको जो उचित योग्य जँचे, उस प्रकार ऑर्डर दे, यही हमारी प्रार्थना है।

विज्ञानवादि विषयमें वादी वकीलका आर्ग्युमेंट .

वा. व. - (कोर्टसे) महाप्रभु! १* ''आरोग्यद्दष्टि'' इन श्लोकोंसे अधमाधिकारिके लिये परिणाम द्दष्टि (परिणामवाद) मध्यमाधिकारिके लिये व्यामिश्र द्दष्टि (विवर्तवाद), उत्तमाधिकारीके लिये द्वैतोपशम द्दष्टि (प्रपंचरहित जीव ब्रह्मैक्य द्दष्टि) इस तरह अद्वैती तीन द्दष्टियोंका बयान करते हैं।

कृपण धी: परिणाममुदीक्षते क्षपितकल्मषधीस्तु विवर्ततां ॥ स्थिरमति: पुरूष: पुनरीक्षते व्यपगतद्वितीयं परमं पदम् (२/८९) संक्षेप शारीरीक)

बौद्ध भी १) अधम शिष्य (मूढशिष्य) आरंभमें सर्व शून्य तत्त्व है कहनेपर सभी स्वीकार नहीं करेंगे, इस उद्देशसे इन मूढ शिष्योंके लिये दिखनेवाले बाह्यपदार्थ सत्य हैं, पर क्षणिक हैं। इस तरह कहनेवाले सौत्रान्तिक वैभाषिक मतोंको कहकर, क्रम क्रमसे सबकुछ शून्य है। इस तरह अंतमें कहते है।

२) मध्यम शिष्योंके लिये वे कहते हैं। बाह्य जगत् कल्पित है, विज्ञान एक ही तत्त्व है, ऐसे

१* आरोग्यद्दष्टिरूदिता परिणाम द्दष्टि द्वैतोपमशान्तिरपवादक द्दष्टिरन्त्या ॥ मध्ये विवर्त विषयाद्द्वय मिश्र द्दष्टि: व्यामिश्र द्दष्टिरधरोत्तर भूमि भावात् (२-८२)

कहकर अन्तमें सर्वशून्यमें पर्यवसान करते हैं।

३) उत्तम शिष्योंके लिये आरंभमें ही कहते हैं। शून्य ही तत्त्व है, उस शून्यमें पूरा जगत् कल्पित है, जगत स्वप्नकी भाँति असत्य है। विज्ञानवादि मत, शून्यवादिमत एक ही है। शून्यवादि मत और अद्वैतमत एक हो जानेपर और विज्ञानवादि मत भी अद्वैतमत एक ही होते है।

इतना ही नहीं विज्ञान एक सत्य है। इस विज्ञानमें बाह्य समस्त जगत् कल्पित है। इन विज्ञानवादी बौद्धोके तत्त्वोंको अद्वैतशास्त्रमें लिये गये है। इस विषयको अद्वैतशास्त्र के प्रथम प्रवर्तक गौडपादाचार्य, शंकराचार्य, पंचपादिकाकार, विवरणकार, तत्त्वदीपनकारादि समस्त अद्वैती मान चुके हैं। अद्वैतमत विज्ञानवादि बौद्धमतकी है, अतएव उसके जैसे अवैदिक है। वैदिकमतके भ्रमसे वैदिक आस्तिकलोग इसका आश्रय लेकर ''मामप्राप्यैव कौन्तेय'' ततो यान्त्यधमां गतिं। उनकी भलाई के लिये कोई यह निर्णय करे। १) अद्वैतमत अवैदिक बौद्धमत है २) इस अद्वैतमतका उपदेश वैदिकमतके रूपमें न करें, इस तरहकी प्रार्थना हम करते हैं।

प्रतिवादि वकीलका ऑर्ग्युमेंट

यद्यपि बौद्धोंने, उत्तम, मध्यम, अधम, शिष्योंको भिन्न भिन्न तत्त्वोंके उपदेश करते हुवे दिखाया है। वे दोनों मत जैसे सर्वशून्यतामें पर्यवसित होते हैं, उसी तरह अद्वैतियोंने भी उत्तमाधममध्यमोंको, उनकी बुद्धिके अनुसार, परिणाम द्रष्टि, विवर्तद्रष्टि, द्वैतोपशम द्रष्टि का उपदेश दिया है। परिणाम द्रष्टि आरै विवर्तद्रष्टि द्वैतोपमशम द्रष्टिमें ही पर्यवसित होते हैं। विज्ञानवादि की तरह ज्ञान एक तत्त्व है, उस ज्ञानमें समस्त जगत् कल्पित है, स्वप्न की भाँति असत्य है, यह मानते हैं। इतना स्वीकार करनेपर भी अन्य विषयोंमें अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है, अत: अद्वैतमत और बौद्धमत एक नहीं हो सकते। अद्वैतमतमें कुछ विषयोंमें बौद्धमतका साम्य है। थोडेसे साम्यके कारण अद्वैतमत बौद्धमत होगा तो, सभी मतोमें कुछ न कुछ साम्य होता है, तो क्या सभी मत एक हो जायेंगे ? अद्वैतमतमें बौद्धमत का साम्य कुछ अंशोंमें होनेके कारण दोनों एक नहीं हो सकते।

१) बौद्धो का विज्ञान क्षणिक है और अनेकत्वयुक्त है, वेदान्तसे ज्ञेय नहीं, अद्वैतियोंका विज्ञान (ब्रह्म) नित्य है, एकत्वयुक्त है, वेदान्तसे जानने योग्य है। बौद्ध स्वर्गादिकोंको नहीं मानते, पुण्यपापोंको स्वीकार नहीं करते। हम अद्वैति स्वर्गादिकोंको मानते हैं। पुण्यपापोंको स्वीकार करते हैं। इन कारणोंसे अद्वैतमत बौद्धमतसे भिन्न है। वादि द्वेषमूलक हमारे मतको अवैदिक, बौद्धमत कहता है। इसलिये वादि की किसी भी प्रार्थना का आदर न करके, इस दावेको खारिज करें, यही प्रार्थना है।

वादी वकीलका री आर्ग्युमेंट

कोर्टसे – महाप्रभु!

बौद्धोंका विज्ञान क्षणिक है। (क्षणिकत्व धर्मयुक्त है) अनेक (अनेकत्वधर्मयुक्त है) यह कहना झूठ है। अद्वैतोंका ब्रह्म (विज्ञान) वेदान्त से जानने योग्य है और नित्य है। एक है (एकत्वयुक्त है)

यह बयान असत्य है। इस प्रकारके भेदक धर्मोंसे अद्वैतियोंको आस्तिक्त्व और वैदिकत्व नहीं आ सकता। अद्वैतियोंका ब्रह्म (ज्ञान) निर्विशेष है (समस्त धर्म रहित है) इस तरह अद्वैतियोंका मानना है। अद्वैतियोंके ज्ञानमें वेदान्त वेद्यत्व नहीं, एकत्व भी नहीं, नित्यत्व भी नहीं। मुख्यवृत्तिसे हो या अमुख्यवृत्तिसे हो, शब्द प्रवृत होते हैं। शब्दोंकी प्रवृत्ति के कारण नाम, रूप, गुण, क्रिया, जाति, संबंध, भेद आदि धर्म ब्रह्ममें नहीं मानते अद्वैती। ब्रह्मको स्वप्रकाश - अन्य प्रमाणोंसे अज्ञेय कहते हैं। अत: बौद्धोंके विज्ञान के जैसे अद्वैतियोंका ब्रह्म भी वेदान्तसे जानने योग्य नहीं।

''न वा केवलत्वं'' श्लोकमें एकत्व अविद्याकल्पित होनेसे ब्रह्ममें नहीं यह शंकराचार्यका कहना है। बौद्धोंका विज्ञान निर्विशेष होनेसे उस विज्ञानमें क्षणिकत्व नहीं, अनेकत्व भी नहीं। इस तरह उन दोनोंके विज्ञान तत्त्वमें भेद नहीं।

ब्रह्ममें एकत्व धर्म, नित्यत्व धर्म न होनेके बावजूद भी ब्रह्म एकत्व स्वरूप है। नित्यत्व स्वरूप है। बौद्धोंके विज्ञानमें क्षणिकत्व धर्म न होनेपर भी वह विज्ञान क्षणिकत्वरूप, अनेकत्व धर्म न होनेपर भी अनेकत्व स्वरूप युक्त नहीं होगा। क्योंकि एकत्व अविद्या कल्पित है (असत्य है) ये विचार अद्वैतियोंके ही है। अविद्याकल्पित एकत्व (असत्य) एकत्व अविद्या कल्पित न बने। सत्यभूत ब्रह्मका स्वरूप होता है। ऐसा कहना अत्यंत असंभवित है। सकल काल वृत्तित्वरूप नित्यत्व सखण्ड होनेसे (अनेक पदार्थोंसे युक्त होनेसे) अखण्ड ब्रह्म स्वरूप नहीं हो सकता। इसी तरह एक क्षण वृत्तित्वरूप सखण्ड क्षणिकत्व अखण्ड ज्ञानरूप होता ऐसा कहना भी तर्कपराहत है। नित्यत्व एकत्व ब्रह्मस्वरूप कहना क्षणिकत्व अनेकत्व बौद्धोंका विज्ञान स्वरूप कहना युक्त नहीं। इस तरह विज्ञानियोंमें भेद युक्त नहीं होता।

बौद्धोंमें भी विज्ञान को नित्य कहनेवाला माननेवाला हैं। यह विचार अद्वैतियोंके ग्रंथोंसे और बौद्धों के ग्रंथोंसे सिद्ध होता है। इस कारणसे भी बौद्धोंका मत और अद्वैतियोंका मत एक ही है। यह प्रमाणित होता है, बौद्धोंके विज्ञानको अनित्य, अद्वैतियोंके विज्ञानको नित्य समझनेपरभी, ब्राह्मणादिवर्ण, यज्ञ, स्नान, संध्या, वेद, तीर्थ, परलोक, पुण्यपापादिको असत्य कहते हैं। नास्तिकोंके जैसे। ''नहि स्वप्नसुखाद्यर्थ धर्मे कश्चित्प्रवर्तते'' उक्त प्रकारसे आस्तिकोंकी तरह स्नान, संध्या, वेदाध्ययन, भगवत्पूजा वगैरह करना युक्तियुक्त नहीं। इस तरहके अल्पवैषम्यसे अद्वैतमतका, वैदिकत्वकी स्थापना नहीं हो सकती। इस तरहके अल्प वैषम्यसे अद्वैतमतका, वैदिकत्वकी स्थापना नहीं हो सकती इस तरहके मतको स्वीकृत अद्वैती, आस्तिक, वैदिक नहीं हो सकते। इस तरहकी परिस्थिति होनेपरभी यज्ञ, वेदाध्ययन, भगवतपूजा करना, आस्तिक लोग हमारे मतको आस्तिक समझे और हमारे मतको स्वीकार करें। इस तरह लोगोंको फँसाने के लिये ही ये कर्मानुष्ठान करते हैं।

बौद्ध भी स्वर्ग कामश्चैत्वं वंदेत् , वाक्यके आधारपर, स्वर्गादिकोंको मिथ्या समझते हुवे भी मिथ्याभूत स्वर्गकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म अद्वैतियोंके जैसे करते है। इस कारणसे दोनों मतोंमें अद्वैत और बौद्धमतोंमें) कोई भेद नहीं। अत: आस्तिक लोग, अद्वैतियोंके उपदेशसे अवैदिक अद्वैतमतको वैदिक समझकर, उस मतका आश्रय करके, अधोगति प्राप्त करते हैं। अत: कोर्टसे

३७३ - सिविल सूट (५)

प्रार्थना है कि कोर्ट यह आदेश दे कि अद्वैतमत अवैदिक बौद्ध मत ही है, उस मतका उपदेश वैदिकमतके रूपमें न करें। पारमार्थिक सत्यभूत ब्राह्मणादि वर्ण, ब्रह्मचर्याद्याश्रम, स्नान, संध्या, यज्ञ, देवता, वेद स्वर्ग, परलोकादिके समस्त जगतके उत्पादक और रक्षक परमात्माको सर्वज्ञत्वादि समस्त गुणपूर्ण, जीवजडात्मक प्रपंचसे भिन्न, मोक्षादि पुरूषार्थ देनेवाले, समझकर उस परमात्माके उद्देशसे वेदोक्त यज्ञादि धर्मोंका अनुष्ठान करके शुद्ध मनस्क होकर, श्रवण, मनन, ध्यान करके उस परमात्माको साक्षात्कार करके, उसीके प्रसादसे (उसीकी कृपासे) इसलोकमें अपेक्षित पुरूषार्थको पार, प्रकृति बन्धनसे मुक्त होकर वैकुंठादि लोकको प्राप्त करें। ''स एकधा भवति स बहुधा भवति'' ''जक्षन् क्रीडन् रममाण:'' ''स यदि पितृलोक कामो भवति संकल्पादेवास्य पितर: समुत्तिष्ठन्ति'' ''अनावृत्ति शब्दात्'' ''इमं मानवमावर्तं न आवर्तन्ते'' ''सर्वान् कामान् आप्त्वा अमृत: समभवत्'' ''कामान्नकामरूप्यमनुसंचरन्'' ''एतत्सामगायन्नास्ते'' इत्यादि श्रुतियोंमें उक्त प्रकारसे, नाना रूपोंको धारण करके, इच्छा होनेपर अपने पितरोंको देखते देखते अभीष्ट भोगोंका अनुभव करते करते मोक्षमें रहे। फिर इस मानवलोकमें आकर, जन्ममरणके चक्रमें न फँसकर, सामगानसे परमात्माके गुणोंको गाते नित्य सुखी बनकर रहे। यह द्वैतमतका रहस्य है। इसीलिये द्वैतमतके अनुसार आचरण करके सुखी बने, ऐसा ही निर्णय करें। महाप्रभु जो उचित समझे, उन्हीं का निर्णय करें। यह हमारी प्रार्थना है।